पुरुषोत्तमदेवकृत

भाषावृत्ति का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० लेखराज शर्मा

पाठकों के ध्यानार्थ

भाषावृत्ति पाणिनीय अष्टाध्यायी के लौकिक सूत्रों की संक्षिप्त, सरल, सरस और सारगर्भित व्याख्या है। यह वृत्ति त्रिमुनियों, काशिका एवं भागवृत्ति के व्याकरणिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिए परमोपयोगी है।

पाणिनि के कतिपय सूत्रों के विषय में आचार्यों में मतभेद पाया जाता है जिसके कारण कतिपय प्रयोगों के स्वरूप तथा कतिपय प्रयोगों की साधना की प्रक्रिया में अन्तर हो जाता है। भाषावृत्ति में पठित कतिपय इष्टिवचन अन्यत्र दुर्लभ हैं। इसमें कतिपय आचार्यों के मत में यण् आगम के रूप में तथा मनु शब्द स्त्रीलिङ्ग के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

वृत्तिकार ने स्वमत की पुष्टि के लिए परमत का आश्रय "तदुक्तं भाष्ये", "यदुक्तं भाष्ये", आदि प्रकारक वाक्यों द्वारा लिया है। उन्होंने परमत से असहमति "माथुर्य्यां तु", "भाष्यकारस्य तु", "इति तु न्यासः" आदि प्रकारक वाक्यों द्वारा व्यक्त की है। जो शब्द सूत्र, वार्तिक तथा इष्टिवचनों की परिधि में नहीं आते हैं, उनकी सत्ता पर उसने "चिन्त्य" शब्द द्वारा प्रश्न-चिह्न लगा दिया है।

✓ वह बौद्धमतावलम्बी है अतः उसने बौद्धमत को श्रेष्ठ घोषित करने तथा वैदिकधर्मी विश्वासों को हतोत्साहित करने का पूरा प्रयास किया है। उसने स्वकीय उदाहरणों में तत्कालीन समाज, शासन-व्यवस्था, शिक्षा, सम्प्रदाय तथा भौगोलिक स्थिति आदि का चित्रण प्रस्तुत किया है।

पुरुषोत्तमदेवकृत भाषावृत्ति का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन

PURUṢOTTAMADEVAKṚTA BHĀṢĀVṚTTI KĀ VIVECANĀTMAKA EVAM TULANĀTMAKA ADHYAYANA

डॉ० लेखराज शर्मा

शास्त्री, ओ० टी०, एम० ए०, पी-एच० डी०

ज्ञानाशीष प्रकाशन

हिमाचल-प्रदेश

प्रकाशक एवं वितरक :
ज्ञानाशीष प्रकाशन
ग्राम व पत्रालय—भिड़ा
जिला—हमीरपुर (हिमाचल-प्रदेश)
पिन-177001

(राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग से मुद्रित एवं प्रकाशित)

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 1997

कुल प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 115.00 रुपये

मुद्रक :
जैन अमर प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली

अनुशंसा

डा० लेखराज शर्मा द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत 'पुरुषोत्तमदेवकृत भाषावृत्ति का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन शीर्षक शोधप्रबन्ध को पढ़ने का सुयोग प्राप्त हुआ। सामग्री-संकलन के श्रम, वर्गीकरण की सतर्कता और विषय-विवेचन के वैशद्य की दृष्टि से यह उत्तम कोटि की कृति निष्पन्न हुई है। इस के लिए श्री शर्मा विद्वज्जगत् की हार्दिक बधाई एवं शुभ कामनाओं के अधिकारी हैं। आपने तर्क एवं बुद्धिग्राह्य अन्तः-बाह्य साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया है कि पुरुषोत्तमदेव की जन्म-कर्मस्थली बङ्गप्रदेशस्थ वेरन्द्री है और भाषावृत्ति का रचनाकाल ११६९ ई०— ११७५ ई० के मध्य है। शोधप्रबन्ध का दूसरा अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, अत एव कलेवर में भी विशाल है। इस अध्याय में भाषावृत्ति के प्रतिपाद्य विषय तथा प्रवृत्ति पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। भाषावृत्ति में परस्पर विरोध की ओर भी संकेत किया गया है। १४७ स्थानों में मतान्तर प्रदर्शित किये गये हैं। इष्टियों का सामान्य विवेचन बहुत उपयोगी है। भाषावृत्ति में पठित ५१ इष्टियों का विवेचन एवं तुलनात्मक अध्ययन अच्छा है।

प्रकृत शोधप्रबन्ध में भाषावृत्ति की व्याख्यानशैली का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसङ्ग में लेखक ने पुरुषोत्तमदेव द्वारा अपनाये गये संक्षेप के दस उपायों, परमत-खण्डन, मत-मतान्तर के उल्लेख, सरल-सरस उदाहरण, बौद्धमत प्रचार और पञ्चविध व्याख्यान पर प्रभूत प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ में भाषावृत्ति के पाँच अङ्गों— सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ तथा लिङ्गानुशासनसूत्रपाठ— की विस्तृत परीक्षा की गई है। ग्रन्थकार ने भाषावृत्ति में प्रस्तुत उदाहरणों में चित्रित तात्कालिक समाज, शिक्षा, धर्म, शासन व्यवस्था आदि विषयों को प्रदर्शित किया है। भाषावृत्ति के सरलता, सरसता आदि गुणों का उल्लेख उचित ही है, परन्तु उसकी कुछ न्यूनताओं का संकेत भी अपेक्षित है। उदाहरणार्थ— निषेधपञ्चसूत्रीयं स्वरार्था (पृ० ५२ पर उद्धृत) इत्यादि कथन लौकिक भाषा के अध्येताओं के लिए अनावश्यक हैं, जिनका तो

हैं ही। ग्रन्थ में मुद्रण की अशुद्धियाँ कई स्थलों पर अनर्थ उत्पन्न करती हैं– यथा घुसंज्ञक=घसंज्ञक (पृ० २३), एवागते=एवावगते (पृ० ४५)। कुल मिलाकर डा० शर्मा का श्रम श्लाघनीय, संकलन एवं विवेचन प्रशस्त और कृति स्वागतार्ह है।

दिनाङ्क : १८.३.९८

डॉ० विजयपाल
प्राचार्य
पाणिनि महाविद्यालय,
बहालगढ़, जिला सोनीपत
हरियाणा-१३१०२१

कृतज्ञता प्रकाशन

परमेश्वर की कृपा से मुझे माननीय डा. घनश्याम उनियाल जी का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ जो सज्जन होने के साथ-साथ परम विद्वान् भी हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में जो कुछ भी अच्छा बन सका है यह उन्हीं के सत्प्रयासों का फल है। मैं मान्यवर गुरु जी का अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने हमेशा शोध-प्रबन्ध में आने वाली कठिनाइयों का बड़ी दिलचस्पी से निराकरण किया है।

सम्माननीय गुरुवर मुनीश्वर देव जी, माननीय गुरुवर पशुपति झा जी ने उन सभी गुत्थियों को बड़ी उदारता से सुलझाया है, जो पेचीदगी से भरी हुई प्रतीत होती थीं अतः हार्दिक रूप से उनका आभार व्यक्त करता हूँ। माननीय डा. ब्रजविहारी चौबे प्रोफेसर जी का शैली को सुन्दर बनाने के लिये दिये गये परामर्श अविस्मरणीय हैं अतः उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। डा. धर्मानन्द जी की उदारता का उल्लेख नहीं किया जा सकता क्योंकि वे साहित्य सम्बन्धी जानकारियों का बड़ी आसानी से निराकरण कर दिया करते थे तथा मुझे हमेशा प्रोत्साहित करते रहे हैं अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। डा. जगदीश प्रसाद सेमवाल और डा. श्यामदेव पराशर जी का भी मुझे आर्शीवाद मिला है क्योंकि इन दोनों विद्वानों ने अल्पकालिक चर्चा में ही शोध-सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी प्रस्तुत कर दी थी इसलिये उनका भी धन्यवादी हूँ। पं. दुनि चन्द जी का पर्याप्त स्नेह और आशीर्वाद सतत् मिलता रहा है अतः उनका भी आभारी हूँ।

डा. श्यामलाल डोगरा अध्यक्ष पुस्तकालय, डा. सतीश चन्द्र सहायक पुस्तकाध्यक्ष, डा. हरिमित्र, श्रीमती उर्मिला और श्री अजीत सिंह जी का हमेशा पुस्तकें उपलब्ध कराने में पूर्ण सहयोग मिला है अतः सबका हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य सभी कर्मचारियों का सहयोग देने के लिये आभार प्रकट करता हूँ।

प्रात: स्मरणीया पूजनीया माता-पिता जी, आदरणीया बूआ जी, बहिन जी, आदरणीय बहिनोई जी का आर्शीवाद मुझे सतत् मिला है अत: उनका विशेष आभारी हूँ। ज्येष्ठ भ्राता श्री हंसराज शर्मा और कनिष्ठ भ्राता श्री दिलीपराज शर्मा की शुभकामनायें हमेशा मिली हैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्रीमती ज्ञानो देवी धर्मपत्नी ने हमेशा बड़े धैर्य और विवेक का परिचय दिया है अत: शोध-प्रबन्ध की पूर्णता में उसका भी योगदान रहा है।

आदरणीय बन्धुओं में श्री यशवन्त सिंह राणा, श्री बाबू राम वर्मा, श्री सोहन सिंह, डा. कुलदीप अग्निहोत्री, श्रीरामेश्वर दत्त शर्मा, श्री सुरेश कुमार वर्मा, श्री पवन कुमार गौतम, श्री जगदीश चन्द राङ्गड़ा, श्री तुलसी राम चौहान, श्री केवल कृष्ण, मेरे शोध कार्य को पूर्ण देखने के इच्छुक थे।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, राजा गार्डन नई दिल्ली के मान्यवर निदेशक तथा सम्पूर्ण कर्मचारी वर्ग ने शोध-प्रबन्ध के प्रकाशनार्थ 50% आर्थिक अनुदान की दिनांक 9/1/96 को न० RSKS/Pub/ Gnt./ 102/369/94/651 के अन्तर्गत स्वीकृति प्रदान की है तभी यह पुस्तक रूप में प्रकाशिक हो पाया है अत: हृदय से आभारी हूँ।

मान्यवर उपकुलपति पञ्जाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ ने दिनांक 17.3.97 को 2499/ Sec / Thesis द्वारा मुझे शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित करने की अनुमति दी है उसके लिए धन्यवादी हूँ।

अन्त में श्री किशोर चन्द जैन जैन अमर प्रिंटिंग प्रैस का कुशल मुद्रण के लिए धन्यवादी हूँ।

विदुषां वशंवदः

[डॉ० लेखराज शर्मा]

आमुख

पाणिनीय अष्टाध्यायी संस्कृतव्याकरण की सर्वश्रेष्ठ कृति है। अष्टाध्यायी सूत्रों का संग्रहमात्र है। सूत्र एक प्रकार के साङ्केतिक शब्द होते हैं। इन सूत्रों का अभिप्राय समझने के लिये व्याख्यनग्रन्थों की अपेक्षा होती है। अष्टाध्यायी के व्याख्यानग्रन्थ द्विविधरूप में पाये जाते हैं - अष्टाध्यायीक्रम में और प्रक्रियाक्रम में। अष्टाध्यायीक्रम में पाणिनि के सूत्रों की उसी क्रम से व्याख्या की गयी है जिस क्रम में उन्हें अष्टाध्यायी में विन्यस्त किया गया है। इस क्रम में सूत्रार्थप्रधान वृत्तिग्रन्थों का सन्निवेश किया जाता है। ये वृत्तिग्रन्थ तीन भागों में विभक्त किये जाते हैं - काशिका से पूर्ववर्त्ती वृत्तिग्रन्थ, काशिकावृत्ति और काशिकावृत्ति से उत्तरवर्त्ती वृत्तिग्रन्थ।

काशिका से पूर्व पाणिनीय अष्टाध्यायी पर पाणिनिवृत्ति, माथुरीवृत्ति आदि जिन वृत्तिग्रन्थों की रचना हुई है वे सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं। इनके व्याकरणिक सिद्धान्त केवल यत्र तत्र उल्लिखित पाये जाते हैं। काशिकावृत्ति के अनन्तर जिन वृत्तिग्रन्थों की रचना हुई है उनमें से भी कतिपय वृत्तिग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध हैं। इन अनुपलब्ध वृत्तियों में भागवृत्ति का नाम सर्वोपरि है। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने इस वृत्ति के कतिपय सिद्धान्तों का सङ्कलन किया है जिसे "भागवृत्तिसङ्कलन" के नाम से जाना जाता है। इस वृत्ति में प्रायः भाष्यमत से सहमति तथा काशिका मत से असहमति पायी जाती है। सम्प्रति जो वृत्ति ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें काशिकावृत्ति, भाषावृत्ति, व्याकरणमिताक्षरा, शब्दकौस्तुभ, व्याकरणदीपिका, व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि, दुर्घटवृत्ति और अष्टाध्यायीभाष्य प्रमुख हैं। इनमें काशिकावृत्ति, भाषावृत्ति, व्याकरणमिताक्षरा, व्याकरणदीपिका और दुर्घटवृत्ति पूर्णरूपेण उपलब्ध हैं किन्तु शब्दकौस्तुभ, व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि और अष्टाध्यायीभाष्य अपूर्णरूपेण उपलब्ध।

यद्यपि इन सभी वृत्तिग्रन्थों में सूत्रार्थ तथा उदाहरण-प्रत्युदाहरणादि का निर्देश समानरूप में पाया जाता है तथापि प्रत्येक वृत्तिग्रन्थ की अपनी एक विशेष विशेषता है तथा एक विशेष लक्ष्य। काशिकावृत्ति का मुख्य लक्ष्य विस्तार से सूत्रार्थनिरूपण तथा अधिकाधिक उदाहरण-प्रत्युदाहरणों से उसका सङ्गतीकरण दिखाना है। शब्दकौस्तुभ का उद्देश्य विभिन्न व्याकरणिक मतों का निर्देश तथा उनका खण्डन-मण्डन करना है। व्याकणसिद्धान्तसुधानिधि का लक्ष्य व्याकरणिक मतों का विश्लेषण तथा सिद्धान्तपक्ष का निर्देश करना है। अष्टाध्यायीभाष्य का प्रयोजन सरलतम भाषा में सूत्रार्थ तथा व्याकरणिक सिद्धान्तों का निर्देश करना है। ये चारों ही वृत्तियाँ बृहद्वृत्तियाँ हैं तथा इनमें लौकिक एवं वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं।

यद्यपि व्याकरणमिताक्षरा, व्याकरणदीपिका और दुर्घटवृत्ति इनमें भी लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं तथापि व्याकरणमिताक्षरा का लक्ष्य संक्षेप में सूत्रार्थ प्रस्तुत करना है। व्याकरणदीपिका का उद्देश्य भट्टोजिदीक्षित की फक्किकाओं को सरल भाषा में समझाना है। दुर्घटवृत्ति का लक्ष्य तथाकथित अपाणिनीय प्रयोगों की साधुता का प्रदर्शन करना है।

उपर्युक्त विवेचित वृत्तियों के समान भाषावृत्ति का भी अपना विशिष्ट प्रयोजन है। इस वृत्ति का प्रयोजन सरल, संक्षिप्त तथा सारगर्भित भाषा में पाणिनि के लौकिक सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत करना है। यहाँ तत्तत् सूत्रों में अनेक ज्ञात तथा अज्ञात पूर्ववर्त्ती वृत्तियों, आचार्यों तथा भाष्यादि ग्रन्थों के व्याकरणिक मतों का निर्देश पाया जाता है। इस वृत्ति में कतिपय ऐसे इष्टिवचन पठित हुये हैं जो काशिकादि पूर्ववर्त्ती वृत्तियों में अप्राप्य हैं। यहाँ सूत्रोदाहरणादि के रूप में काव्यादि ग्रन्थों के अनेक श्लोक तथा श्लोकांश प्रस्तुत किये गये हैं। प्रस्तुत वृत्ति में प्राचीन आचार्यों के कतिपय ऐसे मत उपलब्ध होते हैं जो आधुनिक वैयाकरणों के लिये आश्चर्यजनक हैं। यहाँ कतिपय आचार्यों के मत में यण् आगम के रूप में, मनु शब्द स्त्रीलिङ्ग के रूप में दिखाया गया है। इतना ही नहीं यहाँ भाववाचक शब्दों का कर्मवाचक शब्दों के साथ सम्बन्ध तथा अवस्था विशेष में लृट् के स्थान में लुट् का प्रयोग निर्दिष्ट किया गया है।

पाणिनि के सूत्रों पर जितने भी व्याख्यान ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनमें भाषावृत्ति का अपना विशिष्ट स्थान है। यहाँ सूत्रों की अत्यधिक संक्षिप्त व्याख्या की गयी

है तथा यहाँ विविध व्याकरणिक मतों का समावेश होने पर भी उन्हें आलोचना तथा प्रत्यालोचना से सर्वथा मुक्त रखा गया है। व्याकरणशास्त्र के व्याख्यान प्रकारों का यहाँ पूरा-पूरा पालन किया गया है।

अधिकांश विद्वानों द्वारा मान्य अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिङ्गानुशासन में तथा भाषावृत्तिस्थ अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिङ्गानुशासन की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि इन उभयविध पाठों में किञ्चिद् वैषम्य है।

भाषावृत्ति में एक सुदीर्घकालीन व्याकरणिक परम्परा का निर्वाह हुआ है। यहाँ अनेक पूर्ववर्त्ती ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के मत निर्दिष्ट हुये हैं। भाषावृत्ति के सूक्ष्म विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन पूर्ववर्त्ती आचार्यों का भाषावृत्ति पर पर्याप्त प्रभाव है।

भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाग्रन्थों में शैली की भिन्नता के साथ-साथ व्याख्यात सूत्रों की संख्या में भी विषमता पायी जाती है। यहाँ सूत्र, वार्तिक तथा इष्टिवचन सम्बन्धी मतभेद भी पाया जाता है।

भाषावृत्ति के अध्ययन से यह बात प्रकाश में आती है कि यह वृत्ति बौद्ध सम्प्रदाय से प्रभावित है। इसमें पूर्ववर्त्ती व्याख्यानग्रन्थों की अपेक्षा एक विशेष मार्ग का अनुसरण किया गया है। यहाँ सूत्रोदाहरणादि के रूप में वैदिकधर्मी विश्वासों को हतोत्साहित करने का प्रयास किया गया है। इस वृत्ति के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक और बौद्धपरम्परायें केवल सामाजिक और धार्मिक स्तर पर ही न थीं अपितु व्याकरण के क्षेत्र में भी थीं।

व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि आदि वैयाकरणों के ऊपर पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के द्वारा काफी शोध-कार्य किया गया है। किञ्च एतद्विषयक कई शोध-कार्य प्रकाश में आये हैं किन्तु पुरुषोत्तमदेवकृत भाषावृत्ति के ऊपर अभी तक कोई भी शोध-कार्य नहीं हो पाया है।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक, सत्यकाम वर्मा आदि कुछ विद्वानों ने अपने व्याकरणशास्त्र के इतिहास के ग्रन्थों में पुरुषोत्तमदेव तथा उनकी रचना भाषावृत्ति का संक्षिप्त परिचय ही दिया है। भाषावृत्ति का प्रथम संस्करण सन् 1918 में

श्रीशचन्द्रचक्रवर्त्ती के द्वारा वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही-बङ्गाल से प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थ की भूमिका में विद्वान् सम्पादक ने पुरुषोत्तमदेव के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनायें दी हैं। इस ग्रन्थ का दूसरा संस्करण स्वामी द्वारिकादास शास्त्री के सम्पादकत्व में तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी से सन् 1971 में प्रकाशित हुआ है।

काशिका जैसे लब्धप्रतिष्ठ वृत्तिग्रन्थ की सत्ता होने पर भी प्रस्तुत वृत्तिग्रन्थ का क्या विशिष्ट प्रयोजन है? वृत्तिकार अपने लक्ष्य में कहाँ तक सफल हुआ है? यहाँ तत्तत् सूत्रों में जो विभिन्न व्याकरणिक मत उल्लिखित हुये हैं उनका वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य क्या है? वृत्तिकार व्याकरणिक परम्परा के निर्वाह करने में कहाँ तक सफल हुआ है? इस वृत्ति के व्याख्यान का वास्तविक स्वरूप क्या है? वृत्तिकार अपनी व्याख्याशैली को सुगम और मनोरम बनाने में कहाँ तक सफल हुआ है? भाषावृत्ति के पञ्चाङ्गरूप सूत्रपाठादि में तथा अधिकांश विद्वानों द्वारा मान्य अष्टाध्यायी के सूत्रपाठादि में क्या विषमता है? भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाग्रन्थों में मुख्य रूप से क्या-क्या विषमतायें हैं? बौद्ध धर्म के कौन से सिद्धान्त भाषावृत्ति में अङ्कित हुये हैं। भाषावृत्तिकालीन सामाजिक, धार्मिक तथा प्राशासनिक व्यवस्था क्या थी? इन सभी प्रश्नों का समुचित समाधान प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है। इस शोधप्रबन्ध के द्वारा ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं जो संस्कृतभाषाविषयक अनेक गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त है। इन अध्यायों की विषयवस्तु का सार सङ्क्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जाता है-

प्रथम अध्याय-

यह अध्याय व्याकरणशास्त्र की परम्परा तथा भाषावृत्तिकार पुरुषोत्तमदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित है। इसमें भाषावृत्ति से पूर्व तथा पर से सम्बन्धित व्याकरणशास्त्र की समस्त परम्परा का निर्देश किया गया है। यहाँ वृत्तिग्रन्थों की परम्परा तथा मुख्य वृत्तिग्रन्थों की विशेषताओं को भी निरूपित किया गया है। पुरुषोत्तमदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के निरूपण के अनन्तर यहाँ वृत्तिग्रन्थों में भाषावृत्ति का स्थान भी निश्चित किया गया है।

द्वितीय अध्याय–

प्रस्तुत अध्याय भाषावृत्ति के प्रतिपाद्य विषय तथा उसमें निर्दिष्ट मत-मतान्तर एवं इष्टिवचनों से सम्बन्धित है। इसमें भाषावृत्ति के प्रतिपाद्य विषय के निरूपण के अनन्तर तत्तत् सूत्रों के विषय में परम्परा से जो विविध व्याकरणिक मत पाये जाते हैं उनका विश्लेषण किया गया है। किञ्च यहाँ इष्टिवचनों के स्वरूप, परम्परा एवं महत्त्व के निर्देश करने के अनन्तर भाषावृत्ति में पठित इष्टिवचनों का विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय–

यह अध्याय संस्कृतव्याकरणशास्त्र तथा भाषावृत्ति में प्रयुक्त व्याख्या शैली से सम्बन्धित है। इसमें संस्कृतव्याकरणशास्त्र में प्रचलित विविध व्याख्याशैलियों के प्रदर्शन के अनन्तर भाषावृत्ति में प्रयुक्त व्याख्या शैली तथा उसके व्याख्यानप्रकारों का निरूपण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय–

यह अध्याय भाषावृत्ति के पञ्चाङ्गरूप से सम्बन्धित है। इस अध्याय में अधिकांश विद्वानों द्वारा मान्य अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिङ्गानुशासन की भाषावृत्तिस्थ अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिङ्गानुशासन से तुलना की गयी है तथा उनसे सम्बन्धित भेद को उजागर किया गया है।

पञ्चम अध्याय–

यह अध्याय पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों का भाषावृत्ति पर प्रभाव तथा उसकी मुख्य प्रक्रियाग्रन्थों से तुलना पर आधारित है। पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों तथा व्याकरणिक परम्परा का भाषावृत्ति पर कितना प्रभाव पड़ा है इस तथ्य को उजागर करने का यहाँ यथेष्ट प्रयास किया गया है। भाषावृत्ति का मुख्य प्रक्रियाग्रन्थों से कितना साम्य और कितना वैषम्य है इसे भी यहाँ सङ्क्षेप में प्रस्तुत किया गया है।
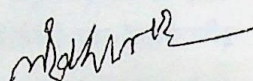
षष्ठ अध्याय–

यह अध्याय भाषावृत्ति में प्रतिबिम्बित भूगोल, समाज, शिक्षा, धर्म और शासनव्यवस्था से सम्बन्धित है। इसमें बौद्धधर्म, दर्शन, संस्कृति तथा सभ्यता का भी निरूपण किया गया है।

सप्तम अध्याय–

यह अध्याय प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के निष्कर्ष से सम्बन्धित है। समग्र ग्रन्थ के सूक्ष्मविश्लेषण से जो निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं उन्हें संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

विनीत,

[लेखराज शर्मा]

गुरुपूर्णिमा

मंगलवार विक्रमी सम्वत् 2049

तदनुसार 14 जुलाई, 1992

विषयानुक्रमणी

संक्षिप्त अक्षर

1. अथर्ववेद-अथर्व.
2. अदादि-अदा.
3. अध्याय-अध्या.
4. अभिधान चिन्तामणि-अभि. चि.
5. अमरकोश-अ. को.
6. अष्टकं पाणिनीयम्-अष्ट. पा.
7. अष्टाध्यायी-अष्टा.
8. उद्द्योतभाष्य-उद्द्योत.
9. ऋक्तन्त्र-ऋ. त.
10. ऋग्वेद प्रातिशाख्य-ऋ. प्रा.
11. कातन्त्र-कात.
12. कातन्त्रवृत्ति टीका परिशिष्ट-कात. वृ. टी. परि.
13. कारिका-कारि.
14. काव्यालङ्कार-काव्यालङ्
15. काव्यमीमांसा-का. मी.
16. काशकृत्स्नव्याकरणम्-का. व्या.
17. काशिका-काशि.
18. काशिका का समालोचनात्मक अध्ययन-काशि. का समालोचन अध्ययन

19. किरातार्जुनीयम्-किराता.

20. कुमारसम्भव-कुमार.

21. क्रमाङ्क-क्रमा.

22. क्रयादि-क्रया.

23. गणरत्नमहोदधि-गण.महो.

24. गुरुप्रसाद शास्त्री संस्करण-गु. प्र. शा. सं.

25. चरक संहिता-च. सं.

26. चान्द्रव्याकरण-चान्द्र.

27. चान्द्रव्याकरण का समालोचनात्मक अध्ययन-चान्द्र.व्या. का समालोचना. अध्ययन

28. चुरादि-चुरा.

29. जयादित्य-जया.

30. जैनेन्द्र महावृत्ति-जैनेन्द्र महा.

31. टिप्पणी-टि.

32. टीका-टी.

33. तुदादि-तुदा.

34. तृतीय-तृ.

35. तैत्तिरीयप्रातिशाख्य-तै.प्रा.

36. दशपाद्युणादिवृत्ति उपोद्घात-दशपादि. उपोद्.

37. दिवादि-दिवा.

38. द्वितीयभाग-द्वि. भा.

39. द्रष्टव्य-द्र.

40. दुर्घटवृत्ति-दुर्घट.

41. न्याय मंजरी-न्या. मं.
42. न्यास-न्या.
43. पङ्क्ति-पं.
44. पद मंजरी-पद मं.
45. पस्पशाह्निक-पस्पशा.
46. पाणिनीय धातुपाठ-पा.धा. पा.
47. पाणिनीय शिक्षा-पा. शि.
48. परिभाषावृत्ति, ज्ञापकसमुच्चय, कारक चक्र-परि. ... [illegible]
49. परिभाषेन्दुशेखर-परि.इ.शेखर
50. परिभाषा संख्या-परि.सं.
51. परिशिष्ट-परिशि.
52. प्रक्रियाकौमुदी-प्रक्रि.कौ.
53. प्रक्रिया कौमुदी विमर्श-प्रक्रि. कौ. वि.
54. प्रदीप भाष्य-प्र.भा.
55. प्रथम-प्र.
56. प्रस्तावना-प्रस्ता.
57. पृष्ठ-पृ.
58. बाल मनोरमा-बाल.मनो.
59. भट्टिकाव्य-भट्टि.
60. भागवृत्ति वचन-भा.वृ.व.
61. भाषावृत्ति-भा.वृ.
62. भाषावृत्तिइष्टि-भा.वृ.इ.

63. भ्वादिगण धातुसंख्या-भ्वा.धा.सं.
64. मनुस्मृति-मनु.
65. महाभारत शान्ति पर्व-महा.शा.प.
66. महाभाष्यदीपिका-म.भा.दीपि.
67. महाभाष्य-म. भा.
68. महिम्नस्तोत्र-महि.
69. यजुर्वेद संहिता-यजु.
70. युधिष्ठिर मीमांसक-युधि.मी.
71. रघुवंशम्-रघु.
72. रामायण बालकाण्ड-रामा.बा.का.
73. रूपावतार-रूपा.
74. वचन-व.
75. वृत्त्यर्थविवृत्ति भाषावृत्ति भूमिका-वृ.भा.वृ.भूमि.
76. वाक्यपदीय-वा.
77. वार्त्तिकपाठ-वा.पाठ.
78. वायु पुराण-वा.पु.
79. व्याकरणदीपिका-व्या.दीपि.
80. व्याकरणमिताक्षरा-व्या.मि.
81. व्याकरणवार्त्तिक एक समीक्षात्मक अध्ययन-व्या.वा.एक समीक्षात्मक अध्ययन
82. वैयाकरण सिद्धान्त सुधानिधि-वैया.सि. सुधानिधि
83. शब्दकल्पद्रुम-श.क.द्रु.

84. शब्दकौस्तुभ-श.कौ.

85. शब्दशक्ति प्रकाशिका-श.शक्ति प्रका.

86. शास्त्री सम्पादित पाणिनीय धातुपाठ-शा.सम्पा.पा.धा.पा.

87. शिशुपालवध-शिशु.

88. सवार्त्तिक गण अष्टाध्यायी सूत्रपाठ-सवा.ग.अष्टा.सू.पा.

89. सामवेद संहिता उत्तरार्चिकः-सा.उ.

90. सिद्धान्तकौमुदीगणसूत्र-सि.कौ.गण.सू.

91. सिद्धान्तकौमुदीतत्त्वबोधिनी-सि.कौ.तत्त्व.

92. सुश्रुत सूत्रस्थान-सु.सू.

93. सूत्र-सू.

94. सूर्यशतक-सूर्य.

95. स्वादि-स्वा.

96. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास-सं.व्या.शा. का इति.

97. Journal of Oriental Research Madras-J.O.R.M.

98. Volume-Vol.

99. Serial No.-Sr. No.

प्रथम अध्याय

1. संस्कृत व्याकरणशास्त्र की परम्परा तथा भाषावृत्तिकार पुरुषोत्तमदेव

1.1 व्याकरणशास्त्र का लक्ष्य-

भाषा में व्याकरण का महत्त्व सर्वविदित है। व्याकरण ही वह शास्त्र है जो परिवर्तन के प्रवाह में पड़ी हुई भाषा के मूल स्वरूप की रक्षा करता है। ''व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्'', ''व्याकृतिर्व्याकरणम्'' इन व्युत्पत्तियों से ज्ञात होता है कि व्याकरण का मुख्य ध्येय पदों की मीमांसा करना है लेकिन ''व्याकरणं च शब्दार्थव्युत्पत्तिकरं शास्त्रम्'' इस कथन से यह भी ज्ञात होता है कि व्याकरण पदार्थ की भी मीमांसा करने वाला शास्त्र है। साधु शब्दों का अनुशासन करने के कारण इसे ''शब्दानुशासन'' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। संस्कृतव्याकरण पद-पदार्थमीमांसाशास्त्र के अतिरिक्त वेदाङ्गों में प्रधान वेदाङ्ग भी है अतः वेदों की रक्षा का भार भी उस पर है। ''प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्'', ''प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः'', ''रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्'' ''मुखं व्याकरणं स्मृतम्'' आदि वचन उक्तार्थ में प्रमाण हैं। व्याकरण केवल शब्दशास्त्र ही नहीं है अपितु वह तत्त्वज्ञान और परमश्रेय की प्राप्ति का साधन भी है। इसमें यह अभ्युक्तोक्ति प्रमाण है-

व्याकरणात् पदसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति।
अर्थात्तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात् परं श्रेयः॥

-माधवीयाधातुवृत्तिः, वाराणसी, 1964.

इस प्रकार प्रकृति-प्रत्ययादि के उपदेश द्वारा पद के स्वरूप और उसके अर्थ के निर्णायक शास्त्र का नाम व्याकरण है तथा लघुता से साधु शब्दों का अन्वाख्यान करना तथा वेदों की रक्षा करना उसका परम ध्येय है।

1.2 संस्कृत व्याकरणशास्त्र की परम्परा-

भारतीय परम्परा में ज्ञान का आदि मूल वेद माना जाता है। इसलिये स्वायम्भुव मनु ने वेद को सर्वज्ञानमय कहा है। तदनुसार व्याकरणशास्त्र का आदिमूल भी वेद ही सिद्ध होता है। अनेक वैदिकमन्त्रों में कतिपय शब्दों की व्युत्पत्तियां पायी जाती है। ''यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा:''[1] ''धान्यमसि धिनुहि देवान्''[2], ''येन देवा: पवित्रेणात्मानं पुनते सदा''[3] और ''तीर्थैस्तरन्ति''[4] इन वैदिकमन्त्रों में क्रमशः यज्ञ, धान्य, पवित्र और तीर्थ शब्दों की व्युत्पत्तियां पायी जाती हैं। इनके अनुसार यजन कर्म को यज्ञ, प्रीणन कर्म को धान्य, पवन के साधन को पवित्र और तरण साधन को तीर्थ नाम से अभिहित किया जाता है। इन व्युत्पत्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि देव पूजार्थक यज् धातु ये यज्ञ, प्रीणनार्थक धिवि धातु से धान्य और पवनार्थक पूञ् धातु से पवित्र तथा तरणार्थक स्तृ धातु से तीर्थ शब्द निष्पन्न होता है। वैदिकमन्त्रों में पायी जाने वाली ये शब्द व्युत्पत्तियां यह प्रमाणित करती हैं कि वेद में व्याकरण का मूल निहित था।

वि आङ् पूर्वक कृ धातु से निष्पन्न व्याकरण का मुख्य कार्य शब्द का प्रकृति-प्रत्यय के रूप में विभाजन कर उनके अर्थ का निर्देश करना है। ''दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्''[5] इस यजुर्वेदीय मन्त्रस्थ ''व्याकरोत्'' शब्द में व्याकरणशब्द की उक्त व्युत्पत्ति तथा उसके मूल धातु का निर्देश पाया जाता है।

भाषा विशेष की दृष्टि से संस्कृत व्याकरणशास्त्र को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-[1] छान्दस व्याकरण [2] लौकिक व्याकरण और [3] वैदिक-लौकिक उभयविध व्याकरण।

[1] **छान्दस-व्याकरण**- जिस व्याकरण के नियम केवल छन्दोभाग पर ही लागू होते हैं उसे छान्दसव्याकरण कहा जाता है। इस व्याकरण के अन्तर्गत प्रातिशाख्य नामक ग्रन्थों की गणना की जाती है यद्यपि प्रातिशाख्य तत्तत् चरणों के व्याकरण हैं तथापि उनमें मन्त्रों के संहितापाठ में होने वाले विकारों का प्रधानतया उल्लेख है। इन प्रतिशाख्यों में पदपाठ से संहितापाठ बनाने के नियमों का निर्देश पाया जाता है। प्रातिशाख्यों में पाँच प्रातिशाख्य अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं- ऋग्वेदप्रातिशाख्य, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, वाजसनेयिप्रातिशाख्य, अथर्ववेदप्रातिशाख्य और ऋक्तन्त्र। प्रातिशाख्य ग्रन्थों का रचनाकाल सामान्यत: पाणिनि से प्राचीन माना जाता है।

[2] **लौकिक व्याकरण**– लोकभाषा से सम्बन्धित व्याकरणों को लौकिक व्याकरण कहा जाता है। वर्तमान में उपलब्ध लौकिक व्याकरण पाणिनि से अर्वाचीन हैं। लोकभाषा से सम्बन्धित व्याकरणों में निम्न व्याकरणग्रन्थ प्रमुख हैं-कातन्त्र, चान्द्र, क्षपणक, जैनेन्द्र, विश्रान्तविद्याधर, अकलङ्कव्याकरण, जैनशाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, बुद्धिसागर, हैमव्याकरण, दीपक, सारस्वत, मुग्धबोध, जौमर और सुपद्म।

[3] **वैदिक-लौकिक उभयविध व्याकरण**– वैदिक और लौकिक उभयविध सूत्रों के निर्देश वाला ग्रन्थ वैदिक-लौकिक उभयविध व्याकरण के अन्तर्गत आता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी इसी प्रकार का व्याकरणिक ग्रन्थ है। किञ्च इसके व्याख्यानभूत महाभाष्य, काशिका और सिद्धान्तकौमुदी आदिग्रन्थ भी इसी परम्परा में आते हैं।

[4] **व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता तथा पाणिनि से उनका पौर्वापर्य**– व्याकरणशास्त्र के अनेक प्रवक्ता माने जाते हैं। इनमें से कतिपय प्रवक्ता पाणिनि से पूर्ववर्त्ती हैं तथा कतिपय परवर्त्ती। अतः व्याकरणशास्त्र के इन प्रवक्ताओं को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है - [4.1] पाणिनि से प्राचीन व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता, [4.2] पाणिनीय अष्टाध्यायी और [4.3] पाणिनि से अर्वाचीन व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता।

[4.1] **पाणिनि से प्राचीन व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता**– यद्यपि संस्कृत व्याकरण के सर्वश्रेष्ठ शिल्पी पाणिनि ही माने जाते हैं तथापि पाणिनि से पूर्व भी अनेक आचार्यों ने व्याकरणशास्त्र का प्रवचन किया था। इन आचार्यों में से कतिपय आचार्यों के नाम का उल्लेख स्वयं आचार्य पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में किया है तथा कतिपय अन्य आचार्यों के व्याकरण प्रवक्तृत्व का निर्देश अन्य व्याकरणिक तथा व्याकरणेतर ग्रन्थों में पाया जाता है। इसी आधार पर पाणिनि से पूर्ववर्त्ती व्याकरणशास्त्र के इन प्रवक्ताओं को दो भागों में विभक्त किया जाता है - पाणिनि द्वारा अनुल्लिखित व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता और पाणिनि द्वारा स्मृत व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता। इन उभयविध प्रवक्ताओं का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जाता है-

पाणिनि द्वारा अनुल्लिखित व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता– यद्यपि पाणिनिकृत अष्टाध्यायी में ब्रह्मा, शिव, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, भरद्वाज, भागुरि,

पौष्करसादि, चारायण, काशकृत्स्न, शन्तनु, वैयाघ्रपद्य, माध्यन्दिनी, रौढि, शौनकि, गौतम और व्याडि इन सत्रह आचार्यों का नामोल्लेख नहीं हुआ है तथापि इन्हें पाणिनि से पूर्ववर्त्ती स्वीकार किया जाता है और इनका व्याकरणप्रवक्तृत्व भी स्वीकृत है। इन आचार्यों का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

यद्यपि व्याकरणशास्त्र का आदिमूल वेद है तथापि भारतीय परम्परा में व्याकरणशास्त्र का आदि प्रवक्ता ब्रह्मा माना जाता है ''ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच बृहस्पतिरिन्द्राय इन्द्रो भारद्वाजाय भरद्वाज ऋषिभ्य: ऋषयो ब्राह्मणेभ्य:''[6] इस ऋक्तन्त्रीय वचन से ब्रह्मा का आदि प्रवक्तृत्व सिद्ध होता है।

''ब्राह्मैशानमैन्द्रञ्च प्राजापत्यं बृहस्पतिम्।
त्वाष्ट्रमापिशलं चेति पाणिनीयमथाष्टमम्॥''[7]

यह हैमबृहद्वृत्त्यवचूर्णिस्थ श्लोक भी ब्रह्मव्याकरण की सत्ता सिद्ध करता है। ब्रह्मा का आदि प्रवचन ''शास्त्र'' नाम से प्रसिद्ध माना जाता है।

ब्रह्मा के समान भगवान् शिव को भी व्याकरण का प्रवक्ता माना जाता है। ''वेदात् षडङ्गान्युद्धृत्य''[8] यह महाभारतीय वचन तथा ''ब्राह्ममैशानमैन्द्रञ्च'' यह पूर्वोक्त हैमबृहद्वृत्त्यवचूर्णिस्थ श्लोक ही उक्तार्थ में प्रमाण है। ''समुद्रवद् व्याकरणं महेश्वरे''[9] इस सारस्वतभाष्यस्थ श्लोक से महेश्वर व्याकरण की विशालता का ज्ञान होता है।

''येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मैपाणिनये नमः॥''[10]

पाणिनीयशिक्षा के उक्त श्लोक से ज्ञात होता है कि पाणिनीय व्याकरण महेश्वर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

''ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच'' इस पूर्वोक्त ऋक्तन्त्रीय वचनानुसार व्याकरणशास्त्र का द्वितीय प्रवक्ता बृहस्पति, तृतीय प्रवक्ता इन्द्र और चौथा प्रवक्ता भरद्वाज है। ''बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यवर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम''[11] भाष्यकार के इस वचन से ज्ञात होता है कि बृहस्पति का प्रवचन शास्त्र प्रतिपदपाठरूप और विशाल था। प्रतिपदपाठरूप से सम्पूर्ण शब्द राशि का ज्ञान असम्भव था। इसलिये औशनसों ने व्याकरण को मरणान्त व्याधि कहा ''मरणान्तो व्याधिर्व्याकरणम्''[12]

प्रतिपदपाठ की उक्त दुरूहता को देखकर इन्द्र ने प्रकृति-प्रत्यय-विभागपूर्वक शब्द का उपदेश किया था। इस तथ्य की पुष्टि तैत्तिरीयसंहिता से हो जाती है - "वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति... तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।"[13] "इन्द्रश्चन्द्रः",[14] "ब्राह्ममैशानमैन्द्रञ्च" इन श्लोकांशों से भी ज्ञात होता है कि इन्द्र ने किसी व्याकरण की रचना की थी। पूर्वोक्त ऋक्तन्त्रीय वचन से भी भरद्वाज का भी व्याकरण प्रवक्तृत्वसिद्ध होता है। पुरुषोत्तमदेव ने भाषावृत्ति में "णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणाञ्च"[15] वार्तिक में जो भारद्वाजों के मत का निर्देश किया है यह मत निर्देश भी आचार्य भरद्वाज को व्याकरण प्रवक्ता सिद्ध करता है।

तैत्तिरीय संहिता के अनुसार इन्द्र ने अपने व्याकरण की रचना में वायु की सहायता ली थी[16]। किञ्च वायुपुराण में वायु को शब्दशास्त्र विशारद कहा गया है[17] जिससे वायु का व्याकरण प्रवक्तृत्व सिद्ध होता है। शब्दशक्तिप्रकाशिका[18] तथा भाषावृत्ति[19] में भागुरि के मत का निर्देश किया गया है। इसी प्रकार तैत्तिरीय प्रातिशाख्य[20] में और महाभाष्यादि[21] ग्रन्थों में पौष्करसादि के मतों का निर्देश पाया जाता है जिससे भागुरि और पौष्करसादि ये दोनों आचार्य व्याकरण प्रवक्ता माने जाते हैं।

"कम्बलचारायणीयाः"[22] महाभाष्य के इस प्रयोग में चारायण शब्द का निर्देश किया गया है। "दशकाः वैयाघ्रपदीयाः"[23] काशिका के इस प्रयोग में वैयाघ्रपद का निर्देश दिया गया है। इसी प्रकार काशिका[24] और प्रक्रियाकौमुदी[25] में माध्यन्दिन के मत का निर्देश पाया जाता है जिससे ज्ञात होता है कि चारायण, वैयाघ्रपद्य और माध्यन्दिन ये आचार्य भी व्याकरण के प्रवक्ता थे।

आचार्य पतञ्जलि ने त्रिविध व्याकरणों में काशकृत्स्न व्याकरण की भी गणना की है।[26] कविकल्पद्रुम में भी अष्टविध वैयाकरणों में काशकृत्स्न के नाम का भी उल्लेख किया गया है।[27] वर्तमान में काशकृत्स्न व्याकरण के कतिपय सूत्र तथा उसका धातुपाठ प्रकाशित रूप में उपलब्ध होता है। इस धातुपाठ में पाणिनि के धातुपाठ से 450 धातुयें अधिक पायी जाती हैं। काशिका के "त्रिकाः काशकृत्स्न[28] और "काशकृत्स्नं गुरुलाघवम्"[29] इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि काशकृत्स्न व्याकरण के तीन अध्याय थे तथा उसमें छन्दशास्त्र के समान वर्णों के गुरु और लघु रूप की भी चर्चा थी जिससे काशकृत्स्न व्याकरणप्रवक्ता सिद्ध

होता है। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास ग्रन्थ में काशकृत्स्न को पाणिनि से प्राचीन सिद्ध किया है।[30]

"पाणिनीयरौढीया:"[37] काशिका के इस प्रयोग में रौढि का नामोल्लेख पाया जाता है। चरकसंहिता[32] तथा भट्टिकाव्य[33] की टीका में शौनकि के मत का निर्देश किया गया है। इसी प्रकार तैत्तिरीय[34] और मैत्रायणीय[35] प्रातिशाख्यों में तथा महाभाष्य[36] में गौतम के मत का निर्देश किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि रौढि, शौनकि और गौतम भी व्याकरण के प्रवक्ता थे।

ऋक्प्रातिशाख्य[17]तथा भाषावृत्ति[38] में व्याडि के मत का निर्देश किया गया है। इसी प्रकार हरदत्त की पदमञ्जरी[39] में शन्तनु को फिट् सूत्र का कर्त्ता बताया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि व्याडि और शन्तनु भी व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता थे।

पाणिनि द्वारा स्मृत व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता– आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक और स्फोटायन ये दस आचार्य भी व्याकरण के प्रवक्ता माने जाते हैं। यद्यपि इन आचार्यों के कोई व्याकरणिक ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं तथापि इनके व्याकरणप्रवक्तृत्व में सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि अनेक व्याकरणिक तथा व्याकरणेतर ग्रन्थों के साथ-साथ स्वयं आचार्य पाणिनि ने इन आचार्यों के नाम का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी के सूत्रों में किया है। यथा - "वा सुप्यापिशले:"[40], "तृषिमृषिकृषे: काश्यपस्य"[41] "अड्गार्ग्यगालवयो:"[42] "ई चाक्रवर्मणस्य"[43], "ऋतो भारद्वाजस्य"[44], "लङ: शाकटायनस्यैव"[45], "इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च"[46], "गिरेश्च सेनकस्य"[47], "अवङ् स्फोटायनस्य"[48]. आदि सूत्रों में उक्त आचार्यों का नामनिर्देश पाया जाता है।

[4.2] **पाणिनीय अष्टाध्यायी**– संस्कृत व्याकरण शास्त्र के क्षेत्र में पाणिनि की प्रसिद्धि विश्वविख्यात है। उनसे पहले अनेक वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है परन्तु उनके नाम मात्र ही अवशिष्ट हैं। पाणिनि ने अपने से पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों के व्याकरण-वाङ्मय को आत्मसात् कर उसका समन्वित रूप लोक के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रातिशाख्यों की भान्ति शाखा विशेष या भाषा विशेष के नियमों का ही प्रतिपादन नहीं किया अपितु व्याकरण के सामान्य सिद्धान्तों को अष्टाध्यायी में निर्दिष्ट करके लौकिक और वैदिक उभयविध व्याकरण का निर्माण

किया। प्रकृति-प्रत्यय विभागपूर्वक पदों का अन्वाख्यान कर उन्होंने व्याकरण की सरल, सूक्ष्म और वैज्ञानिक सरणि को जन्म दिया। इसी कारण पाणिनि विश्व का सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण और भाषाशास्त्री माना जाता है। आचार्य पाणिनि का व्याकरण वेद की सभी परिषदों से सम्बन्धित है इसीलिये पतञ्जलि ने कहा है-"सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्"। "आकुमारं यशः पाणिनेः", "पाणिनीयं महत्सुविहितम्" इत्यादि उक्तियां उसके व्याकरण की लोकप्रियता को प्रकट करती हैं यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है तथा प्रत्येक अध्याय के चार-चार पाद हैं। काशिकावृत्ति के अनुसार इसके सूत्रों की कुल संख्या 3997 है। इस सूत्रसंख्या में चौदह प्रत्याहारसूत्र भी सम्मिलित हैं।

पाणिनि की सूत्रनिर्माणशैली सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित है। उन्होंने सूत्रों को सारगर्भित तथा अत्यधिक लघुरूप प्रदान किया। सूत्रों के लघूकरण हेतु उन्होंने प्रत्याहार, संज्ञा, परिभाषा तथा अधिकारादि अनेक सूत्रों का निर्माण किया। पाणिनि के व्याकरण के संक्षेपीकरण में अनुबन्धों का भी प्रमुख योगदान है।

पाणिनि व्याकरण "त्रिमुनिव्याकरण" के नाम से अभिहित किया जाता है क्योंकि इसके निर्माता तीन महामुनि थे - पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि। इसीलिये सूत्र, वार्तिक और भाष्य इन तीनों का समुदित रूप ही पाणिनिव्याकरण है।

पाणिनि ने सरलतापूर्वक साधु शब्दों के ज्ञान के लिये सूत्रात्मक व्याकरण की रचना की, लेकिन बिना सूत्रव्याख्या के सूत्रार्थज्ञान नहीं हो सकता था। कात्यायन ने उक्त कमी को पूरा करने के लिये सूत्रशैली में वार्तिकों की रचना की। काव्यमीमांसा के अनुसार उक्त, अनुक्त और दुरुक्त विषयों की चर्चा करना ही वार्तिक है - "उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तावार्तिकम्"[49]। कात्यायन ने पाणिनिप्रोक्त सूत्रों को अपने विचार का आधार बनाया। उनसे छूटे हुये अंश को पूरा करने का प्रयास किया। जहाँ उन्हें त्रुटि का आभास हुआ, वहाँ उसका परिष्कार भी किया।

महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनि के सूत्रों तथा कात्यायन के वार्तिकों पर जो महती व्याख्या लिखी, वह संस्कृत वाङ्मय में महाभाष्य के नाम से विख्यात है। पतञ्जलि ने व्याकरण जैसे दुरूह एवं शुष्क विषय को सरल और सरस संवादों के रूप में प्रस्तुत किया है। शब्दकौस्तुभ में भाष्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

''सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः''॥[50]

पातञ्जल महाभाष्य में सूत्रों तथा वार्त्तिकों की व्याख्या के साथ-साथ अपने मत का भी प्रतिपादन किया गया है।

[4.3] **पाणिनि से अर्वाचीन व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता**– आचार्य पाणिनि के अनन्तर भी व्याकरणशास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा है परन्तु इन सबका सम्बन्ध वैदिक और लौकिक उभयविध व्याकरण से न होकर केवल लौकिक व्याकरण से ही रहा है। इनमें अधिकांश व्याकरणों का मुख्य उपजीव्य पाणिनीयव्याकरण ही माना जाता है। लौकिक व्याकरण के मुख्य प्रवक्ता पन्द्रह माने जाते हैं - कातन्त्रकार, चन्द्रगोमी, क्षपणक, देवनन्दी, वामन, अकलङ्क, पाल्यकीर्ति, भोजदेव, बुद्धिसागर, हेमचन्द्र, भद्रेश्वरसूरि, अनुभूतिस्वरूप, वोपदेव, क्रमदीश्वर और पद्मनाभ। इन वैयाकरणों के व्याकरणग्रन्थों का उल्लेख ''लौकिक व्याकरण'' नामक प्रकरण में कर दिया गया है।

इस प्रकार संस्कृत में व्याकरणशास्त्र की रचना की जो परम्परा ब्रह्मा से प्रारम्भ हुई थी, वह पाणिनि के बाद भी अक्षुण्ण बनी रही। यद्यपि इसमें युगानुरूप कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहा है।

1.3 वृत्तिग्रन्थों एवं प्रक्रियाग्रन्थों की परम्परा–

सूत्र एक प्रकार के साङ्केतिक शब्द होते हैं। इसलिये उनके अर्थ को आत्मसात् करने के लिये व्याख्याग्रन्थों की आवश्यकता होती है। सूत्र व्याख्या में पदच्छेद, पदार्थकथन, समासविग्रह, अनुवृत्ति, वाक्ययोजना, उदाहरण-प्रत्युदाहरण, पूर्वपक्ष और सिद्धान्तपक्ष प्रायः इन अंशों का निरूपण किया जाता है। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये अष्टाध्यायी के भी व्याख्यान ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है। ये व्याख्यानग्रन्थ द्विविध रूप में पाये जाते हैं-अष्टाध्यायीक्रम में और प्रक्रियाक्रम में।

[1] **अष्टाध्यायीक्रम से व्याख्यातग्रन्थ**– अष्टाध्यायीक्रम से यह तात्पर्य है कि सूत्रों की उसी क्रम से व्याख्या करना जिस क्रम से उन्हें अष्टाध्यायी में विन्यस्त किया गया है। इस क्रम में वृत्तिग्रन्थों का सन्निवेश किया जाता है।

भ्वादि, दिवादि और चुरादि इन तीन गणों में पठित वृतु धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाने से वृत्ति शब्द निष्पन्न होता है। वृत्ति का अर्थ- वर्तन, विवरण और भाषार्थ है।

यद्यपि वृत्ति शब्द का प्रयोग साहित्यिक, यौगिक और सामाजिक आदि विभिन्न अर्थों में पाया जाता है तथापि व्याकरणशास्त्र में सूत्रार्थ प्रधान ग्रन्थ अथवा सूत्रार्थ विवरण को वृत्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। सामान्यत: वृत्ति में सूत्रार्थ की ही प्रधानता होती है तथापि इसमें अपेक्षित स्थलों पर पदच्छेद, उदाहरण-प्रत्युदाहरणादि का भी लघुरूप में निर्देश किया जाता है।

न्यासकार के अनुसार चुल्लिभट्टिनिर्लूरादि आचार्यों के द्वारा पाणिनिप्रणीत सूत्रों की विशुद्ध व्याख्या ही वृत्ति है - ''वृत्ति: पाणिनिप्रणीतानां सूत्राणां विवरणं चूल्लिभट्टिनल्लूरादिविरचितम्''।[51]

पदमञ्जरीकार ने सूत्रार्थ प्रधानग्रन्थ को वृत्ति नाम से अभिहित किया है-''सूत्रार्थप्रधानो ग्रन्थो वृत्ति:। सा चेह पाणिनिप्रणीतानां सूत्राणां कुणिप्रभृतिभिराचार्यै: विरचितं विवरणम्।''[52]

भाष्यकार पतञ्जलि ने शास्त्र की प्रवृत्ति को वृत्ति माना है - ''का पुनर्वृत्ति:। शास्त्रप्रवृत्ति:''[53] भाष्यकार पतञ्जलि ने जिस प्रसङ्ग में वृत्ति शब्द का यह अर्थ किया है उसका तात्पर्य शब्दान्वाख्यान में लघुता से शास्त्र [सूत्र] की प्रवृत्ति कराना है।

वृत्ति शब्द की उक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि ''सूत्रों की विशुद्ध सूत्रार्थप्रधान और सूत्र की प्रवृत्ति कराने वाली व्याख्या को वृत्ति कहा जाता है''। उक्त प्रकार से व्याख्यात ग्रन्थ को भी वृत्ति शब्द से अभिहित किया जाता है।

अष्टाध्यायीक्रम से जिन ग्रन्थों की रचना की गई है उनमें से सम्प्रति कतिपय ही उपलब्ध होते हैं। शेष वृत्तियां या तो सर्वथा अनुपलब्ध हैं अथवा अपूर्ण रूपेण उपलब्ध। इन वृत्तियों को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- काशिका से पूर्ववर्त्ती वृत्तियां, काशिकावृत्ति और काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियां।

[2] **काशिका से पूर्ववर्त्ती वृत्तियां**- काशिका से पूर्व विरचित वृत्तियां काशिका से पूर्ववर्त्ती वृत्तियों में परिगणित की जाती हैं। ये सभी वृत्तियां वर्तमान

में उपलब्ध नहीं है किन्तु यत्र–तत्र इन वृत्तियों के नाम का निर्देश पाया जाता है। प्राचीन मुख्य वृत्तियों की संख्या आठ मानी जाती है। पाणिनीयवृत्ति, माथुरीवृत्ति, कुणिवृत्ति, व्याडिवृत्ति, श्वोभूतिवृत्ति, चुल्लिभट्टिवृत्ति, निर्लूरवृत्ति और चूर्णिवृत्ति। इन वृत्तिग्रन्थों के अस्तित्व के सम्बन्ध में नीचे संक्षेप से विचार किया जाता है–

पाणिनीयवृत्ति– आचार्य पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी पर एक वृत्ति लिखी थी जो पाणिनीयवृत्ति के नाम से जानी जाती है। ''इग्यणः सम्प्रसारणम्'' सूत्रस्थ भाष्यदीपिका से ज्ञात होता है कि आचार्य पाणिनि ने उक्त सूत्र के दो अर्थ किये थे। उन्होंने कुछ शिष्यों को वाक्यपरकसम्प्रसारणसंज्ञा का उपदेश दिया था तो कुछ को वर्णपरकसम्प्रसारणसंज्ञा का।[54] आचार्य द्वारा उपदिष्ट यह द्विविध उपदेश उनके वृत्तिकार होने की ओर इङ्गित कर रहा है।

''तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः'' सूत्रस्थ काशिका ने उक्त सूत्र के वृत्तिभेद से द्विविध अर्थ प्रस्तुत किये हैं - एक अर्थ के अनुसार उन्होंने भार शब्दोत्तरपदकवंशादिशब्द से तथा द्वितीयवृत्ति के अनुसार भारस्वरूप- वंशादिशब्दों से ठक् प्रत्यय का विधान किया है। ''वंशभारं हरति वहत्यावहति वा, वांशभारिकः'', ''भारभूतान् वंशान् हरति, वांशिकः'' यहां प्रथम विग्रह में भारशब्द प्रातिपदिक का अवयव है किन्तु द्वितीय में वंश का विशेषण। काशिकाकार के अनुसार एक ही सूत्र के ये द्विविध अर्थ आचार्य पाणिनि द्वारा उपदिष्ट हैं और ग्राह्य हैं।[55] इस प्रकार काशिकाकार ने भी पाणिनि को वृत्तिकार स्वीकार किया है।

माथुरीवृत्ति– काशिका[56] तथा भाषावृत्ति[57] में इस वृत्ति का नाम माथुरीवृत्ति ही पाया जाता है किन्तु भाष्य में इसे माधुरीवृत्ति के नाम से अभिहित किया गया है।[58] भाषावृत्तिकार ने ''कालोपसर्जने च तुल्यम्'' सूत्र की वृत्ति में माथुरीवृत्ति के मत को उद्धृत किया है[59] जिससे माथुरी या माधुरीवृत्ति की सत्ता प्रमाणित होती है।

कुणिवृत्ति– ''एङ् प्राचां देशे'' सूत्र की टीका में कैयट ने कुणि के मत को उद्धृत किया है।[60] किञ्च काशिका के लक्ष्य का निर्देश करने वाले कारिकांश वृत्ति शब्द के व्याख्यान में पदमञ्जरीकार ने वृत्तिकारों में कुणि के नाम का निर्देश किया है[61] जिससे कुणि वृत्तिकार सिद्ध होते हैं।

व्याडिवृत्ति– "श्र्युक: किति" सूत्र पर काशिकावृत्ति में यह वचन पाया जाता है–"केचिदत्र द्विककारनिर्देशेन गकारप्रश्लेषं वर्णयन्ति"।[62] न्यासकार ने उक्त वचन में उल्लिखित केचित् शब्द से श्वभूति और व्याडि आदि आचार्यों का ग्रहण किया है[63] जिससे व्याडिवृत्ति की पुष्टि होती है।

श्वोभूतिवृत्ति– आचार्य श्वोभूति को श्वभूति के नाम से भी जाना जाता है। "स्तोष्याम्यहं पादिकमौदवाहिं तत: श्वोभूते शातनीं पातनीं च"[64] इस भाष्यस्थ वचन में तथा "श्वोभूतिर्नाम शिष्य:। तस्यामन्त्रणम्" इस प्रदीपस्थ वचन में श्वोभूति का नामोल्लेख किया गया है।[65] किञ्च न्यासकार ने भी श्वभूति के मत का उल्लेख किया है[66] जिससे श्वोभूतिवृत्ति की पुष्टि होती है।

चुल्लिभट्टिवृत्ति– न्यासकार ने "वृत्ति: पाणिनिप्रणीतानां सूत्राणां विवरणं चूल्लिभट्टिनल्लूरादिविरचितम्"[67] अपने इस वचन में तथा तन्त्रप्रदीप ने "अत्र चुल्लिभट्टिवृत्तावपि तत्पुरुषे कृति बहुलमिति अलुग् दृश्यते"[68] इस वचन में चुल्लिभट्टिवृत्ति का निर्देश किया है जिससे चुल्लिभट्टिवृत्ति की सत्ता प्रमाणित होती है।

निर्लूरवृत्ति– "वृत्ति: पाणिनिप्रणीतानां सूत्राणां विवरणं चूल्लिभट्टिनल्लूरादि- विरचितम्"[69] "निर्लूरवृत्तौ चोक्तम्भाषायामपि यङ्लुगस्ति"[70] न्यासकार तथा कातन्त्रपरिशिष्ट के इन वचनों में निर्लूरवृत्ति का निर्देश किया गया है जिससे प्रस्तुत वृत्ति की सत्ता सिद्ध होती है।

चूर्णिवृत्ति– श्रीपतिदत्त ने "मतमेतच्चूर्णिरप्यनुगृह्णाति" कातन्त्रपरिशिष्ट के इस वचन में चूर्णि के मत का निर्देश किया है।[71] किञ्च शब्दशक्तिप्रकाशिका ने भी "संयोगावयवव्यञ्जनस्य सजातीयस्यैकस्य वानेकस्योच्चारणाभेद इति चूर्णि:"[72] अपने इस वचन में चूर्णि को उद्धृत किया है जिससे चूर्णिवृत्ति का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

[3] **काशिकावृत्ति**- प्रस्तुत वृत्ति उपलब्ध वृत्तियों में प्राचीनतम वृत्ति है। भाषावृत्तिकार के अनुसार इस वृत्ति के प्रथम पाँच अध्याय जयादित्यविरचित तथा उत्तरवर्त्ती तीन अध्याय वामनविरचित हैं। पदमञ्जरीकार के अनुसार काशि नामक स्थान में विरचित होने के कारण इस वृत्ति का नाम काशिका पड़ा है।[73] सृष्टिधर के अनुसार सूत्रार्थ को प्रकाशित करने के कारण काशी नामक स्थान में विरचित

होने के कारण उक्त वृत्ति का नाम काशिका पड़ा है।[74] भाषावृत्तिकार ने इस वृत्ति को एकवृत्ति के नाम से भी अभिहित किया है।[75]

प्रस्तुत वृत्ति अष्टाध्यायी की पूर्ण वृत्ति है तथा इसमें लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं। इस वृत्ति में पूर्ववर्त्ती वृत्तियों, भाष्य, धातुव्याख्यात्मकशास्त्र तथा गणशब्दव्याख्यात्मकशास्त्रों का सार सङ्गृहीत किया गया है। प्रस्तुत वृत्ति में वृत्तिग्रन्थों के व्याख्यान प्रकार का पूर्णरूपेण पालन किया गया है।

[4] **काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियां–** इतिहासकारों ने काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियों की संख्या लगभग 30 स्वीकार की है परन्तु इन वृत्तिग्रन्थों में कतिपय वृत्तिग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, कुछ अपूर्णरूपेण उपलब्ध और कुछ पूर्णरूपेण उपलब्ध। **अनुपलब्ध वृत्तिग्रन्थ–** काशिका से उत्तरवर्त्ती अनुपलब्ध वृत्तिग्रन्थों में भागवृत्ति का महनीय स्थान है। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने इस वृत्ति का संकलन ''भागवृत्ति संकलन'' के नाम से किया है। सृष्टिधर के अनुसार इसके रचयिता का नाम भर्त्तृहरि है[76] परन्तु कातन्त्रपरिशिष्ट के रचयिता श्रीपतिदत्त के अनुसार विमलमति।[77] एस.पी. भट्टाचार्य ने इन्हें इन्दु के नाम से अभिहित किया है।[78] भाषावृत्तिकार ने भागवृत्ति के सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये भाषावृत्ति के अध्ययन का आग्रह किया है जिससे ज्ञात होता है कि भागवृत्ति की रचना भाषावृत्ति से पूर्व हो चुकी थी। इस वृत्ति में प्राय: भाष्य के मत से सहमति तथा काशिका के मत से असहमति पायी जाती है।

पूर्ण अथवा अपूर्णरूपेण उपलब्ध वृत्तियां– काशिका से उत्तरवर्त्ती जो वृत्तियां अपूर्णरूपेण उपलब्ध होती हैं उनमें शब्दकौस्तुभ, व्याकरण-सिद्धान्तसुधानिधि और अष्टाध्यायीभाष्य की गणना की जाती है। शेष भाषावृत्ति, व्याकरणमिताक्षरा, व्याकरणदीपिका और दुर्घटवृत्ति ये वृत्तिग्रन्थ पूर्णरूपेण उपलब्ध होते हैं। पूर्ण तथा अपूर्ण रूपेण उपलब्ध इन वृत्तियों का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

भाषावृत्ति– पुरुषोत्तमदेव द्वारा विरचित प्रस्तुत वृत्ति अष्टाध्यायी की संक्षिप्त वृत्ति है। यह वृत्ति संक्षिप्तता के साथ-साथ सरल, सरस और सारग्राही भी है। इसीलिये इसे लघुवृत्ति के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस वृत्ति में लोकभाषा से सम्बन्धित पाणिनि के केवल लौकिक सूत्र व्याख्यात हुये हैं। इसी

कारण इस वृत्ति का नाम भाषावृत्ति पड़ा। इस वृत्ति में व्याकरण के त्रिमुनियों के व्याकरणिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ माथुरीवृत्ति, काशिकावृत्ति, भागवृत्ति, न्यास और केशववृत्ति के मतों का यत्र-तत्र निर्देश पाया जाता है। यहाॅ पूर्ववर्त्ती अनेक आचार्यों के मतों का भी निर्देश किया गया है। यह वृत्ति काशिका तथा भागवृत्ति के सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये भी उपयोगी है। किञ्च वृत्तिग्रन्थों के व्याख्यानप्रकार का यहाँ पूर्ण-रूपेण पालन किया गया है।

इस वृत्ति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें बुद्ध धर्म के सिद्धान्त तथा तीर्थ स्थानादि का यत्र-तत्र उल्लेख किया गया है।

पुरुषोत्तमदेव द्वारा विरचित भाषावृत्ति पर चार टीकाग्रन्थ पाये जाते हैं– भाषावृत्त्यर्थविवृति, फक्किकावृत्ति, भाषावृत्ति पञ्जिका और तत्त्वार्थसन्दीपनी। इनके रचयिता क्रमशः आचार्य सृष्टिधरशर्मा, सनातन तर्काचार्य, विश्वरूप और षष्ठीदास [मिश्राचायर्य] हैं।

व्याकरणमिताक्षरा– अन्नम्भट्ट प्रणीत व्याकरणमिताक्षरा अष्टाध्यायी की एक लघुवृत्ति है। इस वृत्ति की लघुता ही इसके मिताक्षरा नाम को सार्थक करती है। यह वृत्ति सम्पूर्ण अष्टाध्यायी पर उपलब्ध होती है। यद्यपि यह लघुवृत्ति है तथापि इसमें लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं। इसमें सूत्रों की व्याख्या संक्षिप्त और सरल ढंग से प्रस्तुत की गई है। यह बात ग्रन्थकार के अन्तिम श्लोक से ज्ञात होती है–

''ग्रन्थविस्तरभीरुभ्य इयं वृत्तिर्मया कृता।
यया व्याकरणं सर्वं करस्थामलकायते''॥[79]

यह वृत्ति एक साधारणवृत्ति है।

शब्दकौस्तुभ– भट्टोजिदीक्षितकृत शब्दकौस्तुभ काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियों में परिगणित की जाती है। प्रस्तुत वृत्ति वर्तमान में प्रथम अध्याय द्वितीय पाद से तृतीय अध्याय द्वितीय पाद और चतुर्थ अध्याय मात्र ही उपलब्ध होती है। यह वृत्ति अष्टाध्यायी की अति विशालवृत्ति है। इस वृत्ति में विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण महाभाष्य के समान अध्याय, पाद तथा आह्निक के रूप में किया गया है। अनेक मत-मतान्तरों के निर्देश में लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र

व्याख्यात हुये हैं। वृत्तिकार ने अपने मत की पुष्टि के लिये अनेक आचार्यों के मतों को इसमें निर्दिष्ट किया है। इस वृत्ति में शान्तनव आचार्यकृत फिट् सूत्रों की व्याख्या तथा पाणिनीय लिङ्गानुशासन का व्याख्यान पाया जाता है। इसमें अनेक इतिहास, धर्म, स्मृति, सूत्र, काव्य, नाटक, साहित्य, पुराण और कोशादि ग्रन्थों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि– विश्वेश्वरसूरिकृत व्याकरणसिद्धान्तसुधा-निधि काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्ति है। वर्तमान में यह वृत्ति प्रथम तीन अध्यायों तक ही उपलब्ध होती है। प्रस्तुत वृत्ति अष्टाध्यायी की अतिविशाल वृत्ति है। इसकी विशालता के कारण ही इसे महाभाष्य जैसा ग्रन्थ माना जाता है। प्रस्तुत वृत्ति में अनेक आचार्यों के मतों को खण्डन-मण्डन विधि का आश्रय लेकर निर्दिष्ट किया गया है। सूत्र, वार्त्तिक और भाष्य के व्याकरणसम्बन्धी सिद्धान्तों में जो विभिन्न आचार्यों द्वारा मतभेद प्रकट किया गया है, उन सबका गम्भीर आलोडन करने के पश्चात् प्रस्तुत वृत्ति में सिद्धान्तपक्ष दिखाने का प्रयत्न किया गया है। किञ्च इस वृत्ति में भाष्यकार और वार्त्तिककार के मतों से सम्बन्धी लाघव और गौरव की चर्चा की गई है। इतना ही नहीं वृत्तिकार ने जहाँ यह देखा कि भाष्य और वार्त्तिक द्वारा सूत्रकार का अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा है वहाँ "अत्र इदम् अवधेयम्" यह कहकर सूत्र आशय को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह वृत्ति व्याकरण के सिद्धान्त रूपी सुधा की निधि मानी जाती है। इसीलिये इसका नाम व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि रखा गया है। इस वृत्ति में जहाँ अनेक व्याकरणिकग्रन्थों के मत पाये जाते हैं वहीं श्रुति, सूत्र, मीमांसा, न्याय, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटकादि से सम्बन्धित ग्रन्थों के उद्धरण भी दृष्टिगोचर होते हैं।

व्याकरणदीपिका– ओरम्भट्टकृत व्याकरणदीपिका काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्ति है। यह वृत्ति सम्पूर्ण अष्टाध्यायी पर उपलब्ध होती है। इसमें लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं। इस वृत्ति में सूत्रार्थ, उदाहरण-प्रत्युदाहरण के साथ-साथ भट्टोजिदीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी के फक्किकास्थलों को सरल रीति से समझाने का प्रयास वृत्तिकार ने किया है। प्रस्तुत वृत्ति में अनेक व्याकरणिकग्रन्थों तथा वैयाकरणों के मतों को अधिमान दिया गया है। प्रस्तुत वृत्ति में महाकाव्यादि साहित्यिकग्रन्थों के उद्धरण भी पाये जाते हैं।

अष्टाध्यायी भाष्य– दयानन्द सरस्वती कृत अष्टाध्यायीभाष्य काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियों में परिगणित किया जाता है। वर्तमान में प्रथम अध्याय तृतीयपाद

तथा प्रथमअध्याय चतुर्थपाद को छोड़कर प्रथम और द्वितीय अध्याय पर्यन्त ही उक्त वृत्ति उपलब्ध होती है। यह अष्टाध्यायी की महती वृत्ति है। वृत्तिकार ने वृत्ति में प्रयुक्त शब्दों के व्याकरण का भी विश्लेषण किया है। प्रस्तुत वृत्ति में सरल संस्कृत का प्रयोग है। लोकप्रसिद्ध छोटे-छोटे शब्दों का इसमें प्रयोग किया गया है। वृत्ति में भाषा की सरलता से अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ आसानी से समझ में आ जाता है। इसमें लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं। इसमें व्याकरणिक दृष्टि से सूत्रों के सम्बन्ध में पाये जाने वाले सन्देहों का निराकरण भी किया गया है। प्रस्तुत भाष्य में व्याख्यान का प्रस्तुतीकरण महाभाष्य के समान ही पाया जाता है। इसमें व्याख्यान के सभी पक्ष-पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह, वाक्ययोजना, पूर्वपक्ष-समाधान आदि का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। इसमें अनेक आचार्यो के मत-मतान्तर दिखाये गये हैं तथा उनका खण्डन भी किया गया है।

दुर्घटवृत्ति– शरणदेवविरचित दुर्घटवृत्ति की गणना काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियों में की जाती है। इस वृत्ति में अष्टाध्यायी के कतिपय सूत्रों की ही वृत्ति तथा उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इस वृत्ति की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें तथाकथित अपाणिनीय प्रयोगों की साधुता पाणिनीय रीति से प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। इस वृत्ति में अनेक साहित्यिक कृतियों के उदाहरण भी मिलते हैं।

पूर्वोक्त अष्टाध्यायी की काशिका से उत्तरवर्त्ती वृत्तियों के अतिरिक्त भर्त्रीश्वर, भट्टजयन्त, श्रुतपाल, केशव, इन्दुमित्र, मैत्रेयरक्षित, अप्पन, नैनार्य, अप्पयदीक्षित, नीलकण्ठ, वाजपेयी, गोपालकृष्ण शास्त्री, गोकुलचन्द्र, नारायणसुधी, रुद्रधर, उदयन, उदयङ्कर भट्ट, रामचन्द्र और सदानन्द नाथ द्वारा विरचित वृत्तियों तथा पाणिनीयलघुवृत्ति, पाणिनीयसूत्रवृत्ति, पाणिनीयसूत्रविवरण, पाणिनीयसूत्रविवृति, पाणिनीयसूत्रविवृति लघुवृत्तिकारिका और पाणिनीय-सूत्रव्याख्यान उदाहरण श्लोक सहित इत्यादि वृत्तियों का भी यत्र-तत्र उल्लेख पाया जाता है।

[5] **प्रक्रियाक्रम**– प्रक्रिया का अर्थ है शब्दव्युत्पत्तिविधि। शब्दों की साधुता बोधक व्युत्पत्ति में अष्टाध्यायी के सूत्रों की प्रवृत्ति जिस क्रम से आवश्यक है उसी क्रम से सूत्रों का सङ्कलन करना "प्रक्रियाक्रम" कहलाता है। अष्टाध्यायी

की कुछ व्याख्यायें प्रक्रियाक्रम से भी लिखी गई हैं। इस क्रम से लिखित ग्रन्थों को ''प्रक्रियाग्रन्थ'' के नाम से अभिहित किया जाता है। इनमें धर्मकीर्तिकृत रूपावतार, रामचन्द्रकृत प्रक्रियाकौमुदी, भट्टोजिदीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी, वरद-राजकृत मध्यसिद्धान्तकौमुदी और लघुसिद्धान्तकौमुदी की गणना की जाती है।

1.4 **भाषावृत्तिकार पुरुषोत्तमदेव तथा उनकी कृतियां**– भाषावृत्तिकार ने अपने वंश, माता-पिता, स्थान और समय के विषय में कोई सङ्केत नहीं दिया है। वक्ष्यमाण तथ्यों के आधार पर उनके स्थान और समय को तो निश्चित किया जा सकता है परन्तु वंश और माता-पिता सम्बन्धी प्रश्न विवेचित नहीं हो सकते हैं।

पुरुषोत्तमदेव ने अपनी कृतियों भाषावृत्ति, महाभाष्य प्राणपणा और कारकचक्र में बुद्ध को अपने इष्टदेव के रूप में नमन किया है। वे उसे सर्वज्ञ तथा मुनि इत्यादि नामों से भी पुकारते हैं। भाषावृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में बौद्धधर्म के दर्शन सम्बन्धी सिद्धान्तों को उल्लिखित किया है। उन्होंने भिक्षुओं के लिये आवश्यक उपयोगी वस्तुओं का निर्देश किया है। भिक्षुओं द्वारा त्याज्य पदार्थों, आचरण संबंधी नियमों और सामाजिक जीवन में हमेशा ध्यान देने योग्य बातों का उल्लेख किया है। वे बुद्ध के विभिन्न नामों, वंश, माता-पिता इत्यादि का उल्लेख करते हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म में सुप्रसिद्ध बुद्धगया तीर्थस्थान को निर्दिष्ट किया है तथा स्वयं वहाँ जाने की इच्छा व्यक्त की है। वे मनुस्मृति में दान के फल सम्बन्धी कथन के विपरीत भिक्षु को दान देनें की बात करते हैं। उन्होंने ब्राह्मण का निर्वचन किया है तथा ब्राह्मणों के द्वारा गङ्गा स्नान या प्रायश्चित कर्मों में विश्वास रखने को हतोत्साहित किया है। वे 'जिन' शब्द का निर्वचन कर उसे श्रेष्ठ बताते हैं। उक्त वर्णन से यही सिद्ध होता है कि पुरुषोत्तमदेव बौद्धमतावलम्बी थे। इस सम्बन्ध में विशद विवेचना सप्तम अध्याय में ''धर्म'' उपशीर्षक के अन्तर्गत की जायेगी।

[2] **स्थान**– पुरुषोत्तमदेव के स्थान के सम्बन्ध में कतिपय अन्तः और बाह्य साक्ष्य उपलब्ध होते हैं जिनके आधार पर इनका जन्म स्थान बङ्गाल प्रतीत होता है।

अन्तःसाक्ष्य–

[2-क] पुरुषोत्तमदेव ने भाषावृत्ति[४०] में केवल जिनेन्द्रबुद्धिकृत न्यास को तथा न्यास, इन्दुमित्रकृत अनुन्यास और मैत्रेयरक्षित प्रणीत तन्त्रप्रदीप ग्रन्थों को

अपनी अन्य कृतियों परिभाषावृत्ति,[81] ज्ञापकसमुच्चय[82] और कारकचक्र[83] में उद्धृत किया है। ये उक्त तीनों आचार्य बङ्गाल से सम्बन्धित माने गये हैं अतः पुरुषोत्तमदेव को इन सभी को उद्धृत करने से बङ्गालवासी माना जा सकता है।

[2-ख] बङ्गाल प्रान्त की बङ्गला भाषा में उच्चारण की दृष्टि से अन्तःस्थ वकार और ओष्ठ्य बकार में उच्चारण साम्य पाया जाता है। पुरुषोत्तमदेव ने भाषावृत्ति में प्रत्याहार प्रकरण में अश् हश् वश् झश् जश् पुनर्बश् लिखा है। इस पुनः शब्द के उल्लेख से अधिकांश विद्वान् पुरुषोत्तमदेव को बङ्गालवासी मानते हैं तथा यह स्वीकार करते हैं कि उसने ऐसा अपनी मातृभाषा में ब और व के उच्चारण साम्य के आधार पर ही किया होगा।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि ब और व का उच्चारण साम्य प्राचीन समय में मिथिला के विद्वानों में भी पाया जाता था तथा सृष्टिधर के कथनानुसार पुरुषोत्तमदेव ने अपनी वृत्ति की रचना राजा लक्ष्मणसेन की आज्ञा से की। राजा लक्ष्मणसेन का राज्य मिथिला तक फैला हुआ था अतः पुरुषोत्तमदेव का मिथिलावासी होना भी सम्भव है परन्तु मिथिला को पुरुषोत्तमदेव की जन्मस्थली स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसने मिथिला से सम्बन्धित उदाहरण नहीं दिये हैं जबकि बङ्गाल से सम्बन्धित अनेक उदाहरण दिये हैं। यथा– "वङ्गस्यापत्यानि बहूनि वङ्गाः" तेषां निवासः "वङ्गाः जनपदः",[84] "वङ्गाः जनपदो रमणीयः"[85] "प्रियवाङ्गा विप्राः,"[86] "वङ्ग्यं काष्ठम्"[87] इत्यादि।

[2-ग] यह सर्वविदित तथ्य है कि बङ्गाल की मुख्य फसल धान है। बङ्गालवासी चावलों का अधिक प्रयोग करते हैं तथा मछलियों को भी पालते हैं। भाषावृत्ति में दिये गये अनेक उदाहरण इस सत्य को भी प्रकट करते हैं जिससे पुरुषोत्तमदेव बङ्गालवासी माना जा सकता है। यथा– "कार्पर ओदनः"[88], "भोज्य ओदनः"[89] "वैपाशी मत्स्यः"[90], "गौमती मत्स्याः"[91] "विसारो मत्स्यः"[92] इत्यादि।

[2-घ] पुरुषोत्तमदेव द्वारा बङ्गाल की नगरियों और स्थानीय बस्तियों के निर्देश अपनी वृत्ति में किये गये हैं जिससे उन्हें बङ्गालवासी कहा जा सकता है। यथा– "कपित्थ्यां नगर्यां दृष्टोऽसि मया। नाहं कपित्थीं जगाम"[93], "स्मरसि पुण्डर्यां वत्स्यामः"[94] और "तत् स्मरसि यथानकसत्रं गमिष्यामस्तत्र घृतेनौदनं भोक्ष्यामहे"[95] उक्त उदाहरणों में कपित्थी, पुण्डरी और अनकसत्र स्थानों का उल्लेख है तथा अनकसत्र में घी के बाहुल्य का वर्णन है।

[2-ङ] भाषावृत्ति में पद्मावती[96] नदी का उल्लेख है जो बङ्गाल में गङ्गा के पद्मा नाम का ही बोध कराती है अतः बङ्गाल की प्रसिद्ध नदी के उल्लेख से पुरुषोत्तमदेव बङ्गालवासी कहा जा सकता है।

[2-च] भाषावृत्ति में प्रदत्त ''कृष्णदासस्य पुत्रीं तुभ्यमहं सम्प्रददे''[97] ''वरेन्द्रीमगधम्''[98], ''लेखको नास्ति दोषकः, यथादृष्टं तथा लिखितम्''[99] और ''पाश्चात्या गौडेभ्य आढ्यतराः''[100] इन उदाहरणों में पठित कृष्णदास प्रसिद्ध बङ्गाली नाम बताया गया है। प्रसिद्ध मगध की अपेक्षा अप्रसिद्ध वरेन्द्री को अधिक मान देने से वरेन्द्री पुरुषोत्तमदेव की जन्मस्थली मानी जा सकती है। तृतीय उदाहरण में लिखित क्षमासूचक वाक्य का प्रारम्भ बङ्गाल से माना जाता है तथा आज भी बङ्गाल के स्थायी बन्दोवस्त में लिखित इस क्षमासूचक वाक्य को राजस्व विभाग के कर्मचारी द्वारा सर्वत्र अधिमान दिया जाता है। गौड निवासियों की समृद्धि की पाश्चात्यों से तुलना करने से भी पुरुषोत्तमदेव बङ्गालवासी प्रतीत होता है।

बाह्य साक्ष्य–

[2-छ] भाषावृत्ति की चारों टीकाओं भाषावृत्त्यर्थविवृति, फक्किकावृत्ति, भाषावृत्तिपञ्जिका और तत्त्वार्थसन्दीपनी के व्याख्याता बङ्गाल से सम्बन्धित हैं। भाषावृत्ति के इन टीकाकारों सृष्टिधर, सनातन तर्काचार्य, विश्वरूप और षष्ठीदास [मिश्राचार्य्य] के बङ्गालवासी होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके मूलग्रन्थ का रचयिता भी बङ्गालवासी हो।

[2-ज] सृष्टिधर के कथनानुसार राजा लक्ष्मणसेन की आज्ञा से भाषावृत्ति की रचना हुई,[101] वह लक्ष्मणसेन बङ्गाल का राजा था अतः पुरुषोत्तमदेव को भी बङ्गालवासी माना जा सकता है। लक्ष्मणसेन की आज्ञा से पुरुषोत्तमदेव ने भाषावृत्ति की रचना की थी इस तथ्य की पुष्टि रामचैटर्जी प्रणीत ''रिलिजन इन बंगाल ड्युरिंग दा पाल एण्ड दा सेन टाइम्ज'' पुस्तक से भी हो जाती है।[102]

[2-झ] शङ्करकृतमहाभाष्यटीका के उपलब्ध एक पृष्ठ में पुरुषोत्तमदेव द्वारा महाभाष्य प्राणपणा लिखने का उल्लेख है। उक्त एक पृष्ठ भी बङ्गाल में ही मिला है अतः महाभाष्य प्राणपणा का रचयिता बङ्गालवासी माना जा सकता है।

[2-ञ] ''वर्नेकुलर एजुकेशन आफ बंगाल'' इस सर्वेक्षण में डब्ल्यू अदम ने सन् 1835 में लिखा है कि राजशाही जिले के उपमण्डल नत्तौर में 38 संस्कृत के शिक्षालय थे जिनमें 392 विद्यार्थी सर्वप्रथम पाणिनि अष्टाध्यायी की लौकिक सूत्रवृत्ति भाषावृत्ति सीखते थे। तदनन्तर उन्हें न्यास, भाषावृत्त्यर्थविवृति और धातुप्रदीप का अध्ययनं और अध्यापन करवाया जाता था। अदम ने वस्तुत: इस सर्वेक्षण के अभिलेख में शिक्षालय शब्द द्वारा यह बताने का यत्न किया है कि उक्त ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा बङ्गाल की विशिष्ट शिक्षा पद्धति थी और अन्यत्र ये पूर्वोक्त ग्रन्थ अज्ञात थे।[103]

उपर्युक्त अन्त: तथा बाह्य साक्ष्यों के विवेचन से ज्ञात होता है कि भाषावृत्ति की रचना बङ्गाल में हुई थी तथा इसके प्रणेता का जन्मस्थान भी बङ्गाल ही था।

[3] **समय**– पुरुषोत्तमदेव का समय अन्त:साक्ष्यों और बाह्य साक्ष्यों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है।

अन्त: साक्ष्य–

[3-क] भाषावृत्तिकार ने ज्ञापकसमुच्चय[104] में धर्मकीर्तिकृत रूपावतार के ''चोरयतेर्यङुदाहृत:''[105] इस दृष्टान्त को उद्धृत किया है। रूपावतार का काल 1140 विक्रमी संवत् स्वीकार किया जाता है अत: रूपावतार को उद्धृत करने से भाषावृत्तिकार का समय 1140 विक्रमी संवत् के बाद माना जा सकता है।

[3-ख] भाषावृत्तिकार ने परिभाषावृत्ति और ज्ञापकसमुच्चय में मैत्रेयरक्षितप्रणीत ''धातुप्रदीप'' को निर्दिष्ट किया है।[106] मैत्रेयरक्षित का काल 1165 विक्रमी संवत् अङ्गीकार किया जाता है। इस प्रकार मैत्रेयरक्षित के निर्देश से भाषावृत्तिकार का समय 1165 विक्रमी संवत् के अनन्तर माना जा सकता है।

[3-ग] भाषावृत्तिकार द्वारा ''रज: कृष्यासुतिपरिषदो वलच्'' और ''अन्त:'' सूत्रों की वृत्तियों में केशव[107] और केशववृत्ति[108] का उल्लेख किया गया है। केशववृत्ति का समय इतिहासकार 1165 विक्रमी संवत् मानते हैं। इस प्रकार केशववृत्ति के निर्देश करने से भाषावृत्तिकार का समय 1165 विक्रमी संवत् के पश्चात् स्वीकार किया जा सकता है।

बाह्य साक्ष्य–

[3-घ] भाषावृत्ति के टीकाकार सृष्टिधर के अनुसार पुरुषोत्तमदेव ने राजा लक्ष्मणसेन की आज्ञा से भाषावृत्ति की रचना की थी।[109] राजा लक्ष्मणसेन का शासनकाल 1169 ई. माना जाता है। तदनुसार भाषावृत्ति के रचनाकाल की पूर्वसीमा 1169 ई० निश्चित होती है। आचार्य सृष्टिधर के इस मत की पुष्टि श्रीदिनेशचन्द्रभट्टाचार्य[110] और रामचैटर्जी[111] द्वारा उद्‌धृत प्रमाणों से भी होती है। कतिपय विद्वानों का मत है कि राजा लक्ष्मणसेन ने अपनी साहित्यिक और राजनीतिक गतिविधियां अपने शासनकाल से पूर्व निज दादा के शासनकाल 1140 ई. में ही प्रारम्भ कर दी थीं। यदि उक्त तथ्य को स्वीकार किया जाये तो राजा लक्ष्मणसेन अपने शासन से पूर्व भी भाषावृत्ति की रचना का निर्देश दे सकता है जिससे भाषावृत्ति के रचनाकाल की पूर्वसीमा 1140 ई. के पश्चात् निर्धारित हो जाती है।

उपर्युक्त कथन यह तो प्रकट करते हैं कि भाषावृत्ति की रचना राजा लक्ष्मणसेन की आज्ञा से हुई परन्तु इनसे कदापि यह प्रकट नहीं होता कि उसने अपने शासनकाल से पूर्व ही अपने विद्यार्थीकाल में पुरुषोत्तमदेव को लौकिकसूत्रों की वृत्ति लिखने की आज्ञा दे दी हो। इसलिये 1169 ई. लक्ष्मणसेन के शासनकाल को ही भाषावृत्ति के रचनाकाल की पूर्वसीमा माना जा सकता है।

[3-ङ] अमरकोश का टीकाकार सुभूतिचन्द्र अपनी टीका में पुरुषोत्तमदेव विरचित भाषावृत्ति और ज्ञापकसमुच्चय इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख करता है।[112] सुभूति द्वारा विरचित अमरकोश की टीका की एक प्रति तिब्बती भाषा में उपलब्ध होती है जिसका समम 119। ई० माना जाता है।[113] उक्त तथ्य के आधार पर यदि सुभूति की अमरकोश टीका का समय 1191 ई० माना जाये तो सुभूति की टीका में पुरुषोत्तमदेव विरचित ग्रन्थों का उल्लेख होने से उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भाषावृत्ति के रचनाकाल की परसीमा 1191 ई० स्वीकार की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त शरणदेव विरचित ''दुर्घटवृत्ति'' में दो बार सुभूति का नाम उल्लिखित हुआ है। दुर्घटवृत्ति का समय 1150-1175 ई. माना जाता है। शरणदेव की उक्त वृत्ति में ही अनेक बार भाषावृत्ति[114] और ज्ञापकसमुच्चय[115] का उल्लेख भी है। उक्त प्रमाण के आधार पर सुभूति की टीका का रचनाकाल 1150-1175

ई. सिद्ध होता है। यदि सुभूति की टीका का रचनाकाल 1150-1175 ई. स्वीकार किया जाये तो भाषावृत्ति के रचना काल की परसीमा भी 1150-1175 ई. ही मानी जा सकती है।

ऊपर वर्णित इन अन्तः तथा बाह्य साक्ष्यों द्वारा निश्चित पूर्व तथा पर सीमाओं के आधार पर भाषावृत्ति का समय 1169-1175 ई. के मध्य निश्चित किया जा सकता है।

[4] **कृतियां**– व्याकरण निकाय में आचार्य पुरुषोत्तदेव का विशिष्ट स्थान माना जाता है। इन्होंने अपने विभिन्न व्याकरणसम्बन्धी ग्रन्थों के निर्माण से पाणिनीयव्याकरण का सरलीकरण किया है। इनके द्वारा लिखित पाणिनीयव्याकरणसम्बन्धी ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इन्होंने पाणिनीयव्याकरण के सरलीकरण में अपना समस्त जीवन बिताया। अपने ग्रन्थों के माध्यम से इन्होंने पाणिनीय सूत्रों की संक्षिप्त और सटीक व्याख्या की जिससे अत्यल्प काल में पाणिनीयव्याकरण का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके व्याकरणसम्बन्धी इस पाण्डित्य को देखते हुये ही इन्हें महामहोपाध्याय और वैयाकरण गजपञ्चाननादि अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया है। आचार्य पुरुषोत्तमदेव के नाम से कई प्रकार की रचनाओं का उल्लेख पाया जाता है। इनके नाम से कोशरचनासम्बन्धी, शास्त्रविधिसम्बन्धी, काव्यटीकासम्बन्धी और व्याकरणसम्बन्धी रचनायें मिलती हैं–

कोशरचनासम्बन्धी कृतियाँ– हारावली, त्रिकाण्डशेष, वर्णदेशन, द्विरूपकोश, एकाक्षरकोश और वर्णविधान।

शास्त्रविधिसम्बन्धी– विष्णुभक्तिकल्पलता।

काव्यटीकासम्बन्धी– रघुटीका।

व्याकरणसम्बन्धीकृतियाँ– भाषावृत्ति, उणादिवृत्ति, दुर्घटवृत्ति, परिभाषावृत्ति, ज्ञापकसमुच्चय, कारकचक्र और महाभाष्य प्राणपणा।

यद्यपि पूर्वोक्त व्याकरणेतर हारावली, त्रिकाण्डशेषादि कृतियाँ आचार्य के नाम से ही उल्लिखित मिलती हैं तथापि ये कृतियां वैयाकरण पुरुषोत्तमदेव से भिन्न प्रतीत होती हैं। आचार्य पुरुषोत्तमदेव की जितनी भी निर्विवाद कृतियाँ उपलब्ध

होती हैं उन सभी का सम्बन्ध पाणिनीय व्याकरण से है। यहाँ इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है–

भाषावृत्ति– भाषावृत्ति का परिचय क्रमशः वृत्तिग्रन्थों की परम्परा तथा वृत्तिग्रन्थों में भाषावृत्ति का स्थान नामक प्रकरण में इससे पूर्व दिया जा चुका है तथा आगे भी दिया जायेगा।[116]

उणादिवृत्ति– "सुभूतिचन्द्रकृत अमरकोश टीका" इस लेखानुसार पुरुषोत्तमदेव द्वारा विरचित उणादिवृत्ति की पुष्टि होती है।[117] दशपाद्युणादिवृत्ति के सम्पादक पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने लिखा है कि उणादिवृत्ति के उद्धरण उज्ज्वलदत्त ने उक्त वृत्ति में देव नाम से निर्दिष्ट किये हैं[118] जिससे उणादिवृत्ति की सत्ता का ज्ञान होता है। वर्तमान में पुरुषोत्तमदेवकृत उणादिवृत्ति उपलब्ध नहीं है।

दुर्घटवृत्ति– टी.आर. चिन्तामणि ने "सुभूतिचन्द्र कृत अमरकोश टीका" नामक लेख में पुरुषोत्तमदेव द्वारा दुर्घटवृत्ति लिखने की पुष्टि की है।[119] वर्तमान में यह वृत्ति उपलब्ध नहीं होती।

परिभाषावृत्ति– सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ तथा लिङ्गानुशासन के अतिरिक्त परिभाषापाठ को भी शब्दानुशासन का एक अङ्ग माना जाता है क्योंकि परिभाषाओं के आश्रयण के बिना सर्वत्र शास्त्रीय कार्य का निर्वाह नहीं हो सकता है। "अनियमे नियमकारिणी परिभाषा" वैयाकरणों के इस लक्षण के अनुसार विधिशास्त्र की नियामिका परिभाषा कहलाती है। व्याकरणशास्त्र में ये परिभाषायें द्विविध रूप में पायी जाती हैं– सूत्र रूप में तथा ज्ञापित, न्यायसिद्ध और वाचनिक रूप में। उक्त प्रकार की परिभाषायें स्वयं सूत्रकार पाणिनि विरचित हैं जिनकी संख्या लगभग पचास है तथा जो अष्टाध्यायी में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। प्रस्तुत प्रकरण में परिभाषापाठ का सम्बन्ध द्वितीय प्रकार की परिभाषाओं से ही है। द्वितीय प्रकार की इन परिभाषाओं को कतिपय आचार्य पाणिनि, काशकृत्स्न तथा व्याडि आदि आचार्यों द्वारा प्रोक्त मानते हैं तो कतिपय उत्तरवर्ती व्याख्याकारों द्वारा सङ्गृहीत।

वर्तमान समय में परिभाषापाठ नामक एक सङ्ग्रह मिलता है। इसमें व्याडीय परिभाषाओं के द्विविध पाठ पाये जाते हैं। इसके प्रथम पाठ में 93 परिभाषायें उल्लिखित हुई हैं तथा द्वितीयपाठ में 140। पुरुषोत्तमदेव ने व्याडीय परिभाषापाठ

पर एक वृत्ति लिखी है जो लघुवृत्ति या ललितावृत्ति के नाम से जानी जाती है। इसमें 120 परिभाषायें संक्षिप्त रूप में व्याख्यात हुई हैं। व्याडि तथा पुरुषोत्तमदेव द्वारा उल्लिखित परिभाषाओं में संख्या, पाठ तथा पौर्वापर्य के क्रम में अन्तर पाया जाता है।

पुरुषोत्तमदेव के अनुसार परिभाषायें पाणिनीयवचन नहीं अपितु नाना आचार्यों के वचन हैं– ''परिभाषा हि न पाणिनीयानि वचनानि, किं तर्हि नानाचार्याणाम्''।[120]

ज्ञापकसमुच्चय– ''ज्ञापक'' का अर्थ बोधक या सूचक है। इस प्रकार ज्ञापकसमुच्चय का सम्मिलित अर्थ–बोधकों का संग्रह है। इसे दूसरे शब्दों में सूचकों या प्रतीकों का संग्रह भी कहा जा सकता है। ''ज्ञापकसमुच्चय'' परिभाषावृत्ति का एक व्यावहारिक क्रम है और यह व्याकरण के क्षेत्र में एक अद्‌भुत कार्य माना जाता है। व्याकरण के क्षेत्र में ज्ञापक और ज्ञापन का उतना ही महत्त्व है जितना कि परिभाषा का। जिस प्रकार परिभाषाओं के अभाव में पद–पद पर अनिष्ट होने का भय रहता है उसी प्रकार ज्ञापकों के स्वीकार न करने पर भी अनिष्ट होने का सन्देह होता है। ज्ञापक समुच्चय में पुरुषोत्तमदेव ने ज्ञापकसिद्ध वचनों का सङ्ग्रह किया है तथा इनकी रचना परिभाषावृत्ति की पूर्णता के लिये की गई है। उक्त तथ्य निम्नश्लोक से ही स्पष्ट हो जाता है–

''यश्चक्रे परिभाषाणां वृत्तिं वृद्धसुसम्मताम्।
पुरुषोत्तम आरेभे स ज्ञापकसमुच्चयम्।।''[121]

पुरुषोत्तमदेव ने लिखा है कि ज्ञापक का प्रयोग अति विशिष्ट स्थलों पर ही अपेक्षित है सार्वत्रिक नहीं।[122] ज्ञापकसमुच्चय में 200 से अधिक ज्ञापक व्याख्यात हैं। इन्हें अष्टध्यायी की तरह अध्याय, पाद और सूत्र के क्रम में रखा गया है। ज्ञापक के स्पष्टार्थ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है– जिस प्रकार ''तौ सत्''[123] सूत्र द्वारा शतृ और शानच् प्रत्यय सत् कहे गये हैं उसी प्रकार ''तरप्तमपौ घः''[124] सूत्र द्वारा घुसंज्ञक शब्दों से तरप् और तमप् प्रत्यय होते हैं– ''तौ घः, तादी घः, पितौ घः, पिद् घः'' इस प्रकार उच्चरित इन संक्षिप्त शब्द समूहों से भी उसी अर्थ का बोध हो रहा है जिस अर्थ का ''तरप्तमपौ घः यह पूर्ण शब्द समूह करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रकरण के घटाने पर भी यदि अर्थ स्पष्ट हो जाये तो वह ज्ञापक है। इसी बात को पुरुषोत्तमदेव ने निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है– ''तरप्तमप्विधावेव तौ सदितिवत् तौ

घः, तादी घः, पितौ घः, पिद् घः इति वा वक्तव्ये प्रकरणापकर्षेण ''तरप्तमपौ घः'' इति करणं ज्ञापयतिप्रकर्षार्थमन्तरेण क्वचित् स्वार्थेऽपि तरबस्तीति''।[125]

सीरदेव विरचित परिभाषावृत्ति में सात ज्ञापकों को परिभाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है।[126] सुभूतिचन्द्रकृत अमरकोश टीका[127] और शरणदेवकृत दुर्घटवृत्ति में[128] ज्ञापकसमुच्चय का उल्लेख है।

आचार्य मम्मट ने च्युतसंस्कृति के 'अनुनाथते' शब्द का प्रयोग किया है जिसकी काव्यप्रकाश के तेरहवीं शताब्दी ई० के प्रसिद्ध टीकाकार महासान्धिविग्रहिक श्रीधर ने काव्यप्रकाशविवेक स्वकीय टीका में आलोचना की है तथा इसे व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग माना है।[129] इसके विपरीत पुरुषोत्तमदेव ने किरातार्जुनीय में 'नाथसे किमु पतिं न भूभृत्''[130] इस श्लोकांश में प्रयोग के आधार पर तथा मैत्रेयरक्षित द्वारा तन्त्रप्रदीप में ''क्रीड़ोऽनुसंपरिभ्यश्च''[131] सूत्र की टीका में उक्त प्रयोग की सिद्धि के आधार पर ज्ञापकसमुच्चय में शुद्ध प्रयोग स्वीकार किया है– ''नाथतेरात्मनेपदित्वात् ''आशिषि नाथः'' इत्यात्मने-पदविधानमाशिषि नियमार्थम्। तेन याञ्चादौ विकल्पेनात्मनेपदं ज्ञापितम्। अत एव ''नाथते किमु पतिं न भूभृत्'' इत्यपि सिध्यतीति क्रीड़ादिसूत्रे रक्षितः''।[132] ज्ञापकसमुच्चय का सम्पादक लिखता है कि परिभाषावृत्ति की अपेक्षा ज्ञापकसमुच्चय सोलहवीं शताब्दी में अधिक प्रसिद्ध था।[133]

कारकचक्रम्– पुरुषोत्तमदेव ने कारकचक्र की रचना बालकों को कारकों का अर्थ समझाने के लिये की थी। इसकी पुष्टि निम्न श्लोक से हो जाती है–

> **''मुनिं प्रणम्य सर्वज्ञं सर्वज्ञानप्रकाशकम्।**
> **बालानां कथ्यतेऽर्थाय मया कारकचक्रकम्।।''**[134]

पुरुषोत्तमदेव ने कारकचक्र के विषय प्रतिपादन को भी निम्न श्लोक में स्पष्ट किया है–

> **निमित्तं कारकं प्रोक्तं तच्च काय्र्यमपेक्षते।**
> **काय्र्यकारणसम्बन्धात् विचारः सुप्तिङन्तयोः''।।**[135]

'कारकचक्र' कारकों पर प्रारम्भिक पुस्तक मानी जाती है। इसकी रचना सरल भाषा में है। इसमें कारकों का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इसमें वाक्यपदीय के कतिपय उद्धरण और कारिकायें मिलती हैं जिससे अनुमान लगाया जाता है कि इसका उपजीव्य वाक्यपदीय है। इसमें कतिपय कारिकायें प्रथम बार उद्धृत हुई हैं तथा उनमें से अधिकांश के उद्गम स्रोत अज्ञात हैं।

कारकचक्र में दो प्रारम्भ के श्लोक अतिरिक्त हैं अन्यथा यह "कारकपरीक्षा" ग्रन्थ से साम्य रखता है। इससे एक नये सन्देह की उत्पत्ति होती है। कारकपरीक्षा का रचयिता उपाध्याय पशुपति स्वीकार किया गया है।[136] कारकचक्र और कारकपरीक्षा दोनों ग्रन्थों की एकरूपता के विषय में यही कहना सम्भव है कि इन दोनों ग्रन्थों का रचना स्रोत कोई एक ग्रन्थ ही होगा जो वर्तमान में अनुपलब्ध है।

पन्द्रहवीं शताब्दी ई. में विद्यासागर ने इसे कारकचक्र के नाम से ही उद्धृत किया है, कारकपरीक्षा इस नाम से नहीं ऐसी जानकारी कारकचक्र के सम्पादक ने प्रस्तुत की है।[137] इसलिये पुरुषोत्तमदेव का ग्रन्थ भी "कारकपरीक्षा" होगा तथा उसका अन्वेषण किया जाये यह चिन्तन उपयुक्त नहीं है। "कारकपरीक्षा" के रचयिता पशुपति के विषय में कुछ कहना सम्भव नहीं। संक्षिप्तसार की टीका रसवती में वैयाकरण पशुपति का 7 बार उल्लेख हुआ है परन्तु वहाँ कारकपरीक्षा का लेखक के साथ सम्बन्ध का कोई प्रमाण नहीं है ऐसा उल्लेख भी कारकचक्र के सम्पादक ने किया है।[138]

महाभाष्य प्राणपणा– शङ्करकृत महाभाष्यटीका का एक पृष्ठ वर्तमान में उपलब्ध है। उसके अनुसार पुरुषोत्तमदेव कुण्डली व्याख्यान में उन सभी साधु शब्दों का लोकभाषा से प्रतिपादन करना चाहते हैं जिनके कुण्डलीसप्तक में पतंजलि द्वारा दुर्बोध अर्थ दिये गये हैं– "समा [ख्यात]श्च पुरुषोत्तमदेवः परिसमाप्तसकलक्रियाकलापः कुण्डलीव्याख्याने बद्धपरिकरः प्रतिजानीते"।

कुण्डलीसप्तके येऽर्था दुर्बोध्याः फणिभाषिताः।
ते सर्वे प्रतिपाद्यन्ते साधुशब्देन भाषया॥
यदि दुष्प्रयोगशाली स्यां फणिभक्ष्यो भवाम्यहम्॥[139]

प्रस्तुत पृष्ठ पर उद्धृत दूसरे पद्य से ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ का नाम प्राणपणा है और इसका उद्देश्य लोकभाषा में महाभाष्य की लघुवृत्ति बनाना है–

"नमो बुधाय बुद्धाय यथात्रिमुनिलक्षणम्।
विधीयते प्राणपणा भाषायां लघुवृत्तिका"।।[140] इति देव–

उक्त दोनों श्लोकों से ज्ञात होता है कि पुरुषोत्तमदेव की महाभाष्य प्राणपणा का लक्ष्य महाभाष्य पर एक ऐसा ग्रन्थ निर्माण करना था जो लोकभाषा तक ही सीमित हो तथा जिसमें अर्थबोध में कठिनाई न हो और जो महाभाष्य की लघुवृत्ति हो। यह पुरुषोत्तमदेव का बहुमूल्य ग्रन्थ वर्तमान में अनुपलब्ध है। यह पुरुषोत्तमदेव की अन्तिम रचना स्वीकार की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पुरुषोत्तमदेव की भाषावृत्ति, परिभाषावृत्ति, ज्ञापकसमुच्चय, कारकचक्र ये रचनायें तो वर्तमान में उपलब्ध हैं परन्तु उणादिवृत्ति, दुर्घटवृत्ति और महाभाष्य प्राणपणा के केवल नाममात्र ही यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

[5] **वृत्तिग्रन्थों में भाषावृत्ति का स्थान–** सूत्रार्थ प्रधान ग्रन्थ को वृत्तिग्रन्थ के नाम से अभिहित किया जाता है। पाणिनीय अष्टाध्यायी पर अनेक वृत्तिग्रन्थों की रचना की गयी है। इन वृत्तिग्रन्थों में कतिपय वृत्तिग्रन्थ सर्वथा अनुपलब्ध हैं तो कतिपय अपूर्णरूपेण उपलब्ध। वर्तमान समय में काशिकावृत्ति, भाषावृत्ति, व्याकरणमिताक्षरा, व्याकरणदीपिका और दुर्घटवृत्ति ये वृत्तिग्रन्थ पूर्णरूपेण उपलब्ध हैं। इन वृत्तियों में से दुर्घटवृत्ति की प्रकृति काशिकादि अन्य वृत्तियों से कुछ भिन्न है क्योंकि इस वृत्ति में मुख्यतया तथाकथित अपाणिनीय प्रयोगों की साधुता का प्रदर्शन किया गया है जबकि काशिकादि वृत्तिग्रन्थों में ऐसा नहीं है। यद्यपि इन वृत्तियों में काशिकावृत्ति को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है तथापि अपने विशिष्ट वैशिष्ट्य के कारण भाषावृत्ति का इन वृत्तियों में महनीयस्थान है। अन्य वृत्तिग्रन्थों की अपेक्षा भाषावृत्ति में निम्नलिखित वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है–

[5-क] काशिकावृत्ति, व्याकरणमिताक्षरा, व्याकरणदीपिका और दुर्घटवृत्ति इन सभी वृत्तियों में लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं लेकिन भाषावृत्ति का सम्बन्ध केवल लोकभाषा से है अतः इसमें केवल लोकभाषा से सम्बद्ध लौकिक सूत्र ही व्याख्यात हुये हैं।

[5-ख] काशिकावृत्ति एक बृहद्वृत्ति है। इसमें सूत्रार्थ का विस्तार तथा उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का बाहुल्य है लेकिन इसके विपरीत भाषावृत्ति एक

लघुवृत्ति है। इसमें सूत्रार्थ का संक्षेप तथा अपेक्षित उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का ही सन्निवेश है।

[5-ग] यद्यपि व्याकरणमिताक्षरा भी एक लघुवृत्ति है तथापि यह एक साधारणवृत्ति है। इसमें पूर्व प्रचलित उन विविध व्याकरणिक सिद्धान्तों का निर्देश नहीं पाया जाता है जिनका निर्देश भाषावृत्ति में पाया जाता है। भाषावृत्ति तो विविध व्याकरणिक सिद्धान्तों की खान है।

[5-घ] व्याकरणदीपिका में अनेक व्याकरणिक सिद्धान्तों के निर्देश के साथ-साथ फक्किकास्थलों पर भी विस्तार से विचार किया गया है जिससे यह वृत्ति बृहद् तथा कठिन मानी जाती है लेकिन भाषावृत्ति में एकत्र विविध व्याकरणिक सिद्धान्तों का निर्देशमात्र किया गया है तथा इसे आलोचना तथा प्रत्यालोचना से सर्वथा मुक्त रखा गया है। वृत्तिकार ने इन व्याकरणिक सिद्धान्तों को अपनी सरल, संक्षिप्त तथा सरगर्भित भाषा में निबद्ध किया है जिससे अन्य वृत्तिग्रन्थों की अपेक्षा इस वृत्तिग्रन्थ में निर्दिष्ट व्याकरणिक सिद्धान्तों को सरलता से हृदयङ्गम किया जा सकता हैं यहाँ यह अवधेय है कि जितने व्याकरणिक सिद्धान्तों का एकत्र निर्देश भाषावृत्ति में पाया जाता है उतने व्याकरणिक सिद्धान्तों का काशिकादि अन्य वृत्तिग्रन्थों में नहीं पाया जाता है।

[5-ङ] व्याकरणशास्त्र अपनी दुरूहता और नीरसता के लिये प्रसिद्ध है। वृत्तिकार ने अपनी सरल, संक्षिप्त और सारगर्भित भाषा में व्याकरणिक सिद्धान्तों का निर्देश कर जहाँ व्याकरणशास्त्र की दुरूहता कम करने का प्रयास किया है वहीं सूत्रोदाहरण के रूप में लगभग 380 काव्यादिगत श्लोक तथा श्लोकांशों के उदाहरण देकर उसमें सरसता का समावेश कर दिया है।

[5-च] व्याकरणशास्त्र में इष्टसिद्धि तथा अनिष्टनिवारण हेतु इष्टिवचन के पाठ की परम्परा है। भाषावृत्ति में अनेकत्र ऐसे इष्टिवचन पठित हुये हैं जो काशिका में भी नहीं पाये जाते हैं। भाषावृत्ति में वागग्नी, वागिन्द्रौ इन प्रयोगों की निष्पत्ति हेतु "घ्यन्तादजाद्यदन्ताच्च परत्वादिदमिष्यते"[141] यह इष्टिवचन पढ़ा गया है।

[5-छ] यह वृत्ति यत्र-तत्र काशिकावृत्ति तथा भागवृत्ति के सिद्धान्तों का निर्देश करती है जिससे काशिकावृत्ति तथा भागवृत्ति के व्याकरणिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये यह वृत्ति परमोपयोगी है।

[5-ज] यद्यपि भाषावृत्ति एक व्याकरणिक ग्रन्थ है तथापि इसमें अनेक सूत्रोदाहरणों में तत्कालीन समाज भी प्रतिबिम्बित हुआ है, इमसें तत्कालीन समाज की राज्यव्यवस्था, आर्थिक स्थिति, धर्म-कर्म, खान-पान, रहन-सहन, और मान्यता आदि अनेक विषयों का चित्रण पाया जाता है।

[5-झ] भाषावृत्ति का रचयिता पुरुषोत्तमदेव बौद्धमतानुयायी था। इसीलिये उन्होंने भाषावृत्ति तथा कारकचक्रादि अपनी कृतियों में बुद्ध को सर्वज्ञ ईश्वर के रूप में नमन किया है तथा बुद्ध को ज्ञानदाता, पापनाशक और जगद्रक्षक के रूप में स्वीकार किया है। यहाँ अनेक सूत्रों के उदाहरणों में बौद्धों के धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता और तीर्थादि अनेक विषयों का निर्देश पया जाता है।

इस प्रकार वैदिक सूत्रों के व्याख्यान का परित्याग कर लौकिक सूत्रों का व्याख्यान कर तथा विभिन्न व्याकरणिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त, सरल, सरस और सारगर्भित भाषा में प्रस्तुतीकरण, अन्य वृत्तिग्रन्थों में अप्राप्य इष्टिवचनों का पाठ तथा बौद्धसंस्कृति का दिग्दर्शन यह सब भाषावृत्ति का अपना विशिष्ट वैशिष्ट्य है।

---

1. ऋ. 1.164.50
2. यजु. 1.20
3. सा. उ. पृ. 100, 5.2.8.5
4. अथर्व. 18.4.7
5. यजु. 19.77
6. ऋ. त. 1.4
7. हैमबृ.पृ. 3, द्र. युधि.मी.सं. व्या.शा. का इति. प्र.भा. पृ.73
8. महा.शा.प. 248.92
9. द्र. युधि.मी.सं.व्या.शा. का इति. प्र.भा. पृ. 74
10. पा. शि.श्लो. 57
11. म.भा. 1.1.1
12. न्या.मं. पृ.418
13. तै.सं. 6.4.7
14. कवि. द्रु.श्लो. 2, यु.मी.इति.प्र.भा. पृ. 64 पर उद्धृत
15. भा.वृ. 3.1.89

16. तै.सं. 6.4.7
17. वा.पु. 2.40 ''द्वादशवर्षीय सत्र निरूपण''
18. श.शक्ति प्रका. पृ.447, युधि.मी.इति. प्र.भा. पृ. 67
19. भा.वृ. 4.1.10
20. तै.प्रा. 5.37, 13.16, 14.2, 17.6
21. म.भा. 8.4.48
22. म.भा. 1.1.73
23. काशि. 4.2.65
24. काशि. 7.1.94
25. प्रक्रि,कौ.भूमि. पृ.3
26. म. भा. 1.1.1
27. कवि.द्रु.पृ.1, श्लो. 2 युधि.मी. इति. प्र.भा. पृ. 64 पर उद्धृत
28. काशि. 4.2.65
29. वही, 4.3.115
29. द्र. युधि.मी.सं.व्या.शा. का इति.प्र.भा. पृ. 111
31. काशि. 6.2.37
32. च.सं. 2.11
33. भ.का. जयमङ्गला 3.47
34. तै.प्रा. 5.38
35. मै. प्रा. 5.40, युधि.मी.सं.व्या.शा.इतिहास प्र.भा.पृ.70 पर उद्धृत
36. म.भा. 6.2.36
37. ऋ.प्रा. 3.23
38. भा.वृ. 6.1.77
39. पद मं. द्वि.भा. 7.3.4
40. अष्टा. 6.1.92
41. वही, 1.2.25
42. वही, 7.3.99
43. वही, 6.1.130
44. वही, 7.2.63
45. वही, 3.4.111
46. वही, 6.1.127
47. वही, 5.4.11
48. वही, 6.1.123
49. का. मी. पृ.5
50. शब्द कौस्तुभ तृ.भा., पृ. 509

51. न्या.प्र.भा. पृ. 1, पं .11
52. पद मं. प्र.भा. पृ. 2, पं. 1-2
53. म. भा. 1.1.1 [पस्पशा. 18]
54. म.भा.दीपि. 1.1.45
55. काशि. 5.1.50
56. काशि. 4.3.101 ''अन्येन कृता माथुरेण प्रोक्ता माथुरी वृत्तिः।
57. भा.वृ. 4.3.101 ''अन्येन कृता माथुरेणप्रोक्ता व्याख्याता माथुरी वृत्तिः।
58. म.भा. 4.3.101 ''यत्तेन प्रोक्तं न च तेन कृतम्। माथुरी वृत्तिः।
59. भा.वृ. 1.2.57 ''माथुर्य्यां तु वृत्तावशिष्यग्रहणमापादमनुवर्त्तते''।
60. प्र.भा. 1.1.74 ''कुणिना प्राग्ग्रहणमाचार्यनिर्देशार्थं व्यवस्थितविभाषार्थं चेति व्याख्यातम्''।
61. पद.मं. प्र.भा. पृ.2, पं.1 ''तत्र सूत्रार्थप्रधानो ग्रन्थो वृत्तिः। सा चेह पाणिनिप्रणीतानां सूत्राणां कुणिप्रभृतिभिराचार्यैः विरचितं विवरणम्''।
62. श्र्युकः 7.2.11
63. न्या.द्वि.भा, 7.2.11 ''केचित्श्वभूतिव्याडिप्रभृतयः'' श्र्युकः किति'' इत्यत्र द्विककारनिर्देशेन हेतुना चर्त्वभूतो गकारः प्रश्लिष्ट इत्येवमाचक्षते''।
64. म.भा. 1.1.56
65. प्र.भा. 1.1.56
66. न्या.द्वि.भा. 7.2.11 ''केचित् श्वभूतिव्याडिप्रभृतयः .... इत्येवमाचक्षते''।
67. न्या.प्र.भा. पृ. 1 पं.11
68. त.प्र. मैत्रेयरक्षित, 8.3.7, न्या.की भूमि. पृ.8 पर उद्धृत।
69. न्या.प्र.भा. पृ.1, पं. 11
70. कात.परि., श्रीपतिदत्त, न्या. प्र.भा.भूमि. पृ.8 पर उद्धृत; प्र.भा.पृ. 422 द्र.यु.मी. इति
71. कात.परि. श्रीपतिदत्त, न्या.प्र.भा.भूमि. पृ.8 पर उद्धृत। द्र. यु. भी. इति प्र. भा. पृ. 422।
72. श.श.प्र. न्या.भूमि. पृ.9 पर उद्धृत; द्र.यु.मी.इति.प्र.भा.पृ.422
73. पद.मं. प्र.भा. पृ.2, पं.15-16 ''काशिका इति देशतोऽभिधानम्, काशिषु भवा, काशिका''।
74. वृ.भा.वृ.भूमि. 8.4.68 सूत्र के पश्चात्, पृ.19 ''काशयति प्रकाशयति सूत्रार्थमिति काशिका जयादित्यविरचिता वृत्तिः। काश्यां भवा वा''।
75. भा.वृ. 1.1.16 ''अनार्ष इत्येकवृत्तावुपयुक्तम्''।
76. वृ.भा.वृ. भूमि. 8.4.68 सूत्र के पश्चात्, पृ.19 ''भागवृत्तिर्भर्त्तृहरिणा श्रीधरसेननरेन्द्रादिष्टाविरचिता''।
77. कात.परि.सन्धिसूत्र 142 ''तथा च भागवृत्तिकृता विमलमतिनाप्येवं निपातितः''। द्र.युधि. मी.सं.व्या.शा.का इति. प्र.भा. पृ.433
78. आल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेंस 1943-44 बनारस, एस.पी. भट्टाचार्य का भागवृत्ति सम्बन्धी लेख। द्र.युधि.मी.सं.व्या.शा.का इति. प्र.भा.पृ.433

79. व्या.मिता. 8.4.68
80. भा.वृ. 1.3.21; 1.4.7; 3.2.106, 107; 3.3.99
81. परि. ...कारक.पृ. न्या. 19, 34, 36 इत्यादि, अनु. 6, 36, त.प्र. 18
82. परि...कारक.पृ. न्या. 60, 64, 66, 70-75, 91, 93 इत्यादि, अनु. 66, 97, इत्यादि त.प्र. 58, 61-63, 72, 79, 80, 96, 98
83. परि...कारक.पृ.न्या. 102, 111 इन्दु. 117, 127-8, 130
84. भा.वृ. 1.2.51
85. वही, 1.2.52
86. वही, 2.4.62
87. वही, 7.3.63
88. वही, 4.2.14
89. वही, 7,3,69
90. वही, 1.1.10
91. वही, 1.1.75
92. भा.वृ. 3.3.17
93. वही, 3.2.115
94. वही, 3.2.113
95. वही, 3.2.114
96. वही, 6.3.120
97. वही, 6.3.70
98. वही, 2.4.7
99. वही, 2.2.24
100. वही, 5.3.57
101. वृ.भा.वृ. भूमि. पृ.11
102- Religion in Bengal during the Pala and the Sena times, p. 327, ``Again we know that it was Lakshamanasena who ordered Buddhist Purushottamadeva to compose his famous grammarian treatise ``Laghuvritti" on the model of Panini.
103. परि....कारक. प्रस्ता. पृ.1, 2.
104. परि. ... कारक. पृ. 70, पं.6
105. रूपा.द्वि.भा.पृ. 45, 1.3.74
106. परि. ... कारक, परि. 34 तथा ज्ञापक. पृ. 58, 61, 63, 72 79, 80, 96 और 98
107. भा.वृ. 5.3.112
108. वही, 8.4.20
109. वृ.भा.वृ.भूमि.पृ. 11, ''वैदिकप्रयोगानर्थिनो लक्ष्मणसेनस्य राज्ञ आज्ञया प्रकृते कर्मणि प्रसजन् वृत्तलघुताया हेतुमाह-भाषायामिति'' ।

110. परि. ... कारक. पृ. 126 ''माहेश्वरं शास्त्रं न केवलवैदिकपदस्य संस्कारकं किन्तु लौकिकपदस्य च। तथा च इयं लघुवृत्तिः माहेश्वरादिग्रन्थपरम्पराप्राप्तवैदिक-लौकिकपदसंस्कारकत्वे लक्ष्मणसेन [स्य] राज्ञो वैदिकपदस्यानर्हत्वात् वैदिकपदमुल्लङ्घ्य लौकिकपदसंस्कारार्थं महोपाध्यायश्रीपुरुषोत्तमदेवेन कृता''।
111. द्र. पृ. 31 प्रस्तुत शोध ग्रन्थ। संदर्भ संख्या 102।
112- J.O.R.M. Vol.8 1934, p. 372-73, Sr. No. 13,50.
113. दिनेशचन्द्र., परि. ... कारक. प्रस्ता. पृ.34, पं. 9-10
114. पृ.21, 33, 46, 60, 63, 68, 69, 71
115. पृ. 30, 36, 52, 94, 131
116. द्र.पृ. 12-13, 26-28 प्रस्तुत शोध ग्रन्थ।
117. पृ. 144, जे.ओ.आर. एम. वाल्यूम 8, 1934, पृ. 378, टी.आर. चिन्तामणि द्वारा उद्धृत ''तन्द्रीर्वल्लरिगोलिशष्कुलिहल्यावलिधूलिः इति गोवर्धनपुरुषोत्तमोणादिवृत्तौ''।
118. दशपादि. उपोद्.पृ.23, पं. 18-19
119. पृ. 105, जे.ओ.आर.एम. वाल्यूम 8, 1934 पृ. 379, टी.आर. चिन्तामणि द्वारा उद्धृत ''उक्तं च लक्ष्यलक्षणदुर्घटे पुरुषोत्तमेनैव''।
120. परि. ... कारक. परि. सं.119, पं. 17-18
121. परि. ... कारक. पृ. 57
122. परि. ... कारक. पृ.55, परि.सं.118 ''इदमप्युचितमेव। ज्ञापकं हि नाम न वाचकम्, किं तर्हि इङ्गितेन सूचकं क्वचिदेव इष्टसिद्धावाश्रीयते न सर्वत्रेति युज्यते ज्ञापकसिद्धं न सार्वत्रिकमिति। तेन ज्ञापकसाधितमात्मनेपदानित्यत्वादि न सर्वत्र प्रयोज्यम्। किन्तु विशिष्टप्रयोगदर्शनात् क्वचिदेव''।
123. भा.वृ. 3.2.127
124. वही 1.1.22
125. परि. ... कारक. पृ.57, पं. 3-5
126. परि. ज्ञापक 19=1.3.21, 36=1.3.163, 61=6.1.86, 67=6.4.78, 86=7.3.20, 98=3.3.90, और 124=1.3.90
127. जे.ओ.आर.एम. वाल्यूम 8, 1934, पृ.372, क्रमांक 13
128. पृ.30, 36, 52, 94, 131 इत्यादि
129. परि. ... कारक.प्रस्ता. पृ.29, पं. 23, 24, द्र.ज्ञा.स., 1-3
130. किरात. 13.59
131. भा.वृ. 1.3.21
132. परि. ... कारक. प्रस्ता. पृ. 29, पं. 25, 26
133. वही, पं. 33-35
``Unlike the Paribhasavritti, whose citation we have not been able to trace anywhere except in Siradeva, the Jnapakasamuccaya thus enjoyed a greater circulation and was well-known even in the 16th Cent.''

134. परि. ... कारक. पृ.101

135. परि. ... कारक. पृ.101

136. परि. ... कारक. प्रस्ता. पृ.30, पं. 8-12

``A vexed problem faces us when we find that the whole of the Karakacakra, excepting the two introductory verses, is identical with the text of another work named karakapariksa by राढीयश्रीमन्महोपाध्यायपशुपति with very slight variation or readings which we have noted."

137. परि. ... कारक. प्रस्ता. पृ. 30, पं. 15, 16.

138. परि. ... कारक. प्रस्ता. पृ.30, पं.17-21

``Pasupati's name is almost unknown, A Grammarian Pasupati is cited 7 times in the Resavati of the Sanksiptasarsa (II. 521 & c), but there is no evidence of his identity with the author of the Karakapariksa."

139. परि. ... कारक. पृ.120

140. वही, पृ.120

141. भा.वृ. 2.2.34

द्वितीय अध्याय

2. भाषावृत्ति का प्रतिपाद्य विषय तथा उसमें निर्दिष्ट मत-मतान्तर एवं इष्टिवचन

2.1 भाषावृत्ति का प्रतिपाद्य विषय

पाणिनीय अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। अष्टाध्यायी सूत्रों का सङ्ग्रहमात्र है। सूत्र एक विशेष प्रकार के साङ्केतिक शब्द हैं जिनके अभिप्राय को हृदयङ्गम करने हेतु व्याख्यान ग्रन्थों की आवश्यकता होती है। ये व्याख्यान ग्रन्थ द्विविध रूप में पाये जाते हैं– अष्टाध्यायीक्रम में और प्रक्रियाक्रम में। भाष्य और काशिका ये दोनों ही भाषावृत्ति से पूर्ववर्त्ती अष्टाध्यायीक्रम से व्याख्यातग्रन्थ हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ पाणिनीय व्याकरण के व्याख्यान की उत्तम कृतियां मानी जाती हैं। उभयत्र वैदिक और लौकिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुए हैं। इनमें से महाभाष्य में मत-मतान्तरों के निर्देश के साथ-साथ अनेक विषयों पर इतने अधिक सूक्ष्म तथा विस्तार से चर्चा हुई है कि इसे समुद्र के समान गम्भीर तथा अतिदुरूह माना जाने लगा। इसी प्रकार सूत्रार्थविस्तार तथा उदाहरण और प्रत्युदाहरणों के बाहुल्य के कारण काशिकावृत्ति ने भी बृहद्वृत्ति का रूप धारण कर लिया।

पुरुषोत्तमदेव के समय में वैदिकभाषा को क्लिष्ट तथा श्रमसाध्य समझा जाने लगा था, विशेषत: बङ्गालियों में। पुरुषोत्तमदेव भी बङ्गाली थे अत: वे बङ्गालियों की इस कठिनाई को समझते थे।[1] इसलिये उन्होंने युग की आवश्यकता तथा जनसाधारण की अभिरुचि एवं बुद्धि के अनुरूप भाषावृत्ति की रचना की। इसमें वैदिक सूत्रों के व्याख्यान का सर्वथा परित्याग किया गया है तथा लौकिक शब्दों की साधना के उपयोगी पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस वृत्तिग्रन्थ में लोकभाषा से सम्बद्ध [illegible]

सिद्धान्तों को संक्षेप में प्रतिपादित किया गया है जिससे यह वृत्ति बृहद्वृत्ति न होकर लघुवृत्ति का रूप धारण कर गयी है। पुरुषोत्तमदेव ने उक्त तथ्य को निम्न कारिका में अभिव्यक्त किया है–

"नमो बुद्धाय भाषायां यथात्रिमुनिलक्षणम्।
पुरुषोत्तमदेवेन लघ्वी वृत्तिर्विधीयते।।"[2]

यह व्याख्यान पूर्ववर्त्ती व्याख्यानों की अपेक्षा संक्षिप्त, सरल, सरस और सारग्राही है। इस व्याख्यान में अनेक व्याकरणिक मत-मतान्तरों का यथेष्ट निर्देश होने पर भी इसे विस्तृत आलोचना तथा प्रत्यालोचना से सर्वथा मुक्त रखा गया है। इतना ही नहीं प्रस्तुत ग्रन्थ काशिका तथा भागवृत्ति के सिद्धान्तों के अवबोध में भी उपयोगी है। इस तथ्य की पुष्टि स्वयं पुरुषोत्तमदेव ने की है–

"काशिकाभागवृत्त्योश्चेत् सिद्धान्तं बोद्धमस्ति धीः।
तदा विचिन्त्यतां भ्रातर्भाषावृत्तिरियं मम"।।[3]

इस प्रकार मत-मतान्तर निर्देशपूर्वक लौकिक शब्दों की साधना के उपयोगी पाणिनि के सूत्रों की संक्षिप्त, सरल, सरस और सारग्राही व्याख्यान को प्रस्तुत करना ही प्रस्तुत वृत्तिग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है।

[1] **भाषावृत्ति के अव्याख्यात छान्दस सूत्र तथा सूत्रांश–** अष्टाध्यायी में वैदिक और लौकिक उभयविध सूत्र विन्यस्त हुये हैं। अजमेर वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित "अष्टकं पाणिनीयम्" के अनुसार अष्टाध्यायी के कुल सूत्रों की संख्या 3963 है लेकिन नौ सूत्रों में योगविभाग स्वीकार करने से[4] तथा ग्यारह अतिरिक्त सूत्र पठित होने से[5] काशिका तथा भाषावृत्ति में इन सूत्रों की संख्या 3983 पठित हुई है। प्रस्तुत वृत्ति ग्रन्थ में उपयोगिता के आधार पर पाणिनि के छान्दस सूत्रों के व्याख्यान का परित्याग कर केवल लौकिक सूत्रों के व्याखान को प्रस्तुत किया गया है यद्यपि वैदिक और लौकिक सूत्रों की नियत संख्या का निर्धारण करना कठिन है क्योंकि कतिपय वैदिक और लौकिक सूत्रों के वैदिकत्व और लौकिकत्व के विषय में अनेक आचार्यों में मतभेद पाया जाता है। इस पर भी यह कार्य तब और अधिक कठिन हो जाता है जब एक ही सूत्र का कुछ अंश वैदिक भाषा से सम्बन्ध रखता है तो कुछ अंश लोक भाषा से।

भाषावृत्तिकार की दृष्टि में वे सूत्र विशुद्ध छान्दस हैं जिनके छान्दस होने का उल्लेख उन्होंने स्थान-स्थान पर किया है तथा उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत नहीं की है।[6] इसके अतिरिक्त भाषावृत्तिकार ने कुछ लौकिक सूत्रांशों को भी छान्दस माना है तथा छान्दस होने के कारण ही उन अंशों की व्याख्या निर्दिष्ट नहीं की है।[7] यहाँ यह अवधेय है कि भाषावृत्तिकार ने स्वर तथा प्लुतविषयक सूत्र तथा सूत्रांशों को भी छान्दससूत्र तथा सूत्रांशों में परिगणित किया है। स्वरों के विषय में उनकी यह धारणा है कि यद्यपि स्वरविषयक सूत्रों के नियम वैदिकभाषा के समान लोकभाषा पर भी लागू होते हैं तथापि स्वरों का प्रयोग केवल वेद में ही आवश्यक माना जाता है क्योंकि वहीं स्वरभिन्नता से अनिष्टार्थ की आशङ्का पैदा होती है। भाषा में न तो स्वरों का प्रचार ही है और न ही सर्वसाधारण को उनकी आवश्यकता।[8]

इसी प्रकार उनकी दृष्टि में प्लुतसंज्ञा का प्रयोग लोक में स्वीकृत होने पर भी न तो भाषा में उसका प्रयोग देखा जाता है और न ही प्रचार। इतना ही नहीं उन्होंने प्लुत को स्वर का ही एक भाग माना है।[9] इसलिये उनकी दृष्टि में स्वर तथा प्लुत का सम्बन्ध मुख्य रूप से वेद से ही है न कि लोक से।

भाषावृत्तिकार ने ऐसे लौकिक सूत्रांशों की ओर भी इङ्गित किया है जो लौकिक व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा अनुपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त वृत्तिकार ने उन सूत्रों की ओर भी दृष्टिपात किया है, जिनमें छन्दोऽधिकार होने पर भी प्रयुक्तता के आधार पर जिन्हें लोक में साधु माना जाता है तथा इसी आधार पर वृत्तिकार ने उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है।

भाषावृत्तिस्थ सूत्र तथा सूत्रांशों एवं वार्तिकों के स्वमत तथा परमत से वैदिकत्व तथा लौकिकत्व के निर्देशन को पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है– भाषावृत्ति के छान्दस सूत्रों में मतान्तर से लौकिकत्व, भाषावृत्तिं के लौकिक सूत्रांशों में छान्दसत्व, भाषावृत्ति के लौकिक सूत्र तथा सूत्रांशों में मतान्तर से छान्दसत्व, भाषावृत्ति के वार्तिकों में मतान्तर से छान्दसत्व और लौकिक व्याकरण की दृष्टि से अनुपयोगी सूत्रांश।

भाषावृत्ति के छान्दस सूत्रों में मतान्तर से लौकिकत्व– भाषावृत्ति के छान्दससूत्रों की कुल संख्या 620 है। भाषावृत्तिकार ने जिन सूत्रों को छान्दस माना है उनमें से सात सूत्र मतान्तर से लौकिक भी माने जाते हैं। वृत्तिकार ने इन मतान्तरों

को भी अपनी वृत्ति में अधिमान दिया है तथा स्थान-स्थान पर उनका उल्लेख किया है। यथा– भाषावृत्तिकार ने "लिटः कानज्वा", "क्वसुश्च" इन दो सूत्रों में स्थित लिटः, क्वसु, वा इन तीन सूत्रांशों को अधिकार के रूप में स्वीकार किया है तथा कानच् को विशुद्ध छान्दस माना है[10] जिसका आशय यह है कि वृत्तिकार की दृष्टि में कुछ परिगणित स्थलों पर क्वसु प्रत्यय लौकिक तो है लेकिन "क्वसुश्च" सूत्र से विधीयमान क्वसु प्रत्यय छान्दस है। इस प्रकार वृत्तिकार की दृष्टि में "लिटः कानज्वा", "क्वसुश्च" ये दोनों सूत्र छान्दस हैं। भाष्यकार ने भी उक्त दोनों प्रत्ययों को छान्दस माना है। काशिकावृत्ति और सिद्धान्तकौमुदी[11] में भी इन दोनों सूत्रों को छान्दस माना गया है लेकिन इसके विपरीत न्यासकार कानच् और क्वसु इन दोनों प्रत्ययों का प्रयोग भाषा में भी स्वीकार करता है। वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में न्यासकार के उक्त मत को भी उद्धृत किया है।[12]

"अर्वणस्त्रसावनञः" और "मघवा बहुलम्" ये दोनों सूत्र वृत्तिकार की दृष्टि में छान्दस हैं तथा[13] भाष्यकार ने भी इन्हें छान्दस माना है लेकिन माघ तथा व्योष ने इन सूत्रों से निष्पन्न प्रयोग अपने-अपने काव्य में प्रयुक्त किये हैं जिससे इन सूत्रों की लौकिकता भी सिद्ध होती है। कवियों के द्वारा छान्दस संज्ञा शब्दों का लोक में भी प्रयोग मान्य होता है, यह कहकर वृत्तिकार ने उक्त सन्देह का निवारण किया है। न्यास,[14] पदमञ्जरी[15] तथा सिद्धान्तकौमुदी[16] इन सभी ने उक्त दोनों सूत्रों को लौकिक माना है। भाषावृत्तिकार ने "वस्वेकाजाद्घसाम्" और "विभाषा गमहनविदविशाम्" इन दोनों सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत नहीं की है क्योंकि वृत्तिकार की दृष्टि में "क्वसुश्च" सूत्र से विधीयमान क्वसु प्रत्यय छान्दस है अतः उक्त क्वसु प्रत्यय के इडागम विधायक सूत्र भी छान्दस ही माने जायेंगे।[17] उक्त सूत्रों के छान्दस होने पर भी इनके द्वारा निष्पन्न प्रयोगों को शिष्टों ने प्रयुक्त किया है तथा भाषासूत्रकार चन्द्रगोमी ने भी क्वसु प्रत्यय से इडागम विधान हेतु सूत्रों का निर्माण किया है।[18] भाषावृत्ति के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उक्त सूत्रों के छान्दस होने पर भी लोक में क्वचित् इनके प्रयोगों की मान्यता प्राप्त थी। न्यासकार ने क्वसु प्रत्यय तथा उसके इडागमविधायक सूत्रों को लौकिक भी माना है।

यहाँ यह अवधेय है कि "वस्वेकाजाद्घसाम्" सूत्र को छान्दस मानने से "ऊषिवान्" इस प्रयोग में इडागम सम्भव नहीं होता है क्योंकि यहाँ "भाषायां सदवसश्रुवः"[19] इस लौकिक सूत्र से क्वसु प्रत्यय होता है। वृत्तिकार ने क्वसु

प्रत्यय के विधान के स्थल पर इसे लौकिक प्रयोग स्वीकार किया है लेकिन इडागमस्थल पर शिष्टप्रयुक्त छान्दस जो परस्पर विरोध है। अतः प्रस्तुत प्रयोग में दृश्यमान इडागम चिन्त्य है।

इसी प्रकार जगन्वान् इस प्रयोग में "क्वसुश्च" इस वैदिक सूत्र से ही क्वसु प्रत्यय सम्भव है जिससे प्रस्तुत प्रयोग वैदिक प्रयोग सिद्ध होता है लेकिन वृत्तिकार ने "म्वोश्च"[20] सूत्र की व्याख्या में प्रस्तुत प्रयोगस्थ क्वसु प्रत्यय को लौकिक मानकर उक्त सूत्र से जो वकारपरक मकार को नकार का विधान किया है, वह भी चिन्त्य है।

"सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्" प्रस्तुत सूत्र वृत्तिकार के मत में विशुद्ध छान्दस है लेकिन कुछ आचार्यों के मत में सुलोप से पादपूर्त्ति होने पर इस सूत्र को लौकिक भी माना जाता है।[21]

भाषावृत्ति के लौकिक सूत्रांशों में छान्दसत्व– भाषावृत्तिकार ने जिन सूत्रों को लौकिक माना है उनमें से चौदह सूत्रांशों को स्वयं उन्होंने ही छान्दस माना है तथा उनकी व्याख्या नहीं की है। वृत्तिकार के मत में निम्नलिखित सूत्रों के निम्नलिखित अंश छान्दस हैं–

"कृन् मेजन्तः" सूत्रस्थ "एजन्तः" अंश।[22]

"क्त्वा तोसुन् कसुनः" सूत्रस्थ "तोसुन कसुन" अंश।[23] "न पदान्त. .. " सूत्रस्थ "स्वर" अंश।[24] "त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" सूत्रस्थ "त्यद्" अंश।[25] "नित्यं संज्ञाच्छन्दसोः" सूत्रस्थ "छन्दस्" अंश।[26] "प्लुतप्रगृह्या अचि" सूत्रस्थ "प्लुत" अंश।[27] "अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु" सूत्रस्थ "इष्णुच्" अंश।[28] "त्यदादीनामः" सूत्रस्थ "त्यद्" अंश।[29] "कु तिहोः" सूत्रस्थ "ह" अंश।[30] "देविकाशिं ..." सूत्रस्थ "दित्यवाट्" अंश।[31] "न लोपः सुप्तस्वर...." सूत्रस्थ "स्वर' अंश।[32] "म्वोश्च" सूत्रस्थ "म" अंश। "तिप्यनस्तेः" सूत्रस्थ "अनस्तेः" अंश।[33] "उपसर्गाद् बहुलम्" सूत्रस्थ "बहुलम्" अंश।[34]

भाषावृत्तिकार ने गणपाठान्तर्गत छान्दस शब्दों की भी व्याख्या नहीं की है। यही कारण है कि "तसिलादिष्वाकृत्वसुचः" सूत्रस्थ तसिलादिगणान्तर्गत पठित "तिल्" प्रत्यय अव्याख्यात रहा है।[35]

भाषावृत्ति के लौकिक सूत्रों तथा सूत्रांशो में मतान्तर से छान्दसत्व– भाषावृत्ति में 3363 सूत्र लौकिक सूत्र के रूप में निर्दिष्ट हुये हैं। वृत्तिका. ने इन्हीं लौकिक सूत्रों की व्याख्या अपनी वृत्ति में प्रस्तुत की है। इन लौकिक सूत्रों में से पन्द्रह सूत्रों तथा एक सूत्रांश को कतिपय अन्य आचार्यों ने छान्दस माना है। जिनके मत में ये सूत्र तथा सूत्रांश छान्दस माने जाते हैं। वृत्तिकार ने उनके मत का निर्देश तत्तत् स्थानों पर किया है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

भागवृत्तिकार ने ''यङोऽचि च'' सूत्र को छान्दस माना है।[36]

भाषावृत्तिकार ने ''सगर्भसयूथसनुताद् यन्'' [4.4.114] सूत्र से ''भावे च'' [4.4.144] सूत्र पर्यन्त छन्दस् का अधिकार माना है।[37] जिससे उनकी दृष्टि में उक्त सभी[38] सूत्र छान्दस हैं। किञ्च काशिकावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी में भी उक्त सभी सूत्रों को छान्दस स्वीकार किया है परन्तु भाषावृत्तिकार ने उक्त 31 सूत्रों में से दस सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ये दस सूत्र छान्दस होने पर भी लोक में इनके द्वारा निष्पन्न प्रयोग क्वचित् साधु माने जाते हैं।[39] इस प्रकार इन दस सूत्रों में लौकिकता भी सिद्ध होती है। वृत्तिकार ने ''शिवशमरिष्टस्य करे'' सूत्र की वृत्ति में यह स्पष्ट किया है कि आचार्य भागुरि ने त्रिकाण्ड में कहा है कि ये शब्द छान्दस होने पर भी कहीं-कहीं भाषा में भी प्रयुक्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं वृत्तिकार का यह भी कथन है कि इन शब्दों को अव्युत्पन्न संज्ञाशब्द मानकर भी भाषा में इनके प्रयोग को साधु माना जा सकता है।[40]

यहाँ यह अवधेय है कि उक्त 31 सूत्रों में छन्दोऽधिकार के होने पर भी वृत्तिकार ने उनमें से दस सूत्रों की जो व्याख्या प्रस्तुत की है तथा ''भावे च'' सूत्र में ''छन्दः सूत्रम्'' यह वचन पढ़ा है वह यही सिद्ध करता है कि इन दस सूत्रों में छान्दसत्व के साथ-साथ लौकिकता भी ग्राह्य है अन्यथा छन्दोऽधिकार से ''भावे च'' सूत्र का भी छान्दसत्व सिद्ध था पुनः उसके छान्दसत्व के लिये उक्त वचन का पढ़ना व्यर्थ है।

''पद्दन्नोमा ....'' पुरुषोत्तमदेव तथा कुछ अज्ञात आचार्यों ने इस सूत्र को लौकिक माना है परन्तु आगम ने इसे विशुद्ध छान्दस। कुछ आचार्यों के अनुसार

प्रस्तुत सूत्र से निष्पन्न तथा भाषा में प्रयुक्त शब्द अपशब्द हैं तथा कुछ अन्य आचार्यों के मत में इसके द्वारा निष्पन्न छान्दस प्रयोगों को भाषा में भी साधु माना जाता है।[41]

कुछ अज्ञात नामा आचार्य "नृ च" सूत्र में "छन्दस्युभयथा" सूत्र से "छन्दसि" की अनुवृत्ति स्वीकार करते हैं। इसलिये इन आचार्यों के मत में प्रस्तुत सूत्र केवल छन्द: में ही विकल्प से दीर्घ का विधान करता है लेकिन उक्त मन्तव्य स्वीकार करने पर "चिन्ताजर्जरचेतसां वत नृणां का नाम शान्ते: कथा",[42] और "नृणामेको गम्यस्त्वमसि-"[43] आदि लौकिक प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकते हैं। किञ्च "छन्दस्युभयथा" इस पूर्ववर्त्ती सूत्र से ही छन्द: में दीर्घ सिद्ध था पुन: "नृ च" सूत्र का जो विधान किया गया है उससे यही सिद्ध होता है कि प्रस्तुत सूत्र भाषा में भी विकल्प से दीर्घ का विधान करता है। वृत्तिकार ने उक्त मन्तव्य को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है– "भाषायामपीत्येके"।[44] भाषावृत्तिकार तथा चन्द्रगोमी "यङो वा" सूत्र को लौकिक मानते हैं लेकिन भागवृत्तिकार छान्दस।[45] भाषावृत्तिकार ने "म्वोश्च" सूत्र के मकार को छान्दस माना है लेकिन जो आचार्य क्वसु प्रत्यय को केवल छान्दस मानते हैं उनके मत में यह सम्पूर्ण सूत्र छान्दस है।[46]

"दाण्डिनायन...." सूत्रस्थ धैवत्य शब्द मतान्तर से छान्दस माना जाता है।[47]

भाषावृत्ति के वार्त्तिकों में मतान्तर से छान्दसत्व– भाषावृत्तिकार ने "अग्रपश्चाड्डिमच्"[48] तथा "वेर्ग्रो वक्तव्य:"[49] इन वार्त्तिकों को क्रमश: भागवृत्ति तथा स्मृति के मत में छान्दस माना है।

लौकिक व्याकरण की दृष्टि से अनुपयोगी सूत्रांश–

पाणिनि का व्याकरण वैदिक और लौकिक उभयविध प्रयोगों पर लागू होता है लेकिन उनके कतिपय सूत्र ऐसे भी हैं जो केवल लौकिक प्रयोगों पर ही लागू होते हैं। कहीं केवल लौकिक प्रयोगों पर ही लागू होने वाले नियम छान्दस प्रयोगों पर भी लागू न हो जायें अथवा वैदिक और लौकिक प्रयोगों पर लागू होने वाले नियम छन्द: की अनुवृत्ति के साथ केवल छन्द: पर ही लागू न हों इस निमित्त पाणिनि ने तत्तत् सूत्रों में अनार्ष, नित्य, सर्वत्र और भाषायाम् इन शब्दों का प्रयोग किया है जिससे तत्तत् सूत्र नियम केवल लोकभाषा पर अथवा वेद

और लोक उभयविधभाषा पर लागू हो जाते हैं। भाषावृत्ति एक लौकिक वृत्तिग्रन्थ है अतः उसमें स्वयमेव छन्दः की निवृत्ति है। इसलिये भाषावृत्ति की दृष्टि से छन्दः की निवृत्ति के लिये तत्तत् सूत्रों में अनार्षादि शब्दों के पाठ की आवश्यकता नहीं है उसके अनुसार इन शब्दों के सन्निवेश की उपयोगिता काशिकावृत्ति जैसे ग्रन्थों के लिये है क्योंकि उनका सम्बन्ध वैदिक और लौकिक उभयविध भाषा से है। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जाता है-

''सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे'' प्रस्तुत सूत्र में अनार्ष पद का पाठ इसलिये किया गया है ताकि छन्द में सम्बोधन में इति शब्द के परे ओकार की प्रगृह्य संज्ञा न हो। प्रस्तुत वृत्ति लौकिक वृत्ति है अतः इसमें स्वयमेव छन्द की निवृत्ति है। इसलिये तदर्थ सूत्रांश ''अनार्ष'' पद का पाठ अनुपयोगी है। वृत्तिकार ने अपने इस मन्तव्य को इस प्रकार प्रकट किया है- ''अनार्ष इत्येकवृत्तावुपयुक्तम्''।[50]

नित्यं ङितः- सूत्र में ङित् ग्रहण इसलिये किया गया है ताकि वेद के समान लोक में भी ङित् लकार के उत्तम पुरुष के सकार का लोप विकल्प से न हो परन्तु प्रस्तुत लौकिक वृत्ति में विकल्प से लोप की प्राप्ति ही नहीं है अतः तदर्थ सूत्रस्थ नित्यग्रहण अनुपयोगी है-''नित्यग्रहणमेकवृत्तौ सार्थकम्''।[51]

सर्वत्राण् तलोपश्च- सूत्र में छन्द की अनुवृत्ति आती है अतः प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान अण् प्रत्यय तथा त लोप कहीं केवल छन्द में ही न हो अपितु लोक में भी हो इस निमित्त सूत्र में सर्वत्र शब्द का ग्रहण किया गया है परन्तु प्रस्तुत लौकिक वृत्ति में स्वतः ही छन्द की निवृत्ति है जिससे लोक में भी अण् प्रत्यय तथा तलोप हो जाता है इसलिये वृत्तिकार ने प्रस्तुत वृत्ति के लिये सर्वत्र पद का ग्रहण अनुपयोगी बताया है- ''सर्वत्र इत्येकवृत्तौ छन्दोऽ-धिकारनिवृत्त्यर्थम्''।[52]

स्थे च भाषायाम्- प्रस्तुत सूत्र में भाषाग्रहण इसलिये किया गया है ताकि भाषा में ही स्थ शब्द के सप्तमी के अलुक् का प्रतिषेध हो छन्द में नहीं। इस वृत्ति का सम्बन्ध छन्द से है ही नहीं अतः इस वृत्ति की दृष्टि से सूत्रस्थ भाषायाम् अनुपयोगी है-''भाषाग्रहणमेकवृत्तावुपयुक्तम्''।[53]

2.2 भाषावृत्ति में निर्दिष्ट मत-मतान्तर तथा उनका विवेचन- प्रस्तुत वृत्तिग्रन्थ में स्वमतनिर्देश के साथ-साथ माथुरी, काशिका, भाग और केशव आदि

अनेक पूर्ववर्त्ती वृत्तियों के मतों का भी निर्देश पाया जाता है। इस वृत्ति में वररुचि, भाष्य, स्मृति[54] और आगम[55] के वचन भी उल्लिखित हुये हैं। यहाँ भारद्वाज, भागुरि, भर्तृहरि, चन्द्रगोमी और न्यासादि आचार्यों तथा उनके ग्रन्थों के मत भी निर्दिष्ट हुये हैं। इतना ही नहीं केचित्, अपरे, अन्ये, इतरे और परे आदि शब्दों के द्वारा यहाँ अज्ञात नाम वाले आचार्यों के व्याकरणिक सिद्धान्तों का भी निर्देश किया गया है। वृत्तिकार ने उक्त प्रकार के सभी मतों को सरल और साररूप में प्रस्तुत किया है जिससे प्रस्तुत वृत्तिग्रन्थ विविध व्याकरणिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

सूत्र एक प्रकार के साङ्केतिक शब्द हैं। इन शब्दों में से कतिपय शब्दों की व्याख्या भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न की है जिसके कारण सूत्रों के अर्थ और तन्निष्पन्न प्रयोगों में भी विषमता परिलक्षित होती है। प्राय: सूत्रों में शब्दार्थ, अनुवृत्ति, योगविभाग, पदच्छेद, तदन्तविधि, नियमन, ज्ञापन और अन्वय सम्बन्धी मतभेद के कारण सूत्रार्थभिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

कुछ आचार्यों की दृष्टि में कतिपय सूत्रों के अर्थ तथा प्रयोजन सन्देहजनक हैं तो कुछ आचार्यों की दृष्टि में पाणिनि के कुछ सूत्र तथा सूत्रांश निरर्थक। इतना ही नहीं कतिपय लोकप्रयुक्त साधु शब्द ऐसे भी है जिनका अभिधान पाणिनि तथा कात्यायन ने नहीं किया है। वृत्तिकार ने प्रस्तुत वृत्ति में उन सभी मतों का निष्पक्ष भाव से निर्देश किया है जो उक्त प्रकार के सूत्रों के भिन्न-भिन्न अर्थ स्वीकार करते हैं एवं सूत्रार्थ तथा सूत्रप्रयोजन के सन्देह की निवृत्ति करते हैं तथा लोक प्रयुक्त साधु शब्दों के अन्वाख्यान के लिये अतिरिक्त वचन पढ़ते हैं। वृत्तिकार ने कतिपय मतों का निर्देश अपने मत की पुष्टि के लिये भी किया है तथा कुछ मतों के प्रति अपनी अरुचि भी प्रदर्शित की है।

इस प्रकार सूत्र, सूत्रार्थ, सूत्रांश, सूत्रप्रयोजन तथा अतिरिक्त वचनादि से सम्बन्धित जो भी मत परम्परा से प्राप्त हैं उन सभी मतों का निर्देश वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में संक्षेप एवं सार रूप में प्रस्तुत किया है। इन मतों का निरूपण एवं विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है-

[1] **अव्ययीभावश्च**[56]– यह सूत्र अव्ययीभाव समास की अव्ययसंज्ञा का विधान करता है। इस अव्ययसंज्ञा के द्विविध प्रयोजन सम्भव हो सकते हैं–

[1] **अव्ययादाप्सुपः**[57]—सूत्र से उपाग्नि आदि समस्त शब्दों के उत्तरवर्त्ती सुप् का लोप करना और

[2] उपाग्निकम् आदि समस्त शब्दों में "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः"[58] सूत्र द्वारा अकच् विधान करना। भाषावृत्तिकार अव्ययीभाव समास के अव्ययसंज्ञा के उक्त द्विविध प्रयोजनों में से प्रथम प्रयोजन को ही अधिमान देते हैं और अपने मत की पुष्टि में स्मृतिवचन को उद्धृत करते हैं—"इह लुगेव संज्ञाप्रयोजनम्। नाकजादिरिति स्मृतिः"।

इस स्मृति वचन के अनुसार उक्त अव्ययसंज्ञा का प्रयोजन केवल "अव्ययादाप्सुपः" सूत्र से सुप् का लोप करना ही है, अकच् नहीं क्योंकि उपाग्निकम् इत्यादि स्थलों पर अज्ञातादि अर्थ विवक्षा में स्वार्थिक क प्रत्यय सम्भव है अतः वहाँ अकच् विधान की कोई आवश्यकता नहीं है।

[2] **इन्धिभवतिभ्याञ्च**[59]— प्रस्तुत सूत्र इन्ध् और भू धातुओं के लिट् को कित् का विधान करता है। सम् पूर्वक "इन्ध्" धातु तथा भू धातु के लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में समीधे और बभूव ये रूप निष्पन्न होते हैं। यहाँ सम् इन्ध् व इस अवस्था में "असंयोगाल्लिट् कित्"[60] सूत्र से कित्त्वाभाव के कारण "अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति"[61] सूत्र से नलोप की प्राप्ति नहीं है। इसी प्रकार भू अ इस अवस्था में णित् परे होने से "अचोञ्णिति"[62] सूत्र से वृद्धि की प्राप्ति है। इन दोनों प्रयोगों में क्रमशः न लोप के लिये और वृद्धि के अभाव के लिये "इन्धिभवतिभ्याञ्च" सूत्र से लिट् को कित् का विधान किया जाता है, जिससे समीधे में इन्ध् के न का लोप और "बभूव" में वृद्धि के अभाव से वुगागम सम्भव हो जाता है।

पुरुषोत्तमदेव ने उक्तविध प्रयोगों की निष्पत्ति के लिये भाष्यकार के मत को उद्धृत किया है—"अत्रेन्धेश्छन्दोविषयत्वाद् भुवो वुकोनित्यत्वादाभ्यां किद्वचनानर्थक्यमिति भाष्यम्"। भाष्य के इस मत के अनुसार इन्ध् धातु से साक्षात् लिट् लकार की प्राप्ति केवल वेद में ही सम्भव है और यदि उक्त तथ्य को स्वीकार किया जाये तो "छन्दस्युभयथा"[63] सूत्र से ही लिट् लकार की सार्वधातुकसंज्ञा कर "सार्वधातुकमपित्"[64] सूत्र से ङिद्वद्भाव होने से "अनिदिताम्..." इस सूत्र से न लोप कर समीधे रूप निष्पन्न हो जाता है। इसी

प्रकार भू धातु को णल् परे रहते वृद्धि और वुगागम दोनों की एक साथ प्राप्ति

होने पर भी वुक् के नित्य होने से "पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं वलीय:"[65] परिभाषा से वृद्धि का प्रतिषेध और वुगागम का विधान सम्भव होने से बभूव रूप भी निष्पन्न हो जाता है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि णल् से भिन्न स्थलों पर भू धातु के लिट् लकार में गुण को बाधकर वुगागम का विधान होता है। इस प्रकार समीधे और बभूव आदि रूप प्रकारान्तर से निष्पन्न हो जाते हैं, अत: इनकी निष्पत्ति के लिये "इन्धिभवतिभ्याञ्च" सूत्र के विधान की आवश्यकता नहीं है।

पुरुषोत्तमदेव "असंयोगाल्लिट् कित्" इस सूत्र की परिधि में न आने वाले इन्ध् धातु तथा पित् परक भू धातु के लिट् को ही कित् विधान की आवश्यकता मानते हैं और तदनुसार "इन्धिभवतिभ्याञ्च" सूत्र की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु पुरुषोत्तमदेव का यह भी कथन है कि जयादित्य इन्ध् और भू धातु के लिट् को कित् विधान के अतिरिक्त ग्रन्थि, श्रन्थि, दम्भि तथा स्वञ्जि धातुओं से भी परे लिट् प्रत्यय को कित् विधान की आवश्यकता समझते हैं और उसके लिये वह इष्टिवचन पढ़ते हैं–"अत्रेष्टि:-ग्रन्थिश्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति जयादित्य:"।

पुरुषोत्तमदेव समीधे और बभूव इन द्विविध प्रयोगों की सत्ता लोक में स्वीकार करते हैं और उनकी निष्पत्ति हेतु "इन्धिभवतिभ्याञ्च" सूत्र की सार्थकता मानते हैं। जयादित्य सूत्रोक्त द्विविध धातुओं के लिट् के किद्विधान के साथ-साथ इष्टि वचन पढ़कर "ग्रन्थि, श्रन्थि, दम्भि तथा स्वञ्जि" इन धातुओं के भी लिट् को कित् प्रत्यय का विधान करते हैं। इन दोनों के विपरीत भाष्यकार इन्ध् धातु को छान्दस मानकर समीधे रूप को तथा वृद्धि की अपेक्षा वुक् को नित्य मानकर बभूव रूप को निष्पन्न कर किद्वचन को अनर्थक मानते हैं।

इस प्रकार वृत्तिकार के अनुसार समीधे और बभूव इन प्रयोगों की निष्पत्ति हेतु "इन्धिभवतिभ्याञ्च" यह सूत्र सार्थक है लेकिन भाष्यकार के अनुसार निरर्थक।

[3] **कालोपसर्जने च तुल्यम्**[66] प्रस्तुत सूत्र के निर्देशानुसार काल और उपसर्जन इन शब्दों की परिभाषाओं के निर्देश करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि इन शब्दों के अर्थ की प्रतीति लोक से ही हो जाती है। पाणिनि से

पूर्ववर्त्ती कतिपय आचार्यों ने काल और उपसर्जन की परिभाषाओं का निर्देश किया

है। यथा–"आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च सम्वेशनात्", "एषोऽद्यतनः कालः", "अहरुभयतोर्द्धरात्रमेषोऽद्यतनः कालः", "अप्रधानमुपसर्ज्जनमिति" लेकिन पाणिनि के अनुसार जिन शब्दों के अर्थ की प्रतीति लोकाधीन हो, उनके अर्थनिर्देश करने की व्याकरण में कोई आवश्यकता नहीं है। पाणिनि के उक्त मत को भाषावृत्तिकार ने सूत्र की वृत्ति में प्रस्तुत किया है–"काल उपसर्जनञ्च न परिभाष्यम्। यतः पूर्वेण तुल्यम्। लोकत एवागतेरिति प्रत्याख्यानम्"।

"कालोपसर्जने च तुल्यम्" इस सूत्र में "तदशिष्यं संज्ञा प्रमाणत्वात्"[67] सूत्र से अशिष्य पद की अनुवृत्ति आती है अतः उनके मत में "तदशिष्यं संज्ञा प्रमाणत्वात्", "लुब् योगाप्रख्यानात्",[68] "योगप्रमाणे च तदभावे दर्शनं स्यात्"[69], "प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्"[70], "कालोपसर्जने च तुल्यम्" इन सूत्रों में जिन विषयों के निर्देश का प्रतिषेध किया गया है, उन विषयों का विधान सूत्र अथवा वचनादि द्वारा करने की आवश्यकता नहीं तदनुसार "पञ्चालाः, कुरवः, अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः" आदि शब्दों में "लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने"[71] सूत्र द्वारा लिङ्ग और संख्या के निर्देश की आवश्यकता नहीं क्योंकि पञ्चालादि जनपद स्वभाव से ही बहुवचनान्त संज्ञायें हैं। इसी प्रकार पञ्चालादि शब्द जिस प्रकार क्षत्रिय अर्थ में रूढ़ हैं, उसी प्रकार जनपद अर्थ में भी रूढ़ हैं। इसलिये इनमें "तस्य निवासः"[72] और "अदूरभवश्च"[73] सूत्रों द्वारा तद्धित प्रत्यय की उपपत्ति नहीं होती। अतः इन तद्धित प्रत्ययों के लोप हेतु "जनपदे लुप्"[74] और "वरणादिभ्यश्च"[75] इन लुप् विधायक सूत्रों की भी आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार वैयाकरणों ने प्रत्ययार्थ की प्रधानता बताने के लिये "प्रत्ययार्थः प्रधानम्"[76] आदि जो वचन कहे हैं, उनके निर्देश की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि लोक से ही उनके अर्थ की प्रतीति हो जाती है।

भाषावृत्तिकार के मत में जिन सूत्रों तथा वचनों के निर्देश की आवश्यकता नहीं है, उनके साथ-साथ माथुरीवृत्ति में "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्" [1.2.58] से लेकर "ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री" [1. 2.73] तक इन सोलह सूत्रों के निर्देश की भी आवश्यकता नहीं तथा इन सूत्रों के द्वारा विधीयमान वचन, लिङ्ग और एकशेष आदि कार्यों के निर्देश की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे लोक सिद्ध हैं। भाषावृत्तिकार ने माथुरीवृत्ति के मत को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है–

"माथुर्य्यां तु वृत्तावशिष्यग्रहणमापादमनुवर्त्तते"।[77]

यहाँ यह अवधेय है कि पाणिनि ने केवल उन सूत्रों का प्रत्याख्यान किया है जो उन्होंने पूर्वाचार्यों के अनुरोध से निर्मित किये थे अतः स्वकृतसूत्रों के प्रत्याख्यान में कोई विरोध नहीं।[78]

भाषावृत्तिकार तथा माथुरीवृत्ति इन दोनों के मत में "लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने", "जनपदे लुप्" "वरणादिभ्यश्च" इन सूत्रों के तथा प्रत्ययार्थ, काल तथा उपसर्जनसम्बन्धी वैयाकरण वचनों के निर्देश की आवश्यकता नहीं परन्तु माथुरीवृत्ति ने इसके साथ-साथ "जात्याख्यायाम् ...." से लेकर "ग्राम्यपशु ...." तक इन सोलह सूत्रों के निर्देश की भी आवश्यकता नहीं समझी है क्योंकि उनके मत में इन सूत्रों से विधीयमान कार्य लोकसिद्ध हैं।

[4] **अस्मदो द्वयोश्च**[79]– प्रस्तुत सूत्र केवल अस्मद् शब्द के एकवचन तथा द्विवचन के स्थान में विकल्प से बहुवचन का निर्देश करता है परन्तु "व्यवस्थितविभाषया सविशेषणानां प्रतिषेधः" वार्त्तिक द्वारा विशेषण युक्त अस्मद् शब्द पर उक्त नियम लागू नहीं होता है। "युष्मदि गुरोरेकेषाम्" इस वचन द्वारा कतिपय आचार्यों के मत में उक्त सूत्र तथा वार्त्तिक का विषय न होने पर भी विशेषणयुक्त युष्मद् शब्द के एकवचन के स्थान में विकल्प से बहुवचन हो जाता है जिससे त्वं मे गुरुः, यूयं मे गुरवः ये द्विविध रूप निष्पन्न होते हैं। यह मत मूलतः काशिका में निर्दिष्ट किया गया है तथा भाषावृत्तिकार ने भी इस मत को जयादित्य के नाम से ही सम्बद्ध किया है–"युष्मदि गुरोरेकेषामिति जयादित्यः।

न्यासकार ने "अस्मदो द्वयोश्च" सूत्रस्थ चकारग्रहण सामर्थ्य से ही उक्त कार्य की निष्पत्ति मानी है–"एतदपि चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थकत्वात् सूत्रेणैव सङ्गृहीतम्"। इस प्रकार न्यासकार के मत में काशिकास्थ पृथक् वचन की आवश्यकता नहीं है।

[5] **चुटू**[80]–प्रस्तुत सूत्र प्रत्ययादि चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा करता है लेकिन केशचुञ्चुः और केशचणः इन दो प्रयोगों में "तेनवितश्चुञ्चुप्चणपौ"[81]। इस सूत्र से क्रमशः चुञ्चुप् और चणप् प्रत्ययों का विधान होने पर भी उनके प्रत्ययादि चकार की इत्संज्ञा दृष्टिगोचर नहीं हो रही है जिससे "चुटू" सूत्र की

प्रवृत्ति सन्देहास्पद बन जाती है। उक्त दोनों प्रयोगों की निष्पत्ति के लिये वृत्तिकार

ने भाष्यकार के मत को उद्धृत किया है-"कथं केशचुञ्चुः केशचणः चित्कार्याभावात्। यादी चुञ्चुप्चणपौ लुप्तनिर्दिष्टयकाराविति भाष्यम्" अर्थात् उक्त प्रयोगों में विधीयमान चुञ्चुप् और चणप् प्रत्ययों के आदि में वस्तुतः यकार निर्दिष्ट है, जिसका "लोपो व्योर्वलि[82]" सूत्र से लोप हो चुका है अतः प्रत्ययादि यकार है न कि चकार। इसलिये चकार के लोप की यहाँ सम्भावना ही नहीं है।

भाष्यकार ने "चुटू" सूत्र द्वारा चुञ्चुप् और चणप् इन प्रत्ययों के आदि चकार की इत्संज्ञा के अभाव के लिये "तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ" सूत्र द्वारा विधीयमान चुञ्चुप् और चणप् प्रत्ययों के आदि में यकार का निर्देश [य्चुञ्चुप्, य्चणप्] मानकर केशचुञ्चुः और केशचणः ये प्रयोग निष्पन्न किये हैं।

[6] **क्रीड़ोऽनुसंपरिभ्यश्च**[83]– सूत्र पर "हरतेर्गतताच्छील्ये" यह वार्त्तिक पठित हुआ है। इस वार्त्तिक में पठित गत शब्द के विषय में वैयाकरणों के द्विविध मत पाये जाते हैं। भर्तृहरि के अनुसार प्रस्तुत वार्त्तिक में पठित गत शब्द तुल्यार्थक है। इसी गत शब्द को विध और प्रकार शब्दों से भी अभिहित किया जाता है। तुल्य शब्द सादृश्य के नाम से भी पुकारा जाता है। इस प्रकार भर्तृहरि के मत में सादृश्य शीलन अर्थ में हृञ् धातु से आत्मनेपद होता है। यथा-"जलधिमनुहरते सरः" इस उदाहरण में सर में जलधि का सादृश्यशीलन अर्थ परिलक्षित होता है। इसके विपरीत न्यासकार ने "गत ताच्छील्य" का अर्थ "गतिताच्छील्य" लिया है। गीत का अर्थ गमन होता है और ताच्छील्य का तत्स्वभाव। उनके अनुसार हृञ् धातु से आत्मनेपद तभी होगा जब गमन स्वभाव का सादृश्य परिलक्षित हो। यथा-"पैतृकमश्वा अनुहरन्ते, मातृकं गावोऽनुहरन्ते" इन उदाहरणों में "पितृवत् गमनं येषां स्वभावः, मातृवत् गमनं येषां स्वभावः इन अर्थों में हृञ् धातु से आत्मनेपद का विधान किया गया है क्योंकि पिता के समान गमन करना घोड़े का स्वभाव और माता के समान गमन करना गाय का स्वभाव होता है। वृत्तिकार ने उक्त द्विविध मतों को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत भी किया है-"गतविधप्रकारास्तुल्यार्था इति भर्तृहरिः। सादृश्यशीलने हृञ्स्तत् स्यात्। जलधिमनुहरते सरः। पैतृकमश्वा अनुहरन्ते। गतिताच्छील्य इति तु न्यासः"।

भर्तृहरि के अनुसार "हरतेर्गतताच्छील्ये" यह वार्त्तिक सादृश्यशीलन अर्थ में हृञ् धातु से आत्मनेपद का विधान करता है लेकिन न्यासकार गतताच्छील्य

के स्थान पर गतिताच्छील्य यह पाठ स्वीकार करता है जिससे उनके मत में गमन स्वभाव का सादृश्य होने पर ही हृञ् धातु से आत्मनेपद होता है। भाषावृत्तिकार भर्तृहरि के मत से सहमत प्रतीत होता है क्योंकि उसने भर्तृहरि के अनुसार वार्त्तिक के अर्थ का निर्देश कर उसके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। किञ्च अन्त में वैमत्य दिखाने के लिये न्यास के मत को उपस्थित किया है।

[7] **यू स्त्र्याख्यौ नदी**[८४]– यह सूत्र जिस ईकारान्त और ऊकारान्त रूप शब्द की नदीसंज्ञा करता है, वह शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान होना चाहिये। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में तदन्त विधि मानी है जिससे सूत्र का यह अर्थ निष्पन्न होता है ''ईदूदन्तं स्त्रीलिङ्गं नदीसंज्ञं स्यात्। इस अर्थ के अनुसार नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईदन्त और ऊदन्त शब्दों की नदी संज्ञा होती है।

भागवृत्ति के मतानुसार केवल ईकार और ऊकार रूप स्त्रीलिङ्ग की नदीसंज्ञा होती है। भाषावृत्तिकार ने भागवृत्ति के उक्त मत को प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है–''ईदूतोरेवेयं संज्ञा'' इति भागवृत्तिः''।

यहाँ यह अवधेय है कि ईदन्त, ऊदन्त, स्त्रीलिङ्ग की नदी संज्ञा का विधान करने पर कुमारी आदि ईदन्त वर्णसमुदाय में स्त्रीलिङ्ग उपलब्ध होने से उसकी नदी संज्ञा सम्भव है लेकिन ईकार या ऊकार रूप वर्ण की नदी संज्ञा मानने पर कुमारी, यवागू आदि शब्दों की नदीसंज्ञा नहीं हो सकती क्योंकि कुमारी और यवागू रूप वर्ण समुदाय में स्त्रीलिङ्ग तो है परन्तु वह ईकार या ऊकार रूप वर्ण नहीं और जो ईकार या ऊकार रूप वर्ण है वह स्त्रीलिङ्ग नहीं, अतः वर्णसंज्ञा पक्ष में समुदायधर्मस्त्रीत्व का अवयव में आरोप कर निराकरण किया जाता है। इस प्रकार वृत्तिकार ने भागवृत्ति के मत को निर्दिष्ट कर प्राचीन आचार्यों के मत को अधिमान दिया है।

उक्तविध स्त्रीत्व के सम्बन्ध में भाषावृत्तिकार का यह भी कथन है कि यह स्त्रीत्व स्वशब्दार्थ में विद्यमान होना चाहिये, पदान्तरद्योतित नहीं। यही कारण है कि 'सेनान्यै स्त्रियै यहाँ पर सेनानी शब्द की नदी संज्ञा नहीं होती है क्योंकि इसके स्वशब्दार्थ में नित्यस्त्रीलिङ्गत्व विद्यमान नहीं अपितु इसका स्त्रीत्व समीप में स्थित स्त्रियै इस पदान्तर के द्वारा द्योतित हो रहा है। नदीसंज्ञा के अभाव के कारण ही सेनानी शब्द में नदीसंज्ञक कार्य आडागमादि कार्य नहीं हुए हैं। भाषावृत्तिकार ने सूत्रार्थ में पठित स्त्र्याख्या शब्द द्वारा उक्तार्थ का निर्देश माना है–''आख्याग्रहणं किम्? पदान्तरद्योत्ये स्त्रीत्वे माभूत्''।

यहाँ यह अवधेय है कि "यू स्त्र्याख्यौ नदी" यह सूत्र नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द की नदीसंज्ञा का विधान करता है यदि सूत्र का सही अर्थ स्वीकार किया जाये तो अतिलक्ष्म्यै विप्राय और बहुप्रेयस्यां राजनि यहाँ अतिलक्ष्मी और बहुप्रेयसी शब्दों की नदीसंज्ञा सम्भव नहीं है क्योंकि अतिलक्ष्मी और बहुप्रेयसी इन समस्तपदों के अवयवरूप लक्ष्मी और प्रेयसी ये शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग रूप तो हैं परन्तु अतिलक्ष्मी तथा बहुप्रेयसी ये समस्तपद नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान नहीं हैं। किञ्च ये समस्तपद क्रमशः विप्र और राजन् के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने से पुल्लिङ्ग का बोध करा रहे हैं। भाषावृत्तिकार ने इन प्रयोगों की निष्पत्ति हेतु उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्यकार के मत को उद्धृत किया है–"अवयवस्त्रीविषयत्वात् सिद्धमिति भाष्यम्"। इस मत के अनुसार उस समस्तपद की भी नदीसंज्ञा हो जाती है जिसका अवयव नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हो तथा यह अवयव भी ईकारान्त और ऊकारान्त रूप हो। यहाँ अतिलक्ष्मी और बहुप्रेयसी इन समस्तपदों के अवयव नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हैं अतः अवयवाश्रित नित्यस्त्रीलिङ्ग को आधार मानकर अवयवी अतिलक्ष्मी और बहुप्रेयसी इन समस्तपदों की भी नदीसंज्ञा सम्भव हो जाती है।

वृत्तिकार के अनुसार ईदन्त और ऊदन्त वर्णसमुदाय की नदीसंज्ञा होती है परन्तु भागवृत्तिकार के अनुसार केवल वर्ण की नदीसंज्ञा होती है।

इसी प्रकार भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार दोनों ही पदान्तरद्योत्य स्त्रीत्व की नदीसंज्ञा स्वीकार नहीं करते हैं परन्तु इन दोनों को ही उसकी नदीसंज्ञा अपेक्षित है जिसका अवयव स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हो।

[8] **वाऽमि[85] तथा ङिति ह्रस्वश्च[86]** –ये दोनों सूत्र आम्, ङित् और ह्रस्व ईकारान्त और ऊकारान्त रूप शब्द की नदीसंज्ञा विकल्प से करते हैं। "यू स्त्र्याख्यौ नदी" सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने भाष्यकार के मत को उद्धृत किया है। इस मत के अनुसार "यू स्त्र्याख्यौ नदी" यह सूत्र जिस नित्य स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईदन्त और ऊदन्त रूप शब्द की नदीसंज्ञा करता है, वहीं उस समस्तपद की भी नदीसंज्ञा स्वीकार करता है जिसका अवयव नित्य स्त्रीलिङ्ग में हो तथा वह अवयव भी ईकारान्त या ऊकारान्त हो। यथा– अतिलक्ष्म्यै, बहुप्रेयस्याम् आदि प्रयोगों में परिलक्षित हो रहा है।

भाषावृत्तिकार ने "वाऽमि" और "ङिति ह्रस्वश्च" इन सूत्रों की वृत्ति में पाक्षिकनदीसंज्ञा के विषय में एक स्मृतिवचन को उद्धृत किया है–"इहामि ङिति च ह्रस्वयोरियङुवङ्स्थानयोश्च य्वोः पाक्षिकी नदीसंज्ञा। सा स्त्रीवचन एवेष्यते। नावयवाश्रयेति स्मृतिः"। इस स्मृतिवचन के अनुसार भले ही "यू स्त्र्याख्यौ नदी" सूत्र अवयवाश्रित स्त्रीलिङ्ग वाले समस्तपद की नदीसंज्ञा कर देता है लेकिन "वाऽमि" और "ङिति ह्रस्वश्च" इन सूत्रों में भाष्य का उक्त सिद्धान्त लागू नहीं होता है। उनके अनुसार "वाऽमि" तथा "ङिति ह्रस्वश्च" सूत्रों में आम् तथा ङित् एवं उवङ् आदेशों में स्थानी आदेशों की जो पाक्षिकी नदीसंज्ञा होती है, वह केवल स्त्रीलिङ्ग में ही इष्ट है। किञ्च वह स्त्रीलिङ्ग भी अवयवी शब्द में विद्यमान होना चाहिये, अवयवाश्रय में नहीं। यही कारण है कि सुमतये, अतिश्रिये, सुधिये, सुधियाम्, मञ्जुश्रियि और सुधियि आदि शब्दों में उक्त पाक्षिकीनदीसंज्ञा नहीं हुई है क्योंकि सुमति आदि शब्दों में विद्यमान जो मति आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हैं, वे अवयव रूप हैं तथा जो सुमति आदि शब्द अवयवी के रूप में विद्यमान हैं, वे स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान नहीं हैं। किञ्च नदीसंज्ञा के अभाव में इनमें नदीसंज्ञक कार्य आडागमादि नहीं होते हैं।

यहाँ यह अवधेय है कि लक्ष्यसिद्धि हेतु "यू स्त्र्याख्यौ नदी" सूत्र से नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईदन्त और ऊदन्त रूप वर्णसमुदाय की तथा नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान अवयव वाले ईदन्त और ऊदन्त रूप समस्तपद की भी नदीसंज्ञा अपेक्षित है लेकिन "वाऽमि" और "ङितिह्रस्वश्च" सूत्रों में केवल नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान अवयवी शब्द की ही नदीसंज्ञा अपेक्षित है अतः भाषावृत्तिकार ने उभयविध मतों से सहमति अभिव्यक्त की है।

[9] **शेषो ध्यसखि**[87]– यह सूत्र ह्रस्व इदन्त, उदन्त की घिसंज्ञा का विधान करता है, सखिशब्द को छोड़कर परन्तु कुछ आचार्यों के मत में यह सूत्र केवल ह्रस्व इवर्ण, उवर्ण की घिसंज्ञा का विधान करता है। इसीलिये "द्वन्द्वे घि"[88] इस सूत्र में घ्यन्त का पूर्वनिपात होता है ऐसा कहा गया है। सूत्र के उक्तार्थ को स्वीकार करने पर सूत्र में प्रयुक्त असखि शब्द द्वारा सखि शब्द से सम्बन्धित इकार की घिसंज्ञा का निषेध होगा तदनुसार बहुसखि शब्द में भी सखि शब्द से सम्बन्धित इकार होने के कारण घिसंज्ञा का निषेध हो जायेगा जिससे इस प्रयोग में घिसंज्ञककार्य गुणादि नहीं होंगे। इसलिये इसके षष्ठी के एकवचन में बहुसख्युः यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने कुछ आचार्यों के इस मत को उक्त

सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है–"इह ह्रस्वेदुन्मात्रं घिसंज्ञम्। तथा च द्वन्द्वे घीत्यत्र घ्यन्तं पूर्वं निपततीत्युच्यते। तेनासरवीत्यत्र सखिशब्देकारस्य घित्वनिषेधात् सखिशब्दावयवत्वेऽपि बहुसख्या कृतं बहुसख्युः स्वमित्याहुः।"

न्यासकार ने सूत्र में प्रयुक्त असखि शब्द का सखि शब्द से भिन्न यह अर्थ लिया है अतः सुसखि यह शब्द सखि शब्द से भिन्न है। इसलिये इसकी घिसंज्ञा होने से गुणादि कार्य सम्पन्न होंगे जिससे "सुसखेः आगच्छति" यह प्रयोग निष्पन्न होता है यद्यपि 'असखि' शब्द में तदन्त विधि करने से सखि शब्द है, अन्त में जिसके उससे भी घिसंज्ञा का प्रतिषेध होता हैं ऐसा अर्थ मानने पर सखि शब्दान्त सुसखि शब्द को भी घिसंज्ञा का प्रतिषेध होने से गुणादि कार्य नहीं होंगे तथापि विशेष्य "शेष" शब्द से विशेषण असखि शब्द दूरस्थ होने से असखि शब्द में तदन्तविधि प्रवृत्त नहीं होती अतः उक्त प्रयोग में घिसंज्ञा निर्बाध है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में न्यास का मत भी उद्धृत किया है–"सुसखेरागच्छतीति तु न्यासः"।

कुछ आचार्यों के अनुसार सूत्रस्थ असखि शब्द के द्वारा सखि शब्द से सम्बन्धित इकार की घिसंज्ञा का निषेध होता है अतः उनके मत में बहुसखि शब्द में भी सखि शब्द से सम्बन्धित इकार होने के कारण घिसंज्ञा का निषेध हो जाता है जिससे बहुसख्युः इस प्रयोग में घिसंज्ञक कार्य गुणादि नहीं होते। इसके विपरीत न्यास के मत में प्रस्तुत सूत्र सखि शब्द से भिन्न शब्द की घिसंज्ञा करता है जिससे उनके मत में सुसखि यह शब्द सखि शब्द से भिन्न है इसलिये इसमें घिसंज्ञा होने से घिसंज्ञककार्य गुणादि हो जाते हैं जिससे सुसखेः यह रूप निष्पन्न होता है।

[10] **कर्त्तरि च**[89]– प्रस्तुत सूत्र कर्त्ता में जो तृच् और अक् प्रत्यय होते हैं उनके योग में कर्म में षष्ठी समास का निषेध करता है। इस प्रकार "क्तेन च पूजायाम्",[90] "अधिकरणवाचिना च"[91], "कर्मणि च"[92] "तृज्काभ्यां कर्त्तरि"[93] और "कर्त्तरि च" ये पाँचों सूत्र तत्तत् अर्थों में "षष्ठी" इस सूत्र से प्राप्त षष्ठी समास का निषेध करते हैं जिसके कारण राज्ञां मतम्, इदमेषामासितम्, आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन, भवत आसिका, अपां स्रष्टा, ओदनस्य भोजकः इत्यादि प्रयोगों में षष्ठी समास परिलक्षित नहीं होता परन्तु उक्त सूत्रों के कतिपय निषेधक स्थलों पर भी षष्ठी समास उपलब्ध होता है। यथा– राजसम्मतः

राममहितः, भवदासितम्, भवदासिका और गोदोहः, इत्यादि जिससे उक्त पञ्चविध पाणिनीय सूत्रों की निर्दोषता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है अतः वृत्तिकार ने उक्त सन्देह का निवारण करने के लिये उक्त सूत्र की वृत्ति में भर्त्तृहरि के मत को निर्दिष्ट किया है–''निषेधपञ्चसूत्रीयं स्वारार्था। शेषषष्ठीसमासस्यानिवारणात्। तेन राजसम्मतो ''राममहितः'' भवदासितं भवदासिका गोदोह ''स्तत्कर्त्ता फलभाग् यत'' इति भर्त्तृहरिः''।

भर्त्तृहरि के उक्त वचनानुसार यद्यपि उक्त पञ्चविध स्थलों पर ''षष्ठी''[94] सूत्र से प्राप्त षष्ठी समास के निषेध होने पर भी शेष षष्ठी समास अपरिहार्य है अतः समासनिषेध का सामान्यतः कोई फल दिखाई नहीं देता तथापि कारकषष्ठीसमास और शेषषष्ठीसमास में स्वर में अन्तर आ जाता है। यदि कारकषष्ठीसमास होता है तो वहाँ पर कृत् स्वर की प्राप्ति होती है और यदि शेषषष्ठीसमास किया जाता है तो समासान्तोदात्तत्व की प्राप्ति होती है। यहाँ कारकषष्ठीसमास के निषेध और शेषषष्ठीसमास के विधान द्वारा मध्योदात्त का निषेध और समासान्तोदात्तत्व का विधान करना ही उक्त निषेध का फल है।

भर्त्तृहरि के अनुसार राजसम्मतः आदि प्रयोगों में कारकषष्ठीसमास का निषेध तथा शेषषष्ठीसमास के विधान का फल मध्योदात्त स्वर की निवृत्ति और समासान्तोदात्त की प्रवृत्ति है।

[11] **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे**[95]–प्रस्तुत सूत्र अत्यन्त संयोग के गम्यमान होने पर कालवाचक और अध्वन्वाचक शब्दों से द्वितीया विभक्ति का विधान करता है। यथा– सर्वरात्रं कल्याणी, मासं रमणीयाः, क्षणमूचे, क्रोशं कुटिला नदी, योजनं धावति। काशिकादि ग्रन्थों में कालवाचक तथा अध्वन्वाचक शब्दों का यह अत्यन्त संयोग क्रिया, गुण और द्रव्य के साथ माना गया है तथा इन सब में ''कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे'' सूत्र की प्रवृत्ति दिखाई गयी है लेकिन भाष्यकार के अनुसार प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति केवल द्रव्य और गुण के अत्यन्त संयोग होने पर ही होती है। क्योंकि इनमें क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग न होने से ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म''[96] की प्रवृत्ति सम्भव नहीं है। क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग स्थल पर तो उनके मत में ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' से ही कर्मसंज्ञा हो जायेगी। भाषावृत्तिकार ने भाष्य के उक्त मत को उद्धृत भी किया है–''भाष्ये तु यत्राक्रिययाऽत्यन्तसंयोगः। तदर्थमेतदिति स्थितम्। मासमास्ते। क्रोशं स्वपितीत्यादिषु

प्राकृतमेव कर्म''। उक्त भाष्यमत में पठित मासमास्ते, क्रोशं स्वपिति इत्यादि स्थलों पर क्रिया का जो अत्यन्त संयोग परिलक्षित हो रहा है, वह प्राकृत कर्म है। इस प्राकृत कर्म की कर्मसंज्ञा ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' सूत्र से ही सम्भव है। यद्यपि आस् और स्वप् धातु भी अकर्मक धातु हैं अतः इनमें कर्मत्वाभाव के कारण ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' से कर्मसंज्ञा सम्भव प्रतीत नहीं होती तथापि अकर्मक धातुओं में कर्मत्व तिरोहित रूप में रहता है अतः ऐसे अकर्मक धातुओं के योग में काल, भाव, अध्वन् और देशवाची शब्दों में कर्मसंज्ञा हो जाती है। जब अकर्मक धातु में भी कर्मत्व तिरोहित रहता है तभी ''आस्यते मासः'' इस प्रयोग में कर्म में लकार का औचित्य घटित होता है।

भाष्यकार के अनुसार ''कालाध्वनो....'' सूत्र का प्रयोजन द्रव्य और गुण के अत्यन्त संयोग में कालवाचक तथा अध्वन्वाचक शब्दों से द्वितीया का विधान करना है। यद्यपि भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में केवल गुण और क्रिया के अत्यन्त संयोग वाले उदाहरण प्रस्तुत किये हैं तथापि भाष्यकार ने जो द्रव्य के अत्यन्त संयोग में इस सूत्र की प्रवृत्ति मानी है, भाषावृत्तिकार की उससे भी सहमति है। अन्तर केवल इतना है कि भाष्यकार क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग में ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' की प्रवृत्ति स्वीकार करते हैं लेकिन वृत्तिकार क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग में भी ''कालाध्वनोः....'' की ही प्रवृत्ति स्वीकार करते हैं।

[12] **क्तस्य च वर्त्तमाने**[97] – प्रस्तुत सूत्र वर्तमान काल में विहित क्त प्रत्यय से युक्त शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति का विधान करता है। यथा–''राज्ञो मतम्'' इस प्रयोग में ''कर्तृकर्मणोः कृति''[98] सूत्र द्वारा प्राप्त षष्ठी विभक्ति का कृद्योग में ''न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्''[99] सूत्र द्वारा निषेध होने पर भी प्रस्तुत प्रयोग में वर्त्तमानकालिक क्त प्रत्यय होने के कारण से षष्ठी विभक्ति सम्पन्न होती है। वृत्तिकार ने इस सूत्र की वृत्ति में आगम के मत को भी निर्दिष्ट किया है–''कथं त्वया शीलितः, मया रक्षितः? कार्योऽत्र यत्नः। इहच्छात्रस्य हसितम्, मयूरस्यनृत्तमिति शेषषष्ठीयम्, ''न लोक'' इति कृद्योगायाः प्रतिषेधात्। कारकविवक्षायां तु च्छात्रेण हसितमिति आगमः।'' आगम के इस मत के अनुसार जब वर्त्तमानकालिक क्त प्रत्यय के प्रयोग में प्रस्तुत सूत्र से षष्ठी का विधान हो जाता है तो ''त्वया शीलितः, मया रक्षितः'' इन प्रयोगों में भी षष्ठी विभक्ति होनी चाहिये क्योंकि इनमें भी वर्त्तमानकालिक क्त प्रत्यय है। आगम ने इन प्रयोगों में षष्ठी प्रतिषेध और तृतीया विधान के लिये कोई दिशा निर्देश नहीं दिया है

अपितु ''कर्तव्योऽत्र यत्नः'' कहकर अध्येताओं के ऊपर इसके निराकरण का भार सौंप दिया है।[100]

आगम शास्त्र का यह भी कहना है कि ''त्वया शीलितः, मया रक्षितः'' इन प्रयोगों में वर्तमानकालिक क्त प्रत्यय होने पर भी षष्ठी विभक्ति नहीं हुई परन्तु ''छात्रस्य हसितम्, मयूरस्य नृत्तम्'' इन प्रयोगों में भूतकालिक क्त प्रत्यय होने पर भी षष्ठी विभक्ति किस प्रकार से हो गई है। आगम शास्त्र ने इस का उत्तर देते हुए बताया है कि इन प्रयोगों में ''न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्'' सूत्र द्वारा ''कृद्योग'' वाले षष्ठी का प्रतिषेध होने पर भी ''शेष षष्ठी'' सम्भव है। पुनः यह सन्देह हो सकता है ''छात्रेण हसितम्'' इस प्रयोग में शेष षष्ठी क्यों परिलक्षित नहीं होती? इस सम्बन्ध मे उनका कथन है कि कर्तृत्वविवक्षा में तृतीया भी सम्भव है। यहाँ यह अवधेय है कि यदि ''त्वया शीलितः, मया रक्षितः'' इन प्रयोगों में दुर्घटवृत्ति के अनुसार भूतकालिक क्त प्रत्यय स्वीकार किया जाये तो षष्ठी विभक्ति का बाध और कर्तृत्व विवक्षा में तृतीया सम्भव है।

आगम शास्त्र के अनुसार त्वया शीलितः, मया रक्षितः इन प्रयोगों में भी षष्ठी विभक्ति अपेक्षित है क्योंकि इनमें भी वर्तमानकालिक क्त प्रत्यय दृष्टिगोचर हो रहा है किन्तु यहाँ षष्ठी विभक्ति क्यों नहीं हुई? आगम शास्त्र ने इसका कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु छात्रस्य हसितम्, छात्रेण हसितम् इन प्रयोगों में भूतकालिक क्त प्रत्यय होने पर भी जो षष्ठी और तृतीया विभक्ति का विधान किया गया है, आगम शास्त्र ने इसके कारण का निर्देश किया है। उसके अनुसार प्रथम प्रयोग में शेष षष्ठी है तथा द्वितीय प्रयोग में कर्तृत्व विवक्षा में तृतीया।

[13] **चक्षिङः ख्याञ्**[101]– प्रस्तुत सूत्र आर्धधातुक परे रहते ''चक्षिङ्'' धातु को ''ख्याञ्'' आदेश का विधान करता है जिससे आङ् पूर्वक ''चक्षिङ्'' धातु का लुट् लकार में ''आख्याता'' यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में अनेक मतों का निर्देश किया है। प्रथम मत के अनुसार ''चक्षिङ्'' के स्थान में जो ''ख्याञ्'' आदेश होता है, उसके आदि में ''ख्'' और ''श्'' ये दो वर्ण भी आगम के रूप में हो जाते हैं। किञ्च ''ख'' के स्थान में चर्त्व से ककार होने पर ''आक्श्ख्याता'' यह रूप निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव ने उक्त मत को अङ्गीकार करते हुए कहा भी है–''ख्शादिरप्ययमादेशः''। इस प्रकार पुरुषोत्तमदेव के मत में ''आख्याता और आक्श्ख्याता'' ये दो रूप निष्पन्न होते हैं।

पुरुषोत्तमदेव ने इस ''ख्याञ्'' आदेश के विषय में एक अन्य मत को उद्धृत किया है-''प्रत्येक क्शादिरित्यपरे''। इस मत के अनुसार ''ख्याञ्'' के आदि में शकार अथवा खकार ये दो वर्ण स्वतन्त्र रूप से भी हो जाते हैं। आगन्तुक खकार के पक्ष में ''आक्ख्याता'' तथा शकार के पक्ष में ''आशख्याता'' ये रूप निष्पन्न होंगे। इस प्रकार दोनों वैयाकरणों के मत में ''चक्षिङ्'' धातु के लुट् लकार में चार रूप निष्पन्न होते हैं।

[14] **यङोऽचि च**[102]– प्रस्तुत सूत्र केवल अच् परे रहते ही यङ् के लुक् का विधान करता है। इस सूत्र से विधीयमान यङ्लुक् तथा निष्पन्न प्रयोगों की साधुता के सम्बन्ध में विविध मत पाये जाते हैं। इनमें प्रथम मत जयादित्य का है। जयादित्य के अनुसार चकार ग्रहण सामर्थ्य से प्रस्तुत सूत्र में पूर्ववर्त्ती ''बहुलं छन्दसि''[103] सूत्र से बहुल ग्रहण की अनुवृत्ति और छन्दसि पद का परित्याग मानकर भाषा में अच् भिन्न परे होने पर भी यङ् के लुक् का विधान किया है तथा उदाहरण रूप में लालपीति, वावदीति ये प्रयोग प्रस्तुत किये हैं। पुरुषोत्तमदेव ने जयादित्य के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है-''इह चकारेण बहुलग्रहणमनुकृष्यते न तु च्छन्दसीति। तेन भाषायामनच्यपि यङ्लुक्। लालपीति वावदीतीति जयादित्यः''।

द्वितीय मत भागवृत्तिकार का है उसके अनुसार ''यङोऽचि च'' सूत्र में पठित चकारग्रहणसामर्थ्य से प्रस्तुत सूत्र में ''बहुलं छन्दसि'' इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है इसलिये प्रस्तुत सूत्र अच् भिन्न परे भी छन्द में ही बाहुलक से यङ्लुक् का विधान करता है। इस प्रकार भागवृत्ति के मत में यङ्लुक् केवल छान्दस है।

भागवृत्तिकार ने यङ्लुक् के सम्बन्ध में भाष्य के भाष्यस्थ तृतीय मत को भी निर्दिष्ट किया है इस मत के अनुसार यङ्लुक का बोभवीति यह एकमात्र प्रयोग हो भाषा में प्रयुक्त होता है। भाष्यस्थ यङ्लुक् सम्बन्धी विवरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है-''हुश्नुवोः सार्वधातुके''[104] प्रस्तुत सूत्र जुह्वति, सुन्वन्ति आदि प्रयोगों में यण् का विधान करता है यद्यपि ''वोः सार्वधातुके'' इस प्रकार के सूत्र निर्देश द्वारा भी उपर्युक्त प्रयोग निष्पन्न हो जाते हैं पुनः सूत्र में हु और श्नु पदों का पाठ क्यों किया गया है? सूत्र में ''हु'' और ''श्नु'' पदों के ग्रहण का उद्देश्य बताते हुए वैयाकरणों का कथन है कि योयुवति, रोरुवति

प्रयोगों में यु और रु धातु से यङ् लुक् में "अद्भ्यस्तात्" सूत्र द्वारा झि को अदादेश करने पर यो यु अति, रो रु अति इस स्थिति में अनेकाच् अङ्गावयव असंयोग पूर्वक उकार को यण् न हो, इसलिये सूत्र में हुश्नु ग्रहण किया गया है।

इस सम्बन्ध में भाष्य का यह कथन है कि "बहुलं छन्दसि" सूत्र की अनुवृत्ति आने पर "यङोऽचि च" सूत्र विहित यङ्लुक् के छान्दस होने से "छन्दस्युभयथा"[105] सूत्र द्वारा यहाँ आर्धधातुक का आश्रयण होने से योयुवति तथा रोरुवति प्रयोगों में यणभाव सिद्ध है अतः हुश्नु ग्रहण निरर्थक होकर ज्ञापित करता है कि भाषा में कहीं कहीं यङ्लुक होता है। इस प्रकार योयुवति आदि प्रयोगों को भाषा में स्वीकार करने के कारण कहीं वहाँ यण् न हो जाये इसलिये हुश्नुग्रहण सार्थक है। भाषावृत्तिकार ने भागवृत्ति और भागवृत्तिस्थ भाष्य मत का निर्देश निम्न शब्दों में किया है–"चकाराद् बहुलं छन्दसीति सर्वमनुवर्त्तते। तेन बाहुल्यादनच्यपिच्छन्दस्येव यङ्लुक्। भाष्ये तु हुश्नुग्रहणज्ञापकबलाद् बोभवीतीत्येवं पदं भाषायां साधु, नान्यदिति भागवृत्तिः"। भागवृत्ति के अनुसार भाष्यकार के मत में "हुश्नुवोः सार्वधातुके" सूत्रस्थ हुश्नुग्रहण निरर्थक होकर के यह ज्ञापित करता है कि भाषा में यङ्लुक् भी होता है परन्तु भाषा में यङ्लुक् का केवल बोभवीति यह प्रयोग ही साधु माना जाता है। किञ्च यङ्लुक् के दूसरे प्रयोग स्वीकार नहीं किये जाते।

भाषावृत्तिकार ने भाष्य तथा भागवृत्ति के उक्त मत से असहमति व्यक्त की है क्योंकि यङ्लुक् के अन्य प्रयोग भी शिष्टों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। यथा–

"यदि देवो वरीवर्ष्टि कोकिलो रोखीति च।
मयूरोऽपि नरीनर्त्ति मरीमर्मि तदाप्रिये"।इति॥
तेजांसि शंशमाञ्चक्रुरिति भट्टिः[106]॥

"हरिणा सह संख्यं ते बोभूत्विति यदब्रवीः।
न जाघटीति युक्तौ तत् सिंहद्विरदयोरिव"॥

–इति पाणिनेर्जाम्बवतीविजयकाव्यम्।

उक्त सूत्र निर्देशानुसार अच् परे रहते ही यङ् का लुक् होता है लेकिन जयादित्य के अनुसार सूत्र में चकारग्रहणसामर्थ्य से भाषा में अच् भिन्न परे होने पर भी यङ्लुक् हो जाता है। इसके विपरीत भागवृत्ति के मत में यङ्लुक् केवल

छन्द में प्रयुक्त होता है लेकिन भाष्य के अनुसार यङ्लुक् का बोभवीति यह एकमात्र प्रयोग ही भाषा में प्रयुक्त होता है किन्तु शिष्टों ने यङ्लुक् के अन्य प्रयोग भी भाषा में प्रयुक्त किये हैं।

[15] **कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च**[107] – प्रस्तुत सूत्र आचार अर्थ में क्यङ् प्रत्यय और सकार के लोप का विधान करता है। इस सलोप के विषय में इस सूत्र की वृत्ति में मत-मतान्तरों का निर्देश किया गया है।

कुछ आचार्यों के मत में ओजस् और अप्सरस् शब्द के सकार का नित्य ही लोप होता है किन्तु पयस् शब्द के सकार का विकल्प से। इन आचार्यों के मत में ओज्स और अप्सरस् शब्दों के क्रमशः ओजायते और अप्सरायते ये एक-एक रूप निष्पन्न होते हैं लेकिन पयस् शब्द के पयायते और पयस्यते ये दो रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्ति में प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में इन आचार्यों के मत को निर्दिष्ट किया गया है–"सलोपोऽयम् "ओजसोऽप्सरसो नित्यम् पयसस्तु विभाषया" इत्येके"।

कुछ अन्य आचार्यों के मत में केवल अप्सरस् शब्द के सकार का लोप होता है तथा ओजस् और पयस् शब्द के सकार का लोप नहीं होता अतः उनके मत में ओजस् और पयस् के ओजस्यते तथा पयस्यते ये रूप निष्पन्न होंगे। किञ्च अप्सरस् शब्द का अप्सरायते यह रूप ही निष्पन्न होगा। पुरुषोत्तमदेव ने जो आचार्य अप्सरस् शब्द के सकार का लोप अङ्गीकार करते हैं उनके मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में दिखाया है–"अप्सरस एव लोपो नान्यस्येत्यपरे"।

कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च-सूत्रस्थ "सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा" यह वार्त्तिक समस्त प्रातिपदिकों के विषय में विकल्प से क्यङ् का विधान करता है। इन प्रातिपदिकों में अवगल्भ, क्लीव और होड़ ये प्रातिपदिक भी सन्निविष्ट हैं। क्विब्प्रत्यय के अनन्तर उनके प्रयोग आत्मनेपद में उपलब्ध होते हैं। यथा– अवगल्भते, क्लीवते और विहोड़ते। यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि क्विब्प्रत्यय के बाद धातु रूप ग्रहण करने पर इनकी आत्मनेपद संज्ञा किस आधार पर की गई है। इस सन्देह के निवारण हेतु भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में स्मृति की व्यवस्था उद्धृत की है–"अवगल्भादयस्तु क्विब्विधावात्मनेपदार्थमनुदात्तेत उपदेष्टव्या इति स्मृतिः"। इस स्मृतिवचन के अनुसार क्विब्विधि में अवगल्भादि

शब्दों से आत्मनेपद के विधान हेतु इनका उपदेश अनुदात्तेत् धातुओं के रूप में करना चाहिये, जिससे ''अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'' सूत्र से इनमें आत्मनेपद सम्भव हो जाता है।

इस प्रकार स्मृतिवचन के अनुसार अवगल्भादि शब्दों में आत्मनेपद के विधान हेतु अनुदात्तेत् धातुओं के रूप में उनका पाठ अपेक्षित है।

[16] **वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने**[108]– सूत्रवृत्ति में वृत्तिकार ने ''धूमाच्चेति भर्त्तृहरि:'' यह भत्र्तृहरि का वचन पढ़ा है। इस वचन के अनुसार पाणिनि द्वारा अनभिधान होने पर भी धूम शब्द से क्यङ् प्रत्यय होता है जिससे धूमायतेऽग्नि: तथा धूमायन्त इवाश्लिष्टा: ये प्रयोग सिद्ध होते हैं।

भर्त्तृहरि ने ''धूमाच्चेति'' इस अतिरिक्त वचन में धूम शब्द से भी क्यङ् प्रत्यय स्वीकार कर धूमायते प्रयोग निष्पन्न किया है।

भाषावृत्ति के सम्पादक श्रीशचन्द्रचक्रवर्ती के अनुसार भाषावृत्तिकार ने जिस भर्तृहरि के नाम से उक्त वचनों[109] को उद्धृत किया है वह भागवृत्तिकार ''भर्त्तृहरि'' है। उक्त तथ्य उन्होंने ''क्रीड़ोऽनुसंपरिभ्यश्च''[110] और ''वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने''[111] इन सूत्रस्थ वचनों की टिप्पणियों में स्पष्ट किया है– भागवृत्तिग्रन्थस्य रचयिता[112] भागवृत्तिकार:।[113]

[17] **नित्यं कौटिल्ये गतौ**[114]– प्रस्तुत सूत्र गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में नित्य ही यङ् प्रत्यय का विधान करता है यद्यपि प्रस्तुत सूत्र में नित्य-ग्रहण के बिना भी गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में यङ्प्रत्यय का विधान हो जाता है तथा अभिधानाभाव के कारण कौटिल्य अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से वाक्य नहीं हो सकता था पुन: प्रस्तुत सूत्र में नित्यग्रहण की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट इस स्मृतिवचन से किया है–''नित्यग्रहणं क्रियासमभिहारनिवृत्त्यर्थमिति स्मृति:'' अर्थात् प्रस्तुत सूत्र में नित्य शब्द का ग्रहण विषय के नियमन के लिये किया गया है। विषय का नियमन निम्न प्रकार से होगा–गत्यर्थक धातुओं से कौटिल्य अर्थ में ही यङ्प्रत्यय हो। किञ्च गत्यर्थक धातुओं से ''धातोरेकाचो हलादे: क्रियासमभिहारे यङ्''[115] इस सूत्र से जो यङ् प्रत्यय प्राप्त है, वह भी न हो। इसीलिये ''कुटिलं क्रामति'' इस अर्थ में यङ् प्रत्यय होने से चङ्क्रम्यते रूप निष्पन्न होता है लेकिन ''भृशं क्रामति'' इस अर्थ में प्राप्त होने पर भी पूर्ववर्त्ती सूत्र से यङ् प्रत्यय नहीं होता।

इस प्रकार स्मृति के मत में गत्यर्थक धातुओं से क्रियासमभिहारार्थक प्रत्ययों की निवृत्ति के लिये प्रस्तुत सूत्र में नित्यग्रहण अपेक्षित है।

[18] **सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्**[116] – प्रस्तुत सूत्र सत्य आदि शब्दों से णिच् प्रत्यय का विधान करता है। इस सूत्र में उल्लिखित अर्थ, वेद और सत्य शब्दों को णिच् परे रहते "अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्यः" इस वार्त्तिक द्वारा णिच् के साथ-साथ आपुक् का विधान भी किया गया है जिससे अर्थापयति, वेदापयति और सत्यापयति ये रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में वार्त्तिक द्वारा अर्थादि शब्दों से विधीयमान आपुक् के आगम को पूर्वस्मृतिवचन का बोधक बताया है–"अर्थवेदसत्यानामापुगिति पूर्वस्मृतेरुपलक्षणम्"।

[19] **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि**[117]– प्रस्तुत सूत्र सामान्यतः कास् धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से लिट् परे रहते आम् का विधान करता है लेकिन वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस सम्बन्ध में स्मृतिवचन को भी उद्धृत किया है–"प्रत्ययग्रहणमनेकाजुपलक्षणमिति स्मृतिः"। इस वचन के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त प्रत्यय शब्द एकाच् धातुओं के साथ-साथ अनेकाच्धातुओं का भी बोधक है, जिससे दरिद्रा, चुलुम्प आदि अनेकाच् धातुओं से भी लिट् परे रहते आम् प्रत्यय हो जाता है तथा दरिद्राञ्चकार, चुलुम्पाञ्चकार आदि रूप भी सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार स्मृतिवचन के अनुसार उक्त सूत्र में प्रयुक्त प्रत्ययशब्द एकाच् और अनेकाच् उभयविधधातुओं का बोधक है।

[20] **सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च**[118]– प्रस्तुत सूत्र सृ, शास् और ऋृ धातुओं से परे केवल परस्मैपद में च्लि को चङादेश का विधान करता है लेकिन "समारन्त ममाभीष्टाः" इस प्रयोग में ऋृ धातु आत्मनेपद में विद्यमान होने पर भी च्लि को चङादेश दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस प्रयोग के समाधान हेतु कुछ आचार्यों के इष्टिवचन को उद्धृत किया है–"तङ्यपीच्छन्त्याचार्याः"। इस इष्टिवचन के अनुसार परस्मैपद के साथ-साथ आत्मनेपद में विद्यमान ऋृ धातु को भी चङादेश हो जाता है।

[21] **कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः**[119] प्रस्तुत सूत्र कर्मकर्त्ता को कर्मवद्भाव का विधान करता है। कर्मकर्त्ता के कर्मवद्भाव का फल है– धातु से यक्

आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद्भाव का विधान करना। यही कारण है कि "पच्यते ओदन: स्वयमेव" यहाँ कर्मकर्त्ता ओदन को कर्मवद्भाव करने से पच् धातु को यक् और आत्मनेपद हुआ है। पुरुषोत्तमदेव ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में दुह् और पच् इन सकर्मक धातुओं के कर्मवद्भाव के विषय में भाष्य के विशिष्ट मत को उद्धृत किया है–"इह दुहिपच्योः सकर्मकयोः कर्मवद् बहुलमिति भाष्यम्। दुग्धे गौः क्षीरं स्वयमेव। अदुग्ध गौः क्षीरं स्वयमेव। उदुम्बरो लोहितं फलं पच्यते"।[120] उक्त मत के अनुसार दुह् और पच् धातु को कर्मवद्भाव नित्य न होकर बहुल प्रकार से होता है जिससे कर्मवद्भाव पक्ष में यक्, आत्मनेपद और चिणादि प्रत्यय होंगे और उसके अभाव में परस्मैपद संज्ञकप्रत्यय।[121]

पुरुषोत्तमदेव ने पूर्वोक्त सूत्र के सन्दर्भ में भाष्य के मत में करणकारक के साथ तुल्यक्रिया वाले कर्त्ता को बहुल प्रकार से कर्मवद्भाव के विधान का निर्देश किया है जिससे "परिवारयति कण्टकैर्वृक्षम्" इस स्थल पर कर्मवद् अभाव के पक्ष में परस्मैपद का रूप निष्पन्न होता है और "परिवार्यन्ते कण्टकाः स्वयमेव वृक्षम्" इस कर्मवद्भाव स्थल में यक् और आत्मनेपद दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में इस भाष्यमत को भी निर्दिष्ट किया है–"तथा करणेन तुल्यक्रियः कर्त्ता बहुलं कर्मवत् स्यात्। परिवारयति कण्टकैर्वृक्षम्। परिवार्यन्ते कण्टकाः स्वयमेव वृक्षम्"।

"कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः" सूत्र ही कर्मकर्त्ता को कर्मवद्भाव का विधान करता है लेकिन भाष्यकार के मत में दुह् और पच् धातु को तथा करणकारक के साथ तुल्यक्रिया वाले कर्त्ता को भी बहुल प्रकार से कर्मवद्भाव होता है।

[22] **न दुहस्नुनमां यक्चिणौ**[122]– यह सूत्र कर्मकर्त्ता में दुह्, स्नु और नम् धातुओं से यक् और चिण् का निषेध करता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भारद्वाजीयों के मत में कुछ ऐसे अन्य स्थलों का भी निर्देश किया है, जिनमें कर्मकर्त्ता में यक् और चिण् नहीं होते–"णिश्रन्थिग्रन्थि-ब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणाञ्चेति भारद्वाजीयाः"। भारद्वाजीयों के उक्त निर्देशानुसार ण्यन्त, श्रन्थि, ग्रन्थि, ब्रूञ् तथा आत्मनेपद में अकर्मक धातुओं से भी यक् और चिण् का प्रतिषेध होता है। यथा–"भूषयते कन्या, कारयते कटः, अचीकरत कटः, ग्रन्थते मेखला, अग्रन्थिष्ट मेखला, श्रन्थते, अश्रन्थिष्ट मेखला, ब्रूते कथा, विकुरुते पयः स्वयमेव" इन प्रयोगों में भी कर्मकर्त्ता में यक् और चिण् दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

उक्त सूत्र के निर्देशानुसार केवल दुह्, स्नु और नम् धातुओं से कर्मकर्त्ता में यक् और चिण् का निषेध होता है परन्तु भारद्वाजीयों के मत में उक्त धातुओं के अतिरिक्त ण्यन्त, श्रन्थि, ग्रन्थि, ब्रूञ् और आत्मनेपद में अकर्मक धातुओं से भी यक् और चिण् का निषेध होता है।

[23] **तव्यत्तव्यानीयरः**[123]– इस सूत्र पर काशिकाकार और सिद्धान्तकौमुदीकार ''वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच्च'' इस वार्त्तिक का पाठ करते हैं जिससे वस् धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय और उसे णिद्वद्भाव करके उपधावृद्धि द्वारा वास्तव्यः यह रूप निष्पन्न करते हैं परन्तु पुरुषोत्तमदेव वास्तव्यः इस प्रयोग को तव्यत्प्रत्ययान्त न मानकर तद्धितप्रत्ययान्त मानते हैं। अपने मत की पुष्टि के लिये उक्त सूत्र की वृत्ति में उन्होंने भाष्यमत को उद्धृत किया है–''इह वास्तव्यस्तद्धितान्तः। तदुक्तं भाष्ये तद्धितो वा पुनरेषः। वास्तुनि भवो वास्तव्य इति''। इस मत के अनुसार वास्तुन् शब्द से भव अर्थ में ''दिगादिभ्यो यत्''[124] सूत्र से यत् प्रत्यय के अनन्तर न लोप, गुण, अवादेश द्वारा वास्तव्यः रूप निष्पन्न किया जाता है।

भाषावृत्तिकार और भाष्यकार वास्तव्यः शब्द को तद्धित प्रत्ययान्त मानते हैं, उनकी दृष्टि में वास्तव्यः का मूल शब्द वास्तुन् है, जो यत् प्रत्यय जोड़ करें निष्पन्न होता है। इसके विपरीत काशिकाकार और सिद्धान्तकौमुदीकार के मत में यह शब्द कृदन्त का है जो वस् धातु से तव्यत् प्रत्यय और णिद्वद्भाव करने से निष्पन्न होता है।

[24] **पाघ्राध्माधेट्दृशः शः**[125]– प्रस्तुत सूत्र में उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है अतः उपसर्ग पूर्वक पा आदि धातुओं को ही यह सूत्र श प्रत्यय का विधान करता है लेकिन पश्यः, जिघ्रः इन प्रयोगों में उपसर्ग के बिना भी श प्रत्यय दृष्टिगोचर हो रहा है तथा इसी श प्रत्यय के कारण इनमें पश्य और जिघ्रादेश हुए हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इन प्रयोगों के समाधान हेतु कुछ आचार्यों के मत को निर्दिष्ट किया है। ''अप्रादेश्च इति केचित्''। इस मत के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में उपसर्गसंज्ञक प्रादि की अनुवृत्ति नहीं आती है अतः यह सूत्र उपसर्गपूर्वक तथा अनुपसर्गपूर्वक दोनों ही प्रकार के धातुओं से श प्रत्यय का विधान कर सकता है, जिससे पश्यः और जिघ्रः ये प्रयोग भी निष्पन्न हो जाते हैं।

[25] **नासिकास्तनयोर्ध्माधेटो:**[126]– सूत्र से विधीयमान खश् प्रत्यय के विषय में द्विविध मत पाये जाते हैं–[1] वैयाकरण मत और [2] स्मृतिकारों का मत। वैयाकरणों के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में यथासंख्याविधि नहीं है, जिसके कारण नासिका उपपद रहते केवल धेट् इन दोनों धातुओं से तथा स्तन उपपद रहते ध्मा और धेट् इन दोनों धातुओं से भी खश् प्रत्यय होता है लेकिन स्मृतिवचन के अनुसार नासिका उपपद रहते ध्मा और धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय तो हो जाता है परन्तु स्तन उपपद रहते केवल धेट् धातु से ही खश् प्रत्यय होता है, धातु से नहीं। वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन को उद्धृत भी किया है– ''स्तने धेट एवेति स्मृति:। स्तनन्धयो बाल:''।

इस प्रकार स्मृतिवचन के अनुसार स्तन उपपद रहते ध्मा धातु से खश् प्रत्यय नहीं होता है।

[26] भाषावृत्तिकार ने ''विहायसा गच्छति'' इस अर्थ में विहायस् पूर्वक ''गम्'' धातु से ''गमश्च'' सूत्र से खच् प्रत्यय और ''विहायसो विह च''[127] वार्तिक द्वारा विहायस् को विह आदेश तथा मुमागम द्वारा 'विहङ्गम: खग:' यह प्रयोग निष्पन्न किया है यद्यपि ''विहङ्गम'' के अतिरिक्त इसी अर्थ में विहग और विहङ्ग आदि शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है तथापि भाषावृत्तिकार ने त्रिकाण्ड पाठ के आधार पर इन्हें संज्ञा शब्द मानकर साधु माना है–

''विहगविहङ्गादयस्तु संज्ञाशब्दास्त्रिकाण्डपाठात् साधव: स्यु:''।

यहाँ यह अवधेय है कि विहग और विहङ्गादि शब्दों की निष्पत्ति सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थों में कुछ वार्तिकों के द्वारा दिखाई गई है। यथा- विहायस्पूर्वक गम् धातु से ''गमे: सुपि वाच्य:''[128] वार्तिक द्वारा खच् प्रत्यय ''विहायसो विह इति वाच्यम्''[129] वार्तिक द्वारा विहायस् को ''विह'' आदेश, ''खच्च डिद्वा वाच्य:''[130] वार्तिक से खच् को विकल्प से डिद्भाव टि लोप तथा मुमागम होने पर विहङ्ग: यह रूप निष्पन्न होता है। डित्वाभाव पक्ष में टिलोप न होने से विहङ्गम: यह रूप निष्पन्न होता है।

विहायसपूर्वक गम् धातु को ''अन्यत्रापि दृश्यत इति वक्तव्यम्''[131] वार्तिक से ड प्रत्यय ''डेच विहायसो विहादेशो वक्तव्य:''[132] वार्तिक से विहादेश तथा टि लोप होने से ''विहग:'' यह रूप निष्पन्न होता है। सिद्धान्तकौमुदीकार ने ये सभी प्रयोग असंज्ञा में निष्पन्न किये है।

भाषावृत्तिकार ने त्रिकाण्ड के मत से सहमति व्यक्त करते हुए विहग और विहङ्गादि शब्दों को संज्ञा शब्द मानकर उनकी निष्पत्ति का निर्देश नहीं किया है लेकिन काशिका तथा सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थों में इन शब्दों को संज्ञा भिन्न स्वीकार किया गया है तथा उनकी निष्पत्ति के लिये अनेक वार्त्तिकों का निर्देश किया गया है।

[27] **आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषुच्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्**[133]– प्रस्तुत सूत्र च्व्यर्थ में वर्तमान परन्तु च्वि प्रत्यय रहित, कर्मत्वविशिष्ट आढ्यादि शब्दों के उपपदत्व में कृञ् धातु से करण अर्थ में ख्युन् प्रत्यय का विधान करता है। तदनुसार अनाढ्यमाढ्यमनेन कुर्वन्ति इस अर्थ में आढ्य उपपद कृञ्धातु से ख्युन् प्रत्यय होने से आढ्यङ्करणो मन्त्रः रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार सूत्रोक्त अन्य शब्दों के उपपद रहते कृञ्धातु से ख्युन् प्रत्यय होता है। काशिकाकार का कथन है कि प्रस्तुत सूत्र में अच्विग्रहण सामर्थ्य से "आढ्यी कुर्वन्त्यनेन" इस प्रयोग में च्व्यन्त आढ्यी उपपद रहते कृञ्धातु से ख्युन् प्रत्यय नहीं होता है। काशिकाकार का यह भी मत है कि अपवादभूत ख्युन् के अभाव के पक्ष में उत्सर्गभूत ल्युट् प्रत्यय भी नहीं होता है। यदि अपवादभूत ख्युन् के अभाव में उत्सर्गभूत ल्युट् प्रत्यय का विधान किया जाये तो ख्युन् विधि व्यर्थ है क्योंकि च्व्यन्त उपपद रहते ख्युन् और ल्युट् के रूपों में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार सूत्र में "अच्वि" यह प्रतिषेध व्यर्थ हो जाता है अतः च्व्यन्त उपपद ख्युन् के प्रतिषेध सामर्थ्य से यह अर्थ ज्ञापित होता है कि ख्युन् के अभाव में ल्युट् भी नहीं होता है। इस प्रकार च्व्यन्त उपपद रहते ख्युन् का प्रतिषेध होता है और ख्युन् अभाव पक्ष में ल्युट् का अभाव होता है यही उक्त प्रतिषेध का तात्पर्य है।

भाषावृत्तिकार ने "अच्वि" इस प्रतिषेध का प्रस्तुत सूत्र में कोई प्रयोजन स्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार "अच्वि" यह प्रतिषेध उत्तरार्थ है। इसलिये उन्होंने ख्युन् अभाव स्थल में च्व्यन्त उपपद कृ धातु से ल्युट् प्रत्यय का विधान भी माना है और अपने समर्थन में उन्होंने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को उद्धृत किया है– "अच्वावित्युत्तरार्थम्। इह तु ख्युना मुक्ते ल्युटा भाव्यम्। आढ्यकरणो रसविधिः। स्थूलीकरणमौषधम्। तदुक्तं भाष्ये ख्युनि च्विप्रतिषेधानर्थक्यम्। ल्युट्ख्युनोरविशेषादिति।"

इस मत के अनुसार च्व्यन्त उपपद रहते ख्युन् अथवा ल्युट् प्रत्यय के विधान से रूप में कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। अतः उनके मत में ख्युन् प्रत्यय

के विधान में च्वि प्रत्यय का प्रतिषेध करना व्यर्थ है। इसीलिये वे ख्युन् के अभाव स्थल में ल्युट् प्रत्यय का विधान मानकर पक्ष में ''आढ्यीकरणोरसविधिः'' इत्यादि प्रयोग भी साधु मानते हैं।

भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार के मत में प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट अच्वि पद का कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि ख्युन् के अभाव में ल्युट् प्रत्यय सम्भव होने से रूप निष्पत्ति में कोई अन्तर नहीं आता। इसीलिये जहाँ भाष्यकार ने प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त अच्वि पद को निरर्थक माना है, वहीं भाषावृत्तिकार ने उसे उत्तरार्थ स्वीकार किया है। इसके विपरीत काशिकाकार ने अच्वि पद को सार्थक बताया है। उनके मत में च्व्यन्त उपपद रहते ख्युन् का प्रतिषेध होता है और ख्युनभाव पक्ष में ल्युट् प्रत्यय भी नहीं होता।

[28] **''क्रव्यमत्ति''**– इस विग्रह में ''क्रव्य'' उपपद रहते ''अद्'' धातु से ''क्रव्ये च''[134] सूत्र से विट् प्रत्यय होने पर ''क्रव्यात्'' यह रूप निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को भी उद्धृत किया है– ''अदोऽनन्न इत्येव सिद्धे क्रव्यग्रहणं वासरूपेणाण्निवृत्त्यर्थमिति भाष्यम्''। उक्त मत के अनुसार यद्यपि क्रव्यात् यह प्रयोग पूर्ववर्त्ती ''अदोऽनन्ने''[135] सूत्र से ही निष्पन्न हो सकता था पुनः ''क्रव्ये च'' इस विशिष्ट सूत्र का निर्देश इसलिये किया गया कि कहीं ''वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्''[136] सूत्र के द्वारा प्रस्तुत प्रयोग में वैकल्पिक रूप से अण् प्रत्यय का विधान होने से क्रव्याद् यह प्रयोग भी निष्पन्न न हो जाये अतः अण् निवृत्ति के लिये उक्त सूत्र का निर्देश आवश्यक है।

भाषावृत्तिकार और भाष्यकार दोनों ही ''क्रव्ये च'' सूत्र की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु अपनी-अपनी दृष्टि से वे सूत्र का उद्देश्य भिन्न-भिन्न मानते हैं। भाषावृत्तिकार के अनुसार यह सूत्र विट् प्रत्यय विधायक है लेकिन भाष्यकार के अनुसार विट् प्रत्यय सूत्रान्तर से सिद्ध है अतः यह केवल वासरूपविधि द्वारा पाक्षिक अण्निवृत्ति के लिये है।

[29] **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते**[137] इस सूत्र की वृत्ति में पठित पीवा इस शब्द के प्रयोग के विषय में वैयाकरणों में द्विविध मत पाये जाते हैं। कतिपय आचार्य इस प्रयोग को लौकिक तथा छान्दस उभयविध मानते हैं और कतिपय केवल छान्दस मात्र। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इन द्विविध मतों को उल्लिखित किया है– ''पीवेति [illegible] तथा च [illegible] इति

चान्द्रसूत्रम्। नेत्यन्ये''। उक्त कथन के अनुसार कतिपय आचार्य पीवा इस प्रयोग को छन्द के साथ-साथ लोक में भी प्रयुक्त मानते हैं। जब यह शब्द लोक में भी प्रयुक्त होता है तभी तो लौकिकव्याकरण चान्द्र ने ''क्विब्वि-ज्मनिन्क्वनिब्वनिपः''[138] इस सूत्र द्वारा पा धातु से क्वनिप् प्रत्यय का विधान कर पीवा यह रूप निष्पन्न किया है।

यहाँ यह अवधेय है कि यदि पीवा यह प्रयोग भाषा में भी प्रयुक्त माना जाये तो इसमें क्वनिप् प्रत्यय का विधान ''अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'' सूत्र से ही सम्भव होगा, ''आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च''[139] सूत्र से नहीं। इसके विपरीत कतिपय आचार्य पीवा इस प्रयोग को केवल छान्दस मानते हैं।

कुछ आचार्य पीवा इस प्रयोग को केवल छान्दस मानते हैं लेकिन कुछ अन्य आचार्य, चन्द्रगोमी तथा स्वयं भाषावृत्तिकार इसे लौकिक तथा छान्दस उभयविध मानते हैं।

[30] **ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्**[140]– प्रस्तुत सूत्र ब्रह्मादि उपपद रहते हन् धातु से भूत अर्थ में क्विप् प्रत्यय का विधान करता है तदनुसार ''ब्रह्मघ्नां पापसम्मतः'' आदि प्रयोग निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को भी उद्धृत किया है– ''अन्येभ्योऽपीति क्विपि सिद्धे हन्तेः क्विब्वचनं ब्रह्मादिष्वेवेति नियमार्थमिति भाष्यम्''। उनके अनुसार प्रस्तुत सूत्र से निष्पन्न होने वाले सभी प्रयोग ''अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'' सूत्र से क्विप् प्रत्यय होने पर ही सिद्ध हो सकते थे पुनः ब्रह्मादि उपपद रहते हन् धातु से क्विप् प्रत्यय का विधान नियमार्थ किया गया है। यदि हन् धातु से भूत अर्थ में क्विप् प्रत्यय हो तो ब्रह्मादि शब्दों के उपपद रहते ही हो।

भाषावृत्तिकार और भाष्यकार दोनों ही ''ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्'' सूत्र की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु इन दोनों की दृष्टि में इस सूत्र का उद्देश्य भिन्न-भिन्न है। वृत्तिकार के अनुसार यह सूत्र क्विप् प्रत्यय विधायक है लेकिन भाष्यकार के अनुसार प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान क्विप् सूत्रान्तर से सिद्ध है अतः यह सूत्र नियमार्थ है।

[31] **लिटः कानज्वा, क्वसुश्च**[141]– इन दोनों सूत्रों को सामान्यतः वैयाकरण वैदिकसूत्र मानते हैं। भाषावृत्तिकार ने इन सूत्रों की वृत्ति में लिट्, क्वसु

और वा इन तीन शब्दों को अधिकार के रूप में स्वीकार किया है तथा शेष को छान्दस कहा है– "लिटः क्वसुर्वेति त्रयमधिक्रियते। शेषश्छान्दसः"। वृत्तिकार के इन शब्दों से ज्ञात होता है कि वह लिटः स्थानीय क्वसु प्रत्यय को भाषा में प्रयुक्त मानते हैं लेकिन कानच् प्रत्यय उनकी दृष्टि में छान्दस है।

इसके विपरीत न्यासकार ने कित्करणसामर्थ्य से कानच् और क्वसु इन दोनों प्रत्ययों को भाषा में भी प्रयुक्त माना है। उनका कथन है कि कानच् और क्वसु प्रत्ययों वाले जिन वैदिक प्रयोगों में कित्करण से कित् कार्यों की आवश्यकता है, वे प्रकारान्तर से निष्पन्न हो जाते हैं अतः वैदिक प्रयोगों में इस कित्करण की कोई आवश्यकता नहीं। ये कानच्, क्वसु प्रत्यय लोक में भी होते है, ऐसा मान लेने पर तितीर्वान्, तिस्तिराणः आदि लौकिक प्रयोगों में "ऋच्छृताम्" से प्राप्त गुण के निषेध के लिये कित्करण सार्थक है। अनेक कवियों ने भी इन प्रत्ययों वाले शब्दों का प्रयोग किया है। यथा–

"इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वच इति कुमारकाव्ये"।[142]
"उपेयिवाननूचानैर्निन्दितस्त्वं लतामृगेति भट्टिकाव्ये"।[143]
"अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीति गुरोस्तु य इत्यमरः"।[144]

भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में न्यासकार के इष्टिवचन को भी उद्धृत किया है– "न्यासकारस्तु कानच्-क्वसोः कित्करणाद् भाषायामपि प्रयोगमिच्छति"।

वृत्तिकार केवल क्वसु प्रत्यय को ही भाषा में प्रयुक्त मानता है लेकिन न्यासकार क्वसु और कानच् दोनों ही प्रत्ययों को भाषा में प्रयुक्त मानता है।

[32] **भुवश्च**[145]– यह सूत्र केवल भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय का विधान करता है लेकिन भ्राजिष्णुः प्रयोग में भ्राज् धातु से भी इष्णुच् प्रत्यय दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में उक्त प्रयोग के समाधान के लिये कुछ आचार्यों कें मत को निर्दिष्ट किया है– "चकारात् भ्राजिष्णुरित्येके"। इस मत के अनुसार "भुवश्च" सूत्र में पठित चकार अनुक्तसमुच्चयार्थक है अतः भ्राज् धातु से भी इष्णुच् प्रत्यय सम्भव हो जाता है।

[33] **अन्येभ्योऽपि दृश्यते**[146]– सूत्र से काशिका में ध्या धातु से क्विप् प्रत्यय का विधान और "ध्यायतेः सम्प्रसारणं च" उक्तसूत्रस्थ वार्तिक द्वारा

सम्प्रसारण का विधान तथा "हलः"[147] सूत्र से दीर्घ करके धीः शब्द निष्पन्न किया गया है। भाषावृत्ति में प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में पुरुषोत्तमदेव ने भाष्य के मत को उद्धृत किया है– "ध्यायतेर्दधातेर्वा धीरिति भाष्यम्"। इस वचन के अनुसार भाष्यकार के मत में धीः शब्द की निष्पत्ति ध्या अथवा धा दोनों धातुओं से सम्भव है। यहाँ यह अवधेय है कि ध्या धातु से पूर्ववत् क्विप् और सम्प्रसारण होकर धीः शब्द निष्पन्न होता है लेकिन धा धातु से क्विप् प्रत्यय के अनन्तर "घुमास्थागापाजहातिसां हलि"[148] सूत्र से ईत्व करने पर निष्पन्न होता है।

अधिकांश वैयाकरण धीः शब्द की निष्पत्ति ध्या धातु से स्वीकार करते हैं लेकिन भाष्यकार ध्या और धा इन द्विविध धातुओं से उक्त शब्द की निष्पत्ति स्वीकार करते हैं।

[34] **मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च**[149]– यह सूत्र इच्छार्थक, ज्ञानार्थक और पूजार्थक धातुओं से क्त प्रत्यय का विधान करता है। वैयाकरणों के अनुसार प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान उक्त क्त प्रत्यय वर्त्तमानकालिक है, जोकि भूतकालिक क्त प्रत्यय को बाध कर प्रवृत्त होता है जिससे "राज्ञां मतः, राज्ञामिष्टः, राज्ञां बुद्धः" आदि प्रयोग निष्पन्न होते हैं परन्तु "त्वया ज्ञातः, मयार्चितः" इन प्रयोगों में ज्ञानार्थक और पूजार्थक धातुओं से वर्त्तमान अर्थ में क्त प्रत्यय दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। इन प्रयोगों में भूतकालिक क्त प्रत्यय का विधान किया गया है जोकि पाणिनि के किसी भी सूत्र से प्राप्त नहीं। भागवृत्तिकार ने उक्त प्रयोगों की साधुता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। यह बात शरणदेवकृत दुर्घटवृत्ति में उद्धृत भागवृत्ति के इस वचन से भी होती है– "कालदृष्टा एवापशब्दा [इति] भागवृत्तिः"[150]। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भागवृत्तिकार के इष्टि वचन को भी उद्धृत किया है– "इह वर्त्तमानक्तेन भूतक्तस्य बाधनमिष्यते। तेन त्वया ज्ञातो मयार्चित इत्याद्यचिकित्स्यमिति भागवृत्तिः"।[151]

यहाँ यह अवधेय है कि भले ही भागवृत्तिकार ने उक्त शब्दों को अचिकित्स्य कहकर उनकी साधुता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है तथापि कतिपय आचार्यों के मत में इच्छादि अर्थ वाले धातुओं से भूतकाल में भी क्त प्रत्यय सम्भव है क्योंकि "मतिबुद्धि..." सूत्र केवल वर्तमान काल में अप्राप्त क्त प्रत्यय का विधान करता है, न कि भूतकालिक क्त प्रत्यय का बाध। इसलिये इच्छादि अर्थ वाले शब्दों से सामान्यतः भूतकाल में क्त प्रत्यय हो सकता है। दुर्घटवृत्तिकार ने इस आशय

को अपनी वृत्ति में अधिमान दिया है– "कथं "कलहंसराममहितः कृतवानि" ति यमकं महित इति, अनेन भूतक्तस्य बाधनात्। चिन्त्यम्। चिन्ता चात्र "मतिबुद्धि" इत्यादिना वर्त्तमानकाले ह्यप्राप्तः क्तो विधीयते। यस्तु भूतविहितः स मत्यादिभ्यो भवत्येव। भूतक्तस्तु [न] बाध्यते मत्यादिक्तेन। [तेन] वर्त्तमानकाले भूतेऽपि"।[152]

भागवृत्ति के अनुसार इच्छा, ज्ञान और पूजार्थक धातुओं से उक्त सूत्र के द्वारा भूतकालिक क्त प्रत्यय को बाधकर वर्त्तमानकालिक क्त प्रत्यय हो जाता है अतः त्वया ज्ञातः, मयार्चितः आदि प्रयोगों में जो भूतकालिक प्रत्यय दृष्टिगोचर हो रहा है यह सम्भव नहीं है इसलिये उनके मत में इस प्रकार के प्रयोग असाधु माने जायेंगे।

[35] **अनद्यतने लुट्**[153]– यह सूत्र भविष्यद् अनद्यतन अर्थ में लुट् लकार का विधान करता है। यथा– श्वः कर्त्ता, परश्वो भोक्ता इत्यादि में परिलक्षित हो रहा है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्यकार के मत को भी उद्धृत किया है– "इह त्वियं नु कदा गन्ता यैवं पादौ निदधातीत्यद्यतनेऽपि कालविप्रकर्षादुपमानेनानद्यतनत्वमारोप्य लुड़िति भाष्यस्थितिः"। इस मत के अनुसार "इयं नु कदा गन्ता यैवं पादौ निदधाति" इस प्रयोग में भविष्यत् सामान्य परिलक्षित हो रहा है अतः यहाँ लुट् लकार की अपेक्षा लृट् लकार का विधान होना चाहिये था लेकिन प्रयोग में लुट् लकार का ही प्रयोग किया गया है।

भाष्यकार ने इस प्रयोग में काल की दूरी के कारण उपमान के द्वारा अनद्यतन का आरोप कर लुट् लकार का विधान माना है अर्थात् इस स्त्री का गमन इतने धीमे है कि यह आज नहीं जा़येगी, कल या परसों जायेगी। इसी को हम दूसरे शब्दों में यो कह सकते हैं– इसका अद्यतनीय भविष्यत्कालिकगमन अनद्यतन भविष्यत्कालिकगमन जैसा है। इस प्रयोग में प्रयुक्त अनद्यतन, अनद्यतन न होते हुए भी अनद्यतन के समान है।

काशिकाकार ने "परिदेवने श्वस्तनी भविष्यदर्थे वक्तव्या"[154] इस वार्त्तिक द्वारा दुःख की अभिव्यक्ति होने पर लृडर्थ में भी लुट् का विधान किया है। "अयं नु कदाध्येता, य एवमनभियुक्तः" इस प्रयोग में भी लृडर्थ में लुट् का प्रयोग किया गया है।

सामान्यतः भविष्यद् अनद्यतन अर्थ में लुट् लकार का विधान किया जाता है लेकिन भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार दोनों ही उस अवस्था में भी लुट् लकार

का विधान स्वीकार करते हैं, जहाँ अद्यतनीय भविष्यत् अनद्यतनीय भविष्यत् जैसा प्रयुक्त हुआ हो।

[36] **अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्**[155]– प्रस्तुत सूत्र कर्त्तृभिन्न कारक के वाच्य होने पर संज्ञा विषय में घञ् प्रत्यय का विधान करता है। प्रस्तुत सूत्र में अकर्तृग्रहण सामर्थ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत सूत्र केवल कर्त्ता भिन्न कारक में ही घञ्प्रत्यय का विधान करता है। यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि दार और जार इन संज्ञावाचक शब्दों में भी कर्त्ता में ही घञ्प्रत्यय परिलक्षित हो रहा है, जो कि सूत्र निर्देशानुसार सम्भव नहीं। भाषावृत्तिकार ने इस सन्देह के निवारण हेतु प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन निर्दिष्ट किया है– ''इह दारजारौ कर्त्तरीति न वक्तव्यम्। दीर्य्यन्ते तैर्दाराः। जीर्य्यते तेन जार इति करणे सिद्धिरिति स्मृतिः''। इस स्मृतिवचन के अनुसार उक्त प्रयोगों में कर्त्ता में घञ् प्रत्यय नहीं है अपितु इनमें घञ्प्रत्यय का विधान करण में किया गया है।

इस प्रकार दार और जार इन शब्दों में दृश्यमान घञ्प्रत्यय कर्त्ता में नहीं है अपितु करण में है।

[37] **एरच्**[156]– प्रस्तुत सूत्र पर ''अज्विधौ भयादीनामुपसंख्यानम्'' यह वार्त्तिक पढ़ा गया है। वैयाकरणों के अनुसार प्रस्तुत वार्त्तिक क्तादि प्रत्ययों को बाधकर अच् प्रत्यय का विधान करता है, जिससे भयम्, वर्षम्, आदि रूप निष्पन्न होते हैं। यदि उक्त वार्त्तिक को क्तादि प्रत्ययों का सर्वथा बाधक माना जाये तो भीतम्, वृष्टम्, वर्षणम् इन प्रयोगों में दृश्यमान क्त और ल्युट् प्रत्यय की प्रवृत्ति सम्भव नहीं। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में इन प्रयोगों की निष्पत्ति के लिये भागवृत्ति के मत को उद्धृत किया है– ''वासरूपेण क्तादयोऽपि भवन्ति। भीतं शिशुना वृष्टं देवेन वर्षणं मेघस्येति भागवृत्तिः''। इस मत के अनुसार ''वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्'' इस नियम से उक्त वार्त्तिक द्वारा अच् प्रत्यय के विधान के साथ-साथ क्तादि प्रत्ययों की भी प्रवृत्ति सम्भव है, जिससे भीतम्, वृष्टम् और वर्षणम् ये प्रयोग निष्पन्न हो जाते हैं।

वृत्तिकार के अनुसार उक्त वार्त्तिक क्तादि प्रत्ययों को बाधकर अच् प्रत्यय का विधान करता है लेकिन भागवृत्ति के अनुसार वासरूपविधि द्वारा पक्ष में क्तादि प्रत्यय भी होते हैं।

[38] **ऋदोरप्**[157]– प्रस्तुत सूत्र ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं को अप् प्रत्यय का विधान करता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र के वास्तविक स्वरूप के विषय में उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को उद्धृत किया है– "ऋदिति दकारोऽयमुच्चारणार्थ:। नैष तकार इति भाष्यम्" अर्थात् भाष्य के अनुसार इस सूत्र का पदच्छेद ऋद् ओ: [उ] और अप् है। ऋद् इस पद में जो दकार का निर्देश किया गया है वह केवल उच्चारणार्थ है, जिसके कारण उत्तरवर्त्ती "उ" के द्वारा ह्रस्व या दीर्घ दोनों प्रकार के उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय सम्भव हो जाता है। यदि ऋद् इस पद में दकार के स्थान पर तकार का पाठ किया जाता तो "तपरस्तत्कालस्य" के द्वारा उवर्ण स्वकाल का बोधक होने से केवल ह्रस्व उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होता है न कि दीर्घ उवर्णान्त धातुओं से। जबकि ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों प्रकार के उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय उपलब्ध होता है। इसीलिये भाष्यकार ने ऋत् में तपरकरण के निर्देश का प्रतिषेध किया है।

प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों प्रकार के उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे प्रतीत होता है कि भाषावृत्तिकार भी भाष्य के उक्त मत से सहमत है।

भाषावृत्तिकार तथा भाष्यकार दोनों ही "ऋदोरप्" सूत्र का पदच्छेद ऋद् ओ: अप् यह स्वीकार करते हैं और इसमें प्रयुक्त दकार को उच्चारणार्थ स्वीकार करते है।

[39] **करणेऽयोविद्रुषु**[158]– प्रस्तुत सूत्र द्वारा द्रु पूर्वक हन् धातु से करण में अण् प्रत्यय तथा घनादेश होने से द्रुघन: यह रूप निष्पन्न होता है परन्तु कतिपय आचार्य द्रुघन: के स्थान पर द्रुघण: ऐसा पाठ स्वीकार करते हैं। उनके मत में न को णत्व का विधान किया जाता है। यह णत्व दो प्रकार से सम्भव है– द्रुघण: इस शब्द का पाठ अरीहणादिगण में है अत: गणपाठ सामर्थ्य से इसमें णत्व का विधान किया जा सकता है अथवा "पूर्वपदात् संज्ञायामग:"[159] सूत्र से भी यहाँ णत्व सम्भव है। जो आचार्य णत्व पक्ष को स्वीकार करते हैं भाषावृत्तिकार ने उनके मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– "णत्वे द्रुघण इति केचित्"।

[40] **संज्ञायां समजनिषदनिपातमनविदषुञ्शीङ्भृञिण:**[160]– यह सूत्र भृञ्, मन्, और षुञ् धातुओं से संज्ञा अर्थ में क्यप् प्रत्यय का विधान करता है लेकिन भृति, मति और आसुति इन प्रयोगों में संज्ञार्थ होने पर भी क्यप् प्रत्यय

न होकर क्तिन् प्रत्यय दृष्टिगोचर हो रहा है। न्यासकार ने उक्त प्रयोगों को निपातन से सिद्ध किया है। उनका कथन है कि "कर्मणि भृतौ"[161], "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च"[162] और "रजः कृष्यासुतिपरिषदो वलच्"।[163] इन सूत्रों में ये शब्द इसी रूप में प्रयुक्त हुए हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में न्यासकार के कथन को उद्धृत किया है–

"कथं भृतिर्मतिरासूतिरिति निपातनादिति न्यासकृत"।

"संज्ञायां समज...." सूत्र द्वारा संज्ञा विषय में जिन धातुओं से स्त्रीत्वार्थक क्यप् प्रत्यय का विधान किया गया है उनमें सम् पूर्वक अस् धातु का निर्देश नहीं है परन्तु समस्या शब्द में सम् पूर्वक अस् धातु में भी स्त्रीत्वार्थक क्यप् प्रत्यय दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस प्रयोग के समाधान हेतु कुछ आचार्यों का मत उद्धृत किया है– "बाहुल्याद् समस्येत्येके"। इस मत के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में बहुल ग्रहण की अनुवृत्ति आती है अतः बाहुलकात् अनिर्दिष्ट धातु से भी क्यप् प्रत्यय सम्भव हो जाता है।

सूत्रार्थ निर्देशानुसार भृञ्, मन् और षुञ् धातुओं से संज्ञार्थ में केवल क्यप् प्रत्यय सम्भव है लेकिन न्यासकार के अनुसार इन धातुओं से निपातन से क्तिन् प्रत्यय भी हो जाता है।

[41] **अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा**[164]– यह सूत्र केवल भाव में क्त्वा प्रत्यय का विधान करता है। जिन धातुओं से भाव में क्त्वा प्रत्यय का विधान होता है, वे वाक्य में अकर्मक शब्द के रूप में प्रयुक्त होते हैं तथा वैयाकरणों के अनुसार उसका कर्म के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उक्त सिद्धान्त के विपरीत भागवृत्ति का एक विशिष्ट मत उपस्थित किया है– "भावेऽपि हि प्रत्यये सकर्मकाद् धातोः पश्चात् कर्मसम्बन्धो भवत्येव पाक ओदनस्य, कटं कृत्वा शेते, गम्यते मया ग्राममिति भागवृत्तावुक्तम्"। इस मत के अनुसार यदि सकर्मक धातु से भाव में किसी प्रत्यय का विधान किया जाये तो उस भावप्रत्ययान्त शब्द का कर्म के साथ अवश्य सम्बन्ध होता है। यथा– पाक ओदनस्य, कटं कृत्वा शेते, गम्यते मया ग्रामम् इन प्रयोगों में पाक, कृत्वा और गम्यते इन भावप्रत्ययान्त शब्दों का क्रमशः ओदन, कट और ग्राम इन कर्मवाचक शब्दों के साथ सम्बन्ध दृष्टिगोचर हो रहा है।

वैयाकरणों के अनुसार जिन धातुओं से भाव में प्रत्यय होता है वे वाक्य में अकर्मक शब्द के रूप में प्रयुक्त होते हैं लेकिन भागवृत्ति के अनुसार यदि सकर्मक धातु से भाव में प्रत्यय का विधान किया जाये तो उस भावप्रत्ययान्त शब्द का कर्म के साथ सम्बन्ध होता है।

[42] **संज्ञायाम्**[165]– यह सूत्र आधारोपपदबन्ध् धातु से संज्ञा अर्थ में णमुल् प्रत्यय का विधान करता है जिससे गुप्तौ बध्नाति गुप्तिबन्धं बध्नाति, चक्रेबध्नाति चक्रबन्धं बध्नाति इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। काशिकाकार ने अट्टालिकाबन्धं बद्धः इसे संज्ञा शब्द मानकर ''संज्ञायाम्'' सूत्र से ही निष्पन्न किया है। काशिकाकार ''अधिकरणे बन्धः''[166] और ''संज्ञायाम्'' इन दोनों सूत्रों की पृथक्-पृथक् व्याख्या प्रस्तुत करता है जिससे उनके मत में जहाँ संज्ञा विषय में बंध धातु हो, वहाँ ''संज्ञायाम्'' सूत्र से णमुल् प्रत्यय होता है। उनके अनुसार अट्टालिकाबन्धं बद्धः यह प्रयोग भी संज्ञावाचक है अतः यहाँ ''संज्ञायाम्'' सूत्र से ही णमुल् प्रत्यय होगा।

इसके विपरीत भाष्यकार ''अधिकरणे बन्धः'' और ''संज्ञायाम्'' इन दोनों सूत्रों की एकवाक्यता स्वीकार करते हैं जिससे उनके मत में अधिकरणकारक उपपद होने पर संज्ञा विषय में बन्ध् धातु से णमुल् प्रत्यय होगा। मयूरिकाबन्धं बद्धः, चाण्डालिकाबन्धं बद्धः, अट्टालिकाबन्धं बद्धः इन प्रयोगों में भाष्य के मत में न तो अधिकरणकारक उपपद है और न ही ये संज्ञाशब्द हैं अतः ये ''अधिकरणेबन्धः संज्ञायाम्'' इन सूत्रों के विषय नहीं बनते। इसलिये मयूरिकाबन्धं बद्धः, चाण्डालिकाबन्धं बद्धः, अट्टालिकाबन्धं बद्धः ये प्रयोग बन्ध् धातु से मयूरिका इव बद्धः, चाण्डालिका इव बद्धः, अट्टालिका इव बद्धः इन अर्थों में ''उपमाने कर्मणि च''[167] सूत्र द्वारा णमुल् प्रत्यय का विधान करने से निष्पन्न होते हैं। भाष्यकार के उक्त आशय को स्पष्ट करते हुए उद्द्योत टीका में कहा गया है कि संज्ञा के अभाव और अनधिकरण विषय में भी ''उपमाने कर्मणि च'' सूत्र से ही णमुल् प्रत्यय होगा–''एवमनधिकरणविषयेऽपि तेनैव साध्यमिति भावः''।[168] भाषावृत्तिकार ने भाष्य के उक्त मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में अभिव्यक्त किया है– ''इह तु मयूरिकाबन्धं बद्धश्चाण्डालिकाबन्धं बद्धोऽट्टालिकाबन्धं बद्ध इत्युपमाने कर्मणि चेति णमुलिति भाष्यम्''।

भाष्यकार और भाषावृत्तिकार दोनों ही ''अधिकरणे बन्धः'' और ''संज्ञायाम्'' इन दोनों सूत्रों की एकवाक्यता स्वीकार करते हैं, किन्तु उनके मत

में एकवाक्यता प्राप्त उक्त दोनों सूत्रों का विषय न होने से मयूरिकाबन्धं बद्धः आदि प्रयोग ''उपमाने कर्मणि च'' सूत्र द्वारा निष्पन्न होते हें।

[43] **कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः**[169]– प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति के अनुसार ''निमूलसमूलयोः कषः''[170] इत्यादि सूत्रों में णमुल् प्रकृति का ही अनुप्रयोग करने की सम्मति दी गई है। किञ्च उन सूत्रों में इसी प्रकार के उदाहरण निमूलकाषं कषति, समूलकाषं चकषू रुदन्तः दिये गये हैं।

भागवृत्ति के अनुसार यह णमुल् का अनुप्रयोग क्रियासमभिहार के अनुप्रयोग के समान व्यवधान में भी हो जाता है। यथा– ''उपमाने कर्मणि च''[171] सूत्र उपमानवाचककर्मकारक तथा कर्त्तृकारक के उपपद होने पर भी धातु से णमुल् प्रत्यय का विधान करता है परन्तु ''घृतनिधायमुदकं निदधाति'' इस प्रयोग में उपमानवाचक कर्मकारक घृत और धा [डुधाञ्] धातु के मध्य नि का व्यवधान होने पर भी णमुल् प्रत्यय हो गया है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भागवृत्ति के उक्त तथ्य को स्पष्ट किया है– ''स च क्रियासमभिहारानुप्रयोगवद् व्यवधानेऽपि भवति। यथा घृतनिधायमुदकं निदधातीति भागवृत्तिः''।

यद्यपि सूत्र निर्देशानुसार कर्मकारक या कर्त्तृकारक के उपपद होने पर ही धातु से णमुल् प्रत्यय होता है किन्तु भागवृत्ति के अनुसार कर्मकारक आदि तथा धातु के बीच में व्यवधान होने पर भी णमुल् प्रत्यय होता है। वृत्तिकार भी भागवृत्ति के उक्त मत से सहमत प्रतीत होता है क्योंकि उसने ''उपमाने कर्मणि च'' सूत्रपर इसी प्रकार के व्यवधान वाले उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

[44] **''न षट्स्वस्रादिभ्यः''**[172]– प्रस्तुत सूत्र ''षट्संज्ञक'' तथा स्वसृ आदि प्रातिपदिकों से स्त्रीप्रत्यय का निषेध करता है। भाषावृत्तिकार ने स्वस्रादिगण में इन सात शब्दों का पाठ किया है– स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ अतः उनके मत में इन शब्दों से स्त्रीलिङ् में ''ऋन्नेभ्योङीप्'' सूत्र द्वारा प्राप्त ङीप् का निषेध होने से अनङादि विधि द्वारा ''स्वसा, तिस्रः, चतस्रः, ननान्दा, दुहिता, याता, माता'' ये रूप निष्पन्न होते हैं। किञ्च स्वस्रादिगण में नप्तृ का पाठ न होने से उनके मत में ''नप्तृ'' शब्द के स्त्रीलिङ्ग में ङीप् का निषेध न होने से ''नप्त्री'' यह रूप निष्पन्न होगा। अमरकोश में भी ''नप्त्री'' यह प्रयोग पाया जाता है– ''नप्त्रीपौत्री सुतात्मजेति''।[173]

परन्तु इसके विपरीत भागुरि के मत में स्वस्रादिगण में इन प्रातिपदिकों के अतिरिक्त ''नप्तृ'' प्रातिपदिक का भी पाठ किया गया है अत: उसके मत में ''नप्तृ'' प्रातिपदिक से भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् का निषेध होने से अनङादेश, उपधादीर्घादि द्वारा ''नप्ता'' यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भागुरि के मत को निर्दिष्ट किया है– ''स्वस्रादे:। स्वसा। तिस्र:। चतस्र:। ननान्दा। दुहिता। याता। माता नप्तेति भागुरि:''।

पुरुषोत्तमदेव के मत में ''नप्तृ'' शब्द का स्त्रीलिङ्ग में ''नप्त्री'' यह रूप निष्पन्न होता है लेकिन भागुरि के मत में ''नप्ता''।

[45] **डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्**[174]– प्रस्तुत सूत्र मन्नन्त और अन्नन्त बहुव्रीहि से विकल्प करके डाप् का विधान करता है जिससे बहुसुत्वन् शब्द में ''वनो र च''[175] सूत्र से प्राप्त ङीप् और रन्तादेश का ''अनो बहुव्रीहे:''[176] सूत्र से निषेध, वैकल्पिक डाप् प्रत्यय होने से बहुसुत्वा नगरी यह रूप निष्पन्न होता है। प्रस्तुत सूत्र उसी स्थल पर डाप् प्रत्यय का विधान करता है जिस स्थल पर ''अनो बहुव्रीहे:'' सूत्र से ङीप् का निषेध होता है अत: डाबभाव पक्ष में ङीप् का निषेध भी नहीं होता। इस प्रकार डाबभाव और प्रतिषेधाभाव से रहित स्थल में ''वनो र च'' सूत्र से ङीप् और रन्तादेश भी हो जाता है, जिससे बहुसुत्वरी यह पाक्षिक रूप भी निष्पन्न हो जाता है। यह पाक्षिक डाबभाव और प्रतिषेधाभाव स्थल तभी उपलब्ध हो सकता है, जब प्रस्तुत सूत्र में ''अन्यतरस्याम्'' ग्रहण किया जाये भाषावृत्तिकार ने भाष्य के मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– ''अन्यतरस्यां ग्रहणाड्डाप्प्रतिषेधाभ्यां मुक्ते ङीब्राविति भाष्यम्'' अर्थात् भाष्यकार के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में अन्यतरस्याम् ग्रहणसामर्थ्य से डाप् और प्रतिषेध से रहित स्थल में ङीप् और रन्तादेश हो जाते हैं।

कतिपय आचार्यों के मत में ''डाबुभाभ्याम्...'' सूत्र में निर्दिष्ट अन्यतरस्याम् पद विकल्प का बोधक न होकर स्पष्टार्थक है क्योंकि उनके अनुसार उक्त सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' शब्द के निर्देश के बिना भी डाप् विकल्प करके ही होगा क्योंकि यदि डाप् नित्य होता तो डाब्वचन से ही ङीप् की निवृत्ति सम्भव थी पुन: ''अनो बहुव्रीहे:'' से ङीप् का निषेध व्यर्थ था। इस प्रकार ङीप् निषेधक डाब्वचनसामर्थ्य से ही विकल्प से डाप् प्रत्यय सिद्ध है। भाष्यकार के अनुसार डाप् और ङीप् निषेधाभाव स्थल में बहुव्रीहि समास में ''वनो र च'' सूत्र द्वारा विकल्प से ङीप् और रन्तादेश विधान हेतु सूत्र में निर्दिष्ट अन्यतरस्याम् पद सार्थक है।

कतिपय वैयाकरणों के मत में "डाबुभाभ्याम्...." सूत्र में निर्दिष्ट अन्यतरस्याम् पद स्पष्टार्थक है लेकिन भाष्यकार और भाषावृत्तिकार के मत में यह पद बहुव्रीहिसमास में पक्ष में ङीप् ओर रन्तादेश के विधान का हेतु है।

[46] **सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः**[177]– प्रस्तुत सूत्र "प्राचां ष्फस्तद्धितः"[178] सूत्र से यञन्त प्रातिपदिकों से विकल्प से जो ष्फ प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसके स्थान में नित्य ही ष्फ प्रत्यय का विधान करता है। पुरुषोत्तमदेव के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में सर्वत्रपद का ग्रहण नित्य ष्फप्रत्यय के ग्रहण के लिये किया गया है लेकिन स्मृति के नित्यग्रहण का प्रयोजन नित्य ष्फ प्रत्यय के विधान के साथ-साथ बाधक के बाध के लिये भी माना है– "सर्वत्रग्रहणाच्चाब्विषयेऽपि। आवट्यायनीति स्मृतिः"। इस स्मृतिवचन के अनुसार यञन्त प्रातिपदिक आवट्या शब्द से प्रस्तुत सूत्र से प्राप्त ष्फ प्रत्यय को बाधकर परत्वात् "आवट्या च" सूत्र से चाप् प्रत्यय की प्राप्ति है। इस चाप् को बाधकर ष्फ प्रत्यय के विधान हेतु भी सूत्र में सर्वत्रग्रहण की आवश्यकता है, जिससे आवट्यायनी यह रूप निष्पन्न होता है।

इस प्रकार स्मृतिवचन के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में सर्वत्रग्रहण का प्रयोजन नित्य ष्फ प्रत्यय का विधान तथा चाप् विषय में बाधक के बाध का विधान माना गया है।

[47] **मनो रौ वा**[179]– प्रस्तुत सूत्र द्वारा मनु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय, ऐकारादेश और औकारादेश होने पर मनायी, मनावी ये दो रूप निष्पन्न होते हैं।

कुछ आचार्यों का कथन है कि प्रस्तुत सूत्र में पठित वा शब्द का सम्बन्ध केवल ऐकार तथा औकारादशों से नहीं अपितु ङीप् के साथ भी है अतः ङीप्प्रत्यय भी विकल्प से होता है। इसलिये मनायी और मनावी के अतिरिक्त स्त्रीलिङ्ग में ङीबभाव पक्ष में "मनुः" यह रूप भी निष्पन्न होता है परन्तु कतिपय अन्य आचार्यों का कथन है कि वा का सम्बन्ध केवल ऐकार तथा औकारादेश के साथ ही है, ङीप् के साथ नहीं अतः उनके मत में स्त्रीलिङ्ग में 'मनुः' यह रूप निष्पन्न नहीं होगा। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इन द्विविध मतों को निर्दिष्ट किया है– "मनुरपीत्येके। नेत्यन्ये"।

[48] **एको गोत्रे**[180]– प्रस्तुत सूत्र गोत्रापत्य की विवक्षा में भेद से प्रत्येक अपत्य से प्राप्त प्रत्ययों का नियमन करता है। इस सूत्र के द्वारा गोत्रापत्य में प्रथमशब्द

ही प्रत्यय को प्राप्त करता है, अनन्तर अपत्यप्रत्ययान्त नहीं। जैसे- गर्गस्य गोत्रापत्यम्- इस अर्थ की विवक्षा में मूल गर्ग शब्द से ''गर्गादिभ्यो यञ्''[181] सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर गार्ग्यः यह रूप निष्पन्न होता है। पुनः गार्ग्यस्य पुत्रः इस अर्थ में गार्ग्य शब्द से प्राप्ति होने पर भी कोई प्रत्यय नहीं होगा। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को उद्धृत किया है- ''उक्तञ्च भाष्ये एको गोत्र इति। गोत्रे एकः प्रथमशब्द एव प्रत्ययमुत्पादयतीति। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। तत्पुत्रोऽपि गार्ग्यः'' अर्थात् गोत्र में एक ही प्रत्यय होता है।

भाष्यकार और भाषावृत्तिकार दोनों ही गोत्रापत्य में केवल प्रथमशब्द से ही प्रत्यय का विधान स्वीकार करते हैं।

[49] **गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्**[182]– प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट ''अस्त्रियाम्'' पद के निर्देशानुसार स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान युवापत्य अर्थ की विवक्षा में गोत्रप्रत्ययान्त से कोई तद्धितप्रत्यय नहीं होता। इसीलिये वात्स्यस्य गोत्रापत्यं स्त्री वात्सी यहाँ कोई युवापत्यप्रत्यय नहीं हुआ है।

स्मृतिवचन के अनुसार जब गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीलिङ्ग में युवापत्यार्थक तद्धितप्रत्यय ही नहीं होता है तो उसकी युवसंज्ञा भी निरर्थक है। क्योंकि संज्ञा भी किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिये की जाती है अतः प्रस्तुत सूत्र गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीलिङ्ग में युवापत्यार्थकप्रत्यय का निषेध नहीं करता है अपितु युवसंज्ञा का ही निषेध करता है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन को भी उद्धृत किया है- ''युवसंज्ञैव निषिद्ध्यत इति स्मृतिः''। सिद्धान्तकौमुदी की तत्त्वबोधिनी टीका में भी उक्ताशय की पुष्टि की गई है- ''अत्रायमाशयः- ''अस्त्रियाम्'' इति योगो विभज्यते। ''यूनि'' इति शब्दस्वरूपमनुवर्तते। परिभाषा चेयम्। यत्र युवसंज्ञाविधानं तत्र ''अस्त्रियाम्'' इत्युपतिष्ठत इति सिद्धस्य गतिरियम्''।[183]

इस प्रकार स्मृतिवचन के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में स्त्रीलिङ्ग में युवार्थकापत्यप्रत्यय के प्रतिषेध की अपेक्षा युवसंज्ञा का ही प्रतिषेध करना चाहिये।

[50] **शुभ्रादिभ्यश्च**[184]– शुभ्रादिगण में गङ्गा शब्द का पाठ किया गया है अतः गङ्गा शब्द से अपत्य अर्थ में प्रस्तुत सूत्र से ढक् प्रत्यय करने पर गाङ्गेयः यह रूप निष्पन्न होता है। इस गङ्गा शब्द का पाठ तिकादिगण में भी है अतः

कुछ आचार्यों के मत में गङ्गा शब्द से अपत्य अर्थ में ''तिकादिभ्यः फिञ्''।[185] सूत्र से फिञ् प्रत्यय होने पर गाङ्गायनिः यह रूप भी निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में कुछ आचार्यों के इस मत को उद्धृत किया है–

''तिकादिरप्ययङ्गङ्गाशब्दः। ततो गाङ्गायनिरित्येके।''

[51] **कौशल्यकार्मार्याभ्याञ्च**[186]– प्रस्तुत सूत्र ''कौशल्य'' और ''कार्मार्य'' शब्दों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय का विधान करता है, जिससे ''कौशल्यायनिः''-और ''कार्मार्यायणिः'' ये दोनों रूप निष्पन्न होते हैं। यहाँ यह अवधेय है कि कौशल्य और कार्मार्य शब्द यङ् और ण्यप्रत्ययान्त रूप हैं। ये दोनों ही प्रत्यय अपत्य अर्थ में होते हैं, यदि इनसे पुनः फिञ् प्रत्यय किया गया तो वह अपत्यार्थक प्रत्यय न होकर युवसंज्ञक प्रत्यय होगा जोकि अभिमत नहीं। इस सन्देह के निवारण हेतु वृत्तिकार ने स्मृतिवचन को उद्धृत किया है– ''दशुकोशलकर्मारच्छागवृषाणां युड् वादिष्टस्येति स्मृत्यन्तरम्''। इस वचन के अनुसार अपत्यप्रत्ययान्त कौशल्य और कार्मार्य शब्दों से फिञ् प्रत्यय नहीं होता अपितु ''कोशल, कर्मार, दगु, छाग और वृष'' इन मूलभूत प्रकृतियों से ही फिञ् प्रत्यय और उसके स्थान में आयनादेश के बाद युडागम कर आदिवृद्धि द्वारा ''कौशल्यायनिः, कार्मार्यायणिः, दागव्यायनिः, छाग्यायनिः और वार्ष्यायनिः'' ये रूप निष्पन्न होते हैं।

यहाँ यह भी अवधेय है कि जब कोशल और कर्मार शब्दों से ही फिञ प्रत्यय का विधान करना था तो प्रस्तुत सूत्र में ''कौशल्य'' और ''कार्मार्य'' ये शब्द प्रकृति के रूप में क्यों निर्दिष्ट किये गये?'' इस सन्देह का निवारण भी पूर्वोक्त स्मृतिवचन से हो जाता है। स्मृति ने फिञ् प्रत्यय और युडागम का विधान एक साथ नही किया है क्योंकि ऐसा करने पर फिञ् प्रत्यय, प्रत्यय का आदि न रहता जिससे उसको आयनादेश सम्भव नहीं था। अतः जिस प्रकार प्रत्यय के आदेश विधान के अनन्तर युडागम किया जाता है, उसी प्रकार ''कौशल्याकार्मार्याभ्याञ्च'' सूत्र में निर्दिष्ट ''कौशल्य और कार्मार्य'' शब्दों में फिञ् प्रत्यय के सन्नियोग से कौशल्य और कार्मार्य इन प्रकृतिरूपों का निपातन किया गया है। कौशल्यायनिः आदि प्रयोगों में श्रूयमाण प्रकृति का भाग कौशल्यादि है। इस श्रूयमाण प्रकृतिभाग के अनुकरण के लिये सूत्र में कौशल्य और कार्मार्य प्रकृति का निर्देश किया गया है।

वृत्तिकार और स्मृति दोनों ही कोशलाद्दि मूलभूत प्रकृतियों से फ़िञ् प्रत्यय तथा उसके स्थान में आयनादेश का विधान करने के बाद ही युडागम का विधान स्वीकार करते हैं।

[52] "**कुरुनादिभ्यो ण्यः**"[187]– यह सूत्र क्षत्रियजनपदवाची कुरु शब्द से ण्यप्रत्यय का विधान करता है लेकिन "माघ" तथा "वेणीसंहार" ने अपने कतिपय श्लोकांशों में क्षत्रिय जनपदवाची होने पर भी ण्यप्रत्ययान्त कौरव्य शब्द का प्रयोग नहीं किया है अपितु "कौरव्य" के स्थान पर "कौरव" शब्द का प्रयोग किया है। यथा– "कथं माघे "परिरेभिरे कुकुरकौरवस्त्रिय" इति। तथा वेणीसंहारे "रक्ष्यन्तां कौरवा" इति" अतः इन प्रयोगों का साधुत्वनिर्वाह किस प्रकार से हो? इस संबंध में भाषावृत्तिकार ने अनेक मतों को उद्धृत किया है– "अजनपदविवक्षयेत्येके। विषयो देश इत्यणि तात्स्थ्यादित्यन्ये। तस्येदमिति विवक्षयेत्यपरे"। भाषावृत्तिकार के अनुसार इन प्रयोगों में जनपद की विवक्षा का परित्याग कर अपत्यार्थ में "कुर्वादिभ्यो ण्यः"[188] सूत्र से ण्यप्रत्यय का विधान किया जा सकता है। कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि कुरु देश में निवास करने के कारण कुरु शब्द से "तस्य विषयो देशः" इस अर्थ में "विषयो देशे"[189] सूत्र से यहाँ अण् प्रत्यय सम्भव है।

कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि "तस्येदम्" की विवक्षा करने पर "तस्येदम्"[190] सूत्र से यहाँ अण् प्रत्यय हो जाता है। इस प्रकार सभी के मत में माघ और वेणीसंहार के उक्त प्रयोग निष्पन्न हो जाते हैं।

[53] **कम्बोजाल्लुक्**[191]– प्रस्तुत सूत्र कम्बोज शब्द से विहित तद्राजसंज्ञकअञ्प्रत्यय का लोप करता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन को उद्धृत किया है– "कम्बोजादिभ्यस्तद्राजस्य लुग्वचनमिति स्मृतिः"। इस वचन के अनुसार केवल कम्बोज शब्द से ही तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लोप नहीं होता अपितु चोलादि शब्दों से भी होता है, जिससे कम्बोजानां चोलानां-शकानां-केरलानां वाऽपत्यं राजा इस विग्रह में कम्बोज, चोल, शक और केरल शब्दों से "जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्"[192] सूत्र से विधीयमान अञ्प्रत्यय की "ते तद्राजाः"[193] सूत्र से तद्राज संज्ञा होने से "कम्बोजाल्लुक्" सूत्र से उसका लोप हो जाता है, जिससे कम्बोजः, चोलः, शकः और केरलः ये रूप निष्पन्न हो जाते हैं।

सूत्रकार के अनुसार केवल कम्बोज शब्द के ही तद्राजसंज्ञकप्रत्यय का लोप होता है लेकिन स्मृति के अनुसार चोलादि शब्दों के तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का भी लोप होता है। स्मृति के इस वचन से भाषावृत्तिकार भी सहमत है क्योंकि स्मृतिवचन के निर्देश के अनन्तर ही उसने सूत्रोदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

[54] **भिक्षादिभ्योऽण्**[194]– जयादित्य तथा भागवृत्तिकार ये दोनों ही आचार्य युवति शब्द का पाठ भिक्षादिगण में स्वीकार करते हैं लेकिन जयादित्य के अनुसार युवति शब्द से "भिक्षादिभ्योऽण्" सूत्र द्वारा युवतीनां समूहः इस अर्थ में अण् प्रत्यय होने से यौवतम् यह रूप निष्पन्न होता है लेकिन भागवृत्ति के अनुसार उक्त सूत्र से अण् प्रत्यय के अनन्तर "भस्याढ़े तद्धिते"[195] वार्तिक द्वारा पुंवद्भाव होने पर यौवनम् यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने इन द्विविध मतों को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है "युवति शब्दात् यौवतमिति जयादित्यः। भस्याढ़े तद्धित इति पुंवद्भावे यौवनमिति भागवृत्तिः।"

यहाँ यह अवधेय है कि भाष्यकार और वार्त्तिककार दोनों ने ही भिक्षादिगण में युवति शब्द के पाठ का प्रत्याख्यान किया है। उनके मत में युवति शब्द से "तस्य समूहः"[196] सूत्र से अण् प्रत्यय तथा "भस्याढ़े तद्धिते" सूत्र से पुंवद्भाव होने पर यौवनम् यह रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी के शतृप्रत्ययान्त युवत् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्प्रत्यय का विधान कर युवती शब्द निष्पन्न किया है। उन्होंने इसी युवती शब्द से "अनुदात्तादेरञ्"[197] इस सूत्र से समूह अर्थ में अञ्प्रत्यय का विधान कर यौवतम् यह रूप निष्पन्न किया है।[198]

जयादित्य तथा भागवृत्तिकार दोनों ही भिक्षादिगण में युवति शब्द का पाठ स्वीकार करते हैं परन्तु जयादित्य के मत में युवति शब्द से अण् प्रत्यय होने पर यौवतम् यह रूप निष्पन्न होता है लेकिन भागवृत्ति के अनुसार यौवनम्।

[55] **शेषे**[199]– सूत्र के विषय में वैयाकरणों में द्विविध मत पाये जाते हैं। कुछ आचार्य इस सूत्र को केवल अधिकारसूत्र मानते हैं परन्तु कुछ आचार्यों के मत में यह सूत्र अधिकार और लक्षण उभयविध सूत्र है। इसमें प्रथम मत भागवृत्ति का है और द्वितीय मत जयादित्य का। भागवृत्ति के अनुसार "चाक्षुषं रूपम्, श्रावणः शब्दः" आदि प्रयोगों में अण् प्रत्यय का विधान "तस्येदम्"[200] सूत्र से ही सम्भव हो जाता है अतः इन प्रयोगों में अण् प्रत्यय विधान के लिए "शेषे" सूत्र की कोई उपयोगिता नहीं। इसलिए 'शेषे' यह उनके मत में केवल अधिकार सूत्र है, विधायक नहीं।

इसके विपरीत जयादित्य "शेषे" सूत्र को अधिकार और लक्षण उभयविध सूत्र मानता है। अधिकारसूत्र होने के कारण उत्तरवर्ती सूत्रों में इसकी अनुवृत्ति जाती है और लक्षणसूत्र होने के कारण जिन उत्तरवर्त्ती सूत्रों में ग्रहणादि जिन अर्थों में अणादि प्रत्यय का विधान नहीं पाया जाता है, उन अर्थों में भी प्रस्तुत सूत्र से अणादि प्रत्यय का विधान सम्भव हो जाता है। वृत्तिकार ने उक्त द्विविध मत उक्त सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्ति में उद्धृत किये हैं– "इह चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावण: शब्द:। अश्वैरुह्यते अश्वो रथ:। चातुरं शकटम्। दृषदि पिष्टा दार्षदा माषा:। औदूखला: सक्तव:। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्ष इति सामान्येन तस्येदमिति विवक्षायामिति भागवृत्ति:। शेष इत्यधिकारो लक्षणञ्चेतिजयादित्य:"।

प्रस्तुत सूत्र में "चाक्षुषं रूपम्" आदिप्रयोगों की सिद्धि के लिये वृत्तिकार ने अपना कोई मत निर्दिष्ट नहीं किया है। जिससे ज्ञात होता है कि वे "शेषे" इस सूत्र को अधिकारसूत्र ही मानते हैं और अणादि प्रत्ययों का विधान "तस्येदम्" आदि सूत्रों से ही स्वीकार करते हैं।

पदमञ्जरीकार ने भी "शेषे" सूत्र को अधिकारसूत्र ही माना है, लक्षणसूत्र नहीं– "तत्र "तस्येदम्" इत्येव चाक्षुषादय: सिध्यन्ति, दार्षदादयस्तु "संस्कृतं भक्षा:" इति, तस्माल्लक्षणत्वं नातीवोपयुज्यते"।[201]

आचार्य जयादित्य के अनुसार "शेषे" यह सूत्र अधिकार और लक्षण उभयविध सूत्र है लेकिन भागवृत्ति के अनुसार यह सूत्र केवल अधिकारसूत्र है। भाषावृत्तिकार भी प्रस्तुत सूत्र को अधिकारसूत्र मानकर ही चलता है।

[56] **कोपधादण्**[202]– इक्ष्वाकु शब्द से देश अर्थ में "ओर्देशे ठञ्"[203] सूत्र द्वारा ठञ् प्रत्यय की प्राप्ति है लेकिन "अण्ग्रहणादुवर्णादपि देशे–ऐक्ष्वाक इत्येके" इस वचन के अनुसार कुछ आचार्यों के मत में "कोपधादण्" सूत्र में अण्ग्रहणसामर्थ्य से उवर्णान्त शब्द से भी देश अर्थ में उक्त सूत्र से अण्प्रत्यय हो जाता है जिससे ऐक्ष्वाक: यह रूप निष्पन्न होता है।

[57] **गहादिभ्यश्च**[204]– प्रस्तुत सूत्र से जन, पर और देव इन शब्दों से छप्रत्यय के विधान के अनन्तर "कुग् जनस्य परस्य च" और "देवस्य चेति वक्तव्यम्" इन द्विविध वार्तिकों से कुगागम का विधान करने के बाद जनकीयम्, परकीयम् और देवकीयम् ये त्रिविध रूप निष्पन्न किये गये हैं।

यहाँ यह अवधेय है कि भाषावृत्ति में उक्त त्रिविध रूपों में कुगागम के लिये जहाँ दो पृथक्-पृथक् वार्त्तिकों के साथ-साथ राजन् तथा स्व शब्दों से भी कुगागम हेतु एक ही वार्त्तिक का निर्देश करता है,[205] जिससे उनके मत में राजकीयम् और स्वकीयम् ये दो भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले प्रयोग भी निष्पन्न होते हैं। वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में चान्द्रव्याकरण के उक्त अभिप्राय को निर्दिष्ट किया है– "चान्द्रास्तु परजनदेवराज्ञां कुक् चेति पठन्ति, स्वस्य च। स्वकीयम्"। वृत्तिकार का यह भी कथन है कि जहाँ चान्द्रव्याकरण स्वकीयम् यह प्रयोग स्वीकार करता है, वहीं आचार्य वामन स्वकीयम् रूप के स्थान पर स्व शब्द से "तस्येदम्" सूत्र से अण् प्रत्यय तथा ऐजागम का विधान कर सौवम् यह रूप निष्पन्न करता है। वृत्तिकार ने उक्तसूत्र की ही वृत्ति में वामन के इस मत को उल्लिखित किया है– "वामनस्तु स्वशब्दादणि द्वारादीनाञ्चेत्यत्रैजागममुदाहरिष्यति स्वस्येदं सौवमिति"।

गहादिभ्यश्च– सूत्रस्थ पठित कतिपय वार्त्तिकों के निर्देशानुसार केवल जन, पर और देव शब्दों से छप्रत्यय और कुगागम होता है परन्तु चन्द्रगोमी के अनुसार इन शब्दों के अतिरिक्त राजन् और स्व शब्द से भी छप्रत्यय तथा कुगामम होते हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रगोमी जहाँ स्व शब्द से छप्रत्यय और कुगागम द्वारा स्वकीयम् यह रूप निष्पन्न करता है, वहाँ वामन स्व शब्द से "तस्येदम्" सूत्र से अण् प्रत्यय तथा ऐजागम द्वारा सौवम् यह रूप निष्पन्न करता है।

[58] **सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च**[206]–

[क] प्रस्तुत सूत्र द्वारा 'चिरम्' इस अव्यय शब्द से ट्युप्रत्यय और तुडागम के द्वारा "चिरन्तनम्" प्रयोग अथवा चिर शब्द से ट्युप्रत्यय, तुडागम और मकार के निपातन द्वारा निष्पन्न किया जा सकता है। भाषावृत्तिकार ने चिरन्तनम् शब्द की निष्पत्ति में निपातन से मकार का विधान किया है जिससे ज्ञात होता है कि वे चिरन्तनम् शब्द चिर शब्द से ही निष्पन्न मानते हैं यदि चिरम् शब्द से यह शब्द निष्पन्न होता तो निपातन से मकार विधान की कोई आवश्यकता नहीं थी।

'चिरम्' इस अव्यय शब्द के अतिरिक्त 'चिर' शब्द भी है। इसमें जयादित्य भी प्रमाण है। इसीलिये जयादित्य चिर शब्द से त्न प्रत्यय का विधान कर चिरत्नम् यह रूप भी निष्पन्न करता है। भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "**चिरपरुत्परारिभ्यस्त्न**" **इति जयादित्यः**"।

भाषावृत्तिकार चिरन्तनम् इस प्रयोग को चिर शब्द से निष्पन्न मानता है परन्तु कतिपय अन्य आचार्य "सायंचिरम्.... " इस सूत्र के निर्देशानुसार चिरम् इस अव्यय से ट्यु अथवा ट्युलप्रत्यय का विधान कर चिरन्तनम् यह रूप निष्पन्न करते हैं लेकिन जयादित्य के अनुसार चिरन्तनम् प्रयोग के अतिरिक्त चिर शब्द से त्न प्रत्यय द्वारा चिरत्नम् यह प्रयोग भी निष्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त उनके मत में परुत् और परारि शब्दों से भी त्न प्रत्यय होने पर परुत्नम् और परारित्नम् ये अतिरिक्त प्रयोग भी निष्पन्न होते हैं।

[ख] **सायंचिरम्**– सूत्र पर "अग्रपश्चाड्डिमच्" यह वार्तिक पठित हुआ है। इस वार्तिक के अनुसार अग्र तथा पश्चात् शब्दों से डिमच् प्रत्यय का विधान होता है जिससे अग्रिमम् और पश्चिमम् ये रूप निष्पन्न होते हैं लेकिन जयादित्य अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय का विधान मानता है, जिससे उनके मत में अन्तिमम् यह रूप भी निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के इस मत को भी उद्धृत किया है– "अन्ताच्च डिमजिति जयादित्यः"।

अधिकांश वैयाकरण "अग्रपश्चाड्डिमच्" प्रस्तुत वार्तिक को लौकिक स्वीकार करते हैं लेकिन भागवृत्तिकार उक्त वार्तिक को छान्दस मानते हैं, जिससे उनके मत में उक्त वार्तिक द्वारा निष्पन्न अग्रिमम् और पश्चिमम् ये रूप केवल छान्दस ही माने जाते हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भागवृत्ति के इस मत को भी निर्दिष्ट किया है– "अग्रपश्चाड्डिमच् इति च्छान्दसमिति भागवृत्तिः"।

भागवृत्तिकार केवल अग्र और पश्चात् शब्द से ही डिमच् प्रत्यय स्वीकार करता है तथा इन प्रयोगों को छान्दस मानता है लेकिन जयादित्य अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय का विधान मानता है।

[५९] **"नित्यं वृद्धशरादिभ्यः"**[207] – प्रस्तुत सूत्र शरादि शब्दों से नित्य ही मयट्प्रत्यय का विधान करता है यद्यपि सूत्रारम्भसामर्थ्य से ही नित्यमयट्प्रत्यय सम्भव था पुनः सूत्र में नित्य शब्द का ग्रहण यह ज्ञापित करता है कि यदि एकाच् शब्द शरादिगण में पठित न भी हो तो भी उससे नित्यमयट्प्रत्यय हो जाता है। यथा– "त्वङ्मयम्, वाङ्मयम्" इन प्रयोगों में त्वक् और वाक् इन एकाच् शब्दों से भी मयट्प्रत्यय हो गया है। भाषावृत्तिकार ने कुछ आचार्यों के इस इष्टिवचन

को उद्धृत किया है– **"नित्यमेकाचो शरादेरपीच्छन्ति"**।

[60] **''अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः''**[208]– प्रस्तुत सूत्र अस्ति, नास्ति और दिष्ट शब्दों से मति अर्थ में ठक् प्रत्यय का विधान करता है। यथा– ''अस्ति मतिरस्य आस्तिकः, नास्ति मतिरस्य नास्तिकः''। यहाँ यह सन्देह स्वाभाविक है कि ''अस्ति और नास्ति'' शब्द तिङन्त रूप जैसे हैं तो पुनः तिङन्त से तद्धितप्रत्यय का विधान किस प्रकार सम्भव है? इस सम्बन्ध में आचार्यों के द्विविध मत पाये जाते हैं। कुछ आचार्यों का कथन है कि ''अस्ति और नास्ति'' ये दोनों तिङन्त रूप हैं और इन्हीं से तद्धितप्रत्यय का विधान किया गया है। कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि ये तिङन्त के रूप नहीं अपितु ये तिङन्तप्रत्ययरूपक निपात हैं अतः इनसे तद्धितप्रत्यय के विधान में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। भाषावृत्तिकार ने इन द्विविध मतों को वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– ''अस्तिनास्तीति शब्दौ तिङन्तावित्येके। तिङन्तप्रतिरूपकौ निपातावित्यन्ये''।

[61] **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्**[209]– प्रस्तुत सूत्र तद्वहति इस अर्थ में रथादि शब्द से यत्प्रत्यय का विधान करता है जिससे ज्ञात होता है कि रथ शब्द से यत्प्रत्यय करने पर रथ्यः यह रूप निष्पन्न हो सकता है। काशिका,[210] अमरकोश[211] और माघादि[212] में इस प्रकार के प्रयोग उपलब्ध भी होते हैं।

भाषावृत्तिकार ने रथ शब्द से यत्प्रत्यय के सम्बन्ध में स्मृतिवचन को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''तद्धितार्थे द्विगुसमासः। द्विरथ्यः, त्रिरथ्यः। केवलात्तु रथाद् यतोऽसिद्धिरिति स्मृतिः''। इस वचन के अनुसार तद्वहति अर्थ में रथ शब्द से समास में ही यत्प्रत्यय होता है, केवल रथ शब्द से यत्प्रत्यय नहीं होता। इसलिये स्मृति के मत में रथ्यः यह प्रयोग सम्भव नहीं।

भाषावृत्तिकार ने भी रथ्यः उदाहरण नहीं दिया है अतः सम्भव है कि वह भी स्मृतिमत से सहमत है।

सूत्रकार के अनुसार रथ शब्द से तद्वहति अर्थ में यत्प्रत्यय सम्भव है लेकिन स्मृतिवचन के अनुसार केवल रथ शब्द से यत्प्रत्यय नहीं होता है अपितु समास में ही होता है।

[62] **खः सर्वधुरात्**[213]– प्रस्तुत सूत्र केवल सर्वधुर शब्द से तद्वहति अर्थ में खप्रत्यय का विधान करता है परन्तु कुछ आचार्य प्रस्तुत सूत्र का ''खः'' यह योगविभाग भी स्वीकार करते हैं और योगविभाग सामर्थ्य से सर्वधुर शब्द के

अतिरिक्त उत्तरधुर और दक्षिणधुर शब्दों से भी खप्रत्यय का विधान स्वीकार करते हैं जिससे उनके मत में उत्तरधुरीण: और दक्षिणधुरीण: ये प्रयोग भी साधु माने जाते हैं।

कुछ अन्य आचार्य योगविभागसामर्थ्य से केवल धुर शब्द से ही खप्रत्यय स्वीकार करते हैं अत: उनके मत में धुरीण: यह प्रयोग भी साधु है। पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में आचार्यों के इन द्विविध मतों को निर्दिष्ट किया है– "योगविभागादुत्तरधुरीण-दक्षिणधुरीणो चेत्येके। धुरीणश्चेत्यन्ये"।

[63] **परिषदोण्य:**[214]– प्रस्तुत सूत्र परिषद् शब्द से साधु अर्थ में ण्यप्रत्यय का विधान करता है, जिससे पारिषद्य: यह रूप निष्पन्न होता है। जयादित्य ने ण्यप्रत्यय के साथ-साथ प्रस्तुत सूत्र के "परिषद:", "ण्य:" इस योगविभाग द्वारा णप्रत्यय का भी विधान किया है, जिससे उनके मत में पारिषद: यह रूप निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के इष्टि वचन को उद्धृत किया है– "णोऽपीष्यत इति जयादित्य:"।

"परिषदोण्य:" इस सूत्र के निर्देशानुसार परिषद् शब्द से साधु अर्थ में ण्यप्रत्यय होने पर "पारिषद्य:" यह रूप निष्पन्न होता है लेकिन जयादित्य के मत में प्रस्तुत सूत्र के योगविभाग द्वारा णप्रत्यय होने पर पारिषद: यह रूप भी निष्पन्न होता है।

[64] **शिवशमरिष्टस्य करे**[215]– प्रस्तुत सूत्र शिव, शम और अरिष्ट शब्दों से "करोति" अर्थ में तातिल्प्रत्यय का विधान करता है जिससे "शिवताति:, शन्ताति:, अरिष्टताति:" ये प्रयोग निष्पन्न होते हैं। कतिपय वैयाकरण इन शब्दों को छान्दस मानते हैं परन्तु भाषावृत्तिकार ने इन प्रयोगों को भाषा में भी साधु माना है। अपने मत की पुष्टि उन्होंने भागुरि के मत के द्वारा तथा उन्हें अव्युत्पन्न संज्ञा शब्द मानकर की है– "अमी शब्दाश्छान्दसा अपि क्वचिद् भाषायां प्रयुज्यन्त इति त्रिकाण्डे भागुरिनिबन्धनाद्वाऽव्युत्पन्नसंज्ञाशब्दत्वाद्वा सर्वथा भाषायां साधव:"। उक्त कथन के अनुसार त्रिकाण्डकोश में भागुरि ने इन शब्दों के विषय में विचार किया है और उसका कथन यह है कि यद्यपि ये शब्द छान्दस हैं तथापि कहीं-कहीं भाषा में प्रयुक्त होते हैं अत: भागुरि के मत में ये शब्द भाषा में भी प्रयुक्त होते हैं।

पुरुषोत्तमदेव ने भागुरि के मत के साथ-साथ इन शब्दों के सम्बन्ध में स्वमत का निर्देश भी किया है। उनका कथन है कि इन शब्दों को अव्युत्पन्न संज्ञा शब्द मानकर के भी इनकी लौकिकता सिद्ध की जा सकती है।

भाषावृत्तिकार और भागुरि ये दोनों ही शिवतातिः आदि इन प्रयोगों को लौकिक प्रयोग भी मानते हैं।

[65] **छदिरुपधिबलेर्ढञ्**[216]– प्रस्तुत सूत्र में छदि, उपधि और बलि शब्दों से तदर्थ प्रकृति अर्थ में ढञ्प्रत्यय का विधान किया गया है लेकिन स्मृति के अनुसार छदि और बलि शब्द से तो तदर्थ प्रकृति अर्थ में ढञ्प्रत्यय होता है परन्तु उपाधि शब्द से केवल स्वार्थ में ही ढञ् प्रत्यय होता है, तदर्थप्रकृति अर्थ में नहीं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस सम्बन्ध में स्मृतिवचन को उद्‌धृत भी किया है– ''उपधेः स्वार्थे ढञिति स्मृतिः''। इस स्मृतिवचन के अनुसार ही ''उपधीयत इति उपधि रथाङ्गं तदेव औपधेयम्''। किञ्च यदौपधेयं तदेव दारुः'' यहाँ स्वार्थ में ढञ्प्रत्यय परिलक्षित हो रहा है।

इस प्रकार सूत्रकार के अनुसार ''उपधि'' शब्द से तदर्थप्रकृति में ढञ् प्रत्यय होता है लेकिन स्मृतिवचन के अनुसार स्वार्थ में।

[66] **असमासे निष्कादिभ्यः**[217]– प्रस्तुत सूत्र असमास में ''निष्कादि'' शब्दों से ठक्प्रत्यय का विधान करता है। प्रस्तुत सूत्र में असमासग्रहण के बिना भी ''ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति'' इस परिभाषा द्वारा तदन्तविधि के अभाव में केवल ''निष्कादि'' शब्दों से ही ठक्प्रत्यय सम्भव था अतः सूत्रस्थ असमासग्रहण व्यर्थ होकर यह ज्ञापित करता है कि इससे पूर्ववर्त्ती सूत्रों में तदन्तविधि का ग्रहण किया जाता है। इसी कारण ''गो'' तथा ''अतिगो'' दोनों ही प्रकार के शब्दों से ''उगवादिभ्यो यत्''[218] सूत्र से यत् प्रत्यय होकर ''गव्यम्'' और ''अतिगव्यम्'' ये रूप निष्पन्न होते हैं। किञ्च यह तदन्तविधि उत्तरवर्त्ती सूत्रों में भी इष्ट है।

वृत्तिकार ने जिन स्थलों पर तदन्तविधि की आवश्यकता समझी है उन स्थलों के निर्देश के लिये स्मृतिवचन को उद्‌धृत किया है– ''प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणमलुकीति स्मृतिः''। इस मत के अनुसार ''तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः''[219] सूत्र से पूर्व जिन पदों से जिस प्रत्यय का विधान किया गया है, यदि प्रयोग में

उन पदों के पूर्व में संख्यावाचक शब्द हो तो वहाँ पर भी सूत्र में तदन्तविधि हो जाती है, परन्तु यदि वहाँ विशेष विहित प्रत्यय का लोप हो तो वहाँ तदन्तविधि नहीं होती। यथा– ''द्विपारायणं वर्त्तयति''– इस अर्थ में ''द्विपारायण'' शब्द से संख्यापूर्वक होने से ''पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति''[220] सूत्र में तदन्तविधि द्वारा ठञ् प्रत्यय होने से ''द्वैपारायणिकः'' यह रूप निष्पन्न होता है परन्तु ''द्विशूर्पेण क्रीतम्'' इस अर्थ में संख्यावाचक शब्द होने पर भी ''द्विशूर्प'' शब्द से तदन्तविधि द्वारा ''शूर्पादञन्यतरस्याम्''[221] सूत्र से अञ् प्रत्यय नहीं होता क्योंकि केवल ''शूर्प'' शब्द से विधीयमान ''अञ्'' प्रत्यय का ''अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्''[222] सूत्र से लोप हो जाता है अतः लुगन्तप्रकृति होने के कारण यहाँ संख्यापूर्वपद में होने पर भी तदन्तविधि नहीं होती। इस प्रकार उक्तार्थ में ''द्विशूर्पम्'' यही रूप निष्पन्न होगा।

स्मृतिवचन के अनुसार ''असमासे निष्कादिभ्यः'' सूत्र तथा लुगन्तप्रकृति को छोड़कर ''प्राक् क्रीताच्छः''[223] सूत्र से ''तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'' सूत्र पर्यन्त तदन्तविधि होती है, यदि प्रयोग में सूत्र निर्दिष्ट शब्दों के साथ संख्यावाचक शब्द विद्यमान हो।

[67] **तदस्य परिमाणम्**[224] प्रस्तुत सूत्र प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से परिमाण अर्थ में यथाविहित प्रत्यय का विधान करता है। भाषावृत्तिकार ने षष्टिर्जीवितपरिमाणमस्य इस विग्रह में षष्टि शब्द से ''नौद्व्यचष्ठन्''[225] सूत्र से ठन् प्रत्यय मानकर षष्टिकः यह रूप निष्पन्न किया है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के मत को प्रदर्शित किया है– ''इह द्वे षष्टी जीवितपरिमाणमस्येति ठञोऽध्यर्द्धपूर्वेति लुक्। सोऽस्येति प्रकृतेः पुनस्तदस्येति निर्देशात् पुनष्ठञ्। तस्य च विधानसामर्थ्यादलुगिति जयादित्यः। संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य चेत्युत्तरपदवृद्धिः। द्विषाष्टिकः, द्विसाप्ततिकः त्रिसाप्ततिकः। इस मत के अनुसार द्वे षष्टी जीवितपरिमाणमस्य इस विग्रह में ''प्राग्वतेष्ठञ्''[226] सूत्र से प्राप्त ठञ्प्रत्यय का ''अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्''[227] इस सूत्र से लुक् हो जाता है यद्यपि ''सोऽस्यांशवस्नभृतय''[228] सूत्र में निर्दिष्ट ''सोऽस्य'' शब्द के द्वारा भी ''तदस्य परिमाणम्'' सूत्र में निर्दिष्ट तदस्य शब्द के अर्थ का बोध सम्भव था तथापि ''तदस्य परिमाणम्'' सूत्र में जो ''तदस्य'' शब्द का निर्देश किया गया है, वह इस बात का द्योतक है कि एक बार प्राप्त ठञ् का ''अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्'' सूत्र से लुक् होने पर भी पुनः ठञ्प्रत्यय हो जाता

है और पुन: ठञ्विधान के कारण से उसका लुक् नहीं होता। तदनन्तर उत्तरपदवृद्धि द्वारा द्विषाष्टिक: रूप निष्पन्न हो जाता है।

जयादित्य के अनुसार द्विषाष्टिक: आदि रूपों में एक बार किये गये ठञ्प्रत्यय का लोप होने के पश्चात् जो पुन: ठञ्प्रत्यय का विधान किया गया है तत्सामर्थ्य से द्वितीय ठञ्का लोप नहीं होता।

[68] **''पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्''**[229]– प्रस्तुत सूत्र ''पङ्क्ति'' और ''विंशति'' आदि शब्दों को निपातन से निष्पन्न करता है। द्विपञ्चत् शब्द से ''द्वौ पञ्चतो'' इस अर्थ में क्तिनप्रत्यय और प्रकृति को पन्भाव करने से पङ्क्ति शब्द तथा द्विदशत् शब्द से ''द्वौ दशतौ'' इस अर्थ में शतिच्प्रत्यय और प्रकृति को विन्भाव करने से ''विंशति'' इत्यादि रूप सिद्ध होते हैं। भाषावृत्तिकार का कथन है कि इस सूत्र में निर्दिष्ट शब्द सहस्रादि शब्दों के समान संज्ञाशब्द हैं और अव्युत्पन्नप्रातिपदिक हैं अत: इनकी ''द्वौ पञ्चतो– पङ्क्ति:, द्वौ दशतोविंशति:'' इत्यादि जो व्युत्पत्तियां प्रदर्शित की गई हैं। वह केवल अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से किया गया है। वस्तुत: ''पङ्क्ति और विंशति'' आदि शब्द अव्युत्पन्नप्रातिपदिक हैं अत: इनमें द्वि का पञ्चत् के साथ तथा दशत् के साथ परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। भाषा- वृत्तिकार ने अपने मत की पुष्टि में उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्यकार के मत को उद्धृत किया है– ''तदुक्तं भाष्ये अनारम्भो वा प्रातिपदिकविज्ञानाद् यथा सहस्रादिष्विति'' अर्थात् ''पङ्क्ति'' आदि प्रयोगों की सिद्धि के लिये प्रस्तुत सूत्र के निर्देश की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि ये शब्द सहस्रादि शब्दों के समान अव्युत्पन्नप्रातिपदिक हैं।

भाष्यकार और भाषावृत्तिकार दोनों के ही मत में उक्त सूत्र में उल्लिखित पङ्क्ति विंशति आदि शब्द अव्युत्पन्नप्रातिपदिक और संज्ञाशब्द हैं अत: उनके मत में प्रस्तुत सूत्र के निर्देश की आवश्यकता नहीं।

[69] ''अन्यभाव'' शब्द ब्राह्मणादिगण में पठित हुआ है अत: ''अन्यभाव एव'' इस अर्थ में ''अन्यभाव'' शब्द से ''चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थेष्यञ्''[230] इस वार्तिक द्वारा ष्यञ् प्रत्यय का विधान कर ''आन्यभाव्यम्'' यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने इस शब्द के प्रयोगस्थल के सम्बन्ध में वररुचि के वार्तिक को उपस्थित किया है– ''आन्यभाव्यं तु कालशब्दव्यवायादिति वररुचि:''।

कतिपय वैयाकरण तदस्य भावः। इस अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय का विधान कर ''आन्यभाव्यम्'' यह रूप निष्पन्न करते हैं।

भाषावृत्तिकार और वररुचि दोनों ही ''आन्यभाव्यम्'' शब्द को स्वार्थिकष्यञ्प्रत्ययान्त मानते हैं।

[70] **स्तेनात् यन्नलोपश्च**[231]– इस सूत्र द्वारा स्तेन शब्द से भाव अथवा क्रिया अर्थ में यत्प्रत्यय और न लोप होने से स्तेयम् यह रूप निष्पन्न होता है। अमरकोशादि ग्रन्थों में स्तेयम् रूप के अतिरिक्त स्तैन्यम् यह रूप भी उपलब्ध होता है। पुरुषोत्तमदेव ने स्तैन्य शब्द की निष्पत्ति के लिये भागवृत्ति और जयादित्य के मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''स्तैन्यशब्दस्तु पाञ्चायतलौहितिक इति वदागमिक इति भागवृत्तिः। योगविभागात् ष्यञिति जयादित्यः''। उक्त उद्धृत वचनों के अनुसार भागवृत्तिकार के मत में स्तैन्य शब्द आगमिक है। आगमिक शब्द का अभिप्राय पारम्परिक प्रयोग से है अर्थात् जिस प्रकार पाञ्चायतम् और लौहितकम् इन प्रयोगों में ''एतौ शब्दयेते'' इस अर्थ में अञ् और अण् प्रत्यय विधायकसूत्र उपलब्ध नहीं होते तथापि इन्हें पारम्परिक प्रयोग मानकर इनमें अञ् और अण् प्रत्ययों की कल्पना कर ली जाती है, उसी प्रकार यद्यपि स्तैन्य शब्द में ष्यञ् प्रत्यय विधायकसूत्र उपलब्ध नहीं होता तथापि उसे पारम्परिक प्रयोग मानकर उसमें ष्यञ् प्रत्यय की कल्पना कर ली जाती है।

इसके विपरीत जयादित्य ''स्तेनात् यन्नलोपश्च'' इस सूत्र में ''स्तेनात्'' यह योगविभाग स्वीकार कर उसमें पूर्ववर्त्ती सूत्रों के ष्यञ् प्रत्यय की अनुवृत्ति मानता है, जिससे स्तेन शब्द से ष्यञ् प्रत्यय होने से स्तैन्यम् यह रूप निष्पन्न हो जाता है।

भागवृत्ति के अनुसार स्तैन्यम् इस प्रयोग को पारम्परिक प्रयोग मानकर उसमें ष्यञ् प्रत्यय की कल्पना की जाती है। इसके विपरीत जयादित्य के मत में ''स्तेनात् यन्नलोपश्च'' इस सूत्र के योगविभाग द्वारा प्रस्तुत सूत्र में ष्यञ् प्रत्यय की अनुवृत्ति मानकर स्तैन्यम् यह प्रयोग निष्पन्न किया जाता है।

[71] **सख्युर्यः**[232]– प्रस्तुत सूत्र के निर्देशानुसार केवल सखि शब्द से भाव या कर्म में यप्रत्यय होने पर सख्यम् यह रूप निष्पन्न होता है लेकिन जयादित्य के मत में 'सखि' शब्द के साथ-साथ दूत और वणिक् शब्द से भी उक्तार्थ

में यप्रत्यय होता है जिससे उनके मत में दूत्यम् और वणिज्यम्, ये अतिरिक्त रूप भी निष्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त उनके मत में दूत और वणिक् इन शब्दों का पाठ ब्राह्मणदिगण में होने से इनसे ष्यञ् प्रत्यय भी हो जाता है। जिससे दौत्यम् और वाणिज्यम् ये रूप भी निष्पन्न होते हैं भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत कियाहै– **''दूतवणिग्भ्याञ्चेतिजयादित्य:''**

सूत्र निर्देशानुसार केवल 'सखि' शब्द से ही भाव या कर्म में यप्रत्यय होता है लेकिन जयादित्य के अनुसार दूत और वणिज् शब्दों से भी य तथा ष्यञ् दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं।

[72] **योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्**[233]– प्रस्तुत सूत्र द्वारा सहाय शब्द से भाव अथवा कर्म अर्थ में वुञ् प्रत्यय का विधान होने से साहायकम् यह एकमात्र रूप निष्पन्न होता है परन्तु जयादित्य सहाय शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में स्वीकार करता है। इसलिये उनके मत में सहाय शब्द से वुञ् प्रत्यय के साथ-साथ ''गुणवचनब्राह्मणादिभ्य: कर्मणि च''[234] सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय भी हो जाता है जिससे साहाय्यम् यह रूप निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के इस मत को उद्धृत भी किया है– ''साहाय्यमित्यपि ब्राह्मणादित्वादिति जयादित्य:''। काशिका में जयादित्य ने अपने इस मत को ''सहायाद्वेति वक्तव्यम्''[235] इस वार्त्तिक में निर्दिष्ट किया है अत: उनके मत में साहायकम्, साहाय्यम् ये दोनों रूप निष्पन्न होते हैं।

इसके विपरीत भागवृत्ति ने सहाय शब्द से ष्यञ् प्रत्यय के विधान को स्वीकार नहीं किया है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उनके इस मत को भी उद्धृत किया है– ''नेति भागवृत्ति:''।

सूत्रनिर्देशानुसार सहाय शब्द से भाव या कर्म में वुञ् प्रत्यय होने से साहायकम् यह रूप निष्पन्न होता है। भागवृत्तिकार ने भी इससे अपनी सहमति अभिव्यक्त की है लेकिन जयादित्य के अनुसार शब्द का ब्राह्मणादिगण में पाठ होने से ष्यञ् प्रत्यय द्वारा साहाय्यम् यह रूप भी निष्पन्न होता है।

[73] **अद्यश्वीनावष्टब्धे**[236] – सूत्र में ''समां विजायते''[237] सूत्र से विजायते की अनुवृत्ति आती है जिससे आसन्न विजनन अर्थ में 'अद्यश्वीना'' शब्द निपातन से सिद्ध होता है तदनुसार अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना गौ: यह प्रयोग सिद्ध होता है परन्तु सूत्र का उक्तार्थ स्वीकार करने पर *''अद्यश्वीनोवियोग:''* यह रूप

निष्पन्न नहीं हो सकता है क्योंकि यहाँ पर "विजनन" अर्थ न होकर "अद्य श्वो वा भविष्यति" इस अर्थ में निपातन है।

जयादित्य ने उक्त दोष के निराकरण हेतु प्रस्तुत सूत्र में विजायते की अनुवृत्ति स्वीकार नहीं की है अतः उनके अनुसार केवल आसन्न अर्थ में ही निपातन कार्य होगा। भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के इस मत को उक्तसूत्र की वृत्ति में उल्लिखित किया है– **"कथमद्यश्वीनो वियोगः विजायत इत्यस्याननुवृत्तेरिति जयादित्यः"**।[238]

इसके विपरीत भागवृत्तिकार ने अद्यश्वीनावष्टब्धे" सूत्र में निर्दिष्ट अद्यश्वीनशब्द को स्त्रीलिङ्ग का रूप अद्यश्वीना स्वीकार किया है जिसके कारण उक्त सूत्र के उदाहरण पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग वाले शब्द नहीं बन सकते अतः उनके मत में अद्यश्वीनो वियोगः यह प्रयोग होता ही नहीं। भाषावृत्तिकार ने उनके इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "स्त्रीलिङ्गनिर्देशादुपमानस्याप्यसम्भवान्नैतदिति भागवृत्तिः"।[239]

सूत्रनिर्देशानुसार आसन्न विजनन अर्थ में अद्यश्वीना शब्द निपातन से सिद्ध होता है किन्तु जयादित्य प्रस्तुत सूत्र से केवल आसन्न अर्थ में ही अद्यश्वीन शब्द का निपातन स्वीकार करता है अतः उसके मत में अद्यश्वीनो वियोगः रूप भी निष्पन्न हो जाता है। भागवृत्तिकार ने उक्त सूत्र के निपातन कार्य को केवल स्त्रीलिङ्ग में ही साधु माना है अतः उनके मत में अद्यश्वीनो वियोगः यह प्रयोग ही असाधु है। सूत्रवृत्ति के अवलोकन से ज्ञात होता है कि भाषावृत्तिकार आसन्न विजनन अर्थ में ही अद्यश्वीना शब्द का निपातन स्वीकार करता है तथा उनका यह मत भागवृत्ति से मेल खाता है।

[74] **कालप्रयोजनाद् रोगे**[240]– प्रस्तुत सूत्र कालवाचक और प्रयोजनवाचक शब्दों से रोग अर्थ में कन्प्रत्यय का विधान करता है। पुरुषोत्तमदेव के अनुसार *"प्रयुज्यतेऽनेनेति प्रयोजनम्"* यह प्रयोजन शब्द की व्युत्पत्ति है जिससे उनके मत में प्रयोजन का अर्थ कारण है तदनुसार रोग के कारणवाचक शब्दों से कन्प्रत्यय होता है। यथा– विषपुष्पेण प्रयुक्तो विषपुष्पको ज्वरः परन्तु जयादित्य के अनुसार प्रयोजन शब्द का अर्थ कारण और फल दोनों ही है अतः जयादित्य के मत में रोग के फलवाचक शब्द से भी कन् प्रत्यय होता है। यथा– शीतं कार्य्यमस्येति शीतको ज्वरः। पुरुषोत्तमदेव ने जयादित्य के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– **"फलञ्च प्रयोजनमिति जयादित्यः"**।

भाषावृत्तिकार के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त प्रयोजन शब्द कारणवाचक है अत: उनके मत में रोग के कारणवाचकशब्दों से ही प्रस्तुत सूत्र से कन्प्रत्यय होता है लेकिन जयादित्य के मत में प्रयोजन शब्द कारण और फल दोनों का ही वाचक है अत: उनके मत में रोग के कारण और फलवाचक दोनों ही प्रकार के शब्दों से कन्प्रत्यय होता है।

[75] **रसादिभ्यश्च**[241]– पुरुषोत्तमदेव ने मत्वर्थ में रस, रूप और स्पर्श आदि शब्दों से प्रस्तुत सूत्र से मतुप्-प्रत्यय का विधान करके रसवान्, रूपवान् और स्पर्शवान् आदि रूप निष्पन्न किये हैं। यद्यपि *''तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्''*[242] इस सूत्र से भी इनमें मतुप्प्रत्यय सम्भव था तथापि इनमें अन्य मत्वर्थीय प्रत्ययों की निवृत्ति के लिये *''रसादिभ्यश्च''* सूत्र निर्दिष्ट किया गया, जिससे रसादिगण में पठित शब्दों से केवल मतुप् प्रत्यय ही होता है।

भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र के विषय में भाष्यकार के मत को भी उद्धृत किया है– *''भाष्यकारस्य तु सूत्रस्यास्य प्रत्याख्यानमभिमतम् रसिको राजा। रूपिण्योऽप्सरस:। स्पर्शी वायुरित्यादि दर्शनात्''*। इस मत के अनुसार रसादि शब्दों से मतुप्प्रत्यय के अतिरिक्त रसिको राजा, रूपिण्योऽप्सरस:, स्पर्शी वायु: इत्यादि प्रयोगों में दूसरे मत्वर्थीय प्रत्यय ठन् और इनादि भी दृष्टिगोचर होते है अत: रसादि से मत्वर्थीयमतुप् प्रत्यय ही होता है, प्रस्तुत सूत्र का यह नियमन व्यर्थ हो जाता है। इसलिये भाष्यकार ने उक्त सूत्र का प्रत्याख्यान किया है। इस प्रकार भाषावृत्तिकार और भाष्यकार का इस सम्बन्ध में मतभेद प्रतीत होता है।

पुरुषोत्तमदेव के अनुसार *''रसादिभ्यश्च''* सूत्र से विधीयमान मतुप्प्रत्यय सूत्रान्तर से सिद्ध है अत: उनके मत में यह सूत्र नियामक है लेकिन भाष्यकार के मत में रसादिगण में पठित शब्दों से मत्वर्थीयप्रत्ययों के अतिरिक्त ठनादिप्रत्यय भी दृष्टिगोचर होते हैं अत: उनके मत में यह सूत्र निरर्थक है।

[76] **ऊषसुषिमुष्कमधो र:**[243]– प्रस्तुत सूत्र ऊष, सुषि, मुष्क और मधु शब्दों से मत्वर्थ में रप्रत्यय का विधान करता है लेकिन जयादित्य के मत में कच्छू शब्द से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय और ऊकार को ह्रस्वादेश हो जाता है। यथा– कच्छुर:। भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– **''कच्छ्वा ह्रस्वश्चेति जयादित्य:''**।

[77] **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्**[244]– प्रस्तुत सूत्रस्थ *''मेधारथाभ्यामिरन्निरचावित्येके''* इस वचन द्वारा कतिपय आचार्यों के मत में मेधा तथा रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् तथा इरच् प्रत्यय होते हैं जिससे मेधिर:, रथिर: ये रूप निष्पन्न हो जाते हैं। वृत्तिकार ने रुथिर शब्द के प्रयोग के लिये अमरकोश को उद्धृत किया है– **''रथिररथिरौ रथीत्यमर:''**।[245]

[78] **गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्**[246]– प्रस्तुत सूत्र केवल दीर्घान्त गाण्डी शब्द से मत्वर्थ में वप्रत्यय का विधान करता है। यथा– **''गाण्डीवं धनु:''**।

लेकिन जयादित्य के मत में ह्रस्वान्त गाण्डि शब्द से भी वप्रत्यय होता है। यथा– **''गाण्डिवं धनु:''**

पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के इस मत को उद्धृत किया है– **''ह्रस्वादपि गाण्डिवमिति जयादित्य:''**।

''गाण्ड्य....'' सूत्र से संज्ञा विषय में अजग शब्द से मत्वर्थ में वप्रत्यय का विधान करने से अजगवं पिनाक: में दृश्यमान अजगवम् रूप सिद्ध होता है। कुछ आचार्य अजग शब्द के स्थान में अजक शब्द का पाठ मानते हैं। उनका कथन है कि अज विष्णु का नाम है और क ब्रह्मा का। इन दोनों शब्दों के मेल से अजक एक शब्द बनता है अत: अजग शब्द के स्थान पर अजक शब्द से मत्वर्थीय वप्रत्यय होता है। इसलिये उनके मत में अजकवम् यह रूप निष्पन्न होगा। भाषावृत्तिकार ने उनके इस मत को प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– **''अजो विष्णु:। को ब्रह्मा। तद्योगादजकवमित्यन्ये''**।

[79] **रज: कृष्यासुतिपरिषदो वलच्**[247]– प्रस्तुत सूत्र द्वारा परिषद् शब्द से मत्वर्थ में वलच्प्रत्यय होने से परिषद्वलो राजा यह रूप निष्पन्न होता है। अनेक कवियों ने इस शब्द का प्रयोग भी किया है। यथा– या सम्प्रति प्राक् परिषद्वलानामिति व्योष:। परिषद्वलान् महाब्रह्मैरिति भट्टि:।[248]

सामान्यतया अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर होते हैं परन्तु भट्टिकाव्य के पूर्वोक्त श्लोक के प्रथम पाद में नव अक्षर प्रयुक्त हुए हैं जोकि असङ्गत लगता है। भागवृत्ति ने उक्त समस्या का समाधान करते हुए कहा है कि यदि अनुष्टुप्छन्द के तीनचरणों में आठ-आठ अक्षर हों और एक चरण में नव अक्षर भी हों तो इस वृत्त भेद को आचार्यों ने मान्यता दी है। स्वयं भाष्यकार

ने निम्न भाष्यश्लोक में तीनचरणों में आठ-आठ अक्षर और एक चरण में नव अक्षरों का प्रयोग किया है- *''अप्रधाने कर्मण्यभिहिते लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्''*।[249] पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भागवृत्ति के इस मत को उद्धृत किया है- **''इह तु नवाक्षरेकपादेऽपि वृत्तभेदोऽस्यास्तीति। यथा-प्रधाने कर्मण्यभिधेये लादीनाहुर्द्विकर्मणामिति भागवृत्तिः''**।

यद्यपि ''रजः कृष्या....'' सूत्र केवल परिषद् शब्द से मत्वर्थ में वलच्प्रत्यय का विधान करता है जिससे परिषद्वलो राजा यह प्रयोग निष्पन्न होता है। इसके विपरीत आचार्य केशव *''एकदेशविकृतमनन्यवत्''* परिभाषा द्वारा परिषद् और पर्षत् शब्द में अभेद स्वीकार कर पर्षत् शब्द से भी ''रजः कृष्या...'' सूत्र से वलच्प्रत्यय का विधान कर पर्षद्वलः, परिषद्वलः इन दोनों रूपों को निष्पन्न करते हैं। भाषावृत्तिकार ने केशव के उक्त मत को प्रस्तुतसूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है- **''पृषोदरादित्वादिकारलोप एकदेशविकारद्वारेण पर्षच्छब्दादपि वलजिति केशवः''**।

सूत्र निर्देशानुसार केवल परिषद् शब्द से ही मत्वर्थ में वलच्प्रत्यय होता है परन्तु आचार्य केशव के मत में परिषद् और पर्षत् इन दोनों शब्दों में अभेद है अतः इन दोनों ही प्रकार के शब्दों से मत्वर्थीयवलच्प्रत्यय हो जाता है।

[80] पुरुषोत्तमदेव ने ''अस्मायामेधास्रजोविनिः''[250]- सूत्र की वृत्ति में पयस् और यशस् शब्द से मत्वर्थ में विनिप्रत्यय का विधान कर पयस्वी और यशस्वी रूप निष्पन्न किये हैं। पुरुषोत्तमदेव का यह भी कथन है कि इससे पूर्ववर्त्ती सूत्र **''एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्''**[251] इस सूत्र में नित्यग्रहण से यह ज्ञात होता है कि इससे उत्तरवर्त्ती सूत्रों में भी नित्य ही मत्वर्थीय प्रत्यय होगा लेकिन भाष्यकार ने भसंज्ञाविधायक *''तसौ मत्वर्थे''*[252] सूत्र में जो *''पयस्वान् और यशस्वान्''* ये उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, उससे यह प्रतीत होता है कि *''एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्''* इस सूत्र से उत्तरवर्त्ती जिनसूत्रों में नित्यग्रहण नहीं किया गया है। उनमें मण्डूकप्लुति न्याय से *''अन्यतरस्याम्''* की अनुवृत्ति आती है जिससे उनके उदाहरणों में तत्तत् प्रत्यय के अतिरिक्त मतुप्प्रत्यय भी हो जाता है तभी विनिप्रत्यय के अभाव में पक्ष में मतुप्प्रत्यय होने से पयस्वान् और यशस्वान् रूप सिद्ध हो सकते हैं। किञ्च- ''सरस्वान् और सरस्वती'' इन प्रयोगों में असन्तप्रातिपदिक होते हुए भी विनिप्रत्यय का विधान नहीं किया गया है जिससे ज्ञात होता है कि नित्यग्रहण स्थलों को

छोड़कर सर्वत्र औत्सर्गिक मतुप्प्रत्यय होता ही है। पुरुषोत्तमदेव ने अपने मत की पुष्टि हेतु भाष्य के मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में प्रस्तुत किया है– **"तसौ मत्वर्थ इत्यत्र पयस्वान् यशस्वानिति भाष्योदाहरणादेकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यमित्यतः परेणापि मतुप्समुच्चयोऽनुमीयते। सरस्वान् सरस्वतीत्यत्र विनेरनभिधानम्**"।

भाष्यकार और भाषावृत्तिकार इन दोनों के मत में जिन सूत्रों में नित्य शब्द का निर्देश नहीं किया गया हो उनमें मण्डूकप्लुति न्याय से "अन्यतरस्याम्" की अनुवृत्ति आ जाती है। किञ्च नित्यग्रहण स्थलों को छोड़कर सर्वत्र औत्सर्गिक मतुप् प्रत्यय ही होता है।

[81] भाषावृत्तिकार ने "अर्थाच्चासन्निहिते"[253]– वार्तिक द्वारा असन्निहित अर्थ में "अर्थ" शब्द से इनिप्रत्यय का तथा सन्निहित अर्थ में मतुप्प्रत्यय का विधान कर "अर्थी और अर्थवान्" ये रूप निष्पन्न किये हैं। यथा– "असन्निहितोऽर्थो धनमस्यार्थी द्ररिद्रः। अन्यत्रार्थवान्। भाषावृत्तिकार ने उक्त वार्तिक के सन्दर्भ में भाष्य के मत को उद्धृत कर उसमें त्रुटि का उल्लेख भी किया है– "*भाष्ये त्वेतत्प्रत्याख्यायार्थनमर्थ इति याञ्चावचनान् मत्वर्थीयं कृत्वार्थी अर्थिक इति च साधितम्। एवं च धनवचनादर्थशब्दादिनिर्याञ्चावचनाच्च मतुबनभिधानान्न भवतीति वाच्यम्*"। भाष्यकार ने याच्ञार्थक "अर्थ" धातु से "अत इनिठनौ"[254] सूत्र से मत्वर्थीय इनि और ठन् प्रत्यय कर "अर्थी" और "आर्थिकः" ये रूप निष्पन्न कर "अर्थाच्चासन्निहिते" इस वार्तिक का प्रत्याख्यान किया है लेकिन भाषावृत्तिकार का कथन है कि यदि भाष्यकार के अनुसार प्रकारान्तर से "अर्थी" शब्द की निष्पत्ति मानकर उक्त वार्तिक के प्रत्याख्यानपक्ष को स्वीकार किया जाये तो धनवाचक "अर्थ" शब्द से भी इनिप्रत्यय और याच्ञावाचक अर्थ शब्द से मतुप्प्रत्यय भी होंगे जिससे "अर्थी" का अर्थ धनवान् और "अर्थवान्" का अर्थ दरिद्र– ये अनभिमत प्रयोग भी निष्पन्न होने लग जायेंगे। अतः इनकी निष्पत्ति की निवृत्ति के लिये भाष्यकार को यह कहना पड़ेगा कि इस प्रकार के प्रयोगों का लोक में अभिधान नहीं है अतः अनभिधान होने के कारण इस प्रकार के प्रयोग नहीं बनेंगे।

अर्थ शब्द से असन्निहित अर्थ में भाषावृत्तिकार ने इनि प्रत्यय के विधान हेतु "*अर्थाच्चासन्निहिते*" इस वार्तिक को अपनी स्वीकृति प्रदान की है लेकिन

भाष्यकार के अनुसार अर्थ याच्ञायाम् धातु से "अत इनिठनौ" सूत्र द्वारा इनिप्रत्यय होने से अर्थी रूप निष्पन्न होता है। इसलिये उन्होंने उक्त वार्तिक का प्रत्याख्यान किया है। वृत्तिकार ने भाष्य के इस मत का खण्डन भी किया है।

[82] **किमोऽत्**[255]– सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से "सप्तम्यास्त्रल्" सूत्र द्वारा त्रल्प्रत्यय की प्राप्ति थी लेकिन "किमोऽत्" सूत्र त्रल् प्रत्यय का प्रतिषेध कर अत् प्रत्यय का विधान करता है जिससे क्व यह रूप निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव ने प्रस्तुत सूत्र के विषय में उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के मत को भी उद्धृत किया है– "*त्रलमपि केचिदिच्छन्ति कुत्रेति जयादित्यः*"। तदनुसार कुछ आचार्यों के मत में सप्तम्यन्त "किम्" शब्द से अत् प्रत्यय के अतिरिक्त त्रल् प्रत्यय भी होता है जिससे उनके मत में कुत्र तथा क्व ये दोनों रूप निष्पन्न होते हैं।

[83] **"अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः"** इस अर्थ में प्रशस्य शब्द से इष्ठन् प्रत्यय होने के पश्चात् "*प्रशस्यस्य श्रः*"[256] सूत्र से श्रादेश होने से श्रेष्ठः और "*ज्य च*"[257] सूत्र से ज्यादेश होने पर "ज्येष्ठः" ये दो रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने श्रादेश और ज्यादेश विधायक उक्त सूत्रों की वृत्ति में कुछ अन्य आचार्यों के मत को भी उद्धृत किया है। उनका कथन है कि कुछ आचार्यों के मत में जिन शब्दों से एकबार प्रकर्ष प्रत्यय का विधान हो चुका हो, उनसे पुनः द्वितीय प्रकर्षप्रत्यय भाषा में नहीं होता। इसलिये प्रशस्य शब्द से एकबारअतिशय अर्थ में इष्टन्प्रत्यय होने के बाद जब श्रेष्ठ और ज्येष्ठ रूप निष्पन्न हो गये तो उनसे पुनः प्रकर्षप्रत्यय तरप् और तमप् नहीं होते। अतः "ज्येष्ठतर" और "ज्येष्ठतम" ये प्रयोग असाधु हैं– **"इह भाषायां द्वितीयः प्रकर्षप्रत्ययो नेष्यते। तेन श्रेष्ठतरो ज्येष्ठतम इति न भवतीत्येके।"**

इसके विपरीत जयादित्य द्वितीयप्रकर्षप्रत्यय भाषा में भी साधु मानते हैं। "युधिष्ठिरः श्रेष्ठतमः कुरूणाम्" इस वाक्य में "श्रेष्ठतम" शब्द में जो द्वितीयप्रकर्षप्रत्यय "तमप्" प्रयुक्त हुआ है उसे भाषा में भी साधु माना गया है। भाषावृत्तिकार ने उनके मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "भवतीति जयादित्यः। तेन युधिष्ठिरः श्रेष्ठतमः कुरूणामिति।

कुछ आचार्यों के मत में भाषा में एक प्रकर्षप्रत्यय के विधान के अनन्तर द्वितीयप्रकर्षप्रत्यय का विधान नहीं होता है लेकिन जयादित्य के मत में भाषा में भी एक प्रकर्षप्रत्यय के बाद भी द्वितीयप्रकर्षप्रत्यय हो जाता है।

[84] **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टे:**[258]– प्रस्तुत सूत्र अव्यय और सर्वनामों के टि के पूर्व अकच् का विधान करता है। भाषावृत्तिकार ने इस सूत्र के अर्थ के सम्बन्ध में उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को उद्धृत किया है– ''*इह च सुबन्तस्य प्राक् टेरकजनोकारसकारभकाराविति भाष्यम्*''। इस मत के अनुसार ओकारादि, सकारादि और भकारादि सुप्प्रत्यय परे रहते प्रातिपदिक के टि के पूर्व को अकच् होता है और इससे भिन्नस्थलों पर सुबन्त के टि के पूर्व को अकच् होता है।[259] यथा– उच्चकै:, नीचकै:, सर्वके, युवकयो:, युष्मकासु, युष्मकाभि: इत्यादि स्थलों पर प्रातिपदिक के टि के पूर्व को अकच् होता है और त्वयका, मयका, त्वयकि, मयकि आदि स्थलों में सुबन्त के टि के पूर्व को अकच् होता है।

भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार दोनों ही अव्यय और सर्वनामों के टि के पूर्व अकच् विधान में एकमत है।

[85] **शिलाया ढ:**[260]– प्रस्तुत सूत्र शिला शब्द से इवार्थ में ढप्रत्यय का विधान करता है, जिससे शिलेवास्या: शरीरम् इस अर्थ में शिलेयम् यह रूप निष्पन्न होता है।

कतिपय आचार्य ढप्रत्यय के साथ-साथ ढञ् प्रत्यय की अनुवृत्ति स्वीकार कर इवार्थ में ढञ् प्रत्यय का भी विधान मानते हैं अत: उनके मत में शैलेयम्, शिलेयम् ये द्विविध रूप निष्पन्न होंगे। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उक्त मत को उद्धृत किया है– ''ढञपीत्येके। शैलेयं दधि''।

[86] **समासाच्च तद्विषयात्**[261]– यह सूत्र इवार्थ विषयक समास से इवार्थ में छप्रत्यय का विधान करता है, जिससे काकताल शब्द से छप्रत्यय होने पर काकतालीयम् यह रूप निष्पन्न होता है। यहाँ यह सन्देह उत्पन्न होता है कि जब समास भी इवार्थ में है और प्रत्यय भी इवार्थ में है तो समास से ही इवार्थ उक्त होने से प्रत्ययविधान की कोई आवश्यकता नहीं।

भाषावृत्तिकार प्रस्तुत सन्देह के निवारणहेतु उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत कों उपस्थित करते हैं– ''अत्र भाष्यम्– ''*द्वाविमाविवार्थौ। काकगमनमिव तालपतनमिव देवंदत्तस्य दस्युसमागम:। काकतालम्। निपातनात् समास:। ततस्तालेन संनतस्य वध इव देवदत्तस्य वधो दस्युभि: काकतालीयमिति*''। इस मत के अनुसार

समासगत इवार्थ और प्रत्ययगत इवार्थ दोनों भिन्न-भिन्न हैं। काकतालसमागम के समान देवदत्त का दस्युओं के साथ समागम है। यह काकतालम् इस समस्तपद का अर्थ है तथा ताल से काकमरण के समान, दस्युओं से देवदत्त का वध हुआ यह प्रत्ययार्थ है अतः यहाँ इवार्थ में समास होने पर भी इवार्थ में छप्रत्यय सम्भव है।

काकतालम् इत्यादि प्रयोगों में भाष्यकार और भाषावृत्तिकार दोनों के मत में समासगत इवार्थ और प्रत्ययगत इवार्थ दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

[87] **एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्**[262]– प्रस्तुत सूत्र एकशाला शब्द से इव अर्थ में ठच् प्रत्यय का विधान करता है। किञ्च ठजभाव में कन् प्रत्यय हो जाता है, जिससे एकशालिकः, एकशालकः ये द्विविध रूप निष्पन्न होते हैं परन्तु कुछ आचार्य पाक्षिक कन् प्रत्यय के स्थान में ठक् प्रत्यय का विधान मानते हैं अतः उनके मत में एकशालिकः, ऐकशालिकः ये द्विविध रूप निष्पन्नं होते हैं। वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस मत को उद्धृत भी किया है– ''ठगित्यन्ये''।

[87] **पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ**[263]– प्रस्तुत सूत्र आयुधजीवि संघार्थक पर्श्वादि शब्द के स्वार्थ में अण् प्रत्यय का विधान करता है। पर्शु शब्द गणपाठ में द्विविध रूप में पाया जाता है, कहीं ह्रस्वान्त पर्शु शब्द उपलब्ध होता है तो कहीं दीर्घान्त। भाषावृत्ति में ह्रस्वान्त पर्शु शब्द उपलब्ध होता है अतः उनके मत में पार्श्व शब्द की निष्पत्ति ह्रस्वान्त पर्शु शब्द से अण् प्रत्यय का विधान करने से होती है।

इसके विपरीत आगम में पर्शु शब्द दीर्घान्त पढ़ा गया है अतः उनके मत में पार्श्व शब्द की निष्पत्ति दीर्घान्त पर्शू शब्द से अण्प्रत्यय के विधान द्वारा होती है। इस पर्शू शब्द में दो अच् दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस सम्बन्ध में आगम का मत उद्धृत किया है– ''**पर्शूरिति दीर्घान्तो द्व्यजित्यागमः**''।

भाषावृत्तिकार के मत में पार्श्व शब्द की मूलप्रकृति ह्रस्वान्त पर्शु शब्द है जबकि आगम के अनुसार दीर्घान्त पर्शू शब्द है।

[89] **न सामिवचने**[264]– प्रस्तुत सूत्र ''अनत्यन्तगतौ क्तात्''[265] सूत्र से अनत्यन्तगति अर्थ में क्तान्त शब्दों से प्राप्त कन्प्रत्यय का निषेध करता है, जिससे सामिकृतम् आदि रूप सिद्ध होते हैं। जयादित्य के अनुसार कन्प्रत्यय का विधान

अनत्यन्तगति के बोध के लिये किया जाता है लेकिन इस अनत्यन्तगति का बोध सामि शब्द से ही हो जाता है अतः अनत्यन्तगति अर्थ में पूर्व सूत्र से कन् की प्राप्ति ही नहीं है। इसलिये ''न सामिवचने'' यह उसका प्रतिषेधक सूत्र भी अनर्थक है। प्रस्तुत सूत्र अनर्थक होकर यह ज्ञापित करता है कि यह प्रतिषेध स्वार्थ में प्राप्त कन्प्रत्यय का है यद्यपि स्वार्थ में प्रस्तुत शब्द से कन्प्रत्यय का विधायक कोई सूत्र नहीं है तथापि ''तमबाद्यन्तात् स्वार्थे कन् वक्तव्यः'' इस वचन के द्वारा कन्प्रत्यय हो सकता है। यही कारण है कि बहुतर आदि शब्दों से भी स्वार्थ में कन्प्रत्यय होकर 'बहुतरकम्' इत्यादि रूप निष्पन्न हो जाते हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के इस मत को उद्धृत किया है– ''प्रतिषेधोऽयं स्वार्थिकस्य कनः। तस्य चास्तित्वे लिङ्गमिदमेव। तेन बहुतरकमित्यादि सिध्यतीति जयादित्यः''।

सूत्र निर्देशानुसार प्रस्तुत सूत्र क्तान्त शब्दों से अनत्यन्तगति अर्थ में प्राप्त कन्प्रत्यय का निषेध करता है लेकिन जयादित्य के अनुसार प्रस्तुत सूत्र स्वार्थिक कन्प्रत्यय का निषेध करता है।

[90] **अषडक्षाशितङ्ग्वलंकर्मालंपुरुषाध्युत्तरपदात् खः**[266] – प्रस्तुत सूत्र ''अषडक्षादि'' शब्दों तथा अध्युत्तरपदक शब्दों से स्वार्थ में खप्रत्यय का विधान करता है। भाषावृत्तिकार ने इस स्वार्थिक खप्रत्यय को नित्य माना है।

यद्यपि प्रस्तुत सूत्र में ''समर्थानाम्प्रथमाद्वा'' सूत्र से वाग्रहण की अनुवृत्ति आती है जिससे प्रस्तुत खप्रत्यय भी विकल्प से होना चाहिये लेकिन प्रस्तुत सूत्र के समान ''विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्'' इस उत्तरपूर्वी सूत्र से भी वाग्रहण की अनुवृत्ति सम्भव थी। पुनः इस सूत्र में विभाषाग्रहण यह ज्ञापित करता है कि इस सूत्र से पूर्ववर्त्ती सूत्र में वाग्रहण की अनुवृत्ति नहीं आती। इसीलिये यह प्रत्यय नित्यप्रत्यय है।

भाषावृत्तिकार ने अपने मत की पुष्टि के लिये भाष्य के उस मत को निर्दिष्ट किया है, जिसमें समस्त स्वार्थिकनित्यप्रत्ययों की गणना की गई है, उनमें प्रस्तुत खप्रत्यय भी सम्मिलित है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्यमत को निम्न रूप में प्रस्तुत किया है– ''एवमन्येऽपि नित्या भाष्ये परिगणिताः। यदुक्तं नित्यप्रत्ययास्तमबादयः प्राक् कनः। ञ्यादयः प्राग्वुनः। आमादयः प्राङ् मयटः। वृहती। आत्यन्ताः समासान्ताश्चेति''।

भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार दोनों ही उक्त सूत्र से विधीयमान स्वार्थिक खप्रत्यय को नित्य स्वीकार करते हैं।

[91] **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्[267]**– सूत्र बह्वर्थक तथा अल्पार्थक शब्दों से शस्प्रत्यय का विधान करता है। सूत्रकार के अनुसार चाहे कार्य माङ्गलिक हो या अमाङ्गलिक। सभी स्थितियों में बह्वर्थक और अल्पार्थक शब्द से शस्प्रत्यय होता है। यथा– बहूनि बहुभिर्बहुभ्यो वा ददाति बहुशः। भूरिशः। अल्पशो ददाति। स्तोकशः।

परन्तु इसके विपरीत स्मृति बह्वर्थक और अल्पार्थक शब्द से उसी अवस्था में शस्प्रत्यय का विधान स्वीकार करता है, जबकि इसमें केवल माङ्गलिक कार्य का अभिधान किया जाये, यदि उसमें अमाङ्गलिक श्राद्धादि कार्य का अभिधान हो तो शस्प्रत्यय नहीं होगा। वृत्तिकार ने स्मृति के इस वचन को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''बहुशः। अल्पशो ददाति। माङ्गलिक्यां प्रवृत्तावस्याभिधानम्। श्राद्धादौ मा भूदिति स्मृतिः''।

सूत्र निर्देशानुसार बह्वर्थक तथा अल्पार्थक शब्दों से सामान्य रूप में शस्प्रत्यय होता है लेकिन स्मृतिवचन के अनुसार इन बह्वर्थक तथा अल्पार्थक शब्दों से तभी शस् प्रत्यय होता है, जब उनसे किसी माङ्गलिक कार्य में प्रवृत्ति का बोध हो। वृत्तिकार ने सूत्रोदाहरण के पश्चात् यह स्मृतिवचन निर्दिष्ट किया है जिससे इस मत में उनकी सहमति या असहमति का बोध नहीं हो पाता।

[92] **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् साम्लोम्नः[268]**– प्रस्तुत सूत्र प्रति पूर्वक, अनु पूर्वक तथा अव पूर्वक सामशब्दान्त और लोमशब्दान्त समासों से अच्प्रत्यय का विधान करता है।

जयादित्य के अनुसार कृष्ण, उदक् और पाण्डु पूर्वक भूमि शब्द से तथा संख्या के उत्तरपद में स्थित गोदावरी और नदी शब्दों से भी अच् प्रत्यय होता है। तथा– कृष्णभूमम्, उदग्भूमम्, पाण्डुभूमम्, पञ्चगोदावरम्, द्विनदम्। इसके अतिरिक्त उन्हें संख्यापूर्वक भूमि शब्द से भी अच्प्रत्यय इष्ट है। यथा – दशभूमं सूत्रम्, द्विभूमः प्रासादः। जयादित्य ने पूर्व सूत्र में ''अच्'' यह योगविभाग कर अन्यत्र भी अच्प्रत्यय का विधान किया है। यथा – पद्मनाभः, ऊर्णनाभः, दीर्घरात्रम्, गणरात्रम्, वर्षारात्रम्। पुरुषोत्तमदेव ने जयादित्य के इस मत को उक्त

सूत्र की वृत्ति में निम्न रूप से उद्धृत किया है – **"इह कृष्णोदक्पाण्डु पूर्वाया भूमेरच् प्रत्ययः स्मृतः। गोदावर्य्याश्च नद्याश्च संख्याया उत्तरे यदि॥ इति जयादित्यः। ....अजिति योगविभागात् पद्मनाभः"**।

सूत्र निर्देशानुसार केवल सूत्र में निर्दिष्ट शब्दों से ही समासान्त अच्प्रत्यय का विधान होता है लेकिन जयादित्य के मत में सूत्र में अनिर्दिष्ट कतिपय शब्दों से भी समासान्त अच्प्रत्यय हो जाता है।

[93] **उपसर्गाच्च**[269]– प्रस्तुत सूत्र पर पठित "वेर्ग्रो वक्तव्यः" इस वार्तिक द्वारा वि पूर्वक नासिका शब्द से अच्प्रत्यय और ग्र आदेश होने से विग्रः यह रूप निष्पन्न होता है। वृत्तिकार ने प्रस्तुत प्रयोग को लौकिक प्रयोग माना है लेकिन वृत्तिकार के अनुसार स्मृति ने इसे छान्दस स्वीकार किया है – **"विग्रः। एतत्तु नैगममिति स्मृतिः"**।

स्मृति विग्रः प्रयोग को छान्दस मानती है लेकिन वृत्तिकार लौकिक।

[94] **नित्यमसिच् प्रजामेधयोः**[270]– प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यह सूत्र केवल नञ्, दुस् और सु शब्दों से परवर्त्ती प्रजा और मेधस् शब्दों से ही असिच्प्रत्यय का विधान करता है जिससे अप्रजाः, दुष्प्रजाः, सुप्रजाः, अमेधा, दुर्मेधा, सुमेधा ये रूप निष्पन्न होते हैं लेकिन जयादित्य के अनुसार उन प्रजा और मेधस् शब्दों से भी असिच्प्रत्यय हो जाता है जिनके पूर्व में नञ्, दुस् और सु शब्दों से भिन्न शब्द भी हों। यही कारण है कि उनके मत में अल्पमेधसः इस प्रयोग में मेधस् शब्द से पूर्व अल्प शब्द होने पर भी समासान्त असिच्प्रत्यय हो जाता है।

नञ् आदि से भिन्न प्रजादि शब्दों से असिच्प्रत्यय के विधान का उनका मुख्य आधार सूत्र में पठित नित्यशब्द है। उनका कथन यह है कि प्रस्तुत सूत्र में नित्यग्रहण इसलिये किया गया है ताकि पूर्ववर्त्ती सूत्र से प्राप्त अन्यतरस्याम् की निवृत्ति हो जाये लेकिन उक्त अन्यतरस्याम् शब्द स्वरित प्रतिज्ञा के अन्तर्गत नहीं है अतः उसकी निवृत्ति स्वयमेव सिद्ध है इसलिये उसकी निवृत्ति के लिये सूत्र में नित्यग्रहण की आवश्यकता नहीं तथापि सूत्रकार ने जो सूत्र में नित्यग्रहण किया, वह व्यर्थ होकर अर्थाधिक्य को प्रकट करता है और यह अर्थाधिक्य अनुवृत्त नञ्, दुस् और सु के अतिरिक्त अल्पशब्द के ग्रहण करने में चरितार्थ हो जाता

है। वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के इस मत को उद्धृत किया है – **"नित्यग्रहणादल्पमेधस इति जयादित्यः"**।

सूत्रनिर्देशानुसार केवल नञ्, दुस् और सु पूर्वक प्रजा तथा मेधस् शब्दों से असिच्प्रत्यय होता है किन्तु जयादित्य के अनुसार सूत्र में नित्यग्रहण सामर्थ्य से अल्पपूर्वक मेधस् शब्द से भी असिच्प्रत्यय हो जाता है।

[95] **धर्मादनिच् केवलात्**[271] – प्रस्तुत सूत्र केवल धर्मशब्द के साथ जहाँ समास हुआ है ऐसे तदन्तबहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय का विधान करता है प्रियधर्मा और कल्याणधर्मा शब्द सिद्ध होते हैं। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भाष्यकार के प्रयोग को भी उद्धृत किया है – **"साक्षात्कृतो धर्मो यैस्ते साक्षात्कृतधर्माणो मुनय इति भाष्यप्रयोगः"**।

जयादित्य प्रस्तुत सूत्र में पठित केवल शब्द के आधार पर यह अर्थ करता है – "केवल एक पद पूर्व वाला जो धर्मशब्द, तदन्तबहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय होता है"। इस अर्थ के अनुसार धर्मशब्द से पूर्व यदि केवल एकपद विद्यमान हो न कि पदसमुदाय, तभी तदन्तबहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय होता है। इस दृष्टि से परमः स्वो धर्मोऽस्य इस त्रिपदबहुव्रीहि में अनिच्प्रत्यय नहीं होता क्योंकि धर्म शब्द से पूर्व दोपद विद्यमान हैं।

इसके विपरीत पुरुषोत्तमदेव ने केवलपद का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि केवल धर्म शब्द के साथ जहाँ समास हुआ हो, ऐसे तदन्तबहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय का विधान होता है अतः उनकी दृष्टि में जयादित्योक्त त्रिपद-बहुव्रीहि में भी अनिच्प्रत्यय सम्भव है क्योंकि यहाँ केवल धर्मशब्द के साथ ही समास हुआ है, पदान्तर के साथ नहीं। सूत्र के उक्तार्थ द्वारा पुरुषोत्तमदेव ने जयादित्य के मत का खण्डन किया है। पुरुषोत्तमदेव ने अपने तथा जयादित्य के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है – "केवलात् किम्? पदान्तरेण समस्ताद्धर्मान् मा भूत्। कुलस्य धर्मः कुलधर्मः। कृतः कुलधर्मोऽनेनेति कृतकुलधर्मः। दर्शितस्वधर्म्मः। यदा तु त्रिपदो बहुव्रीहिः परमः स्वो धर्मोऽस्य तदा केवल एवधर्मशब्द इति परमस्वधर्मेत्येव भवति। यथा तु जयादित्यस्तथा नैतत्"।

भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार दोनों ही "धर्मादनिच् केवलात्" सूत्र का यह अर्थ स्वीकार करते हैं कि केवल धर्मशब्द के साथ जहाँ समास हुआ हो, ऐसे

तदन्तबहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय होता है जिससे उनके मत में धर्मशब्दान्त द्विपद और त्रिपदबहुव्रीहि में भी अनिच् प्रत्यय हो जाता है।

इसके विपरीत जयादित्य ने प्रस्तुत सूत्र में पठित केवलशब्द के आधार पर सूत्र का यह अर्थ किया है – केवलएकपद पूर्ववाला जो धर्मशब्द तदन्तबहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय होता है। जयादित्य के इस अर्थ के आधार पर परमस्वधर्मः इस त्रिपदबहुव्रीहि में अनिच्प्रत्यय नहीं होगा। इसी त्रुटि के कारण भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के मत का खण्डन किया है।

जयादित्य के अनुसार केवल एकपद पूर्ववाले धर्मशब्द से बहुव्रीहि समास में अनिच् प्रत्यय होता है लेकिन पुरुषोत्तमदेव के मत में धर्मशब्दान्त बहुव्रीहि से अनिच्प्रत्यय होता है। इस मत भेद के कारण जयादित्य के मत में त्रिपदबहुव्रीहि में अनिच्प्रत्यय नहीं होता लेकिन पुरुषोत्तमदेव के मत में हो जाता है।

[98] **अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च**[272]– प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के मत को उद्धृत किया है – "चकारादहिमूषिकगर्द्दभशिखरेभ्यश्चेति जयादित्यः"। उक्त वचन के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में पठित चकार से सूत्र में पठित अग्रान्तादि शब्दों के अतिरिक्त अहि, मूषिक, गर्द्दभ और शिखर शब्दों से उत्तरवर्त्ती दन्त शब्द के स्थान में विकल्प से दतृ आदेश हो जाता है जिससे अहिदन्तः, अहिदन्, शिखरदती आदि रूप निष्पन्न हो जाते हैं।

सूत्रनिर्देशानुसार केवल अग्रशब्दान्त शब्दों तथा शुद्ध, शुभ्र, वृष तथा वराह शब्दों से उत्तरवर्त्ती दन्त शब्द के स्थान में विकल्प से दतृ आदेश होता है लेकिन जयादित्य के अनुसार उक्त सूत्र में पठित चकार से अहि, मूषिक, गर्द्दभ और शिखर-शब्दों से उत्तरवर्त्ती दन्तशब्द के स्थान में भी विकल्प से दतृआदेश हो जाता है।

[97] **उरः प्रभृतिभ्यः कप्**[273]– जयादित्य के अनुसार सामान्यतः गणपाठ में प्रातिपदिकों का पाठ किया जाता है लेकिन प्रस्तुत गणपाठ में लक्ष्मीः, अनड्वान्, पयः, नौः, पुमान् इन विभक्त्यन्तशब्दों का पाठ किया गया है।

सामान्य प्रातिपदिकपाठ की अपेक्षा विभक्त्यन्तशब्दों के पाठ का प्रयोजन यह है कि 'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' इस सूत्र से केवल एकवचनान्त शब्दों से

ही कप्प्रत्यय हो और द्विवचन बहुवचनान्त शब्दों से प्रस्तुत सूत्र से कप् प्रत्यय न हो। इसलिये द्विवचनान्त और बहुवचनान्त शब्दों से ''शेषाद् विभाषा'' सूत्र से विकल्प करके ही कप्प्रत्यय होता है, जिससे बहुलक्ष्मी:, बहुलक्ष्मीक:, द्विपुमान्, द्विपुंस्क: इत्यादि रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में जयादित्य के उक्त मत को उद्धृत किया है– ''इह गणे लक्ष्मीरनड्वान् पयो नौ: पुमानिति प्रथमैकवचनान्ता: पठ्यन्ते। तेन द्विवचनबहुवचनान्ताच्छेषाद् विभाषेति कप्। बहुलक्ष्मीर्बहुलक्ष्मीको वा। द्विपुमान् द्विपुंस्को वेति जयादित्य:''।

सूत्रनिर्देशानुसार जिसके अन्त में उरसादि शब्द हों, ऐसे बहुव्रीहिसमास में स्वार्थ में कप्प्रत्यय होता है लेकिन जयादित्य के अनुसार उरसादिगण में विभक्त्यन्त शब्दों का पाठ होने से प्रस्तुत सूत्र से केवल एकवचनान्त शब्दों से ही उक्त स्वार्थिक कप् प्रत्यय होता है।

[98] **नन्द्रा: संयोगादय:**[274]– इस सूत्र पर ''ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य'' यह वार्तिक पठित हुआ है। इस वार्तिक के निर्देशानुसार सन् परे रहते ईर्ष्य धातु के तृतीयवर्ण को द्वित्व होता है। प्रस्तुत वार्तिक में निर्दिष्ट तृतीयवर्ण का तात्पर्य स्पष्ट रूपेण निर्दिष्ट नहीं है। पुरुषोत्तमदेव ने इस वार्तिक के आशय को स्पष्ट करने के लिये अनेक आचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। इन मतों के निर्देशानुसार कुछ आचार्यों के मत में ईर्ष्य धातु के तृतीय एकाच् को द्वित्व होता है तो कुछ के मत में तृतीयव्यञ्जन को। तृतीय एकाच् को द्वित्व पक्ष में सन्प्रत्यय को तथा तृतीयव्यञ्जन के द्वित्व पक्ष में यि को द्वित्व होता है, जिससे ईर्ष्यिषिषति और ईर्ष्यियिषति ये द्विविध रूप निष्पन्न होते हैं। इन द्विविध रूपों की साधुता की पुष्टि ''ईर्ष्यो यि:, सन् वा द्वि:''[275] इस चान्द्र सूत्र से भी हो जाती है। भाषावृत्तिकार ने इन सभी मतों को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य। ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवत:। तृतीयस्यैकाच इत्येके। व्यञ्जनस्येत्यपरे। ईर्ष्यो यि: सन् वा द्विरिति चान्द्रं सूत्रम्''।

कुछ आचार्य ईर्ष्य धातु के तृतीय एकाच् को द्वित्व स्वीकार करते हैं तो कुछ तृतीयव्यञ्जन को। भाषावृत्तिकार को ये दोनों मत अभिमत हैं इसीलिये वे इन मतों की पुष्टि हेतु चान्द्रसूत्र को उपस्थित करते हैं।

[99] **सिध्यतेरपारलौकिके**[276]– प्रस्तुत सूत्र अपारलौकिक अर्थ में ही णिच् परे रहते षिधु धातु के इकार को आत्व का विधान करता है। इसीलिये

तपस्तापसं सेधयति इस प्रयोग में षिध् धातु के इकार को आत्त्व नहीं हुआ है। क्योंकि इस वाक्य का अर्थ है कि तप तपस्वी को ज्ञानविशेष प्राप्त करवाता है। यह अर्थ 'पारलौकिक' है।

भाषावृत्तिकार ने 'अपारलौकिक' शब्द में स्थित 'पारलौकिक' शब्द के अर्थ विशेष के निर्देश हेतु उक्त सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन को उद्धृत किया है– "पारलौकिकग्रहणं ज्ञानविशेषोपलक्षणार्थमिति स्मृतिः"। इस वचन के अनुसार सूत्र में निर्दिष्ट अपारलौकिकशब्द में स्थित पारलौकिकशब्द ज्ञानविशेष का बोधक है। वृत्तिकार ने स्वमत की पुष्टि हेतु यह पूर्वोक्त स्मृतिवचन उद्धृत किया है इसलिये प्रस्तुत सूत्र वहीं आत्त्व का विधान करता है, जहाँ ज्ञानविशेष की प्रतीति न हो। यथा– 'अर्थं साधयति' आदि में परिलक्षित होता है।

स्मृतिवचन के अनुसार प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट अपारलौकिकशब्दस्थ पारलौकिकशब्द ज्ञानविशेष का बोधक है।

[100] **पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु**[277]– प्रस्तुत सूत्र शसादिप्रत्यय परे रहते पादादिशब्दों के स्थान में पदादि आदेशों का विधान करता है। प्रस्तुत सूत्र को कुछ आचार्य छान्दस मानते हैं तो कुछ लौकिक। किञ्च कुछ उभयविध। भाषावृत्तिकार ने इन सभी मतो को अपनी वृत्ति में स्थान दिया है। भाषावृत्तिकार के अनुसार आगमशास्त्र के मत में "पद्दन्नोमास्...." सूत्र में "शीर्षश्छन्दसि"[278] सूत्र से छन्दस् की अनुवृत्ति आती है– "इह पद्दन्नोमासित्यत्र सूत्रे छन्दसीत्यनुवर्त्तत इत्यागमः"। अतः उनके मत में इस सूत्र द्वारा विधीयमान आदेश केवल छन्दोविषयक है। वस्तुतः प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान पदादि आदेशों को यदि केवल छन्दोविषयक माना जाये तो अनेक वे लौकिकप्रयोग सिद्ध नहीं हो सकते जिनमें पादादि के स्थान में पदादि आदेश दृष्टिगोचार हो रहे हैं। इसीलिये भाषावृत्तिकार ने कहा है– "दृश्यन्ते च पाददन्ताद्यर्थ पद्ददादिप्रयोगाः। पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च, दतो धावति सुदती, हृदि विनिहितरूपः, अप्रशस्तं निशि स्नानम्, पीते यूष्णि निरामयः, यद्दोष्णां भाति विंशतिरित्यादि"।

कतिपय आचार्यो का कथन है कि लोक में जो "पदादि" प्रातिपदिक दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे विशुद्ध रूप से शब्दान्तर हैं अतः इन्हें पादादि के स्थान में पदादि आदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता। जो आचार्य पदादि आदेश को शब्दान्तर स्वीकार करते हैं। भाषावृत्तिकार ने उनके मत को भी उद्धृत किया है– 'शब्दान्तराणीत्यन्ये'।

कतिपय आचार्यों का कथन है कि लोक में पादादि के स्थान में जो पदादि आदेश दृष्टिगोचार हो रहे हैं वे अपशब्द हैं अत: उनके मत में ये विशुद्ध "छान्दस" प्रयोग हैं। भाषावृत्तिकार ने उन आचार्यों के मत को निर्दिष्ट किया है जो लोक में प्रयुक्त पदादि आदेशों को अपशब्द मानते हैं– "तदिमेऽपशब्दा इत्येके"। कुछ आचार्यों का कथन है कि प्रस्तुत सूत्र में छन्द की अनुवृत्ति नहीं आती अत: इस सूत्र से विधीयमान पदादि आदेश लोक में भी सम्भव हैं। भाषावृत्तिकार ने जो आचार्य इस सूत्र को छान्दस नहीं मानते उनके मत को उद्धृत किया है– "छन्दसीति नानुवर्त्तत इत्यपरे"।

कुछ आचार्यों का मत है कि ये पदादि आदेश छान्दस ही हैं परन्तु छान्दस होने पर भी कहीं-कहीं भाषा में इनका प्रयोग हो जाता है। जो आचार्य छान्दस प्रयोगों को भाषा में प्रयोग की स्वीकृति देते हैं। भाषावृत्तिकार ने उनके मत को भी उद्धृत किया है– "छान्दसा अपि क्वचिद् भाषायां प्रयुज्यन्ते इति परे"।

उक्त सूत्र कुछ आचार्यों के मत में छान्दस हैं तो कुछ के मत में लौकिक और कुछ के मत में उभयविध। भाषावृत्तिकार प्रस्तुत सूत्र को लौकिक ही मानता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आचार्य उक्त सूत्र से विधीयमान पदादिआदेशों को शब्दान्तर स्वीकार करते हैं तथा कुछ आचार्य इन पदादिशब्दों को अपशब्द स्वीकार करते हैं।

[101] **धात्वादे: ष: स:**[279]– यह सूत्र धातु के आदि में विद्यमान औपदेशिक षकार को सकारादेश का विधान करता है। यद्यपि षकार को सकारादेश की अपेक्षा उपदेश में सकार का पाठ ही उपयुक्त था तथापि पाणिनीय ने अपनी प्रक्रिया में लाघव के लिये उक्त सरणि को अपनाया। उक्त सरणि के ग्रहण करने पर "आदेशप्रत्यययो:"[280] सूत्र के द्वारा कहाँ पर सत्व हो सकता है तथा कहाँ पर नहीं? इसका परिज्ञान हो जाता है। यथा– प्रस्तुत सूत्र आदेशभूत तथा प्रत्ययावयव सकार यदि इण् अथवा कवर्ग से परवर्त्ती हो तो उसके स्थान में षकारादेश का विधान करता है। "सिषेव और अग्निषु इन उदाहरणों में इण् से परे 'सकार' को षकार हो गया है। यदि धातुपाठ में षकार का ही पाठ किया जाता तो "सिषेव" में आदेश का सकार न होने से षत्व न होता। षोपदेश होने से तो 'स' को षत्व करने के बाद आदेश का सकार होने से उसमें षत्व सुलभ हो जाता है। यदि इस सरणि को न अपनाया जाता तो जिन-जिन को षत्व अपेक्षित होता, उन-उन का सूत्र में ग्रहण करना पड़ता। उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता

है कि लघुतापूर्वक "आदेशप्रत्यययो:" सूत्र की व्यवस्था के लिये षोपदेश आवश्यक है लेकिन पाणिनिकृत षोपदेशपाठ वर्तमान समय में परिभ्रष्ट रूप में उपलब्ध होता है अत: कौन धातु षोपदेश है? इसके परिज्ञान के लिये षोपदेश धातुओं का पाठ किया जाता है। भाषावृत्तिकार ने इस षोपदेश धातुओं के विवरण के लिये उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य को उद्धृत किया है– "आदेशप्रत्यययोरिरिति षत्वव्यवस्थार्थ षोपदेशा धातव: पठ्यन्ते। तदुक्तम्भाष्ये– "अज्दन्त्यपरा: सादय: षोपदेशा: ष्मिङ्ष्विदिष्वदिष्वञ्जिष्वपयश्च। सृपिसृजिस्तृस्त्यासेकृसृवर्जमिति।"

[102] **णो न:**[281]– प्रस्तुत सूत्र धातु के आदि में विद्यमान णकार को नकार का विधान करता है। यद्यपि नकारादेश विधान की अपेक्षा नकारादि धातुपाठ ही उपयुक्त था तथापि पाणिनि ने अपनी प्रक्रिया में लाघव के लिये णकारादेश किया। णकार को नकारादेश का विधान करने पर "उपसर्गादस-मासेऽपिणोपदेशस्य"[282] इस सूत्र द्वारा लघुता से ही अपेक्षितस्थल पर णत्व का विधान किया जाता है अन्यथा जिन-जिन शब्दों को णत्व अपेक्षित होता, उन-उन शब्दों का सूत्रों में ग्रहण करना पड़ता। वर्तमान उपलब्ध णोपदेश पाणिनीयधातुपाठ भ्रामक है अत: णत्व की व्यवस्था के लिये णोपदेश धातुओं का पाठ अपेक्षित है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्योक्त णोपदेश धातुओं का निर्देश किया है– "णत्वव्यवस्थार्थं णोपदेशा धातव: पठ्यन्ते। तदुक्तम् भाष्ये– "सर्वे नादयो णोपदेशा नृतिनन्दिनर्दिनक्किनाटिनाथृनाधृनृवर्जमिति"।

[103] **छे च**[283]– प्रस्तुत सूत्र संहिता में ही तुगागम का विधान करता है। यही कारण है कि दधि छत्रम् यहाँ संहिता के अभाव में छकार परे होने पर भी ह्रस्व को तुगागम नहीं हुआ। भाषावृत्तिकार ने सांहितिकस्थलों के विषय में उक्त सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन को उद्धृत किया है– **"संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो:।**

सूत्रेष्वपि तथा नित्या सैवान्यत्र विभाषया"।। इतिस्मृति:।

इस वचन के अनुसार एकपद में, धातु और उपसर्ग में तथा सूत्रों में संहिता नित्य होती है। इससे भिन्न स्थलों पर वाक्यादि में यह संहिता विकल्प से होती है।

[104] **इको यणचि**[284]– प्रस्तुत सूत्र अच् परे रहते इक् के स्थान में यण् का विधान करता है जिससे दध्यत्र, मध्वत्र आदि रूप निष्पन्न होते हैं। प्रस्तुत

सूत्र में यण् को आदेश के रूप में स्वीकार किया गया है किन्तु आचार्य व्याडि तथा गालव के मत में यणादेश पक्ष के साथ-साथ यणागम पक्ष भी अपेक्षित है। यणागम पक्ष स्वीकार करने पर ही उनके अनुसार 'दधियत्र' और 'भूवादय:' आदि प्रयोग निष्पन्न होते हैं। वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इन दोनों आचार्यों के मत को निर्दिष्ट भी किया है– "इको यणिभर्व्यवधानं व्याडिगालवयोरिति वक्तव्यम्"।

उक्त सूत्रवृत्ति के निर्देशानुसार यण् का केवल आदेश पक्ष स्वीकार किया जाता है लेकिन व्याडि तथा गालव के मतानुसार आदेशपक्ष के साथ-साथ यण् का आगमपक्ष भी मान्य है।

[105] **एङि पररूपम्**[285]– प्रस्तुत सूत्र अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु के होने पर पूर्वपर के स्थान में एकादेश का विधान करता है जिससे प्रेलयति, प्रोखयति आदि रूप निष्पन्न होते हैं परन्तु कतिपय आचार्य इस सूत्र में "वा सुप्यापिशले:"[286] सूत्र की अनुवृत्ति स्वीकार करते हैं जिससे उनके मत में अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि सुब्धातु होने पर पूर्वपर के स्थान में विकल्प से पररूप एकादेश होता है अत: उनके मत में एकपक्ष में पररूप तथा दूसरेपक्ष में वृद्धिरूपैकादेश होने से उपेड़कीयति, उपैड़कीयति ये द्विविध रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने जो आचार्य विकल्प से "वा सुप्यापिशले:" सूत्र की अनुवृत्ति स्वीकार करते हैं उनके मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "केचिद्वा सुप्यापिशलेरित्यनुवर्त्तयन्ति सुब्धातोर्विकल्पार्थम्"।

[106] **उस्यपदान्तात्**[287]– सूत्र की वृत्ति के निर्देश के अवसर पर भाषावृत्तिकार ने भाष्य के मत में कुछ ऐसे प्रयोग प्रस्तुत किये हैं, जिन पर पररूप का सिद्धान्त लागू नहीं होता– "उस्रौमाङ्क्ष्वाट: प्रतिषेध इति भाष्यम्। उस्रामैच्छत्। औस्रीयत्। ओमि औङ्कारीयत्। आङि। औढ़ीयत्"। यहाँ आ+उस्रियत् इस अवस्था में "उस्यपदान्तात्" सूत्र में तथा आ+ओङ्कारीयत्, आ+ओढ़ीयत् [आ+ऊढ़ीयत्] इन प्रयोगों में "ओमाङोश्च" सूत्र से पररूप एकादेश की प्राप्ति थी परन्तु भाष्यकार के "उस्रौमाङ्क्ष्वाट: प्रतिषेध इति भाष्यम्" इस वचन द्वारा इसका प्रतिषेध होने से "आटश्च" सूत्र से वृद्धि होने पर औस्रीयत् औङ्कारीयत् और औढ़ीयत् ये रूप निष्पन्न होते हैं।

औस्त्रीयत्, औङ्कारीयत् और औढ़ीयत् इन त्रिविध प्रयोगों की निष्पत्ति हेतु भाष्यकार ने अतिरिक्तवचन का पाठ किया है।

[107] **अपरस्पराः क्रियासातत्ये**[288]– प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने आचार्यों के तीन मतों का उल्लेख किया है। प्रथम मत के अनुसार सातत्य शब्द के प्रसंगवश भाष्यकार ने जिन शब्दों में मकार के लोप का निपातन किया है, उस निपातन कार्य के सम्बन्ध में वैयाकरणों में एक श्लोक प्रसिद्ध है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उक्त श्लोक को उद्धृत किया है– ''लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम् काममनसोरपि'।

''समो वा हिततत‌योर्मांसस्य पचि युड्घञोः''।। इस श्लोक के अनुसार कृत्यप्रत्ययान्त परे रहते अवश्यम् के म का लोप होता है। यथा– अवश्यम् लाव्यम्-अवश्यलाव्यम्। प्रस्तुत मलोप केवल संहिता में ही होता है। इसीलिये संहिताभाव पक्ष में ''अवश्यं वक्तव्यम्'' इस स्थल पर भाष्यकार ने मकार का लोप नहीं किया।

''वा हिततत‌योश्च'' इस भाष्यस्थ श्लोकांश से सम् के म का विकल्प से लोप होता है, हित और तत शब्द परे रहते। यथा– सहितम्, संहितम्। सततम् सन्ततम्। उक्त श्लोकांश में तत शब्द परे रहते सम् के मकार का विकल्प से लोप विधान किया गया है। तदनुसार लोपाभाव पक्ष में सन्ततशब्द से तद्धित में सन्ततस्य भावः इस अर्थ में सान्तत्यम् यह रूप भी निष्पन्न होना चाहिये लेकिन शास्त्र में सान्तत्यम् यह रूप उपलब्ध नहीं होता अपितु इसके स्थान पर सातत्यम् यह रूप ही उपलब्ध होता है। भाषावृत्तिकार ने सान्तत्यम् इस प्रयोग में व्यवस्थितविभाषा द्वारा नित्य ही म का लोप होता है, इस तथ्य की पुष्टि हेतु उक्त सूत्र की वृत्ति में स्मृतिवचन को निर्दिष्ट किया है– ''व्यवस्थितविभाषया नित्यं सातत्यमिति स्मृतिरस्ति''।

स्मृतिवचन के अनुसार सातत्यम् इस प्रयोग की निष्पत्ति हेतु ''वा हिततत‌योश्च'' इस वचन में व्यवस्थितविभाषा स्वीकार कर नित्य ही मलोप स्वीकार करना चाहिये।

द्वितीय मत के अनुसार ''मांसस्य पचि युड्घञोः'' इस भाष्यस्थ वचन द्वारा पचन और पाक इन शब्दों के परे रहते मांस शब्द के अन्तिम अकार का लोप

विकल्प से होता है, जिससे मांसपचनम्, मांस्पचनम् तथा मांसपाक:, मांस्पाक: ये रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस आशय को अभिव्यक्त किया है– "मांसस्य पचि युड्घञोरिति। अन्त्यलोपो वा"।

तृतीय मत के अनुसार कुछ अन्य आचार्य मांस शब्द के अन्त्य लोप के साथ-साथ सूत्रार्थ में अनुस्वार का लोप भी चाहते हैं, जिससे उनके मत में मास्पचनम् और मास्पाक: ये रूप निष्पन्न होंगे परन्तु भागवृत्ति ने इन अनुस्वार लोप वाले पक्ष को सन्दिग्ध माना है। क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई तन्त्रभाष्यवाक्य उपलब्ध नहीं होता। भाषावृत्तिकार ने अन्य आचार्यों के इष्टिवचन तथा भागवृत्ति के मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– "सूत्रार्थे केचिदनुस्वारस्य च लोपमिच्छन्ति। मास्पचनम्। मास्पाक इति। तत् तु तन्त्रभाष्यवाक्यस्याभावात् सन्दिग्धमिति भागवृत्ति:"।

उक्त भाष्यस्थ द्वितीयमत तथा तृतीयमत में भागवृत्ति के मतानुसार पचन और पाक परे रहते मांस शब्द के अन्तिम अकार का विकल्प से लोप होता है किन्तु कुछ आचार्यों के अनुसार मांसशब्द के अन्त्यलोप के साथ-साथ अनुस्वार का भी लोप होता है।

[108] "**ओज: सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयाया:**"[289]– प्रस्तुत सूत्र "तमस्" शब्द से विहित तृतीया विभक्ति का अलुक् करता है, उत्तरपद के परे रहने पर। जिससे "तमसावृतम्" इस प्रयोग के समास होने पर भी तृतीयाविभक्ति का लोप नहीं होता। कतिपय आचार्य प्रस्तुत सूत्र में "तमस्" के स्थान में "तपस्" शब्द का पाठ मानते हैं अत: उनके मत में उत्तरपद परे रहने पर "तपस्" शब्द की तृतीयाविभक्ति का लोप नहीं होता। व्योष ने "तपसाप्तसिद्धिम्" इस प्रयोग में उक्त मत का निर्वाह भी किया है परन्तु इसके विपरीत "भट्टिकाव्य" में उत्तरपद परे होने पर "तपस् शब्द' की तृतीयाविभक्ति का लोप प्राप्त होता है। वृत्तिकार ने इन द्विविधमतों का निर्देश भी किया है–"इह तम: शब्द तप इति केचिदूचिरे। तथा च व्योष:–"तमोजसानिर्जितदेवराजं दृष्ट्वा रथस्थं तपसाप्तसिद्धि" मिति, "तप: कृशा: शान्त्युदकुम्भहस्ता" इति तु भट्टि:।[290]

[109] "**स्त्रिया: पुंवद् भाषित पुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु**"[291] प्रस्तुत सूत्र ऊङ् भिन्न स्त्रीलिङ्ग को तभी पुंवद्भाव का विधान करता है जब उत्तरपद में प्रियादि शब्द विद्यमान न हो लेकिन

"दृढ़भक्तिः" इस प्रयोग में उत्तरपद में प्रियादिगण में पठित "भक्ति" शब्द के होने पर भी पूर्ववर्त्ती स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त "दृढ़" शब्द को पुंवद्भाव दृष्टिगोचर हो रहा है। वृत्तिकार ने इस दृढ़-भक्ति शब्द का "दृढ़ं भक्तिरस्य" यह विग्रह करते हुए बताया है कि यहाँ पूर्वपद में स्त्रीत्व की विवक्षा नहीं है अतः उसके पुंवद्भाव का प्रश्न ही नहीं उठता।

कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि "दृढ़भक्तिः' प्रयोग के उक्त रीति से निष्पन्न होने पर भी श्लिष्टप्रियः और विमुक्तकान्तः आदि प्रयोग निष्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि यहाँ 'प्रियादि शब्द' के उत्तरपद में रहने पर भी पूर्ववर्त्ती स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त श्लिष्ट और विमुक्त-शब्दों को पुंवद्भाव दृष्टिगोचर हो रहा है, जोकि सूत्र से सम्भव नहीं। भाषावृत्तिकार ने इन प्रयोगों को चिन्त्य बताया है। भाषावृत्तिकार ने अपने उक्त मत को इन शब्दों में निबद्ध किया है–"कथं दृढ़भक्तिः? दृढं भक्तिरस्येति पूर्वपदस्यास्त्रीत्वविवक्षितत्वात्। श्लिष्टप्रियो विमुक्तकान्त इत्यादयस्तु चिन्त्याः"।

[110] **तसिलादिष्वाकृत्वसुचः**[292]– यद्यपि इस सूत्र के अनुसार केवल तसिलादिप्रत्ययों के परे रहते पूर्वपद को पुंवद्भाव होता है लेकिन भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में पुंवद्भाव के सम्बन्ध में भाष्य के मत को उद्धृत किया है– "सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्य इति दिङ्नामान्यन्तराल इत्यत्र भाष्यम्"। इस वचन के अनुसार वृत्तिमात्र में सर्वनामवाचक शब्दों को पुंवद्भाव होता है। जैसे– "सर्वासां धनं सर्वधनम्, अन्यस्यास्तनयोऽन्यतनयः" में पूर्ववर्ती शब्द को पुंवद्भाव हो गया है। इसी प्रकार "न मानिनी संसहतेऽन्यसङ्गमम्, तस्या मुखं तन्मुखम्" इत्यादि उदाहरणों में भी परिलक्षित होता है।

यहाँ यह अवधेय है कि भाष्यकार के मत में वृत्तिमात्र में सर्वनामवाचक शब्दों को पुंवद्भाव स्वीकार करने पर 'भवतीप्रसादात्' इस प्रयोग के पूर्ववर्त्ती 'भवती' शब्द में भी पुंवद्भाव होना चाहिये लेकिन प्रयोग में ऐसा परिलक्षित नहीं होता। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत प्रयोग को चिन्त्य माना है– "भवतीप्रसादादिति तु चिन्त्यम्"।

भाषावृत्तिकार और भाष्यकार दोनों ही वृत्तिमात्र में सर्वनामवाचक शब्दों को पुंवद्भाव स्वीकार करते हैं।

[111] **वा शोकष्यञ्रोगेषु**[293]– प्रस्तुत सूत्र ष्यञ् प्रत्यय परे रहते हृदय शब्द को विकल्प से हृद् आदेश का विधान करता है, जिससे सुहृद् शब्द से ष्यञ् प्रत्यय के अनन्तर प्रस्तुत सूत्र से हृदय को हृदादेश "हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च" सूत्र द्वारा उभयपद वृद्धि होने से सौहार्द्यम् यह पाक्षिक प्रयोग निष्पन्न होता है। कुछ आचार्य ष्यञ् प्रत्यय परे रहते उभयपद वृद्धि स्वीकार नहीं करते अत: उनके मत में सौहृद्यम् यह प्रयोग निष्पन्न होगा। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में इस मत को उद्धृत भी किया है– "सौहृद्यमिति केचित्"।

[112] **कारे सत्यागदस्य**[294]– प्रस्तुत सूत्र में पठित सूतोग्रराजभोजकुलमेरुभ्यो दुहितुः पुत्रड्वा" इस वार्तिक द्वारा सूतादि शब्दों से परवर्त्ती दुहितृ शब्द के स्थान में विकल्प से पुत्रट् आदेश होता है तथा टित्त्वात् "टिड्ढाण्.... क्वरप:" सूत्र से ङीप् होने पर सूतपुत्री, सूतदुहिता वा आदि प्रयोग निष्पन्न होते हैं। वृत्तिकार के अनुसार उक्त वार्तिक में पठित शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों से परवर्त्ती दुहितृ शब्द से भी पुत्रट् आदेश होता है। यथा– शैलपुत्री, राजपुत्री। भाषावृत्तिकार ने अपने इस मन्तव्य को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है– "अन्यत्रापि दृश्यते। शैलपुत्री"। अपने उक्त मत की पुष्टि हेतु वृत्तिकार ने माघ का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है– "अभिवीक्ष्य विदर्भराजपुत्रीकुचकश्मीरजचिह्नमच्युतोर" इति माघ:"।

पुरुषोत्तमदेव ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में वामन के मत को भी उद्धृत किया है। उनका कथन है कि कुछ आचार्यों ने पुत्र शब्द का पाठ शार्ङ्गखादिगण में किया है अत: पुत्रशब्द को शार्ङ्गरवादित्वात् से ङीन्प्रत्यय करके पुत्रीशब्द निष्पन्न हो जाता है। यथा– "कृष्णदासस्य पुत्रीं तुभ्यमहं सम्प्रददे" इस प्रयोग में समासाभावस्थल में पुत्रीशब्द का स्वतन्त्र प्रयोग परिलक्षित हो रहा है। इस मत के अनुसार वार्तिकोक्त सूतादि शब्दों का शार्ङ्गखादिगण में पठित पुत्रशब्द से निष्पन्न पुत्रीशब्द के साथ समास करने से सूतपुत्री आदि रूप निष्पन्न हो सकते हैं अत: तदर्थ पूर्वोक्त वार्तिक द्वारा समास में दुहितृशब्द के स्थान में पुत्रडादेश के विधान की आवश्यकता नहीं है।

भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में वामनवृत्तिस्थ कुछ आचार्यों के मत को उद्धृत किया है– "केचिच्छाङ्र्गखादिषु पुत्रशब्दं पठन्तीति वामनवृत्ति:"।

पूर्वोक्त वार्तिक के निर्देशानुसार वार्तिक में पठित शब्दों से उत्तरवर्त्ती दुहितृशब्द को ही विकल्प से पुत्रडादेश होता है लेकिन वृत्तिकार के अनुसार

कहीं-कहीं वार्तिक में अपठित शब्दों से उत्तरवर्त्ती दुहितृशब्द से भी पुत्रडादेश होता है। वार्तिककार और वृत्तिकार जहाँ ये दोनों आचार्य समास में दुहितृशब्द को पुत्रडादेश द्वारा उग्रपुत्री और शैलपुत्री आदि रूप निष्पन्न करते हैं, वहीं वामनवृत्तिस्थ कुछ आचार्यों के मतानुसार शाङ्‍र्गखादिगण में पाठ होने से उसे पूर्वोक्तवार्तिक द्वारा समास में दुहितृशब्द को पुत्रडादेश के विधान की आवश्यकता नहीं है क्योंकि शाङ्‍र्गखादिगण में पठित ङीन्प्रत्ययान्त पुत्रीशब्द के साथ समास करने से ही 'उग्रपुत्री' आदि रूप निष्पन्न हो सकते हैं।

[113] **ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु**[295] – इस सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने वामन, भागवृत्ति और चान्द्र के मतों को उद्‌धृत किया है। सूत्र के निर्देशानुसार ज्योतिस्, जनपद, रात्रि, नाभि, नामन्, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन तथा बन्धु शब्द उत्तरपद परे रहने पर ही समानशब्द को सभाव होता है लेकिन सपक्ष, सधर्म और सजातीय शब्दों का उत्तरपद सूत्रोक्त न होते हुए भी इनमें समान को सभाव दृष्टिगोचर हो रहा है जोकि दोषावह है। वामन ने उक्त दोष के निराकरण हेतु "समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु"[296] इस पूर्वोक्त सूत्र का योगविभाग कर "समानस्य' सूत्र द्वारा इसमें अनुल्लिखित पदों के उत्तरपद होने पर भी समान को सभाव माना है– "इह समानस्येति योगविभागः। तेन सपक्षसधर्मसजातीयाः सिध्यन्तींति वामनवृत्तिः"।

लेकिन भागवृत्तिकार ने उक्त योगविभाग को अनार्ष मानकर स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार अव्ययशब्द अनेकार्थ होते हैं तदनुसार सहशब्द भी सदृशार्थक होता है अतः सपक्ष, सधर्म और सजातीय शब्दों के पक्ष, धर्म और जातीय शब्दों का सह के साथ समास करने के बाद "अव्ययीभावे चाकाले" सूत्र के द्वारा सह के स्थान में सादेश कर उक्त रूप निष्पन्न हो जाते है।।

यदि कोई ऐसा सन्देह करे कि 'सपक्ष' आदि शब्दों में पक्ष आदि के साथ सह का समास हुआ है तो समानपक्ष यहां पर 'पक्ष' आदि का समान के साथ समास कैसे हो गया? इस सम्बन्ध में भागवृत्तिकार का कथन है कि ये दोनों पृथक्-पृथक् शब्द हैं। सपक्ष में तो सह के साथ समास हुआ है और समानपक्ष में समान के साथ। भाषावृत्तिकार ने भागवृत्ति के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्‌धृत किया है– "अनार्षोऽयं योगविभागः। तथाह्यव्ययानामनेकार्थत्वात् सदृशार्थस्य सहशब्दस्यैतेप्रयोगाः। कथं नाम समानपक्ष इत्यादयोऽपि भवन्तीति भागवृत्तिः"।

वामन और भागवृत्तिकार ये दोनों ही "ज्योतिर्जनपद...." सूत्र में निर्दिष्ट उत्तरपदों के परे रहते समान को नित्य ही सभाव मानते हैं लेकिन चान्द्रव्याकरण के अनुसार नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन तथा बन्धु शब्दों के उत्तरपद परे होने पर समान को सभाव विकल्प से होता है।[297] पुरुषोत्तमदेव उक्त सूत्र की वृत्ति में उनके मत को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- "चान्द्रास्तु नामादिषु सभावं विकल्पेन ब्रुवन्ति"।

वामन और भागवृत्तिकार सूत्र में निर्दिष्ट समस्तशब्दों के उत्तर में स्थित होने पर पूर्ववर्त्ती समान शब्द को नित्य ही सभाव स्वीकार करते हैं लेकिन चन्द्रगोमी केवल ज्योतिस्, जनपद, रात्रि औरनाभि इन शब्दों के उत्तरपद स्थित होने पर ही पूर्ववर्त्ती समान को नित्य सभाव स्वीकार करते हैं।

शेष शब्दों के उत्तरपद में स्थित होने पर उनके मत में पूर्ववर्त्ती समान को विकल्प से सभाव होता है।

[114] **अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगराशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु**[298]- प्रस्तुत सूत्र आशीः, कारकादि शब्द तथा छ प्रत्यय के परे षष्ठ्यन्त तथा तृतीयान्त से भिन्न अन्य शब्द को दुगागम करता है लेकिन 'अन्येनान्यस्य' वा कारकः अन्यत्कारकः इस प्रयोग में षष्ठ्यन्त तथा तृतीयान्त अन्य शब्द को एवं अन्यस्येदं वा अन्यदीयम् इस प्रयोग में षष्ठ्यन्त अन्य शब्द को भी दुगागम परिलक्षित हो रहा है। इन प्रयोगों की निष्पत्ति के लिये भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्य के मत को उद्धृत किया है- "इहाविशेषेण दुक् कारकच्छयोरिति भाष्यम्"। इस कथन के अनुसार कारकशब्द और छप्रत्यय परे रहते किसी भी विभक्ति में स्थित अन्यशब्द को दुगागम हो जाता है अतः उक्त द्विविध प्रयोग निष्पन्न हो जाते हैं।

सूत्र निर्देशानुसार कारकशब्द तथा छप्रत्यय के परे होने पर केवल षष्ठ्यन्त तथा तृतीयान्त से भिन्न अन्यशब्द को ही दुगागम होता है लेकिन भाष्यकार के अनुसार कारकशब्द तथा छप्रत्यय के परे रहते किसी भी विभक्ति में स्थित अन्य शब्द को दुगागम हो जाता है।

[115] **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्**[299]- प्रस्तुत सूत्र के अनुसार पृषोदर आदि शब्द जिस रूप में शिष्टोपदिष्ट हैं, उस रूप की सिद्धि उसी प्रकार से की जाती है। प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त शिष्टशब्द के लक्षण के परिज्ञान के लिये

भाषावृत्तिकार ने भाष्य के अवलोकन का निर्देश किया है– "एतस्मिन्नार्यनिवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्या अलोलुपा अगृह्यमाणकारणाः किञ्चिदन्तरेण कस्याश्चिद्विद्यायाः पारगास्तत्र भवन्तः शिष्टः"[300] अर्थात् ऐसे ब्राह्मण शिष्ट कहलाते हैं– जो आर्यावर्त में निवास करने वाले हों, कुम्भीधान्य हों, अलोलुप हों, बिना लोभादि के सदाचार का पालन करने वाले हों और बिना गुरूपदेश तथा अभ्यासादि के सर्वविद्या में पारङ्गत हों। इस प्रकार के शिष्टों के द्वारा प्रयुक्त शब्द साधु माने जाते हैं।

यद्यपि शब्दों की साधुता के विषय में शिष्ट ही प्रमाण हैं तथापि यह शिष्ट है इसके परिज्ञान के लिये भी अष्टाध्यायी का अध्ययन आवश्यक है। भाष्यकार ने कहा भी है– "शिष्टज्ञानार्थाष्टाध्यायी"[301] अर्थात् जब अधीत अष्टाध्यायी वाला व्यक्ति अनधीत अष्टाध्यायी वाले व्यक्ति को अष्टाध्यायी में निर्दिष्टशब्दों का प्रयोग करते हुए देखता है तो उसे ज्ञात होता है कि इस पर कोई देवकृपा है अथवा इसका ऐसा स्वभाव ही है, जो अष्टाध्यायी के अध्ययन न करने पर भी अष्टाध्यायी में निर्दिष्टशब्दों का प्रयोग कर रहा है अतः बिना अष्टाध्यायी के अध्ययन के ही जब यह साधु शब्दों का प्रयोग कर रहा है तो यह जिन अन्यशब्दों को जानता है वे भी साधु ही होंगे। इस प्रकार शिष्टत्व के ज्ञान के लिये अष्टाध्यायी का अध्ययन आवश्यक है।

[115] **अन्येषामपि दृश्यते**[302]– इस सूत्र की वृत्ति में जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, वे सभी समस्तपद हैं जिससे ज्ञात होता है कि उत्तरपद परे ही पूर्वपद के अन्तिम अच् को दीर्घ का विधान होता है परन्तु पूरुषः और नारकः आदि प्रयोग समस्तपद नहीं हैं जिससे इनमें "अन्येषामपि दृश्यते" इस सूत्र से दीर्घ सम्भव नहीं। इस प्रकार के प्रयोगों की सिद्धि के लिये उक्त सूत्र की वृत्ति में वृत्तिकार ने वामन और भागवृत्ति के मतों को उद्धृत किया है– "दृशिग्रहणादिह पूरुषो नारक इत्यादावप्ययं दीर्घ इति वामनवृत्तिः। अनेनोत्तरपदविधानादप्राप्तिरिति पूरुषादयो दीर्घोपदेशा एव संज्ञाशब्दा इति भागवृत्तिः"।

वामनवृत्ति के अनुसार "अन्येषामपि दृश्यते" सूत्र में जो दृश्यते पद का प्रयोग किया गया है, वह यह सिद्ध करता है कि जिन स्थलों पर किसी सूत्र से दीर्घ का विधान नहीं किया गया है परन्तु शिष्टप्रयोग में वह दिखाई देता है तो उस स्थल पर इस सूत्र से दीर्घ का विधान कर लेना चाहिये। तदनुसार पुरुष

और नरक इन असमस्तशब्दों के आदि अच् को भी दीर्घ हो जाता है। वामनवृत्ति के इस मत को भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है– "दृशिग्रहणादिह पूरुषो नारक इत्यादावप्ययं दीर्घ इति वामनवृत्तिः"।

भागवृत्तिकार तो उत्तरपद परे रहते ही पूर्वपद के अन्तिम अच् को इस सूत्र से दीर्घ का विधान स्वीकार करता है अतः उनके मत में पुरुष और नरक शब्द के आदि अच् को इस सूत्र से दीर्घ नहीं हो सकता है। उनके अनुसार पूरुषः और नारकः ये संज्ञा शब्द स्वभाव से ही दीर्घोपदेश हैं अतः यहाँ दीर्घविधान की आवश्यकता ही नहीं है। भागवृत्तिकार के उक्त मत को भी भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में ही उद्धृत किया है– "अनेनोत्तरपदविधानादप्राप्तिरिति पूरुषादयो दीर्घोपदेशा एव संज्ञाशब्दा इति भागवृत्तिः"।

भाष्यकार तो पूरुषः और नारकः इन प्रयोगों को छान्दस मानता है अतः इसके मत में "न माङ्योगे"[303] सूत्रस्थ "छन्दोऽर्थं बहुलं दीर्घम्" इस भाष्यवचन से दीर्घ हो जाता है।

उक्त सूत्रस्थ वृत्ति में प्रदत्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि "अन्येषामपि दृश्यते" सूत्र समास में ही पूर्वपद के अन्तिम अच् को दीर्घ का विधान करता है अतः इस वृत्ति के अनुसार पूरुषः और नारकः इन शब्दों के आदि अच् को दीर्घ सम्भव नहीं। वामनवृत्ति के अनुसार सूत्रस्थ दृशिग्रहणसामर्थ्य से यह सूत्र असमास में भी आदि अच् को दीर्घ का विधान करता है अतः उसके मत में उक्त शब्दों के आदि अच् को दीर्घ सम्भव है लेकिन भागवृत्ति के अनुसार ये संज्ञाशब्द स्वभाव से ही दीर्घोपदेश हैं अतः उनके मत में यहाँ दीर्घविधान की कोई आवश्यकता नहीं।[304]

[117] **नृ च**[305]– प्रस्तुत सूत्र नाम् परे रहते नृ शब्द को विकल्प से दीर्घ का विधान करता है जिससे नृणाम्, नॄणाम् ये द्विविध रूप निष्पन्न होते हैं। कतिपय आचार्यों का मत है कि प्रस्तुत सूत्र में "छन्दसि" की अनुवृत्ति आती है अतः यह विकल्प से दीर्घ विधान केवल वेद में ही होता है, भाषा में तो नित्य ही दीर्घविधान होगा।

पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इस मत के खण्डन हेतु कुछ आचार्यों के मत को उद्धृत किया है "भाषायामपीत्येके"। इस मत के अनुसार प्रस्तुत

सूत्र केवल छन्द में ही विकल्प से दीर्घविधान नहीं करता है अपितु भाषा में भी करता है। इसलिये भाषा में भी नृगाम्, नृणाम् ये द्विविध प्रयोग निष्पन्न होंगे।

सिद्धान्तकौमुदी की टीका में ज्ञानेन्द्रसरस्वती ने उल्लेख किया है कि जो आचार्य उक्त सूत्र में छन्दसि की अनुवृत्ति स्वीकार करते हैं उनके मत में "चिन्ताजर्जरचेतसां वत नृणां का नाम शान्तेः,"[306] "नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव[307] क्रमशः भर्तृहरि और महिम्नस्तव का उक्त ह्रस्व ऋकारान्त नृणाम् प्रयोग निष्पन्न नहीं होगा क्योंकि वेद में तो "छन्दस्युभयथा", इस सूत्र से ही पाक्षिक नृणां, नृणाम् प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं अतः "नृच " यह सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि लोक में नृणां, नृणाम् में पाक्षिक विधान के लिये उक्त सूत्र की आवश्यकता है– "केचित्त्विह छन्दसीत्यप्यनुवर्तयन्ति, तेषां हि "चिन्ताजर्जरचेतसां वत नृणां का नाम शान्तेः कथा", "नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव"[308] इत्यादि प्रयोगा न संगच्छेरन्। किञ्च "छन्दस्युभयथा" इति पूर्वसूत्रेणैव नृणां नृणामिति सिद्धे "नृ च" इति सूत्रस्य वैयर्थ्यं स्यात्"।[309]

यहाँ यह ध्येय है कि उक्त ह्रस्व ऋकारान्त नृणां शब्द का प्रयोग कुमारसम्भव में महाकवि कालिदास ने भी किया है– "दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जनः"।[310]

भाषावृत्तिकार "नृ च" का पाक्षिकदीर्घविधान लोक में स्वीकार करता है जबकि कुछ आचार्य केवल वेद में तथा कुछ अन्य आचार्य वेद और लोक दोनों में इस सूत्र का पाक्षिकविधान स्वीकार करते हैं।

[118] **अप्तृंस्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्**[311]– प्रस्तुत सूत्र अङ्गसंज्ञक अप्शब्द की उपधा को दीर्घ का विधान करता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे रहते। यथा– "आपः सन्ति' इस प्रयोग में परिलक्षित हो रहा है।

बहुव्रीहिसमास में अप्शब्द की उपधा के दीर्घ के सम्बन्ध में आचार्यों के द्विविध मत पाये जाते हैं। कुछ आचार्य "बहवः आप एषु" इस विग्रह में बहुपूर्वक अप्शब्द से बहुव्रीहिसमास के अनन्तर "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे'[312] सूत्र से समासान्त अप्रत्यय का विधान करते हैं जिसके कारण समास में अप्शब्द अङ्गसंज्ञक नहीं होता है अतः अङ्गसंज्ञक न होने के कारण उसकी उपधा को

दीर्घ भी नहीं होता जिससे बह्वपानि यह रूप निष्पन्न होता है, परन्तु कुछ अन्य आचार्यों का कथन है कि समासान्तविधि अनित्य होती है अतः जिस पक्ष में इस विधि को अनित्य मानेंगे, उस पक्ष में समासान्त अप्रत्यय न होने से उपधादीर्घ और नुमागम के अनन्तर बह्वपानि के साथ-साथ, "बह्वाम्पि यह प्रयोग भी साधु माना जायेगा। यहाँ प्रथम मत स्वयं वृत्तिकार का है और द्वितीय मत किसी अन्य आचार्य का है। भाषावृत्तिकार ने स्वमत और परमत को निम्न रूप से उद्धृत किया है "समासेऽपोऽनङ्गत्वान्न दीर्घः। "बह्वपानि तड़ागानि सारसाः समुपासते।" समासान्तविधेरनित्यत्वाद् बह्वाम्पीत्यपीति केचित्"।

[119] **च्छ्वोः शूड़नुनासिके च**[313]– प्रस्तुत सूत्र अनुनासिक आदि प्रत्यय, क्विप्रत्यय, झलादिकित् तथा झलादिङित् प्रत्ययों के परे रहने पर तुक् विशिष्ट छ के स्थान तथा वकार के स्थान में क्रमशः श् और ऊट् प्रत्ययों का विधान करता है। "पृच्छ् त" इस अवस्था में झलादिकित्प्रत्यय परे होने पर प्रस्तुत सूत्र से तुक् विशिष्ट तकार के स्थान पर शकारादेश होने पर "व्रश्चभ्रस्ज-सृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः"[314] सूत्र से षत्व होने के बाद, षटुत्व होने से "पृष्टः" यह रूप निष्पन्न होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि प्रस्तुत सूत्र में क्ङिति की अनुवृत्ति नहीं आती है। किञ्च क्विप्रत्यय तथा झलादि प्रत्यय की अनुवृत्ति भी वकार के स्थान में ऊट् विधान के लिये है अतः छकार के साथ कित्, ङित्, क्वि तथा झलादिप्रत्यय का कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिये उनके मत में पृष्टः इस प्रयोग में प्रस्तुत सूत्र से शकारादेश का विधान सम्भव नहीं है। इसलिये इन आचार्यों के मत में पृच्छतः इस अवस्था में "व्रश्चादि" सूत्र से ही "छ" के स्थान में षकारादेश होने पर पृष्टः यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने जो आचार्य छकार को षकार करते हैं, उनके मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "इह क्ङितीति नानुवर्त्तते। क्विझलाद्यनुवृत्तिरपि वकारार्था। न च्छकारार्थेत्येके।"

भाषावृत्तिकार प्रस्तुत सूत्र में कित्-ङित् की अनुवृत्ति मानकर प्रस्तुत सूत्र से ही सतुक् छकार को शकारादेश तथा उसको षकारादेश करके पृष्टः यह रूप निष्पन्न करता है परन्तु जो लोग इस सूत्र में क्ङिति की अनुवृत्ति स्वीकार नहीं करते उनके मत में "व्रश्चादि" सूत्र से ही छकार को षान्तादेश हो जाता है।

[120] **स्थः क च**[315]– प्रस्तुत सूत्र से सम् पूर्वक स्था धातु से क्विप्प्रत्यय होने पर शंस्थाः यह रूप निष्पन्न होता है यद्यपि यहाँ क्विप् प्रत्यय परे रहते स्था

धातु को ''घुमास्थागापाजहातिसां हलि''[316] सूत्र से ईत्त्व की प्राप्ति है तथापि ''क्वावीत्त्वप्रतिषेध:'' इस भाष्यवचन द्वारा ईत्त्व का प्रतिषेध हो जाता है। पुरुषोत्तमदेव ने भाष्य के उक्ताशय को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''कथं स्थ: क चेति क्विपि शंस्था: क्वावीत्त्वप्रतिषेध हलि भाष्यम्''।

[121] **मितां ह्रस्व:**[317]– प्रस्तुत सूत्र णि परे रहते मित्संज्ञक शब्दों की उपधा को नित्य ही ह्रस्व का विधान करता है जिससे घटयति, व्यथयति ये शब्द निष्पन्न होते हैं।

कुछ आचार्यों के मत में प्रस्तुत सूत्र में 'वा' शब्द की अनुवृत्ति आती है। किञ्च उसमें व्यवस्थित विभाषा स्वीकार कर यथेष्ट सिद्धि की जाती है। यही कारण है कि 'क्रम्' धातु के मित् संज्ञक होते हुए भी णि परे रहते उपधा को ह्रस्व नहीं होता, जिससे सङ्क्रामयति यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उक्त आचार्यों के इस मत को उद्धृत किया है– ''वेत्येव। सा च व्यवस्थितविभाषा। तेन सङ्क्रामयतीत्यादि सिद्धमित्येके''।

यहाँ यह अवधेय है कि जो आचार्य वा ग्रहण की अनुवृत्ति नहीं मानते, उनके मत में सङ्क्रामयति यह रूप निष्पन्न होगा परन्तु मतान्तर में ऐसा नहीं होता। यथा–''प्रियसुहृदि विभीषणे श्रियं सङ्क्रमय्य वैरिण:''[318] इस रघुवंश के उदाहरण में सङ्क्रमय्य इस प्रयोग में उपधा को ह्रस्व दृष्टिगोचर हो रहा है।

[122] **'अर्वणंस्त्रसावनञ'[319] तथा 'मघवा बहुलम्'[320]**– ये दोनों सूत्र क्रमश: अर्वन् और मघवन् शब्द को त्रयन्तादेश का विधान करते हैं लेकिन इन दोनों सूत्रों को छान्दस माना गया है।

यदि ये सूत्र छान्दस सूत्र हैं तो श्लथीकृतप्रग्रहमर्वतां व्रजम्,[321] मघवद्व्रलज्ज्ञानिदानम् क्रमश: माघ और व्योष के इन प्रयोगों में किस नियम से त्रयन्तादेश हुआ है इस प्रश्न के उत्तर में भाषावृत्तिकार ने कहा है कि ये प्रयोग छान्दस होते हुए भी संज्ञाशब्द हैं और कवि लोग छान्दस संज्ञाशब्दों का भाषा में भी प्रयोग करते हैं। यथा– परिपन्थी, अध्वर्युः दीधितिः, तुराषाट्, पृतनाषाडित्यादि। भाषावृत्तिकार ने उक्ताशय को उक्त सूत्रों के उदाहरणों में अभिव्यक्त किया है– ''यदुक्तं भाष्ये– ''अर्वणस्तु मघोनश्च न शिष्यं छान्दसं हि तत्''।

यद्यपि ये दोनों सूत्र छान्दस हैं तथापि भाषावृत्तिकार के अनुसार कवियों को भाषा में छान्दस संज्ञाशब्दों के प्रयोग की छूट है।

[123] **आतो धातो:**[322]– प्रस्तुत सूत्र केवल भसंज्ञक आकारान्त धातु के आकार के लोप का विधान करता है परन्तु ''समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्''[323] तथा ''क्रमश्च क्त्वि''[324] इन दोनों सूत्रों में क्त्वाप्रत्यय के आकार का लोप भी दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषावृत्तिकार ने इन प्रयोगों की सिद्धि द्विविध रूप से कही है–[1] निपातन द्वारा और [2] एकदेशानुकरण द्वारा। वृत्तिकार के अनुसार क्त्वा एक प्रत्यय है, न कि धातु अत: ''आतो धातो:'' सूत्र की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिये इनमें निपातन द्वारा आकार के लोप का विधान किया जा सकता है अथवा जिस प्रकार ''प्राग्दीव्यतोऽण्''[325] सूत्र में ''तेन दीव्यति खनति जयति जितम्''[326] इस सूत्र के ''एकदेश दीव्यत्'' शब्द का ही अनुकरण किया गया है, उसी प्रकार ''क्त्वा'' और ''क्त्वि'' में क्रमश: ''क्त्वाया:'' और ''क्त्वायाम्'' इनके एकदेश ''क्त्व्'' का अनुकरण किया गया है।

कुछ अन्य आचार्य ''आतो धातो:'' सूत्र का ''आत:'' यह योगविभाग स्वीकार करते हैं अत: उनके मत में ''आत:'' के आकार का भी लोप होने से ''क्त्व:'' और ''क्त्वि'' ये रूप निष्पन्न होते हैं। कुछ अन्य आचार्य प्रस्तुत सूत्र में ''आतोऽनाप:'' यह वचन भी पढ़ते है अत: उनके मत में प्रस्तुत सूत्र केवल ''आबन्त'' भिन्न ''आत्'' के आकार का लोप करता है। तदनुसार ''क्त्वा'' प्रत्यय के आकार का लोप भी सम्भव है क्योंकि यह आबन्त नहीं है।[327] भाषावृत्तिकार ने इन स्वमत और परमतों को प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''कथं क्त्वो ल्यप्, क्रमश्च क्त्वीति? निपातनात्। एकदेशानुकरणं वा। यथा प्राग्दीव्यतोऽण्। आत इति योगविभागादित्येके। अथवा आतोऽनाप इति वक्तव्यमस्ति।

[124] **ब्राह्मोऽजातौ**[328]– प्रस्तुत सूत्र जातिभिन्न अर्थ में अण् परे रहते निपातन ने ब्रह्मन् शब्द के टि का लोप करता है, जिससे ब्राह्मो दण्ड:, ब्राह्मी औषधि: ये प्रयोग निष्पन्न हो जाते हैं।

प्रस्तुत सूत्र अपत्याधिकार में है अत: आगम मत के अनुसार इस सूत्र में भी अपत्य की अनुवृत्ति आती है, जिससे उनके मत में सूत्रार्थ इस प्रकार हो जाता है– अपत्यजाति में अण् परे रहते ब्रह्मन् शब्द के टि का लोप नहीं होता।

इसलिये ब्रह्मणोऽपत्यं जातिः ब्राह्मणः, यहाँ पर अपत्यजाति अर्थ होने के कारण निपातन से ब्रह्मन् शब्द का टिलोप हो जाता है क्योंकि यह अपत्यार्थ अपत्यजाति से भिन्न है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उक्त आगम मत को तथा किसी अज्ञात नामा आचार्य के मत को उद्धृत भी किया है– "जातावपत्ये निषेध इत्यागमः"। "अपत्यमात्रे तु ब्राह्मो नारद इत्याहुः"।

भाषावृत्ति के अनुसार सूत्रपठित अजाति शब्द का अर्थ केवल जाति-भिन्न है लेकिन आगम मत के अनुसार अपत्यजाति से भिन्न।

[125] **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनि-भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि**[329]– धीवनो भावः इस अर्थ में धीवन् शब्द से ष्यञ् प्रत्यय तथा "दाण्डिना...." सूत्र द्वारा निपातन से तकारान्तादेश होने पर धैवत्यम् यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार के अनुसार कुछ आचार्य इसको छान्दस प्रयोग मानते हैं और कुछ नहीं। उन्होंने इन द्विविध मतों को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "धैवत्यञ्छान्दसमित्येके। नेत्यन्ये"।

[126] **नपुंसकस्य झलचः**[330]– प्रस्तुत सूत्र पर "बहूर्जि प्रतिषेधः" यह वार्त्तिक पठित हुआ है, तदनुसार "नपुंसकस्य झलचः" से प्राप्त जो नुमागम है, वह बहूर्ज शब्द को नहीं होता जिससे बहूर्ञ्जि यह प्रयोग निष्पन्न होता है। इस नुमागम के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों में मतभेद पाया जाता है।

कुछ आचार्य पूर्वोक्त रीति से बहूर्ज शब्द में सर्वनाम स्थान परे रहते नुमागम का प्रतिषेध स्वीकार न कर बहूर्ज शब्द के अन्तिम वर्ण से पूर्व नुमागम का विधान करते हैं तो कुछ रेफ से परे परन्तु दोनों के मत में केवल कथनशैली का अन्तर है अतः दोनों आचार्यों के मत में बहूर्ञ्जि यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में नुमागम का विधान करने वाले और न करने वाले दोनों ही मतों का उल्लेख किया है–

[क] बहूर्जिप्रतिषेधः

[ख] अन्त्यात् पूर्वं नुममेके। रेफात् परो नुमित्येके।

[127] **विभाषा भावादिकर्मणोः**[331]– प्रस्तुत सूत्र भाव और आदिकर्म में उन्हीं धातुओं की निष्ठा को विकल्प से इडागम करता है जो आदित् हों लेकिन सौनागों के अनुसार आदित् न होने पर भी शक् धातु की निष्ठा को कर्म में विकल्प

से इडागम हो जाता है जिससे शक्तः शकितो वा घटः कर्त्तुम् ये द्विविध प्रयोग निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने सौनागों के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– ''निष्ठायां कर्मणि शकेरिड् वेति सौनागाः''।

उक्त सूत्र वृत्ति के अनुसार केवल आदित् धातुओं की निष्ठा को कर्म में विकल्प से इडागम होता है लेकिन सौनागों के अनुसार आदित् भिन्न शक् धातु से भी निष्ठा को कर्म में विकल्प से इडागम हो जाता है।

[128] **वस्वेकाजाद्घसाम्,**[332] **विभाषा गमहनविदविशाम्**[333] **और संनिससनिवांसम्**[334]– ये तीनों सूत्र क्वसुप्रत्यय को इडागम का विधान करते हैं। भाषावृत्तिकार ने इन तीनों सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत नहीं की है क्योंकि उनकी दृष्टि में ''क्वसुश्च'' सूत्र से विधीयमान क्वसुप्रत्यय छान्दस है अतः उक्त क्वसुप्रत्यय के इडागम विधायक सूत्र भी छान्दस ही माने जायेंगे। उक्त सूत्रों के छान्दस होने पर भी इनके द्वारा निष्पन्न प्रयोगों को शिष्टों ने प्रयुक्त किया है। यथा– पपिवान्, तस्थिवान, गवितस्थिवांसम्, पदमातस्थुषा त्वया, ऊचिवान्, ऊषिवान्, पेचिवान्, ददृशिवान् आदि। ये प्रयोग शिष्ट प्रयुक्त हैं तथा इनका प्रयोग लोक में भी किया जाता है। भाषासूत्रकार चन्द्रगोमी ने भी क्वसुप्रत्यय से इडागमविधान हेतु सूत्रों का निर्माण किया है। वृत्तिकार ने उक्त द्विविधमतों को उक्त सूत्रों की वृत्ति के स्थान पर निर्दिष्ट किया है– ''इह वस्वेकाजाद्घसामित्यादिसूत्रत्रयं छान्दसमाहुः। क्वसोश्छान्दसत्वात्। दृश्यन्ते च शिष्टप्रयोगाः। ...। चन्द्रगोमी च भाषासूत्रकारः क्वसोरिड़ागमार्थं सूत्रितवान्। वस्वेकाजाद्घसाम्। वा गमहनविदविशाम्। दृशेश्च''।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उक्त सूत्रों के छान्दस होने पर भी लोक में क्वचित्, इनके प्रयोगों को मान्यता प्राप्त थी। न्यासकार ने क्वसुप्रत्यय तथा उसके इडागम विधायक सूत्रों को लौकिक भी माना है।

भाषावृत्तिकार के अनुसार उक्त तीनों सूत्र छान्दस हैं जबकि चान्द्रव्याकरण के अनुसार लौकिक। न्यासकार उक्त दोनों सूत्रों को लौकिक और वैदिक उभयविध मानता है।

[129] **यमरमनमातां सक् च**[335]– प्रस्तुत सूत्र अदन्त धातुओं से परे रहते सिच् को इडागम और सगागम का विधान करता है, जिससे अपासीत् अघ्रासीत् आदि रूप निष्पन्न होते हैं।

कुछ आचार्यों के मत में प्रस्तुत सूत्र में एकाच् की अनुवृत्ति आती है और कुछ के नहीं। जो आचार्य प्रस्तुत सूत्र में एकाच् की अनुवृत्ति स्वीकार नहीं करते उनके मत में दरिद्रा इस अनेकाच् धातु से भी सगागम हो जाता है और जो आचार्य प्रस्तुत सूत्र में एकाच् की अनुवृत्ति स्वीकार करते हैं, उनके मत में दरिद्रा इस अनेकाच् धातु से सगागम नहीं होगा। वृत्तिकार ने इन द्विविध मतों को प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में उल्लिखित किया है– "इहादरिद्रासीदित्यके। एकाच इत्यधिकाराददरिद्रीदित्यपरे"।

[130] **किरश्च पञ्चभ्यः**[336]– प्रस्तुत सूत्र से भाषावृत्तिकार ने चिकरिषति, जिगरिषति आदि उदाहरण निर्दिष्ट किये हैं। ये दोनों प्रयोग ॠकारान्त कॄ और गॄ धातु से बने हैं और इनमें वलादि आर्धधातुक इडागम दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे इनमें "वृतो वा"[337] सूत्र से इडागम को विकल्प से दीर्घ सम्भव है। वृत्तिकार ने उक्त प्रयोगों में इट् के दीर्घ पक्ष को न दिखाकर यह स्वीकार किया है कि इन प्रयोगों में "वृतो वा" सूत्र की प्रवृत्ति उचित नहीं। वामनवृत्ति भी उक्त प्रयोगों में "वृतो वा" सूत्र की प्रवृत्ति स्वीकार नहीं करती है। ऐसा भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है– "वृतो वेत्यस्येटो दीर्घो नेहास्तीति वामनवृत्तिः"।

इसके विपरीत भागवृत्ति उक्त प्रयोगों में "वृतो वा" सूत्र से विकल्प से इडागम को दीर्घ स्वीकार करती है। पुरुषोत्तमदेव ने भागवृत्ति के इस मत को भी उक्त सूत्र की वृत्ति में ही उद्धृत किया है– "अस्तीति भागवृत्तिः"।

वामनवृत्ति के अनुसार चिकरिषति आदि प्रयोगों में "वृतो वा" सूत्र से इडागम को दीर्घ नहीं होता लेकिन भागवृत्ति के मत में उक्त प्रकारक दीर्घ होता है। वृत्तिकार ने दीर्घाभाव के उदाहरणों को प्रदर्शित कर वामन के मत को अधिमान दिया है।

[131] **शेषे लोपः**[338]– प्रस्तुत सूत्र शेष विभक्तियों से परे युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अन्त्यलोप का विधान करता है। प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान लोप के सम्बन्ध में द्विविध मत पाये जाते हैं–[1] अन्त्यलोप और [2] टिलोप। इनमें अन्त्यलोप पक्ष स्वयं वृत्तिकार का है, जबकि टिलोप पक्ष किसी अन्य आचार्य का। "अन्त्यलोप पक्ष के अनुसार त्व अद् अम् तथा अह अद् अम् इस अवस्था में अन्त्य दकार का लोप प्रस्तुत सूत्र से होने के बाद "अतो गुणे"[339] से पररूप तथा "अमि पूर्वः"[340] से पूर्वरूप होने पर त्वम् और अहम् ये रूप निष्पन्न होते

हैं। जो आचार्य टिलोप पक्ष को मानते हैं उनके अनुसार "त्व अद् अम्" तथा "अह अद् अम्" इस अवस्था में "शेषे लोपः" से अद् भाव का लोप होने के बाद "अमि पूर्वः" से पूर्वरूप कर त्वम् और अहम् ये रूप निष्पन्न होते हैं। उनके मत में यहाँ "अतो गुणे" सूत्र की प्रवृत्ति की आवश्यकता नहीं।

[132] **हलि लोपः**[341]– प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान लोप के सम्बन्ध में द्विविध पक्ष पाये जाते हैं–अन्त्यलोपपक्ष और इद्रूपलोपपक्ष। इसमें अन्त्यलोपपक्ष भाषावृत्तिकार का है और इद्रूपलोपपक्ष किसी अन्य आचार्य का। प्रथम मत के अनुसार हल् विभक्ति परे रहते इदम् स्थानीय अन् के अन्त का लोप होता है तदनुसार "इदम् भ्याम्" इस अवस्था में इदम् शब्द को त्यदादि अत्व और पररूप होने पर "अनाप्यकः"[342] सूत्र से इद् को अनादेश होने पर "अन् अ भ्याम्" इस स्थिति में "हलि लोपः" से अन् के नकार का लोप होने पर, पररूप तथा दीर्घविधान द्वारा आभ्याम् यह रूप निष्पन्न होता है। इद्रूपलोपपक्ष के अनुसार "इद् अ भ्याम्" इस अवस्था में "अनाप्यकः" सूत्र से प्राप्त अनादेश को बाधकर "हलि लोपः" सूत्र द्वारा इद् भाव का लोप होने से "अभ्याम्" इस स्थिति में "सुपि च"[343] से दीर्घादेश करने पर "आभ्याम्" यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने जो आचार्य इद्रूपलोप के पक्ष को मानते हैं उनके मत को उद्धृत किया है– "इद्रूपस्य लोप इत्येके"।

यहाँ यह अवधेय है कि दोनों के ही मत में "आभ्याम्" यह रूप निष्पन्न हो जाता है किन्तु प्रक्रिया की दृष्टि से दोनों में अन्तर है।

[133] **यङो वा**[344]– प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में उल्लिखित यङ्लुक् के विषय में आचार्यों में द्विविधमत पाये जाते हैं। कतिपय आचार्य यङ्लुक् को केवल छान्दस मानते हैं तो कतिपय छान्दस और लौकिक उभयविध। आचार्य पुरुषोत्तमदेव ने उक्त सूत्र की वृत्ति में इन सभी मतों का निर्देश किया है।

उनका कथन है कि भागवृत्ति यङ्लुक् को केवल छान्दस मानती है–"यङ्लुक् छान्दस इति भागवृत्तिः" लेकिन कुछ अन्य आचार्य यङ्लुक् को केवल छान्दस न मानकर उसे लौकिक भी मानते हैं–"नेत्यन्ये"। जो आचार्य यङ्लुक् को लौकिक भी मानते हैं उनके समर्थन में भाषावृत्तिकार ने भाषासूत्रकार चन्द्रगोमी के "यङो वा"[345] इस सूत्र को उपस्थित किया है। यह सूत्र यङ्लुक् में विकल्प से इट् आगम का विधान करता है, यदि यङ्लुक् लोक में प्रयुक्त

न होता तो लौकिकव्याकरण चान्द्र में यङ्लुक् में विकल्प से इडागम विधान की आवश्यकता ही न थी पुन: ''यङो वा'' इस सूत्र विधान की भी आवश्यकता न थी अत: चन्द्रगोमी का यङ्लुक् में विकल्प से इडागम विधान भी यही सिद्ध करता है कि यङ्लुक् लौकिक भी है। वृत्तिकार ने चन्द्रगोमी के उक्ताशय को उक्त सूत्र की वृत्ति में अभिव्यक्त किया है–''चन्द्रगोमी भाषासूत्रकारो यङो वेति सूत्रितवान्''।

भागवृत्तिकार यङ्लुक् को केवल छान्दस मानता है लेकिन भाषावृत्तिकार तथा कुछ अन्य आचार्य यङ्लुक् को लौकिक भी मानते हैं। भाषावृत्तिकार ने यङ्लुक् की लौकिकता में भाषासूत्रकार चन्द्रगोमी के उस सूत्र को उपस्थित किया है जिससे यङ्लुक् की लौकिकता सिद्ध होती है।

[134] **आङि चाप:**[346] प्रस्तुत सूत्र आप् को एत्व का निर्देश करता है, ओस् और आङ् परे रहते। कुछ आचार्यों के अनुसार यद्यपि–खट्वामतिक्रान्तोऽतिखट्व: तेन अतिखट्वेन, यहाँ आदन्त का स्थानिवद्भाव कर आप् परे रहते ''आङि चाप:'' सूत्र से एत्व होना चाहिए परन्तु वह यहाँ सम्भव नहीं है क्योंकि ङी और आप् के ग्रहण में केवल दीर्घ का ही ग्रहण होता है अत: स्थानिवद्भाव का निषेध होने से यहाँ आप् के अभाव में एत्व नहीं हो सकता। भाषावृत्तिकार ने इन आचार्यों के मतों को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है–''कथमतिखट्वेन? ङ्याब्ग्रहणेन दीर्घग्रहणमितिस्थानिवत्त्वनिषेधादित्येके''।

भाष्यकार ने पूर्वोक्त प्रयोग में प्रकारान्तर से एत्व का निषेध किया है। भाष्यकार के अनुसार ''आङि चाप:'' सूत्र में पठित आप: शब्द में आ आप: ऐसा प्रश्लेष है जिससे आदन्तरूप आ को ही एत्व होता है। अतिखट्व में आदन्तरूप आ नहीं अत: यहाँ एत्व नहीं हो सकता। भाषावृत्तिकार ने भाष्य के मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है–''आ आप इति प्रश्लेषेण दीर्घग्रहणमिति भाष्यम्''।

कुछ आचार्य अतिखट्वेन इस प्रयोग में एत्व का निवारण स्थानिवद्भाव का निषेध मानकर करते हैं परन्तु भाष्यकार ''आङि चाप:'' प्रश्लेष द्वारा एत्व का प्रतिषेध स्वीकार करते हैं।

[135] **अच उपसर्गात् त:**[347]– प्रस्तुत सूत्र से विधीयमान तकारादेश के सम्बन्ध में द्विविध मत पाये जाते हैं। प्रथम मत के अनुसार दा शब्द के आकार

को तकारादेश होता है परन्तु द्वितीय मत के अनुसार दा शब्द के स्थान में ही दो तकार रूप आदेश होते हैं। इनमें प्रथम मत स्वयं भाषावृत्तिकार का है किन्तु द्वितीय मत किसी अन्य आचार्य का।

प्रथम मत के अनुसार "प्र दा त" इस अवस्था में "अच उपसर्गात् तः" सूत्र से तादि कित् परे होने पर दा शब्द के आकार के स्थान में तकारादेश होने पर अवशिष्ट द् को चर्त्व विधान कर प्रत्तम् यह रूप निष्पन्न होता है किन्तु द्वितीय मतानुसार "प्र दा त" इस अवस्था में सम्पूर्ण दा शब्द के स्थान में दो तकारादेश करने से प्रत्तम् यह रूप निष्पन्न होता है। इस प्रकार इस मत में चर्त्व विधान की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

[136] **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे**[348]–प्रस्तुत सूत्र लघुधात्वक्षर परे अनग्लोपीधातु के अभ्यास को सन्वद्भाव का विधान करता है चङ्परक णि परे रहते। सूत्रार्थानुसार पटुमाख्यात् इस विग्रह में पटु शब्द से "प्रातिपदिकार्थधात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च"[349] इस गणसूत्र द्वारा स्वार्थ में णिच्प्रत्यय तथा णिद्वद्भाव होता है। लुङ् लकार में प्रथम टिलोप करने पर अग्लोपी होने से "सन्वल्लघुनि..." सूत्र से सन्वद्भाव सम्भव नहीं है तथा सन्वद्भावाभाव में "सन्यतः" सूत्र की प्रवृत्ति न होने से अभ्यास को इत्व भी सम्भव नहीं है जिससे अपीपटत् यह रूप निष्पन्न नहीं हो सकता है। भाषावृत्तिकार ने कुछ आचार्यों के मत में परत्वात् टिलोप को बाधकर वृद्धि का विधान किया है तथा तदनन्तर औकार का टिलोप होने पर भी उसके अनग्लोपी होने के कारण यहाँ सन्वद्भाव तथा इत्व दोनों ही सम्भव हो जाते हैं–"इह कथं पटुमाख्यदपीपटदिति? णिचि टिलोपात् परत्वेन वृद्धौ कृतायां सन्ध्यक्षरलोपोऽनग्लोप एवेति सन्वद्भावादित्त्वमित्येके"।

भाषावृत्तिकार ने उक्त आचार्यों के मत के विपरीत कुछ अन्य आचार्यों के मत को भी उद्धृत किया है–"अनग्लोप इत्यगिति प्रत्याहारोपादानसामर्थ्याद-कृतायामेव वृद्धौ टिलोपोऽग्लोप एवेति सन्वद्भावनिषेधादपपटदित्यपरे"। इस मत के अनुसार सूत्रस्थ अनग्लोप शब्द में जो अक् प्रत्याहार का ग्रहण किया गया है तत्सामर्थ्य से वृद्धि से पूर्व ही टिलोप होता है जो कि अग्लोपी है जिससे प्रस्तुत प्रयोग में सन्वद्भाव और इत्व नहीं होता अतः उनके मत में अपपटत् केवल यही रूप निष्पन्न होता है।

भट्टोजिदीक्षित ने स्वमत तथा भाष्यमत में अपीपटत् और अपपटत् इन दोनों ही प्रकार के प्रयोगों की निष्पत्ति प्रदर्शित की है–"पटुमाचष्टे पटयति। परत्वाद्वृद्धौ सत्यां टिलोपः। अपीपटत्। णौ चङीत्यत्र भाष्ये तु वृद्धेर्लोपो बलीयानिति स्थितम्। अपपटत्"[350]।

[137] **नित्यवीप्सयोः**[351]– प्रस्तुत सूत्र नित्यार्थ और वीप्सा में विद्यमान शब्द को द्वित्व का विधान करता है। आभीक्ष्ण्य और नित्यता ये दोनों परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं। नित्यता तिङन्त और अव्ययसंज्ञक कृदन्तों में पाई जाती है। युगपत् व्याप्त करने की इच्छा वीप्सा है और वह सुबन्त में पाई जाती है। सूत्रनिर्देशानुसार आभीक्ष्ण्य अर्थ द्योत्य होने पर "पचति" इस तिङन्त को द्वित्व होने से "पचति पचति" यह रूप निष्पन्न होता है। किञ्च वीप्सा के द्योत्य होने पर गृह शब्द को द्वित्व होने से "गृहे गृहे श्वा:" यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने एक ऐसे मत को उद्धृत किया है जिसके अनुसार समानरूप से प्रकर्षप्रत्यय के विधान के अनन्तर द्वित्व नहीं होता अपितु वीप्सा में प्रकर्षप्रत्ययान्त समस्तशब्द को द्वित्व होता है लेकिन आभीक्ष्ण्य अर्थ में तिङन्तशब्द से प्रकर्षप्रत्यय का विधान किया जाता है। यथावीप्सा में आढ्य शब्द से प्रकर्षार्थक तरप्प्रत्यय के विधान के अनन्तरद्वित्वविधि करने से "आढ्यतरमाढ्यतरमानय" यह प्रयोग निष्पन्न होता है परन्तु तिङन्त शब्द से आभीक्ष्ण्य अर्थ में प्रकर्ष अर्थ के विवक्षित होने पर भी प्रथम तिङ्न्त पचति शब्द को द्वित्व विधान कर, तदनन्तर उससे प्रकर्षार्थक तरप्प्रत्यय होने से "पचतिपंचतितराम्" यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने इस मत को अपनी वृत्ति में उद्धृत किया है–"इहाढ्यतरमाढ्यतरमानयेति जातप्रकर्षप्रत्ययस्य द्विरुक्तिरिष्यते। तिङश्चेत्यतस्तु परत्वात् द्विरुक्तिरेव प्राक्। ततः प्रकर्षप्रत्यय इत्येके"।

[138] **प्रकारे गुणवचनस्य**[352]– प्रस्तुतसूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने स्मृतिवचन के अनुसार "इतरेतर, अन्योऽन्य और परस्पर" शब्दों को निपातन से सिद्ध किया है। यह निपातन इन शब्दों में कर्मव्यतिहार, एकवचन और नपुंसकलिङ्गविषयक होता है। किञ्च यदि ये शब्द स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान हों तो उनके सुप् को आम्भाव हो जाता है, विकल्प से। यथा–"इतरेतरां स्त्रियौ क्षत्रियकुले वा स्पर्धेते इतरेतरं वा"। इस प्रयोग में स्त्रीलिङ्गविषयक

''इतराम्'' इस पद को द्वित्व, पूर्व और उत्तरपद को पुंवद्भाव से टाब्निवृत्ति, समास में सुब्लुक्, गुणादेश, समुदाय से पुनः अम्विभक्ति, अम्विभक्ति को विकल्प से आम्भाव होने से ''इतरेतराम्'' यह रूप निष्पन्न होता है। आमभाव पक्ष में ''इतरेतरम्'' यह रूप भी निष्पन्न होता है।

नपुंसकलिङ्ग में ''इतर'' शब्द को द्वित्व, पुंवद्भाव, समास में सुब्लुक्, गुणादेश, समुदाय से पुनः अम् विभक्ति, उसके स्थानमें ''अदड्'' आदेश का अभाव तथा विकल्प से आम्भाव होने पर ''इतरेतराम्'' यह रूप निष्पन्न होता है। किञ्च आमभाव पक्ष में ''इतरेतरम्'' यह रूप भी बनेगा।

इसी प्रकार ''अन्योऽन्याम्, अन्योऽन्यस्य वा'' यहाँ अन्यायाः इस स्त्रीलिङ्ग पद को द्वित्व, उभय पदों में पुंवद्भाव से टाप् की निवृत्ति, समासाभाव के कारण सुप् का अलुक्। किञ्च पूर्वपदस्थ विभक्ति को सुभाव, रुत्व, उत्व, गुण होने पर, उत्तरपदस्थ विभक्ति को विकल्प से आम्भाव होने पर 'अन्योऽन्याम्' यह रूप निष्पन्न होता है। आमभावपक्ष में पुवंद्भाव होने से ''अन्योऽन्यस्य'' यह रूप भी निष्पन्न हो जाता है।

नपुंसकलिङ्ग में ''अन्यस्य'' इस शब्द को द्वित्व, पूर्वपदस्थ विभक्ति को सुभाव और उत्तरपदस्थ विभक्ति को आम्भाव होने पर ''अन्योऽन्याम्'' यह रूप निष्पन्न होता है। आमभावपक्ष में पुवंद्भाव होने से ''अन्योऽन्यस्य'' यह रूप भी निष्पन्न होता है।

''परस्पराम्, परस्परस्मिन् वा'' स्त्रीलिङ्ग में ''परायाम्'' इस पद को द्वित्व, पुंवद्भाव से दोनों पदों की टाब्निवृत्ति होने पर, पूर्वपदविभक्ति को सुभाव और उत्तरपदस्थ विभक्ति को आम्भाव होने से ''परस्पराम्'' यह रूप निष्पन्न होता है। आमभाव पक्ष में ''परस्परस्मिन्'' यह रूप भी निष्पन्न होता है।

नपुंसकलिङ्ग में 'परस्मिन्' इस पद को द्वित्व होने पर, पूर्वपदस्थ विभक्ति को सुभाव और उत्तरपदस्थ विभक्ति को आम्भाव होने पर ''परस्पराम्'' यह रूप निष्पन्न होगा। आमभाव पक्ष में ''परस्परस्मिन्'' यह रूप भी निष्पन्न होगा। भाषावृत्तिकार ने इन पूर्वोक्त शब्दों की साधना के लिये स्मृतिवचन को निम्न रूप में उद्धृत किया है–'इतरेतरान्योऽन्यपरस्पराः कर्मव्यतीहारैकत्वक्लीवत्व-विषया निपातनात् साधवः स्युः। तेभ्यः स्त्रीनपुंसकयोः सुप आम् वेति स्मृतिः''।

यहाँ यह अवधेय है कि उपर्युक्त शब्दों की साधना काशिका और महाभाष्यादि ग्रन्थों में प्रकारान्तर से की गई है।

''इतरेतर, अन्योऽन्य और परस्पर'' इन निपातित शब्दों की साधना के विषय में भाषावृत्तिकार ने स्वमत निर्देश के बिना केवल स्मृतिवचन को ही निर्दिष्ट किया है, जिससे प्रतीत होता है कि वह इन शब्दों की साधना में स्मृतिवचन से सहमत है।

[139] **न ङिसम्बुद्ध्योः**[353] – प्रस्तुत सूत्र ङि और सम्बुद्धि परे रहते ''न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य'' सूत्र से प्राप्त न के लोप का निषेध करता है लेकिन ''चर्मणि तिला अस्येति चर्मतिलः'' यहाँ ङि परे रहते भी चर्मन् के न का लोप दृष्टिगोचर हो रहा है। उक्त नलोप के समाधान के लिये भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भाष्यमत को उद्धृत किया है–''ङावनुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यमिति भाष्यात्'' अर्थात् उत्तरपदपूर्वक ङि के परे न लोप के प्रतिषेध का प्रतिषेध हो जाता है इस प्रयोग में उत्तरपद पूर्वक ङि परे होने के कारण नलोप प्रतिषेध का प्रतिषेध हो गया अर्थात् नलोप हो गया।

यद्यपि ''न ङिसम्बुद्ध्योः'' इस सूत्र के निर्देशानुसार ङि परे होने के कारण ''चर्मणि तिलः'' इस प्रयोग में चर्मन् के न का लोप सम्भव नहीं है किन्तु भाष्यवचनानुसार उत्तरपद पूर्वक ङि परे होने पर नलोप हो जाता है अतः उक्त प्रयोग में भी न लोप सम्भव है।

[140] **''कृपो रो लः''**[354] – प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में वृत्तिकार ने दो मतों का निर्देश किया है। कतिपय आचार्य र् और ल् में अभेद स्वीकार करते हैं तो कुछ अन्य ड् और ल् में। इसीलिये ''विरोचनम्'' के स्थान पर ''विलोचनम्'' शब्द का भी प्रयोग हो सकता है। किञ्च व्रीडा के स्थान में व्रीला का भी। वृत्तिकार ने इन द्विविध मतों को उद्धृत किया है–''रलयोरेकत्वस्मरणमित्येके। डलयोरित्यन्ये''।

[141] **''धि च''**[355] – प्रस्तुत सूत्र धकार परे रहते सकार के लोप का विधान करता है। ''अ लू इ स् ध्वम्'' इस अवस्था में सिच् का लोप होने के अनन्तर ''विभाषेटः''[356] सूत्र से विकल्प से मूर्धन्यादेश होने पर ''अलविढ्वम् और अलविध्वम्'' ये दो रूप निष्पन्न होते हैं। यदि प्रस्तुत सूत्र से सलोप का विधान न किया जाये तो ''अ लु इ स् ध्वम्'' इस अवस्था में षत्व जश्त्व और

ष्टुत्व करने के बाद ''अलविड्ढ्वम्'' यही एकमात्र रूप निष्पन्न होगा। किञ्च पक्ष में धकार का श्रवण नहीं होगा अत: धकार के श्रवण हेतु प्रस्तुत सूत्र सार्थक है।

इस सूत्र के सूत्रार्थ के विषय में आचार्यो मे द्विविधमत पाये जाते हैं। कुछ आचार्य धकार परे रहते सामान्य रूप से सकार के लोप का विधान करते हैं तो कुछ धकारपरे रहते केवल सिच् के सकार के लोप का विधान स्वीकार करते हैं। आचार्य पुरुषोत्तदेव ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में धकार परे रहते सामान्य सकार के ही लोप का विधान माना है। कुछ लोगों का कथन है कि प्रस्तुत सूत्र का प्रयोजन ''चकाद्धि'' इस प्रयोग में सलोपाभाव का निर्देश करना है। इन आचार्यों के अनुसार प्रस्तुत सूत्र केवल धकार से परे रहते स का लोप नहीं करता अपितु सिच् के सकार का लोप करता है जिसके कारण चकासृ धातु के लोट् लकार के मध्यम पुरुष के एकवचन में चकास् धि इस अवस्था में सिच् का सकार न होने के कारण स का लोप नहीं होता। किञ्च सकार को जश्त्व करने के अनन्तर चकाद्धि यह रूप निष्पन्न होता है।

पुरुषोत्तमदेव के अनुसार कुछ अन्य आचार्य भी प्रस्तुत सूत्र से सामान्य सलोप का ही विधान मानते हैं। इसलिये उनके मत में चकास् धातु के लोट् लकार के मध्यम पुरुष के एकवचन में भी सलोप होने से चकाधि यह रूप निष्पन्न होता है। भाषावृत्तिकार ने इन द्विविध मतों को उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है–''इह धि सकारे सिचो लोपश्चकाद्धीति प्रयोजनमित्येके। सामान्येनेति सर्वेषाम् चकाधि''।

[142] **उपधायाञ्च**[357]– प्रस्तुत सूत्र धात्ववयव हल् हो पर में जिनके ऐसे धातु के उपधाभूत रेफ अथवा वकार के उपधा स्थानीय इक् के स्थान में दीर्घादेश का विधान करता है। तदनुसार–''चतुर इच्छति चतुर्यति इस प्रयोग में भी इक् को दीर्घ की प्राप्ति थी लेकिन भाष्यकार ने इसमें असुपि का अनुवर्त्तन कर दीर्घ का निवारण किया है क्योंकि ''चतुर्य'' यह शुद्ध धातु नहीं अपितु नामधातु है। पुरुषोत्तमदेव ने भाष्यकार के उक्त मत को निम्नरूप में उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है–''कथं चतुर इच्छति चतुर्यतीति तर्हि व्याख्यातमेतद् भाष्ये असुपीति वर्तते। तच्चेह षष्ठ्या विपरिणम्यते। ततो सुब्धातोर्न भवति।

''उपधायाञ्च'' इस सूत्र के निर्देशानुसार चतुर्यति इस प्रयोग में चतुर्य उपधाभूत रेफ के उपधास्थानीय इक् के स्थान में दीर्घादेश की प्राप्ति थी परन्तु भाष्यकार ने प्रस्तुत सूत्र में असुपि का अनुवर्त्तन कर उसका निवारण किया है।

[143] **समः सुटि**[358]– सूत्र सुट् परे सम् के म् को रु का विधान करता है। लेकिन भाष्यकार ने रुविधान की अपेक्षा सम् के म् के लोप का विधान किया है। किञ्च इस लोपपक्ष में भी उन्होंने अनुनासिक और अनुस्वार का विधान स्वीकार किया है। भाषावृत्तिकार ने भाष्यकार के उक्त मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है–''इह समो मलोप इति भाष्यम्। लोपपक्षेऽ-प्यनुनासिकानुस्वाराविष्येते। सँस्कर्त्ता संस्कर्त्ता वा''।

भाष्यकार के अनुसार सम् सम्बन्धी, पुम् सम्बन्धी और किम् सम्बन्धी म् के स्थान में सकार का विधान भी होता है। भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में उनके इस मत को भी अधिमान दिया है–''किञ्चात्र संपुंकानां सो वक्तव्य इति भाष्यम्। सँस्स्कर्त्ता संस्स्कर्त्ता वा। पुँस्कामा पुंस्कामा वा। काँस्कान् कांस्कान् वा''।

यद्यपि सम् के म् को रु तथा विसर्ग करने के बाद, विसर्ग को ''वा शरि''[359] सूत्र से विकल्प करके विसर्ग होता है और पक्ष में ''कुप्वोः+क पौ च''[360] से विसर्ग के स्थान में जिह्वामूलीय और उपध्मानीय होते हैं परन्तु ''वामनवृत्ति'' ने ''वा शरि'' सूत्र में व्यवस्थितविभाषा मानकर ''वा शरि'' की प्रवृत्ति का अभाव दिखाया है जिससे विसर्ग के स्थान में सकारादेश हो जाता है। पुरुषोत्तमदेव ने वामनवृत्ति के इस मत को उक्त सूत्रवृत्ति में निम्नरूप में निर्दिष्ट किया है–''वा शरीति व्यवस्थितविभाषया न भवतीति वामनवृत्तिः''।

सूत्रकार के अनुसार सम् के म के रुत्वस्थानीयविसर्ग के स्थान में सत्व होने से दो सकार वाला संस्स्कर्ता यह रूप निष्पन्न होता है परन्तु भाष्य के अनुसार सम् के म को सत्व होने से ही [संस्स्कर्ता] उक्त रूप निष्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त भाष्य के मत में पक्ष में मलोप द्वारा एक सकार वाला संस्कर्ता रूप भी निष्पन्न होता है। वामनवृत्ति ने ''वा शरि'' सूत्र में व्यवस्थित विभाषा मानकर रुत्वपक्ष में रेफस्थानीय विसर्ग के स्थान में ''वा शरि'' तथा ''कुप्वोः+क पौ च'' इन दोनों सूत्रों की प्रवृत्ति का अभाव दिखाया है।

[144] **इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य**[361]– प्रस्तुत सूत्र इकार अथवा उकार हो उपधा में जिसके ऐसे प्रत्ययस्थानिक भिन्न विसर्ग के स्थान में षकारादेश का निर्देश करता है तदनुसार ''मातुः करोति, पितुः करोति'' इन प्रयोगों में भी षत्व

की प्राप्ति थी। भाष्यकार ने उक्त सन्देह का निवारण करते हुए कहा है कि यदि "मातुः करोति" आदि में विसर्ग को षत्व होता तो "भ्रातुष्पुत्रः" में भी "इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य" से षत्व हो जाता, अतः षत्व विधान के लिये "कस्कादि" में उसका पाठ व्यर्थ है, तदपि कस्कादि में "भ्रातुष्पुत्रः" शब्द का जो पाठ किया है उससे ज्ञात होता है कि एकादेशनिमित्त इण् से परे रहते विसर्ग को षत्व नहीं होता। "मातुः करोति" का जो विसर्ग है वह भी एकादेशनिमित्तक इण् से परे है अतः यहाँ षत्व सम्भव नहीं। भाषावृत्तिकार ने भाष्य के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में प्रस्तुत किया है-"कथं मातुः करोति? पितुः करोतीति। कस्कादिषु षत्वार्थं भ्रातुष्पुत्रशब्दस्य पाठादेकादेशनिमित्तादिणः परस्य विसर्गस्य षत्वं नास्तीति भाष्यम्"।

भाष्यकार के अनुसार मातुः करोति और पितुः करोति इन प्रयोगों में "इदुदुपधस्य...." सूत्र की प्रवृत्ति सम्भव नहीं है क्योंकि उनके मत में एकादेशनिमित्तक इण् से परे रहते विसर्ग को षत्व नहीं होता।

[145] **तिरसोऽन्यतरस्याम्**[362]- प्रस्तुत सूत्र के अर्थ के विषय में द्विविध मत पाये जाते हैं। कुछ लोग प्रस्तुत सूत्र में गतिग्रहण की अनुवृत्ति स्वीकार करते हैं तो कुछ नहीं। आचार्य पुरुषोत्तमदेव ने प्रस्तुतसूत्र में गतिग्रहण की अनुवृत्ति मानी है। तिरस् शब्द का गतिसंज्ञक विधायक सूत्र "तिरोऽन्तर्द्धौ"[363] है। यह सूत्र अन्तर्धिः अर्थ में ही तिरस् शब्द की गतिसंज्ञा करता है अतः प्रस्तुत सूत्र के अनुसार अन्तर्धि अर्थ में विद्यमान गतिसंज्ञक तिरस् के विसर्ग को विकल्प से सत्व होगा, जिससे तिरस्कर्ता, तिरः कर्त्ता ये रूप निष्पन्न होंगे।

इसके विपरीत कुछ आचार्य प्रस्तुत सूत्र में गतिग्रहण की अनुवृत्ति स्वीकार नहीं करते अतः उनके मत में अन्तर्धिः अर्थ से भिन्न अर्थ में भी तिरस् शब्द के विसर्ग को सत्व हो जाता है। यथा- परिभव अर्थ में विद्यमान तिरस्कारः शब्द में दृष्टिगोचर हो रहा है। वृत्तिकार ने कुछ आचार्यों के इस मत को उक्त सूत्र की वृत्ति में निर्दिष्ट किया है- "केचिद् गतिग्रहणमिह नानुवर्त्तयन्ति। अन्तर्धेरन्यत्रापि तिरस्कारः परिभव इति यथा स्यात्"।

[146] **सदिस्वञ्जोः परस्य लिटि**[364]- परि पूर्वक स्वञ्ज् धातु के लिट्लकार में द्वित्वादि कार्य होने के बाद परि ष स्वञ्जे इस अवस्था में "उपसर्गात्

सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्!''[365] सूत्र से प्राप्त षत्व का ''सदिस्वञ्जोः परस्य लिटि'' सूत्र से निषेध हो जाता है। भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत रूप की सिद्धि में वामनवृत्तिस्थ मत को भी प्रदर्शित किया है–''संयोगादपि लिटो विभाषा कित्त्वमिच्छन्तीति वामनवृत्तिः। उक्त नियम के अनुसार परि ष स्वञ्जे इस अवस्था में संयोग से परे लिट् को विकल्प करके कित्त्व होता है तथा कित्त्व पक्ष में ''अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति''[366] सूत्र से नलोप होता है जिससे परिषस्वजे और परिषस्वञ्जे ये दोनों रूप निष्पन्न होते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि इस नलोप वाले पक्ष को भाष्यकार[367] कालिदास[368], और माघ[369] इत्यादि ने भी प्रयुक्त किया है। वामनवृत्तिस्थ मत के अनुसार संयोग से परे लिट् को विकल्प से कित्त्व होता है जिससे कित्त्वपक्ष में नलोप होने से परिषस्वजे यह रूप भी निष्पन्न होता है।

[147] **अन्तः**[370]– सामान्यतः वैयाकरणों ने ''हे प्राण्'' इस प्रयोग में पदान्तीय नकार को ''अन्तः'' सूत्र से नित्य ही णत्व का विधान माना है लेकिन ''केशववृत्ति'' में इस पदान्तीय नकार को विकल्प से णत्व का विधान किया गया है, ऐसा पुरुषोत्तमदेव का कथन है– ''केशववृत्तौ तु विकल्प उक्तः। हे प्रान् हे प्राण वा''।

[148] भाषावृत्तिकार ने ''अनचि च''[371] सूत्र में एके, अन्ये, अपरे आदि शब्दों से अनेक मतों का निर्देश किया है, ये मत द्वित्वादेश, आगमादि अनेक विषयक हैं जिन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

[148-1] ''अनचि च'' सूत्र में पठित ''यणो मयः'' वार्त्तिक के आचार्यों ने द्विविध अर्थ किये हैं। कुछ आचार्य यण् से परवर्त्ती मय् को विकल्प से द्वित्व का विधान करते हैं। यथा–''उल्का, उल्क्का वा''। यहाँ यण् से परवर्त्ती मय् ककार को द्वित्व विकल्प से हो गया है परन्तु कुछ आचार्य मय् से परे रहते यण् को विकल्प से द्वित्व होता है, वार्त्तिक का यह अर्थ स्वीकार करते हैं। जिससे उनके मत में ''दध्यत्र, दध्य्यत्र वा'' यहाँ मय् धकार से परवर्त्ती यण् के यकार को विकल्प से द्वित्व हो जाता है। इन द्विविध मतों में पुरुषोत्तमदेव प्रथम मत को अङ्गीकार करते हैं और द्वितीय मत को ''एके'' शब्द द्वारा निर्दिष्ट करते हैं– ''मयश्च यण इत्येके''।

[148.2] ''अनचि च'' सूत्र पर ''शरः खयः'' यह वार्तिक पठित हुआ है। आचार्यों ने इस वार्तिक के द्विविध अर्थ किये हैं। कुछ आचार्य शर् परक खय् को विकल्प से द्वित्व का विधान करते हैं। यथा– ''स्थानम्, स्थ्थानं वा''। यहाँ शर् रूप सकार से परे खय् रूप थकार को विकल्प से द्वित्व हो गया है। इसके विपरीत कुछ आचार्य ''शरेः खयः'' के स्थान में ''खयश्च शरः'' ऐसा वार्तिक पढ़कर खय् परक शर् को द्वित्व का विधान करते हैं। यथा–''वत्सः, वत्स्सः वा''। यहाँ खय् तकार से परवर्त्ती शर् रूप सकार को विकल्प से द्वित्व हो गया है। प्रथम मत भाषावृत्तिकार को अभिमत है तथा द्वितीय मत उन्होंने मतान्तर के रूप में निर्दिष्ट किया है–''खयश्च शर इत्येके''।

[148.3] ''अनचि च'' प्रस्तुत सूत्र में ''चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः'' यह वार्तिक पठित हुआ है। विभिन्न आचार्यों ने इस वार्तिक के अनेक रूप और अनेक अर्थ प्रस्तुत किये हैं। मूल वार्तिक के निर्देशानुसार चय् के स्थान में आदेशरूप द्वितीय वर्ण होते हैं, शर् परे रहते, पौष्करसादि के मत में। यथा–''वाक्शेते, वाख्शेते वा''। यहाँ शर् परे रहते चय्रूप ककार के स्थान में विकल्प से उसका द्वितीयवर्ण रूप खकार हो गया है।

कुछ अन्य आचार्यों के मत में विकल्प से चय् के स्थान में द्वितीयवर्ण रूप खकारादेश न होकर चय् से परे रहते आगमरूप द्वितीयवर्ण होता है। यथा– ''क्षीरम्, क्ख्षीरं वा''। यहाँ चय्रूप ''क्'' वर्ण से परे आगम रूप द्वितीयवर्ण ''ख्'' विकल्प से हो गया है। पुरुषोत्तमदेव ने इस मत को अपनी वृत्ति में निर्दिष्ट किया है–''चयः परे द्वितीया वर्णा आगमरूपा भवन्तीत्यन्ये''।

कतिपय आचार्य चय् के स्थान में द्वितीय वर्ण रूप आदेश का विधान नहीं मानते अपितु वे द्वितीय मत के अनुसार चय् से परे रहते आगम रूप द्वितीय वर्ण का विधान करने के पश्चात्, उसको द्वित्व का विधान करते हैं। यथा–''क्षीरम्, क्ख्ख्शीरं वा'' यहाँ चय् ककार से पर आगमरूप द्वितीयवर्ण खकार का विधान करने के पश्चात् उसे द्वित्व किया गया है। पुरुषोत्तमदेव ने इस मत को अपनी वृत्ति में निर्दिष्ट भी किया है–''चयो द्वितीया द्विरुच्यन्त इत्यपरे''।

पौष्करसादि के मत में चय् के स्थान में द्वितीयवर्ण होता है, शर् परे रहते। कुछ अन्य आचार्यों के मत में चय् से परे रहते आगमरूप द्वितीयवर्ण का विधान होता है तथा कुछ अन्य आचार्य चय् से परे रहते आगम रूप द्वितीय वर्ण का विधान और उसकी द्विरुक्ति को भी स्वीकार करते हैं।

2.3 व्याकरणशास्त्रीय इष्टियां तथा भाषावृत्ति में पठित इष्टियां–

[1] **इष्टि शब्द की निष्पत्ति–** यज् तथा इष् धातु से ''श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे''[372] वार्तिक द्वारा करण अर्थ में क्तिन्प्रत्यय का विधान करने से इष्टि शब्द निष्पन्न होता है। भाष्यकार ने यज् तथा इष् इन दोनों ही प्रकार के धातुओं से निष्पन्न इष्टि शब्द की यह व्युत्पत्ति उक्त वार्तिक के भाष्य में प्रदर्शित की है–''इज्यतेऽनयेतीष्टिः, ''इष्यतेऽनयेतीष्टिः''। भाष्यकार की इस व्युत्पत्ति के अनुसार यज् धातु से निष्पन्न इष्टि का अर्थ यज्ञ है परन्तु इष् धातु से निष्पन्न इष्टि शब्द का अर्थ है– इष्ट प्रयोगसिद्धिहेतु पठित अतिरिक्त वचन।

इनमें इष् धातु से निष्पन्न इष्टि शब्द का सम्बन्ध व्याकरण से है क्योंकि व्याकरण में ही इष्ट प्रयोगों की सिद्धिहेतु अतिरिक्त वचन का पाठ किया जाता है न कि यज्ञ में।

[2] **इष्टियों का महत्त्व–** भाषा का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है। कुछ शब्द समय के अनुसार समाज में प्रयोग से बाहर हो जाते हैं तो कुछ नये शब्दों का भाषा में समावेश हो जाता है तथा कतिपय शब्द अपने पुराने अर्थ को छोड़कर नये अर्थ के बोधक बन जाते हैं। इस प्रकार के सभी शब्दों को व्याकरण की दृष्टि से साधु या असाधु बताने के लिये एवम् भाषा में शुद्धता बनाये रखने के लिये वैयाकरणों द्वारा स्वोपज्ञवचनों का प्रयोग किया जाता है। ये स्वोपज्ञवचन तद्-तद् शब्दों की साधुता या असाधुता की दृष्टि से तद्--तद् आचार्यों की व्यक्तिगत इच्छायें होती हैं। इसी प्रकार माता-पिता की सन्तान के प्रति, गुरुजनों की शिष्यों के प्रति, शासकों की जनता के प्रति, मानव की राष्ट्र, धर्म और समाज के प्रति तथा उच्च लोगों की अपने निम्न बन्धुओं के प्रति विभिन्न अभिरुचियाँ होती हैं जिनका सामाजिक जीवन में हमेशा प्रयोग होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो कार्य जिसको रुचिकर होता है वह उसका इष्ट होता है, इसे ही व्याकरण के क्षेत्र में इष्टि नाम से अभिहित किया गया है।

शास्त्रस्येष्टसिद्ध्यर्थत्वात्[373]– इस कैयटोक्त वचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि शास्त्र का प्रयोजन इष्टसिद्धि और अनिष्टनिवारण है, तदनुसार व्याकरणशास्त्र का प्रयोजन भी इष्टरूपों की सिद्धि तथा अनिष्टरूपों का निवारण करना है। यद्यपि इष्ट रूपों के अन्वाख्यान के लिये ही व्याकरण के सूत्रों तथा वार्तिकों की रचना की गई है तथापि इन सूत्र तथा वार्तिक रूप नियमों से कतिपय इस प्रकार के

शब्द भी निष्पन्न होने लग जाते हैं, जो लोक में इष्ट नहीं होते हैं। इसी प्रकार लोक में कुछ ऐसे भी शब्द प्रयुक्त होते हैं जो इन सूत्रों तथा वार्त्तिकों के नियन्त्रण में नहीं आते हैं। इन्हीं द्विविध कार्यों की निष्पत्ति हेतु इष्टियों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार केवल इष्टरूपों की ही सिद्धि करना इष्टियों का लक्ष्य है। इष्टियों के उक्त लक्ष्य को कतिपय उदाहरणों द्वारा यहाँ स्पष्ट किया जाता है–

[2.1] **मृजेर्वृद्धिः**[374]– यह सूत्र एक व्यापक नियम का निर्देश करता है। इस नियम के अनुसार सर्वत्र धातुप्रत्यय परे रहते मृज् धातु के इक् को वृद्धि हो जाती है तदनुसार लट्स्थानीय तिप् के समान झिप्रत्यय परे रहते भी उक्त सूत्र से नित्य वृद्धि होने से मार्जन्ति यह एकमात्र रूप निष्पन्न होता है लेकिन लोक में मार्जन्ति के स्थान पर मृजन्ति यह वृद्ध्यभाव वाला रूप भी पाया जाता है अतः मृजन्ति इस इष्टरूप की निष्पत्ति हेतु ''मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते''[375] यह इष्टिवचन पढ़ा गया है। इस इष्टिवचन द्वारा ''मृजेर्वृद्धिः'' के क्षेत्र को सीमित कर दिया गया है। पहले ''मृजेर्वृद्धिः'' यह सूत्र सभी धातुप्रत्यय परे रहते नित्य ही वृद्धि का विधान करता था लेकिन इस इष्टिवचन द्वारा अजादि कित् तथा ङित् प्रत्ययों के परे रहते यह वृद्धि विकल्प से होती है। इस प्रकार लट्लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में मार्जन्ति और मृजन्ति ये दोनों ही रूप निष्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह ममार्जतुः, ममृजतुः इत्यादि प्रयोगों में भी जानना चाहिये। इस प्रकार प्रस्तुत इष्टिवचन द्वारा सूत्र द्वारा असङ्गृहीत मृजन्ति आदि प्रयोगों का सङ्ग्रह भी हो जाता है।

[2.2] **वागग्नी**– इस प्रयोग में ''द्वन्द्वे घि''[376] सूत्र द्वारा घिसंज्ञक अग्नि शब्द का तथा वागिन्द्रौ इस प्रयोग में ''अजाद्यदन्तम्''[377] सूत्र से अजाद्यदन्त द्वन्द्व शब्द का पूर्वप्रयोग प्राप्त है। किञ्च ''अल्पाच्तरम्''[378] सूत्र से दोनों ही प्रयोगों में अल्प अच् वाले वाक् शब्द का पूर्व प्रयोग प्राप्त है। इस परस्पर विरोध के परिहार के लिये यह इष्टिवचन पढ़ा गया है–''घ्यन्तादजाद्यदन्ताच्च परत्वादिदमिष्यते'' इस इष्टिवचन के अनुसार पर होने के कारण ''अल्पाच्तरम्'' यह सूत्र ''द्वन्द्वे घि'' तथा ''अजाद्यदन्तम्'' इन दोनों सूत्रों को बाधकर प्रवृत्त हो जाता है अतः यहाँ अल्प अच् वाले वाक् शब्द का ही पूर्व प्रयोग होता है अग्नि और इन्द्र का नहीं। इस प्रकार वागग्नी, वागिन्द्रौ ये रूप साधु हैं न कि अग्निवाचौ, इन्द्रवाचौ। यह इष्टिवचन अनिष्ट का निवारण तथा इष्ट का समर्थक है। काशिका तथा सिद्धान्तकौमुदी में उक्ताशय वाला कोई वचन नहीं पाया जाता है।

[3] **इष्टिवचन के कर्त्ता**– व्याकरणशास्त्र में इष्टिवचनों के उपर्युक्त महत्त्व को देखते हुए इनके कर्त्ता के सम्बन्ध में भी विचार करना अपेक्षित है। इष्टिवचन के कर्त्ता के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है।

कुछ आचार्य भाष्यकार को ही इष्टिकर्त्ता मानते हैं तो कुछ अन्य आचार्य वार्त्तिककार कात्यायन को। वस्तुत: इष्टरूपों की सिद्धि हेतु समय-समय पर इष्टियों का निर्माण होता रहा है। कुछ इष्टियां वार्त्तिककार कात्यायन से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की हैं तो कुछ स्वयं वार्त्तिककार कात्यायन की।

इसी प्रकार कुछ इष्टिवचन भाष्यकार पतंजलि से पूर्ववर्त्ती आचार्यों के हैं तो कुछ स्वयं भाष्यकार पतंजलि के। कुछ इष्टियां काशिका से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की हैं तो कुछ स्वयं काशिकाकार की। इस प्रकार काल की दृष्टि से इष्टिवचन के कर्त्ताओं को छ: भागों में विभक्त किया जा सकता है–[3.1] कात्यायन से पूर्ववर्त्ती आचार्य, [3.2] कात्यायन [3.3] पतञ्जलि से प्राचीन आचार्य, [3.4] पतञ्जलि, [3.5] काशिकाकार से पूर्ववर्त्ती आचार्य और [3.6] काशिकाकार। इन इष्टिवचनों तथा उनके कर्त्ताओं का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

[3.1] **कात्यायन से पूर्ववर्त्ती आचार्य**– भाष्य, काशिका, पदमञ्जरी तथा भाषावृत्ति आदि ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कात्यायन से पूर्व भी अनेक इष्टिवचनों की रचना हो चुकी थी तथा कात्यायन ने इन्हीं इष्टियों के आधार पर भी अपने वार्त्तिकों की रचना की है। यथा–

मिदचोऽन्त्यात्पर:[379]– सूत्रस्थभाष्य पर ''अन्त्यात्पूर्वो मस्जेरनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्'' यह कात्यायनीय वार्त्तिक पठित हुआ है। काशिका तथा भाषावृत्ति में यह वार्त्तिक इष्टि के रूप में पढ़ा गया है–''मस्जेरन्त्यात्पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्''।[380] काशिकाकार तथा भाषावृत्तिकार ने कात्यायनीय वार्त्तिक में जो इच्छन्ति पद का योग किया है उससे प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि में यह वार्त्तिक कात्यायन विरचित नहीं है अपितु पूर्वाचार्यों का इष्टिरूपवचन है जिसे उसने वार्त्तिक का रूप दे दिया। इसीलिये ये आचार्य उस वार्त्तिक का इष्टिवचनरूप दिखाने के लिये उसमें इच्छन्ति पद जोड़ देते हैं। इस वार्त्तिक में प्रयुक्त अनुषङ्ग शब्द भी उक्त तथ्य की पुष्टि कर रहा है। न्यास के अनुसार पूर्वाचार्य नकार की उपधा को अनुषङ्ग के नाम से अभिहित करते थे–''नकारस्योपधाया 'अनुषङ्गः' इति पूर्वाचार्यैः संज्ञाकृता।[381]

नपुंसकस्य झलच:[382]– सूत्र पर ''अन्त्यात्पूर्व नुममेके'' यह कात्यायनीय वार्त्तिक पठित हुआ है। इस वार्त्तिक के अनुसार कुछ आचार्यों के मत में अन्त्यवर्ण से पूर्व नुमागम होता है। भाष्यकार ने उक्त वार्त्तिक की व्याख्या में वार्त्तिक के साथ इच्छन्ति पद का योग भी कर दिया है–''अन्त्यात्पूर्वं नुममेके इच्छन्ति''। भाष्यकार का उक्त वार्त्तिक के साथ इच्छन्ति पद का योग यह सिद्ध कर रहा है कि भाष्यकार इसे विशुद्ध कात्यायनीयवार्त्तिक न मानकर उनसे पूर्ववर्त्ती आचार्यों की इष्टि स्वीकार कर रहा है। किञ्च स्वयं वार्त्तिककारकात्यायन भी वार्त्तिक के एके पद का निर्देश कर उक्त तथ्य की ही पुष्टि कर रहा है।

उक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि कात्यायन से भी पूर्व अनेक आचार्यों ने इष्टिवचनों का निर्देश किया है।

[3.2] **कात्यायन**– यद्यपि कात्यायन वार्त्तिककार के रूप में ही विख्यात हैं तथापि भाष्य, काशिका, प्रदीप, भाषावृत्ति आदि ग्रन्थों में उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि कात्यायन ने जहाँ पूर्वाचार्यों द्वारा प्रोक्त वार्त्तिकों का सङ्ग्रह करके उन्हें समन्वित रूप प्रदान किया, वहीं उन्होंने इष्टियों का प्रणयन भी किया। यथा–

वर्णो वर्णेन[383]- सूत्र पर भाष्य में तीन वार्त्तिक पठित हुए हैं। यथा–

[1] समानाधिकरणसमासाद्बहुव्रीहि:।

[2] कदाचित्कर्मधारय: सर्वधनाद्यर्थ:।

[3] पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहि: सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थ:।

भाष्यकार ने उक्त तीनों ही वार्त्तिकों को कात्यायनकृत इष्टिवचन माना है–''एवं तर्हि नेदं तस्य योगस्योदाहरणं विप्रतिषेधे परमिति। किं तर्हि? इष्टिरियं पठिता–''समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहिरिष्ट:, कदाचित्कर्मधारय: सर्वधनाद्यर्थ'' इति।

''एवं तर्हि नेदं तस्य योगस्योदाहरणं विप्रतिषेधे परमिति। किं तर्हि? इष्टिरियं पठिता-पूर्वपदातिशय आतिशायिकाद् बहुव्रीहिरिष्ट: सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थ'' इति।

प्रदीपकार ने तो इनमें प्रथम दो वार्त्तिकों को स्पष्ट रूप से वार्त्तिककार की इष्टि कहा है–''समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहि: कदाचित् कर्मधारय:

सर्वधनाद्यर्थ इति वार्त्तिककारेणेष्टिरूपेण पठितम्''। ''अतिशयेन सूक्ष्माणि वस्त्राण्यस्येत्यर्थविवक्षायामुभयप्रसङ्गे पूर्वं बहुव्रीहिरिष्यते ततो बहुव्रीहेः प्रत्ययः''।

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे[384]– सूत्रस्थ भाष्य में ''अशूद्रस्त्र्यसूयकेषु'' यह वार्त्तिक पठित हुआ है। काशिका में उक्त सूत्रस्थ वार्त्तिक को दो भागों में विभक्त किया गया है–''स्त्रियामपि प्रतिषेधो वक्तव्यः। असूयकेऽपि केचित् प्रतिषेधमिच्छन्ति''। काशिकास्थ इस विभाजन से ज्ञात होता है कि कात्यायन का मूलवार्त्तिक ''स्त्रियामपि प्रतिषेधो वक्तव्यः'' है तथा ''असूयकेऽपि केचित् प्रतिषेधमिच्छन्ति'' यह कात्यायन का इष्टिवचन है क्योंकि असूयके को प्रत्यभिवादन का प्रतिषेध केवल कात्यायन को ही इष्ट है सबको नहीं। इसीलिये उसने वार्त्तिक में असूयक पद जोड़ दिया है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कात्यायन के कतिपय वार्त्तिक स्वोपज्ञ इष्टिवचन हैं।

[3.3] **पतञ्जलि से प्राचीन आचार्य**– भाष्य, काशिका तथा भाषावृत्ति के कतिपय स्थलों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि भाष्यकार पतञ्जलि से प्राचीन आचार्यों को भी इष्टि का ज्ञान था। यथा–

क्ङिति च[385]– सूत्र पर काशिका तथा भाषावृत्ति ने यह इष्टिवचन पढ़ा है–''मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते''। भाष्य के अवलोकन से भी प्रतीत होता है कि कुछ प्राचीन आचार्य मृज् धातु को अजादि कित् तथा ङित्प्रत्ययों के परे रहने पर विकल्प से वृद्धि का विधान करते थे–''एवं तर्हि इहान्ये वैयाकरणा मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते''। काशिका और भाषावृत्ति ने उक्त भाष्यवचन के आधार पर इसे इष्टिरूप में पढ़ा है, अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह इष्टि भाष्य से प्राचीन है।

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्[386]– सूत्र पर काशिका ने ये दो वचन पढ़े हैं–''विद्यालक्षणकल्पान्तादिति वक्तव्यम्'', ''सूत्रान्तादकल्पादेरिष्यते''। इनमें प्रथम वार्त्तिक है तथा द्वितीय वचन इष्टि। भाष्य में इसे इस रूप में पढ़ा गया है–''विद्यालक्षणसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः'' इस वचन में प्रयुक्त स्मृतः पद स्पष्ट बतला रहा है कि कुछ पूर्वाचार्यों ने ऐसा कहा है तथा यह इष्टिवचन है एवं भाष्य से प्राचीन है। काशिकाकार ने इस वचन को इष्टि के रूप में ही पढ़ लिया है।

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि भाष्यकार से प्राचीन आचार्यों को इष्टि का ज्ञान था।

[3.4] **पतञ्जलि**– प्रो. गोल्डस्टुकर, शेषश्रीकृष्ण तथा भट्टोजिदीक्षित आदि कतिपय विद्वान् इष्टिवचनों का कर्त्ता भाष्यकार को ही स्वीकार करते हैं। प्रो. गोल्डस्टुकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पतञ्जलि द्वारा प्रणीत वार्त्तिक इष्टि के नाम से अभिहित किये जाते हैं–

``While its Istis on the other hand are original Vartikas on such Sutras of Panini as called for his own remarks."[387]

शेष श्रीकृष्ण तथा भट्टोजिदीक्षित के "इष्टिर्भाष्यकृत:"[388], "इष्टिरियं भाष्यकृत:"[389] ये वचन भी उक्त तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं। भाष्यकार ने भी कुछ इष्टियों की रचना की इसमें निम्न लिखित प्रमाण हैं–

स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा[390]– सूत्र पर भाष्यकार ने "अस्यैकस्य पर्यायवचनस्येष्यते यह वचन पढ़ा है। काशिका ने इसे इष्टिरूप में ही स्वीकार किया है–

"स्वरूपस्य पर्यायाणां तद्विशेषाणां च ग्रहणमिहेष्यते"।[391] कैयट ने भी प्रदीप में इसे इष्टिवचन कहा है– "अस्यैकस्येति। इयमिष्टिरेव"। इस प्रकार काशिका तथा प्रदीप दोनों ने ही भाष्योक्तवचन को इष्टिरूप में माना है।

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य[392]–सूत्र पर भाष्यकार ने "गतिकारकपूर्वस्येष्यते" यह वचन पढ़ा है। काशिका तथा भाषावृत्ति ने किंचित् शब्दान्तर से भाष्योक्त वचन को इष्टिरूप में ही पढ़ा है–"गतिकारकाभ्यामन्यपूर्वस्य नेष्यते", "क्विबन्तस्य गतिकारकपूर्वस्यैवेष्यते"। नागेश ने उद्योत में भाष्योक्त वचन को भाष्यकार की इष्टि माना है–"इयं भाष्यकृत इष्टि:"।

दिङ् नामान्यन्तराले[393]– सूत्र पर "एवं तर्हि सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्य:" यह भाष्य वचन पठित हुआ है। भट्टोजिदीक्षित ने इसे भाष्यकार की इष्टि माना है–"सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति भाष्यकारेष्ट्या गतार्थत्वात्"[394]।

उपर्युक्त तथ्यों से भाष्यकार इष्टिकर्त्ता के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं परन्तु केवल भाष्यकार ही आदि इष्टिकर्त्ता हैं अन्य नहीं, यह कहना ठीक न होगा क्योंकि "वर्णो वर्णेन" सूत्रस्थ तीन वार्त्तिक स्वयं भाष्यकार ने स्वपूर्ववर्त्ती कात्यायन के इष्टिवचन स्वीकार किये हैं।

[3.5] **काशिका से पूर्ववर्त्ती आचार्य**– काशिका में कतिपय ऐसी इष्टियां पायी जाती है, जिनका भाष्य तथा कात्यायनीय वार्त्तिकों में कोई उल्लेख नहीं है। इस प्रकार की इष्टियाँ काशिका से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की मानी जा सकती है। यथा–

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः[395]- सूत्र पर काशिकाकार ने लिखा है कि सूत्रारम्भसामर्थ्य से ही नित्य मयट्प्रत्यय सम्भव था पुनः सूत्र में जो नित्य शब्द का ग्रहण किया गया है वह यह ज्ञापित करता है कि शरादिगण में पठित न होने पर भी एकाच् शब्द से नित्य मयट्प्रत्यय हो जाता है–एकाचो नित्यं मयटमिच्छन्ति, तदनेन क्रियते– त्वङ्मयम्, स्रङ्मयम्, वाङ्मयम्। न्यासकार ने उक्त काशिका के वचन की व्याख्या करते हुए कहा है कि कुछ आचार्यो को ऐसा इष्ट है– ''तदेकेषामाचार्याणामिष्टम्''। इस प्रकार काशिकाकार द्वारा इच्छन्ति पद का प्रयोग करना तथा न्यासकार द्वारा इच्छन्ति पद का सम्बन्ध कुछ आचार्यों के साथ जोड़ना यह सिद्ध करता है कि यह काशिका से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की इष्टि है।

किरश्च पञ्चभ्यः[396]– सूत्र की वृत्ति में काशिका में यह वचन पठित हुआ है–''किरतिगिरत्योरिट् सनि वेति विकल्पः प्राप्तः। वृतो वेति चास्येटो दीर्घत्वं नेच्छन्ति''। पदमञ्जरीकार हरदत्त ने इसे इष्टि कहा है–''इष्टिरेवेयम्''।[397] भाष्य में उक्त सूत्र ही नहीं है अतः उसमें उक्त इष्टिवचन पढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इस प्रकार काशिका द्वारा उक्त उदाहरणों में इच्छन्ति पद के प्रयोग द्वारा यह सिद्ध होता है कि ये इष्टियां काशिका से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की हैं किञ्च ये इष्टियां भाष्य से प्राचीन हैं या अर्वाचीन इस सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं पाया जाता है। इसीलिये इन्हें काशिका से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की इष्टियों के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है।

[3.6] **काशिकाकार**– कुछ इष्टप्रयोगों की सिद्धि हेतु काशिकाकार ने जो इच्छार्थक वचन पढ़े है तथा जिन वचनों का उल्लेख वार्त्तिक तथा भाष्य में नहीं पाया जाता है, ऐसे वचन काशिकाकार के इष्टिवचन के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। अन्य वैयाकरणों के समान काशिकाकार के भी कुछ इष्टिवचन माने जाते हैं। यथा–

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्[398]– इस सूत्र द्वारा केवल द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य इन चार शब्दों का ही विकल्प से समास का विधान किया

गया है लेकिन काशिकाकार ने इष्टिवचन द्वारा इनमें "तुरीय" शब्द का भी समावेश कर दिया है-"तुरीयशब्दस्यापीष्यते। तुरीयं भिक्षायाः, तुरीयभिक्षा"। भाष्य, न्यास और पदमञ्जरी आदि में कहीं भी इस इष्टि का उल्लेख नहीं पाया जाता है। भट्टोजिदीक्षित ने शब्दकौस्तुभ में इसे वृत्तिकारों का इष्टिवचन माना है-"तुरीयशब्दस्यापीष्यते इति वृत्तिकाराः। एतच्च भाष्यादौ नास्ति"।[399]

अव्ययीभावश्च[400]- इस सूत्र पर काशिकाकार ने तीन इष्टियां पढ़ी है-"पुण्यसुदिनाभ्यामहनः क्लीबतेष्यते, पथः संख्याव्ययादेः क्लीबतेष्यते, क्रियाविशेषणानां च क्लीबतेष्यते"। भाष्य में ये इष्टिवचन पठित नहीं हुए हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सभी इष्टियों का कर्त्ता एक ही व्यक्ति नहीं है अपितु आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर इष्टियों का निर्माण होता रहा है तथा इन इष्टियों के कर्त्ता कात्यायन, कात्यायन से पूर्ववर्त्ती आचार्य, भाष्यकार, भाष्यकार से पूर्ववर्त्ती आचार्य, काशिकाकार तथा काशिकाकार से पूर्ववर्त्ती आचार्य माने जाते हैं।

[4] **इष्टि की परिभाषा**- पतञ्जलि, हरदत्त और शेषश्रीकृष्ण आदि आचार्यों ने इष्टि की परिभाषा पर विचार किया है। भाष्यकार के अनुसार इष्ट प्रयोग की सिद्धि हेतु पठित अतिरिक्त वचन इष्टि है-"इष्यतेऽनयेतीष्टिः"[401]।

पदमञ्जरीकार के अनुसार सूत्र तथा वार्तिक द्वारा अकृत कार्य का विधिवचन इष्टि है-"सूत्रेणासङ्गृहीतं लक्ष्यं येन सङ्गृह्यते तदुपलक्षणमिष्ट्युपसंख्यानग्रहणम्"।[402]

पदचन्द्रिकाविवरण में शेषश्रीकृष्ण ने आचार्यों के इच्छाप्रदर्शक वाक्यों को इष्टि माना है-"मृजेरजादो सङ्क्रमे विभाषावृद्धिरिष्यते" इत्यादीनि इच्छाप्रदर्शकवाक्यानि इष्ट्यः।[403]

डा. वेदपति मिश्र ने अपने "व्याकरण वार्तिक एक समीक्षात्मक अध्ययन" नामक शोध प्रबन्ध में इष्टि को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है-"पूर्व आचार्यों द्वारा अनुपदिष्ट, कार्यसम्पादनार्थ उत्तरवर्त्ती आचार्यों के स्वोपज्ञनियम इष्टि नाम से व्यवहृत होते हैं।[404]

डा. रघुवीर वेदालङ्कार ने "काशिका का समालोचनात्मक अध्ययन" नामक अपने शोध प्रबन्ध में इष्टि को निम्न शब्दों में निबद्ध किया है-"सूत्रों

तथा वार्त्तिकों द्वारा असङ्गृहीत कार्यों के सम्पादनार्थ उत्तरवर्त्ती आचार्यों द्वारा चाहे गये नियम इष्टि हैं''।[405]

उपर्युक्त विभिन्न आचार्यों के मतों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सूत्र तथा वार्त्तिक से असङ्गृहीत कार्य के सम्पादनार्थ उत्तरवर्त्ती आचार्यों द्वारा पठित इच्छाप्रदर्शकवचन इष्टि है।

[5] **इष्टियों का स्वरूप**– इष्टियों के वास्तविक स्वरूप का निरूपण करना अत्यधिक कठिन कार्य है। सामान्यतः इष् धातु से निष्पन्न इष्यते, इष्टम्, इच्छन्ति पदों से युक्त वचनों को इष्टि माना जाता है। भाष्यकार और काशिकाकार ने जहाँ-जहाँ इस प्रकार के प्रयोग किये हैं वहाँ-वहाँ प्रायः टीकाकारों ने उनके इन वचनों को इष्टि के नाम से अभिहित किया है। यथा–

स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा[406]– सूत्र पर भाष्यकार ने यह वचन पढ़ा है–''अस्यैकस्य पर्यायवचनस्येष्यते''। कैयट ने प्रदीप में ''इयमिष्टिरेव'' यह कहकर उक्त भाष्यवचन को इष्टि माना है।

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य[407]– सूत्र पर भाष्यकार ने यह वचन पढ़ा है–''गतिकारकपूर्वस्येष्यते''। हरदत्त ने पदमञ्जरी में इसे भाष्यकार की इष्टि स्वीकार किया है–''इष्टिरेवैषा''। नागेश ने भी उद्द्योत में उक्त तथ्य की पुष्टि की है–''इयं भाष्यकृत इष्टिः''।

क्ङिति च[408]– सूत्र पर काशिका में ''मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते'' यह वचन पठित हुआ है। शेषश्रीकृष्ण ने इसे इष्टि के नाम से अभिहित किया है–''मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते'' इत्यादीनि इच्छाप्रदर्शकवाक्यानि इष्ट्यः।[409] काशिकाकार ने अनेक सूत्रों में इष्यते या इच्छन्ति पदों से युक्त वचन पढ़े हैं। हरदत्त ने इनमें से अनेक को इष्टि के नाम से अभिहित किया है।

यहाँ यह अवधेय है कि कतिपय भाष्य तथा काशिकास्थ वचनों में इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों का पाठ नहीं किया गया है तथापि टीकाकारों ने उनको इष्टिवचन माना है।[410] यथा–

वृद्धिरादैच्[411]– सूत्र पर भाष्यकार ने यह वचन पढ़ा है–''छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति''। कैयट ने प्रदीप में इसे इष्टि कहा है–''इष्टिरेवेयं छन्दोवदिति''।

दिङ्नामान्यन्तराले[412]– सूत्र पर यह भाष्यवचन पठित हुआ है–''एवं तर्हि सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्यः'' भट्टोजिदीक्षित ने इसे भाष्यकार की इष्टि माना है–''सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति भाष्यकारेष्ट्या गतार्थत्वात्''[413]।

ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्[414]– सूत्र पर काशिकाकार ने यह वचन पढ़ा है–''अत्र च स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदित्येषा परिभाषा नाश्रीयते''। हरदत्त ने पदमञ्जरी में इस वचन को इष्टि माना है–''एवं तर्हि इष्टिरेवेयम्-अत्र स्वरे विद्यमानवत् परिभाषा न प्रवर्तते इति''।

काशिकाकार ने ''इन्धिभवतिभ्याञ्च''[415]– सूत्र पर पठित ''श्रन्थि-ग्रन्थिदम्भिष्वञ्जीनामिति वक्तव्यम्'' वचन को इष्टि माना है ''अत्रेष्टिः-श्रन्थिग्रन्थिदम्भिष्वञ्जीनामिति वक्तव्यम्''।

यद्यपि उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि छन्दोवत्, वक्तव्यः, वक्तव्यम् तथा आश्रीयते आदि पदों से युक्त वचनों को भी इष्टि माना गया है तथापि निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जिन वचनों में इष्यते, इष्टम् तथा इच्छति पदों का प्रयोग किया गया है वे तो इष्टियाँ हैं हीं, साथ में उन वचनों को भी इष्टि कहा जा सकता है जिनमें इष् धातु का प्रयोग न होने पर भी इष् का मूलार्थ-इच्छा अनुस्यूत हो।

यहाँ यह अवधेय है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में भाषावृत्ति के केवल उन्हीं वचनों को इष्टि के रूप में विन्यस्त किया गया है जिनमें इष् धातु से निष्पन्न इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों का प्रयोग किया गया है। अनुमानगम्य इच्छार्थ वाले वचनों को यहाँ इष्टि के रूप में निर्दिष्ट नहीं किया गया है क्योंकि उसमें सन्देह की सम्भावना बनी रहती है।

[6] **इष्टि और वार्त्तिक में अन्तर**– विगत प्रकरणों में यह प्रतिपादित हो चुका है कि जो वचन सूत्र तथा वार्त्तिक द्वारा असंगृहीत कार्य का सम्पादन करता है वह इष्टि है। किञ्च इसमें प्रायः इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों का प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत जो वचन केवल सूत्र द्वारा असङ्गृहीत कार्य का सम्पादन करता है वह वार्त्तिक है तथा इसमें प्रायः वक्तव्यम्, उपसंख्यानम्, बोधव्यम्, ग्रहणं कर्त्तव्यम् आदि पदों का प्रयोग पाया जाता है।

इष्टि और वार्त्तिक में सामान्य रूप से उपर्युक्त अन्तर विद्यमान होने पर भी इन दोनों को सही रूप में परिभाषित करना कठिन है क्योंकि भाष्य में जिन वचनों को वार्त्तिक के रूप में पढ़ा गया है, काशिका में उनमें से कतिपय वचनों को इष्टि के रूप में पढ़ा गया है। यथा–

रथाद्यत्[416]– सूत्र पर भाष्य में यह वार्त्तिक पठित हुआ है–''रथसीताहलेभ्यो यद्विधाविति तदन्तविधिरुपसंख्यायते''। परन्तु काशिका ने ''नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवद्ध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु''[417] सूत्र पर उक्त वार्त्तिक को इष्टि के रूप में पढ़ा है–''रथसीताहलेभ्यो यद्विधाविति तदन्तविधिरपीष्यते''।

गमः क्वौ[418]– सूत्र पर भाष्य तथा काशिका में ''गमादीनामिति वक्तव्यम्'' यह वार्त्तिक समानरूप से पठित हुआ है लेकिन ''नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ''[419] सूत्र में काशिका ने उक्त वार्त्तिक को इष्टिरूप में पढ़ा है–''गमः क्वाविति गमादीनामिष्यते''।

मिदचोऽन्त्यात्परः– सूत्र पर भाष्य में कात्यायन का यह वार्त्तिक पठित हुआ है–''अन्त्यात्पूर्वो मस्जेरनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्''।[420] काशिका ने उक्त वार्त्तिक को इष्टि के रूप में पढ़ा है–''मस्जेरन्त्यात् पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्''।[421]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि काशिकाकार ने कात्यायन के अनेक वार्त्तिकों को इष्टिरूप में पढ़ा है। यहाँ यह निर्णय करना कठिन है कि उक्त वार्त्तिकों को कात्यायन के वार्त्तिक माना जाये या इष्टियाँ अथवा इन्हें कात्यायन से पूर्ववर्त्ती आचार्यों की इष्टियाँ स्वीकार किया जाये, जिनके आधार पर कात्यायन ने ये वार्त्तिक बनाये।

इसी प्रकार कात्यायन ने जिन वचनों को वार्त्तिक के रूप में पढ़ा है, भाष्यकार ने उनमें से कतिपय वचनों को इष्टि के रूप में स्वीकार किया है। यथा–''वर्णो वर्णेन''[422] सूत्र पर भाष्य में कात्यायन के कुछ वार्त्तिक पठित हुए हैं–

समानाधिकरणसमासाद्बहुव्रीहिः।
कदाचित्कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थः।

पूर्वपदातिशये आतिशायिकाद् बहुव्रीहिः सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थः। परन्तु भाष्यकार ने इन तीनों ही वार्त्तिकों को इष्टिरूप माना है–"एवं तर्हि नेदं तस्य योगस्योदाहरणं विप्रतिषेधे परमिति। किं तर्हि इष्टिरियं पठिता- "समानाधिकरणसमासाद् बहुव्रीहिरिष्टः, कदाचित्कर्मधारयः सर्वधनाद्यर्थ" इति"।

"एवं तर्हि नेदं तस्य योगस्योदाहरणं विप्रतिषेधे परमिति। किं तर्हि? इष्टिरियं पठिता-पूर्वपदातिशय आतिशयादिकाद् बहुव्रीहिरिष्टः सूक्ष्मवस्त्रतराद्यर्थ" इति"। यद्यपि इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों वाले वचनों को इष्टि माना जाता है तथापि कुछ आचार्यों ने इन पदों के प्रयोग रहित वचनों को भी इष्टि माना है। यथा–"वृद्धिरादैच्"[423] सूत्र पर भाष्यकार ने "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति" यह वाक्य पढ़ा है। कैयट ने इसे इष्टि माना है–"इष्टिश्चेयं छन्दोवदिति"। इसी प्रकार इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों से युक्त वचनों को भी कतिपय आचार्यों ने इष्टि न मानकर वार्त्तिक माना है। यथा–

किरश्च पञ्चभ्यः[424]– सूत्र पर "अस्येटो दीर्घत्वं नेच्छन्ति" यह काशिकावचन पठित हुआ है। हरदत्त तथा ज्ञानेन्द्र सरस्वती ने इस वचन को इष्टि माना है–"इष्टिरेवेयम्",[425] "भाष्यकारेष्टिरियम्"[426] परन्तु वासुदेवदीक्षित ने इसे वार्त्तिक ही स्वीकार किया है–"वार्त्तिकमिदं वृत्तौ स्थितम्"।[427]

यद्यपि डा. रघुवीर वेदालङ्कार ने काशिका का समालोचनात्मक अध्ययन नामक अपने शोध प्रबन्ध में वार्त्तिक तथा इष्टियों की विभाजक रेखा के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया है। उनका कथन है कि पाणिनीय अष्टाध्यायी में द्विविध सूत्र विन्यस्त हुए हैं। प्रथमविध सूत्र वे हैं जो पाणिनि को स्वपूर्ववर्त्ती आचार्यों से प्राप्त हुए। इसीलिये उनके व्याकरण को प्रोक्तव्याकरण कहा जाता है–प्रकर्षेणोक्तं प्रोक्तमित्युच्यते, न तु कृतम्पाणिनीयम्।[428] किञ्च द्वितीयविध सूत्र वे हैं जो स्वयं पाणिनिविरचित हैं। इसीलिये उनके व्याकरण को स्वोपज्ञव्याकरण भी कहा जाता है– विनोपदेशेन ज्ञातमुपज्ञातं, स्वयमभिसम्बद्धमित्यर्थः। पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयम्, अकालकं व्याकरणम्।[429]

अतः इष्टि तथा वार्त्तिक के सही स्वरूप के निर्णय के अभाव में इष्टि और वार्त्तिक के अन्तर का यथार्थ निर्णय करना भी कठिन है। यहाँ स्थूल दृष्टि से इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों वाले वचन को इष्टि तथा वक्तव्यम्, उपसंख्यानम् आदि पदों से युक्त वचनों को वार्त्तिक माना गया है।

पाणिनीय सूत्रों के समान कात्यायनीय आचार्यों के भी द्विविध रूप माने जाते हैं। कुछ वार्त्तिक कात्यायन को स्वपूर्ववर्त्ती आचार्यों से प्राप्त हुए तथा कुछ उनके स्वोपज्ञवचन हैं। जिन वार्त्तिकों का स्वरूप भारद्वाजादि आचार्यों के वार्त्तिकों के अत्यधिक समान है वे वार्त्तिक पूर्ववर्त्ती आचार्यों की देन हैं तथा उन्हें ही वार्त्तिक माना जाना चाहिये। किञ्च शेष वार्त्तिक कात्यायन के स्वोपज्ञवचन हैं तथा इन वार्त्तिकों को ही इष्टिवचन मानना चाहिये। सम्भवतः काशिकादि ग्रन्थों ने ऐसे ही वार्त्तिकों को इष्टि रूप में पढ़ा है।

यहाँ यह अवधेय है कि डा. रघुवीर वेदालङ्कार ने वार्त्तिक तथा काशिका में पठित इष्टियों में विभाजक रेखा खींचने का स्तुत्य प्रयास किया है परन्तु जब तक तुलनात्मक दृष्टि से यह निर्णय नहीं हो जाता है कि अमुक वार्त्तिक पूर्ववर्त्ती आचार्यों की देन है तथा अमुक कात्यायनविरचित तब तक वार्त्तिक तथा इष्टि की सही विभाजक रेखा खींचना कठिन है।

प्रो. एफ. कीलहार्न ने भी स्वसम्पादित महाभाष्य में वार्त्तिक तथा इष्टियों की विभाजक रेखा खींचने का प्रयास किया है। उनके अनुसार व्याख्येय तथा व्याख्यान दोनों ही अंशों से युक्त वाक्य वार्त्तिक हैं तथा केवल व्याख्यान अंश वाले वाक्य भाष्यकार के स्वोपज्ञवचन। जो वचन एवं तर्हि, एवमपि, यद्येवम्, अत्यल्पमिदमुच्यते, किं चातः, उक्तं वा आदि वाक्यों के निर्देश के अनन्तर कहे जाते हैं, वे भाष्यकार के स्वोपज्ञवचन हैं। यथा–

द्विर्वचनेऽचि[430]– सूत्र पर भाष्यकार ने लिखा है–"एवं तर्हि द्विर्वचननिमित्तेऽच्यजादेशः स्थानिवदिति वक्ष्यामि"। यहाँ वक्ष्यामि पद इसे भाष्यकार की इष्टि प्रमाणित कर रहा है।

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्[431]– सूत्र पर भाष्यकार द्वारा लिखा गया है–"एवमपिकर्मणः करणसंज्ञा वक्तव्या, सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा"। उक्त वाक्य में एवमपि शब्द पिछली और अगली बात के बीच में सम्बन्ध स्थापित कर रहा है अतः यह भाष्यकार का स्वोपज्ञवचन है।

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः[432]– सूत्र पर भाष्यकार ने यह वचन उद्धृत किया है–"यद्येवं हनुचलन इति वक्तव्यम्। इह मा भूत्–कीटो रोमन्थं वर्तयति"। यहाँ भी यद्येवं शब्द के कारण भाष्यकार की इष्टि है।

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटो:[433] **तथा नाडीमुष्ट्योश्च**[434]– इन दोनों सूत्रों के भाष्य में यह वचन पठित हुआ है–''अत्यल्पमिदमुच्यते। नासिकानाडीमुष्टिघटी-खारीष्विति वक्तव्यम्''। उक्त वचन से यह आभास होता है कि भाष्यकार कात्याय-नीयवार्त्तिक में कमी सुधारने के उद्देश्य से ही अत्यल्पमिदमुच्यते कह रहा है।

कृन्मेजन्त:[435]– सूत्र पर भाष्यकार ने लिखा है–''कथमिदं विज्ञायते कृद्भ्यो मान्त इति आहोस्विद् कृदन्तं यन्मान्तमिति? किं चात:? यदि विज्ञायते कृद्भ्यो मान्त इति कारयाञ्चकार, हारयाञ्चकार इत्यत्र न प्राप्नोति। अथ विज्ञायते कृदन्तं यन्मान्तमिति प्रतामौ, प्रताम: अत्रापि प्राप्नोति''। इस प्रकार उक्त वचन में भाष्यकार ने किं चात: इस शब्द द्वारा समस्या पर विचार प्रकट किया है अत: यह उनका स्वोपज्ञवचन है।

इसी प्रकार डा. एफ. कीलहार्न ने ''उक्तं वा'' इस पद से युक्त वचन को भाष्यकार का वचन स्वीकार किया है।[436] डा. वेदपति मिश्र भी इस मत का समर्थन करते हैं–''उक्तं वा'' के पश्चात् भाष्यकार का ही वचन आता है, कात्यायन का वार्त्तिक नहीं आता[437] डा. रघुवीर वेदालङ्कार डा. कीलहीर्न के उक्त मत से सहमत नहीं हैं वे अपने पक्ष की पुष्टि हेतु भाष्य के उन स्थलों को प्रस्तुत करते हैं, जहाँ भाष्यकार ने ''उक्तं वा'' पद देकर वार्त्तिक दिये हैं। यथा–

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ[438]– सूत्र पर पठित ''उक्तं वा'' का संकेत प्रत्याहार सूत्र ''अइउण्''[439] पर पठित षष्ठ वार्त्तिक ''विषयेण तु नानालिङ्गकरणात्सिद्धम्'' की ओर है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वार्त्तिकों के वास्तविक स्वरूप का निर्धारण करना अति दुरूह है क्योंकि कौन वार्त्तिक कात्यायन द्वारा सङ्गृहीत हैं तथा कौन उसका स्वोपज्ञ वचन? इसी प्रकार भाष्यस्थ कौन वार्त्तिक वार्त्तिककार कात्यायन के हैं तथा कौन भाष्यकार के स्वोपज्ञवचन? इसका निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। किञ्च यह एक स्वतन्त्र शोध का विषय है। वार्त्तिक के स्वरूप के निर्णय के अभाव में इष्टि के वास्तविक स्वरूप का निर्णय भी नहीं हो सकता तथापि सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि प्राय: इष् धातु से सम्बन्धित इष्यते, इष्टम् तथा इच्छन्ति पदों से युक्त वचन इष्टि तथा तद्भिन्न वक्तव्यम्, उपसंख्यानम् आदि पदों से युक्त वचन वार्त्तिक है।

[7] **भाषावृत्ति में पठित इष्टियाँ**– असङ्गृहीत के सङ्ग्रह तथा अनिष्ट के निवारण हेतु ही इष्टिवचन पठित होता है, इसका प्रतिपादन पूर्वप्रकरण में किया जा चुका है। इष्ट रूपों की निष्पत्ति हेतु भाषावृत्ति में भी अनेक इष्टिवचन पठित हुए हैं जिनकी कुल संख्या 51 है। यहाँ इन इष्टिवचनों की सार्थकता को सप्रमाण प्रस्तुत किया जाता है।

[7.1] **मृजेर्वृद्धिः**[440]– सूत्र से प्राप्त वृद्धि लघूपधगुण का ''क्ङिति च''[441] सूत्र द्वारा निषेध होने से मृज् धातु के लट् तथा लिट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन में क्रमशः मृजन्ति तथा ममृजुः ये रूप निष्पन्न होते हैं परन्तु लोक में इनके मार्जन्ति और ममार्जुः ये वृद्धि वाले रूप भी पाये जाते हैं। इन द्विविध रूपों की निष्पत्ति हेतु भाषावृत्ति में यह इष्टिपठित हुई है–''मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते''। इस इष्टिवचन के अनुसार अजादि कित् और ङित् प्रत्ययों के परे मृज्धातु को विकल्प से वृद्धि होने से उक्त द्विविध रूप निष्पन्न हो जाते हैं। काशिकाकार ने भी उक्त इष्टिवचन स्वीकार किया है।

भाष्य में ''इकोगुणवृद्धिः''[442] सूत्र पर उक्त इष्टिवचन प्रस्तुत रूप में विन्यस्त हुआ है–''इहान्ये वैयाकरणा मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिमारभन्ते–परिमृजन्ति परिमार्जन्ति परिमृजन्तु परिमार्जन्तु परिममृजतुः परिममार्जतुरित्याद्यर्थम्''। भट्टोजिदीक्षित ने उक्ताशय वाले वचन को वार्तिक में पढ़ा है–''क्ङित्यजादौ वेष्यते''।[443]

[7.2] **मिदचोऽन्त्यात्परः**[444]– प्रस्तुत सूत्र अन्त्य अच् से परे मित् कार्य का विधान करता है तदनुसार मस्ज् ता, मस्ज् त इस अवस्था में अन्त्य अच् मकारस्थ अकार के बाद ''मस्जिनशोर्झलि''[445] सूत्र द्वारा नुमागम होने से मङ्क्ता और मग्नः ये रूप सिद्ध नहीं हो सकते हैं क्योंकि संयोगादि न होने के कारण न तो इनमें ''स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'' सूत्र से सलोप हो सकता है और न ही नकार उपधा में न होने के कारण ''अनिदिताम्....'' सूत्र से न लोप सम्भव है अतः ''मस्जेरन्त्यात्पर्वूं नुममिच्छन्ति, अनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्'' इस इष्टिवचन द्वारा मस्ज् धातु के अन्त्य जकार से पूर्व नुम् का आगम हो जाता है जिससे मस्न्ज् ता, मस्न्ज् त इस अवस्था में उपधा में नकार होने से नलोप तथा संयोगादि सकार होने से सलोप दोनों ही सम्पन्न हो जाते हैं। तदनन्तर अनुस्वार और परसवर्ण द्वारा उक्त रूपों की निष्पत्ति होती है। काशिका ने भी उक्त इष्टिवचन का पाठ किया है तथा भट्टोजि[446] ने उक्त इष्टिवचन को वार्तिक के रूप में पढ़ा है।

[7.3] **इन्धिभवतिभ्याञ्च**[447] सूत्र केवल इन्ध् और भू धातु से परे लिट् को ही कित्व का विधान करता है लेकिन लोक में श्रेथतुः, ग्रेथतुः, देभतुः, परिषस्वजे आदि प्रयोगों में उपधालोप हेतु श्रन्थि, ग्रन्थि, दम्भि और स्वञ्जि धातुओं के लिट् को भी कित्व की अपेक्षा है अतः तदर्थ यह इष्टि पठित हुई है–अत्रेष्टिः–''ग्रन्थिश्रन्धिदम्भिस्वञ्जीनामिति जयादित्यः''। काशिकाकार ने भी उक्त इष्टिवचन माना है।

[7.4] दिवादिगणीय उदुपध गुध् धातु से परवर्त्ती भाव तथा आदिकर्म में विहित सेण्निष्ठा को ''उदुपधाद् भावादिकर्मणोऽन्यतरस्याम्''[448] सूत्र द्वारा विकल्प से कित्वनिषेध होने से निगोधितम्, निगुधितम् ये द्विविध रूप प्राप्त थे लेकिन ''अशब्विकरणानान्तु नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा अशब्विकरण में उक्त सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है अतः यहाँ नित्य कित्व होने से लघूपधगुणाभाव में निगुधितम् यह एकमात्र रूप निष्पन्न होता है।

काशिकाकार के अनुसार उक्त सूत्र में व्यवस्थितविभाषा है जिससे उक्त सूत्र की प्रवृत्ति केवल शब्विकरणीयधातुओं में ही होती है। गुध् धातु शब्विकरणीय नहीं है अतः इसमें उक्त सूत्र की प्रवृत्ति ही नहीं होती है।

भट्टोजिदीक्षित ने उक्त इष्टिवचन को वार्त्तिक के रूप में पढ़ा है–''शब्विकरणेभ्य एवेष्यते''।[449]

[7.5] **ध्रुवमपायेऽपादानम्**[450]– यह सूत्र विश्लेष में अवधिभूतकारक की अपादानसंज्ञा का विधान करता है। सूत्रनिर्देशानुसार यह सूत्र तभी अपादानसंज्ञा करता है जब धातु से साक्षात् विभागजनकक्रिया का निर्देश होता हो लेकिन आचार्यों को साक्षात् विभागजनकक्रिया के निर्देशाभावस्थल में भी उक्त अपादानसंज्ञा अपेक्षित है अतः तदर्थ वाक्यपदीय की इष्टिरूप कारिका का यहाँ पाठ किया गया है–''निर्दिष्टविषयं किञ्चित्''। वृक्षात् पत्रं पतति....। ''उपात्तविषयं तथा''। बलाहकाद् विद्योतते विद्युत्....। ''अपेक्षितक्रियञ्चेति त्रिधापादानमिष्यते''। इस कारिका के निर्देशानुसार अपादान को तीन भागों में विभक्त किया गया है–[1] निर्दिष्ट विषय [2] उपात्तविषय और [3] अपेक्षितक्रिय।

जहाँ धातु से साक्षात् विभागजनकक्रिया का निर्देश होता है उसको निर्दिष्ट विषय कहते हैं। यथा– वृक्षात् पत्रं पतति।

जहाँ धातु इस प्रकार के अर्थ का कथन करता है जिसमें दूसरे धातु का अर्थ विशेषण के रूप में प्रतीत हो। यथा–बलाहकाद् विद्योतते विद्युत्। यहाँ निसृत्य का अध्याहार कर यह अर्थ किया जाता है–बलाहकाद् निसृत्य विद्योतते विद्युत्। इस प्रकार यहाँ द्युत् धातु निस्सरण पूर्वक विद्योतन क्रिया का कथन कर रहा है। यहाँ धात्वर्थ विद्योतन में धात्वन्तरार्थ निस्सरण विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

जहाँ क्रिया की अपेक्षा होती है, वह अपेक्षितक्रिय अपादान कहा जाता है। यथा–माथुराः स्रौघ्नेभ्य आढ्यतराः। यहाँ सन्ति क्रिया का अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार उक्त इष्टिवचन से उपात्तविषय और अपेक्षितक्रिय वाले स्थलों पर भी अपादान संज्ञा हो जाती है। काशिका में उक्त वार्तिकस्थ इष्टिवचन नहीं पाया जाता है।

[7.6] भवत् शब्द के युष्मदर्थक होने से ''युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः'' सूत्र द्वारा भवच्छब्द के प्रयोग में मध्यम पुरुष की प्राप्ति थी लेकिन ''भवत्प्रयोगे नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा उसका प्रतिषेध हो जाता है अतः भवान् करोषि के स्थान पर भवान् करोति यही रूप निष्पन्न होता है।[451]

पदमञ्जरीकार के अनुसार भवदर्थ युष्मदर्थक नहीं है क्योंकि भवदर्थ लिङ्गवान् तथा असम्बोधनविधान वाला है लेकिन युष्मदर्थ अलिङ्ग तथा सम्बोधनैकविषय वाला है अतः भवत् शब्द के योग में शुद्ध प्रथमा विभक्ति होती है।[452]

[7.7] **पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन**[453] – प्रस्तुत सूत्र से पूरणगुणादि शब्दों के साथ षष्ठीसमास का निषेध होता है। गुणशब्द, द्रव्योपस्थापक धर्म, संख्या तथा धर्ममात्र का प्रत्यायक माना जाता है अतः प्रस्तुत सूत्र से सभी प्रकार के गुणवाचक शब्दों से षष्ठीसमास का प्रतिषेध प्राप्त है लेकिन ''इह च वैशेषिकप्रसिद्धाः संख्यादयो गुणा नेष्यन्ते, नापि धर्ममात्रं गुणो गृह्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा वैशेषिकशास्त्र में प्रसिद्ध संख्यादिबोधक तथा धर्ममात्र के बोधक गुणवाचक शब्दों के साथ षष्ठीसमास का प्रतिषेध नहीं होता है। यही कारण है कि गोशतम्, गोचत्वारिंशत् आदि प्रयोगों में संख्यावाचक गुण शब्द शत तथा चत्वारिंशत् के साथ गो का षष्ठीसमास हो जाता है। इसी प्रकार बुद्धिवैगुण्यम्, वचन सामर्थ्यम् आदि प्रयोगों में धर्ममात्रवाचक गुणशब्द वैगुण्य और सामर्थ्य के साथ बुद्धि और वचन का षष्ठीसमास हो जाता है।

भाषावृत्तिकार ने उक्त इष्टिवचन के मूल में प्रमाण भी दिया है। उनके अनुसार "शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्" सूत्र में समस्त निष्कशत तथा निष्कसहस्र शब्दों से ठञ् प्रत्यय का विधान एवं "अधिकरणैतावत्त्वे च",[454] "वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा"[455] इन सूत्रों में अधिकरण तथा वर्त्तमान का क्रमश: एतावत्त्व तथा सामीप्य इन धर्ममात्रबोधक गुणवाचक शब्दों के साथ समास दृष्टिगोचर हो रहा है।

काशिका में उक्त इष्टिवचन पठित नहीं हुआ है। भट्टोजि ने गुणवाचक शब्दों के साथ षष्ठीसमास के निषेध को अनित्य मानकर प्रकारान्तर से उक्त प्रकार के प्रयोगों की सिद्धि की है-"अनित्योऽयं गुणेन निषेधः, तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वादित्यादि निर्देशात्, तेनार्थगौरवं बुद्धिमान्द्यं इत्यादि सिद्धम्"।[456]

[7.8] **वागग्नी**– इस प्रयोग में "द्वन्द्वे घि"[457] सूत्र द्वारा घिसंज्ञक अग्नि शब्द का तथा वागिन्द्रौ इस प्रयोग में "अजाद्यदन्तम्"[458] सूत्र से अजाद्यदन्त द्वन्द्व शब्द का पूर्व प्रयोग प्राप्त है किञ्च-"अल्पाच्तरम्"[459] सूत्र से दोनों ही प्रयोगों में अल्प अच् वाले वाक् शब्द का पूर्व प्रयोग प्राप्त है। इस परस्पर विरोध के परिहार के लिये यह इष्टिवचन पढ़ा गया है-"घ्यन्तादजाद्यदन्ताच्च परत्वादिदमिष्यते" इस इष्टिवचन के अनुसार पर होने के कारण "अल्पाच्तरम्" यह सूत्र "द्वन्द्वे घि" तथा "अजाद्यदन्तम्" इन दोनों सूत्रों को बाधकर प्रवृत्त हो जाता है अत: यहाँ अल्प अच् वाले वाक् शब्द का ही पूर्वप्रयोग होता है अग्नि और इन्द्र का नहीं। इस प्रकार वागग्नी, वागिन्द्रौ ये रूप साधु हैं न कि अग्निवाचौ, इन्द्रवाचौ। यह इष्टिवचन अनिष्ट का निवारक तथा इष्ट का समर्थक है। काशिका तथा सिद्धान्तकौमुदी में उक्ताशय वाला कोई वचन नहीं पाया जाता है।

[7.9] **गातिस्थाघुपांभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु**[460]– प्रस्तुत सूत्र 'गा' तथा 'पा' धातु के सिच् के लोप का विधान करता है। गा धातु द्विविध रूप में पाया जाता है। एक गारूप धातु वह है जो गत्यर्थक इण् धातु के स्थान में केवल लुङ्लकार में गादेश के रूप में पाया जाता है तथा दूसरा गा रूप धातु वह है जो गै शब्द से आत्वादेश करने पर सभी लकारों में उपलब्ध होता है। इसी प्रकार पाधातु के भी द्विविध रूप पाये जाते हैं- पानार्थक और रक्षणार्थक। "गातिस्था. ..." सूत्र द्वारा उक्त द्विविध गाधातु तथा पाधातु के सिच् के लोप की प्राप्ति थी लेकिन "अनयोर्नेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा शब्दार्थक गाधातु तथा रक्षणार्थक

पाधातु के सिच् का लोप नहीं होता है जिससे इन धातुओं के लुङ्लकार में क्रमशः अगात् और अपात्, ये रूप निष्पन्न न होकर अगासीत् और अपासीत् ये रूप निष्पन्न होते हैं। काशिकाकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में ''गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम्''। यह कहकर उक्त इष्टिवचन को वार्तिक के रूप में स्वीकार किया है।

[7.10] **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**[461]– प्रस्तुत सूत्र इच्छार्थ में विकल्प से सन् प्रत्यय का विधान करता है जिससे कर्त्तुमिच्छति इस अर्थ में चिकरिषति यह प्रयोग निष्पन्न होता है। सूत्रार्थानुसार चिकीर्षितुमिच्छति इस अर्थ में इच्छार्थ सन्प्रत्ययान्त चिकीर्ष धातु से भी पुनः इच्छार्थक सन्प्रत्यय भी सम्भव था लेकिन ''इच्छासन्नतान्नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा उसका वारण हो जाता है। ''सन्नतान्न सनिष्यते'' इस भाष्यवचन से भी उक्त इष्टिवचन की पुष्टि होती है। काशिकाकार ने ''इच्छासन्नन्तात्प्रतिषेधो वक्तव्यः'' यह कहकर इष्टिवचन को वार्त्तिक के रूप में निर्दिष्ट किया है।

[7.1] **सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च**[462]– प्रस्तुत सूत्र केवल परस्मैपद में गत्यर्थ ॠ धातु से परवर्त्ती च्लि को अङादेश का विधान करता है लेकिन ''तङ्यपीच्छन्त्याचार्याः'' इस इष्टिवचन द्वारा आत्मनेपद में भी उक्त अङादेश की साधुता प्रदर्शित की गई है जिससे समारन्त ममाभीष्टाः इस वाक्यस्थ समारन्त यह प्रयोग भी साधु माना जाता है। काशिकाकार के अनुसार ''पुषादिद्युताद्यलृदितः सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च'' इस एकविधयोग में ही च्लि को अङादेश सम्भव था पुनः सूत्रकार ने जो पृथक्योग किया है। तत्सामर्थ्य से आत्मनेपद में भी उक्त अङादेश हो जाता है–''पृथग्योगकरणमात्मनेपदार्थम्''।

[7.12] **ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः**[463]– प्रस्तुत सूत्र द्वारा स्थाधातु से क्स्नु प्रत्यय होने के बाद कित्वात् ''घुमास्थागापाजहातिसां हलि''[464] सूत्र द्वारा ईत्व की प्राप्ति थी लेकिन ''तिष्ठतेरीत्वं नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा उसका प्रतिषेध हो जाता है जिससे स्थास्नुः यह रूप निष्पन्न होता है। काशिकाकार तथा सिद्धान्तकौमुदीकार दोनों ने ही सूत्र विहित प्रत्यय को व्याख्यान द्वारा कित् न मानकर गित् स्वीकार किया है जिससे उनके मत में कित्वाभाव से स्थ को ईत्व की प्राप्ति सम्भव ही नहीं है–''गिच्चायं प्रत्ययो न कित्, तेन स्थ ईकारो न भवति''।[465] ''गिदयं न तु कित्। तेन स्थ ईत्त्वं न''।[466]

[7.13] **स्त्रियां क्तिन्**[467]– यह सूत्र स्त्रीलिङ्ग में क्तिन्प्रत्यय का विधान करता है परन्तु भाष्य, काशिका, भाषावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी के समान रूप से ''सम्पदादिभ्य: क्विप्'' वार्त्तिक द्वारा सम्पदादियों से क्विप्प्रत्यय का विधान किया है। काशिका तथा भाषावृत्ति ने इसके पश्चात् ''क्तिन्नपीष्यते'' यह इष्टिवचन पढ़ा है जिससे सम्पत् और सम्पत्ति: ये दोनों अभीष्ट रूप निष्पन्न हो जाते हैं। हरदत्त ने इस इष्टिवचन का औचित्य बतलाया है कि वासरूपविधि के अभाव में वार्त्तिक द्वारा विहित क्विब्प्रत्यय सूत्र द्वारा विहित क्तिन्प्रत्यय को बाध लेगा अत: पक्ष में क्तिन् भी हो जाये इसलिये यह इष्टिवचन पठित हुआ है। कैयट[468] तथा ओरम्भट्ट ने बाहुलकाद्[469] क्तिन् प्रत्यय का विधान किया है। भट्टोजिदीक्षित ''क्तिन्नपीष्यते''[470] इस इष्टिवचन को वार्त्तिक के रूप में स्वीकार करते हैं।

[7.14] **राष्ट्रावारपाराद् घखौ**[471]– प्रस्तुत सूत्र अवारपार शब्द से ख प्रत्यय का विधान करता है परन्तु ''विपरीताच्च पारावारीण इति चेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा पारावार शब्द से भी ख प्रत्यय हो जाता है। भाषावृत्तिकार ने स्वतन्त्र अवार और पार शब्दों से भी खप्रत्यय का विधान किया है तथा उसके लिये ''विगृहीताच्च'' यह वार्त्तिक पढ़ा है।

काशिकाकार ने भाषावृत्तिकार के विपरीत, अवार और पार शब्दों से खप्रत्यय विधान के लिये ''विगृहीतादपि इष्यते'' यह इष्टिवचन पढ़ा है तथा पारावार शब्द से खप्रत्यय के विधान के लिये ''विपरीताच्च'' यह वार्त्तिक पढ़ा है।

काशिकाकार तथा भाषावृत्तिकार ने एक जैसे प्रयोजन के लिये एक को इष्टिवचन के रूप में तथा दूसरे को वार्त्तिक के रूप में क्यों पढ़ा है? इसका कारण अज्ञात है। किञ्च एक ने जिसको इष्टिवचन माना है दूसरे ने उसको वार्त्तिक। इस प्रकार फ़लभेद न होने पर भी दोनों की मान्यता में अन्तर है।

भट्टोजि ने काशिका तथा भाषावृत्ति के इष्टिवचन तथा वार्त्तिक को एक ही वार्त्तिक के रूप में पढ़ा है–''अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्''।[472]

[7.15] **सर्वत्राण् तलोपश्च**[473]– प्रस्तुत सूत्र हेमन्त शब्द से अण् प्रत्यय और तलोप का विधान करता है जिससे हैमनम् यह रूप निष्पन्न होता है किन्तु

''ऋत्वणपीष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा ''सन्धिवेलादृतुनक्षत्रेभ्योऽण्''[474] सूत्र द्वारा केवल अण्प्रत्यय होने से हैमन्तम् यह रूप भी निष्पन्न होता है।

यद्यपि काशिकाकार तथा सिद्धान्तकौमुदीकार[475] ने उक्त सूत्र पर कोई इष्टिवचन नहीं पढ़ा है तथापि उनके मत में सूत्रस्थ च ग्रहणसामर्थ्य से ही पक्ष में ''ऋत्वण्'' हो जाता है।

[7.16] **नित्यं वृद्धशरादिभ्य:**[476]– यह सूत्र वृद्धसंज्ञक तथा शरादिगणपठित शब्दों से नित्य ही मयट्प्रत्यय का विधान करता है किन्तु ''नित्यमेकाचोऽशरादेरपीच्छन्ति'' इस इष्टिवचन द्वारा एक अच् वाले अशरादि शब्दों से भी नित्य मयट्प्रत्यय हो जाता है जिससे त्वङ्मयम्, वाङ्मयम् आदि रूप निष्पन्न होते हैं। काशिकाकार ने भी उक्त इष्टिवचन को अपनी स्वीकृति प्रदान की है।[477] किञ्च भट्टोजिदीक्षित ने इसी इष्टिवचन को वार्त्तिक के रूप में पढ़ा है।[478]

[7.17] **परिषदो ण्य:**[479]– प्रस्तुत सूत्र परिषद् शब्द से साधु अर्थ में ण्यप्रत्यय का विधान करता है। जयादित्य ने सूत्र के योगविभाग सामर्थ्य से ''णप्रत्ययोऽप्यत्रेष्यते'' यह इष्टिवचन पढ़ा है, जिससे उनके मत में परिषद् शब्द का णप्रत्यय होने से पारिषद: यह रूप भी निष्पन्न होता है। भट्टोजिदीक्षित ने उक्त सूत्र पर कोई इष्टिवचन नहीं पढ़ा है किन्तु योगविभाग सामर्थ्य से ही णप्रत्यय का विधान स्वीकार किया है।[480] भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में काशिकास्थ इष्टिवचन को ही उद्धृत किया है–''णोऽपीष्यत इति जयादित्य:''।

[7.18] **एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्**[481] –प्रस्तुत सूत्र एक तथा गोपूर्वक शब्दों से मत्वर्थ में नित्य ही ठञ् प्रत्यय का विधान करता है। प्रस्तुत सूत्र में किसी समासविशेष का निर्देश नहीं है अत: ''कर्मधारयादेवायं ठञिष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा प्रस्तुत सूत्र से कर्मधारयसमास वाले शब्द से ही उक्त ठञ् प्रत्यय होता है षष्ठीतत्पुरुष, बहुव्रीहि तथा द्वन्द्वसमास वाले शब्द से नहीं जिससे ऐकशतिक:, गौसहस्रिक: आदि रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका तथा सिद्धान्तकौमुदी ने उक्त सूत्र के नियमन के लिये इष्टिवचन अथवा वार्त्तिक के पाठ की आवश्यकता नहीं समझी है।

[7.19] **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनि:**[482]– प्रस्तुत सूत्र प्राणी में विद्यमान है इस अर्थ में द्वन्द्वसमासनिष्पन्न शब्द से मत्वर्थ में इनिप्रत्यय का विधान

करता है तदनुसार प्राण्यङ्गवाचक पाणिपाद तथा स्तनकेश आदि शब्दों से भी मत्वर्थ में इनि प्रत्यय प्राप्त था लेकिन ''प्राण्यङ्गान्नेष्यते''– इस इष्टिवचन द्वारा उसका प्रतिषेध होने से तथा मतुप्प्रत्यय के विधान से स्त्रीलिङ्ग में पाणिपादवती, स्तनकेशवती आदि रूप निष्पन्न हो जाते हैं। भट्टोजिदीक्षित,[483] अन्नम्भट्ट[484] तथा ओरम्भट्ट[485] ने ''प्राण्यङ्गान्न'' कहकर उसे ग्रहण किया है। अभयनन्दी ने ''अप्राण्यङ्गात् इति वक्तव्यम्'' कहकर उक्त पक्ष को स्वीकार किया है।[486]

[7.20] **किमोऽत्**[487]– प्रस्तुत सूत्र सप्तम्यन्त किम् शब्द से अत्प्रत्यय का विधान करता है। ''त्रलमपि केचिदिच्छन्ति'' इस काशिकास्थ इष्टिवचन से ज्ञात होता है कि कुछ आचार्यों के मत में उक्त शब्द से त्रल्प्रत्यय भी होता है जिससे क्व, कुत्र ये दोनों ही रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में काशिकास्थ उक्त मत को ही उद्धृत किया है जिससे ज्ञात होता है कि भाषावृत्तिकार को उक्त त्रल्प्रत्यय अभिमत नहीं है। भागवृत्तिकार भी भाषा में उक्त त्रल्प्रत्यय को स्वीकार नहीं करता है।[488]

भट्टोजि ने ''किमोऽत्'' सूत्र में वाग्रहण का अपकर्षण मानकर विकल्प से अत् और त्रल् दोनों ही प्रत्ययों का विधान स्वीकार किया है।[489]

[7.21] **प्रागिवात् कः**[490]– इस सूत्र के निर्देशानुसार ''इवे प्रतिकृतौ''[491] सूत्र से पूर्व तक कप्रत्यय का अधिकार माना जाता है तदनुसार कुत्सितं जल्पति पचति वा इस अर्थ में जल्पति और पचति इन तिङन्त शब्दों से भी कप्रत्यय की प्राप्ति थी लेकिन ''तिङन्तादयं नेष्यते'', ''अकजिष्यत एव'' इन इष्टिवचनों के द्वारा कप्रत्यय का प्रतिषेध तथा अकच् प्रत्यय का विधान होने से जल्पतकि और पचतकि ये रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका में भी उक्त इष्टिवचन पठित हुए हैं।[492]

[7.22] **पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुल्ँलोपश्च**[493]– प्रस्तुत सूत्र केवल संख्यापूर्वक पादशब्दान्त तथा शतशब्दान्त शब्दों से वीप्सा के द्योत्य होने पर वुन् प्रत्यय तथा अन्त्यलोप का विधान करता है किन्तु ''अन्यतोपीष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा सूत्र में अनुक्त शब्दों से भी वुन्प्रत्यय हो जाता है जिससे द्विमोदकिकां ददाति आदि प्रयोग निष्पन्न होते हैं। काशिका ने सूत्रोक्त पाद तथा शत शब्दों के ग्रहण को अनर्थक मानकर तद्भिन्न शब्दों से भी वुन्प्रत्यय का विधान स्वीकार किया है–''पादशतग्रहणमनर्थकं अन्यत्रापि दर्शनात्''। भट्टोजिदीक्षित ने काशिका के इस वचन को वार्त्तिक के रूप में स्वीकार किया है।[494]

[7.23] **अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसञ्चास्थूलात्**[495] – प्रस्तुत सूत्रस्थ ''खरखुराभ्यां च नस् वक्तव्यः'' वार्त्तिक द्वारा खर तथा खुर शब्दों से उत्तरवर्त्ती नासिका शब्द के स्थान में केवल नसादेश होने से खरणाः, खुरणाः ये रूप निष्पन्न होते हैं किन्तु ''अच्प्रत्ययोऽपीष्यते'' इस इष्टि द्वारा नसादेश के साथ-साथ पक्ष में अच् प्रत्यय भी हो जाता है जिससे खरणसः और खुरणसः ये अतिरिक्त रूप भी निष्पन्न होते हैं। काशिका[496] तथा सिद्धान्तकौमुदी[497] ने भी उक्त वचन को स्वीकार किया है। अभयनन्दी[498] तथा अन्नम्भट्ट[499] ने भी इसे स्वीकार किया है।

[7.24] **विभाषा श्वेः**[500] – प्रस्तुत सूत्र श्विधातु को लिट् परे रहते विकल्प से सम्प्रसारण का विधान करता है जिससे सम्प्रसारणपक्ष में शुशाव तथा सम्प्रसारणाभाव पक्ष में शिश्वाय यह रूप निष्पन्न होता है। जिस पक्ष में धातु को सम्प्रसारण नहीं होता है उस पक्ष में भी ''लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्''[501] सूत्र से अभ्यास को सम्प्रसारण की प्राप्ति थी लेकिन ''धातोरसम्प्रसारणे लिट्यभ्यासस्येत्यपि नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा उसका प्रतिषेध हो जाता है जिससे सम्प्रसारणाभावपक्ष में शिश्वाय यही रूप निष्पन्न होता है न कि शुश्वाय। काशिका[502] तथा सिद्धान्तकौमुदी[503] ने शब्दान्तर से उक्त वचन को स्वीकार किया है।

[7.25] **लोपो व्योर्वलि**[504] – प्रस्तुत सूत्र वल से परे रहते वकार और यकार के लोप का विधान करता है। यक्प्रत्ययान्त कण्डूञ् और लोलूञ् शब्दों से क्विप्प्रत्यय तथा अकारलोप होने के पश्चात् नित्य होने से पहले ''वेरपृक्तस्य''[505] सूत्र से क्विप् के अकार के लोप की प्राप्ति है। पहले वलोप होने से वल परे न होने के कारण ''लोपो व्योर्वलि'' सूत्र से यह लोप सम्भव नहीं है जिससे कण्डूः और लोलूः यह अभीष्ट रूप निष्पन्न नहीं हो सकते हैं अतः ''इहापृक्तलोपाद् वलि लोप इष्टः'' इस इष्टिवचन द्वारा ''लोपो व्योर्वलि' सूत्र की प्रवृत्ति के अनन्तर ही ''वेरपृक्तस्य'' सूत्र की प्रवृत्ति होती है जिससे कण्डूः और लोलूः ये अभीष्ट रूप निष्पन्न हो जाते हैं। काशिकाकार ने प्रकारान्तर से उक्त मन्तव्य को अपनी स्वीकृति प्रदान की है–''पूर्वं लोपग्रहणं किम्? वेरपृक्तलोपात्पूर्वं वलिलोपो यथा स्यात्''।

[7.26] **अपरस्पराः क्रियासातत्ये**[506] – सूत्रस्थ ''मांसस्य पचि युड्घञोः'' इस भाष्यस्थवचन द्वारा पचन और पाक शब्दों के परे मांस शब्द के अकार का लोप विकल्प से होता है लेकिन ''[illegible]'' इस

इष्टिवचन द्वारा मांस शब्द के अन्त्यलोप के साथ-साथ अनुस्वार का लोप भी चाहते हैं जिससे मास्पचनम्, मास्पाक: ये रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका और सिद्धान्तकौमुदी में उक्त इष्टिवचन पठित नहीं हुआ है।

[7.27] **जातेश्च**[507]– प्रस्तुत सूत्र जातिवाचकस्त्रीलिङ्ग वाले शब्दों को पुंवद्भाव का प्रतिषेध करता है। तदनुसार हस्तनीनां समूहो हास्तिकम्। यहाँ "भस्याढे तद्धिते"[508] वार्तिक द्वारा प्राप्त पुंवद्भाव का प्रतिषेध प्राप्त है लेकिन "औपसंख्यानिकस्य नेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा औपसंख्यानिकपुंवद्भाव का प्रतिषेध न होने से हास्तिकम् यह रूप निष्पन्न हो जाता है। काशिका में भी उक्त इष्टिवचनपठित हुआ है–"अयं प्रतिषेध औपसंख्यानिकस्य पुंवद्भावस्य नेष्यते"। हरदत्त ने भी इस सम्बन्ध में काशिकाकार के वचन को ही प्रमाण माना है।[509] शाकटायनव्याकरण[510] तथा अभयनन्दीवृत्ति[511] में भी यही भाव प्रकट किये गये हैं। अन्नम्भट्ट ने भी इसे इष्टिरूप में स्वीकार किया है।[512] भट्टोजि ने भी "सौत्रस्यैवायं निषेध:, तेन हस्तनीनां समूहो हास्तिकम् इत्यत्र भस्याढ इति तु भवत्येव" कहकर यही भाव प्रकट किया है।[513]

[7.28] **उगितश्च**[514]– प्रस्तुत सूत्र उगितप्रकृतिक नदी के स्थान में विकल्प से ह्रस्वादेश का विधान करता है घादि परे रहते जिससे श्रेयसीतरा, श्रेयसितरा, विदुषीतमा विदुषितमा आदि रूप निष्पन्न होते हैं किन्तु "पुंवद्भावोऽप्यत्रेष्ट:" इस इष्टिवचन द्वारा उक्तविध प्रयोगों में पुंवद्भाव भी इष्ट है अत: तदनुसार इनमें "तसिलादिष्वाकृत्वसुच:" सूत्र से पुंवद्भाव होने से श्रेयस्तरा, विद्वत्तमा ये अतिरिक्त प्रयोग भी निष्पन्न हो जाते हैं। काशिकाकार ने भी प्रकारान्तर से इन शब्दों में पुंवद्भाव स्वीकार किया है–"पुंवद्भावोऽप्यत्र पक्षे वक्तव्य:। प्रकर्षयोगात् प्राक् स्त्रीत्वस्याविवक्षितत्वाद्वा सिद्धम्"। भट्टोजि ने भी उक्त तथ्य को स्वीकार किया है। अन्तर केवल यह है कि उन्होंने ह्रस्वाभाव पक्ष में पुंवद्भाव स्वीकार किया है तथा श्रेयसीतरा, विदुषीतरा आदि प्रयोगों को असाधु माना है–"ह्रस्वाभावपक्षे तु तसिलादिष्विति पुंवत्। विद्वत्तरा वृत्त्यादिषु विदुषीतरा इत्यपि उदाहृतम् तन्निर्मूलम्"।[515]

[7.29] **इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य**[516]– प्रस्तुत सूत्र इगन्त शब्दों को विकल्प से ह्रस्व का विधान करता है किन्तु "इयङुवङ् भाविनामव्ययानाञ्च प्रतिषेधो वक्तव्य:" वार्तिक द्वारा उन शब्दों को ह्रस्वादेश नहीं होता है जिन शब्दों

को इयङ् और उवङ् आदेश होता है अथवा जो शब्द अव्यय का रूप धारण कर लेते हैं। तदनुसार भ्रूकुंसादि शब्दों से भी उक्त ह्रस्वादेश के प्रतिषेध की प्राप्ति थी लेकिन "भ्रूकुंसादीनामिष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा भ्रूकुंसादि शब्दों को उक्त वैकल्पिकह्रस्वादेश हो जाता है जिससे भ्रूकुंस:, भ्रूकुंस:, भ्रूकुटि:,भ्रुकुटि: आदि रूप निष्पन्न होते हैं। काशिकाकार ने "भ्रूकुंसादीनां तु भवत्येव" कह कहकर उक्त तथ्य को स्वीकार किया है। भट्टोजि ने भी "अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम्"[517] इस वार्त्तिक में पठित भ्रुकुंसादि के द्वारा उक्त तथ्य को स्वीकृति प्रदान की है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि अभ्रुकुंसादि में पठित अ "भ्रुकुंस" उकार बोधक शब्द के साथ "भ्रकुंस" अकारवोधक का भी वाचक है।

[7.30] **रात्रेः कृति विभाषा**[518] – प्रस्तुत सूत्र कृदन्त उत्तरपद परे रहते रात्रि शब्द को विकल्प से मुमागम का विधान करता है तदनुसार रात्रिम्मन्यमह: इस प्रयोग में भी विकल्प से मुमागम की प्राप्ति होने से मुमागमाभाव पक्ष में रात्रिमन्यमह: यह रूप भी प्राप्त है लेकिन "खिति तु पूर्वेण नित्यमिष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा खित् परे रहते "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्"[519] सूत्र से नित्य ही मुमागम होता है जिससे रात्रिम्मन्यमह: यह एकमात्र मुमागम वाला रूप निष्पन्न होता है। पुरुषोत्तमदेव का उक्त मन्तव्य "खिति कृति नित्यं भवति" काशिका के इस वचन में ही समाहित हो जाता है। भट्टोजि ने उक्त तथ्य को निम्न रूप में अभिव्यक्त किया है–"अखिदर्थमिदं सूत्रम्। खिति तु अरुर्द्विषदिति नित्यमेव वक्ष्यते। रात्रिंमन्य:"।[520]

[7.31] **शास इदङ्हलो:**[521] – प्रस्तुत सूत्र अङ् तथा हलादि कित् एवम् ङित् के परे शासु धातु की उपधा को इदादेश का विधान करता है। शासु धातु दो प्रकार का है–शासु अनुशिष्टौ और शासु इच्छायाम्। सूत्र निर्देशानुसार दोनों ही प्रकार के धातुओं की उपधा को इदादेश प्राप्त है लेकिन "आङ्शासेनेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा आङ्पूर्वक शासु इच्छायाम् में उक्त इदादेश का प्रतिषेध हो जाता है जिससे आशास्ते आदि रूप निष्पन्न होते हैं। काशिकाकार ने उक्त तथ्य को प्रकारान्तर से स्वीकार किया है–"यस्मात् शासेरङ्विहित: शासु अनुशिष्टाविति, तस्यैवेदं ग्रहणमिष्यते। आङ: शासु इच्छायामित्यस्य न भवति आशास्ते"। भट्टोजिदीक्षित इस सम्बन्ध में मौन है।

[7.32] **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य**[522]– प्रस्तुत सूत्र इकारान्त अनेकाच् अङ्ग को अच् परे यण् का विधान करता है तदनुसार परमनियौ, परमनियः आदि प्रयोगों में भी यण् की प्राप्ति है लेकिन ''क्विबन्तस्य गतिकारकपूर्वस्यैवेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा क्विबन्त, गति तथा कारकपूर्वक को ही उक्त यणादेश इष्ट है। परमनियौ आदि प्रयोगों में गति अथवा कारक पूर्व में न होने के कारण यणादेश नहीं होता है। काशिका में भी शब्दान्तर से उक्त इष्टिवचन पठित हुआ है–''गतिकारकाभ्यामन्यपूर्वस्य नेष्यते''। भट्टोजि ने उक्त वचन को वार्तिक के रूप में पढ़ा है–''गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते''।[523]

[7.33] **इद् दरिद्रस्य**[524]– प्रस्तुत सूत्रस्थ ''दरिद्रातेरार्धधातुके लोपः'' वार्तिक आर्धधातुक में दरिद्रा के आकार का लोप करता है तदनुसार ण्वुल्, ल्युट् और सन् परे भी दरिद्र के आकार का लोप प्राप्त है किन्तु ''न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते। दिदरिद्रासतीत्येके दिदरिद्रिषतीति वा'' इस इष्टिवचन द्वारा वार्तिक प्राप्त आकारलोप का प्रतिषेध होने से दरिद्रायकः, दरिद्राणः, दिदरिद्रासति ये रूप निष्पन्न हो जाते हैं। यहाँ यह अवधेय है कि ''अनन्तरस्य विधेर्वा प्रतिषेधो वा'' इस न्यास से सन् परे रहते वार्तिक से प्राप्त आकारलोप का प्रतिषेध होने पर भी जिस पक्ष में ''तनिपतिदरिद्राणाञ्च''[525] वार्तिक द्वारा इडागम होता है उस पक्ष में ''आतो लोप इटि च''[526] सूत्र से आकार लोप होने से दिदरिद्रिषति यह पाक्षिकरूप भी निष्पन्न होता है। भाष्य और काशिका में यह इष्टिरूप इसी रूप में पठित हुआ है। भट्टोजि ने ''सनिण्वुलि ल्युटि च न'' इस वार्तिक के रूप में उक्त वचन को पढ़ा है।[527]

[7.34] **श्वयुवमघोनामतद्धिते**[528]– प्रस्तुत सूत्र श्वन्, युवन् और मघवन् प्रातिपदिकों को सम्प्रसारण का विधान करता है। ''प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्'' इस परिभाषा के सहकार से ''युवतीःपश्य'' इस वाक्यस्थ स्त्रीलिङ्ग विशिष्ट युवतीः शब्द को भी सम्प्रसारण प्राप्त है लेकिन ''लिङ्गविशिष्टग्रहणं नेष्यते'' इस इष्टि द्वारा स्त्रीलिङ्ग में उसका प्रतिषेध हो जाता है। काशिकाकार ने उक्त इष्टिवचन को प्रकारान्तर से पढ़ा है–''श्वादीनामेतत्सम्प्रसारणं नकारान्तानामिष्यते''। काशिकाकार के अनुसार ''श्वयुवमघोनामतद्धिते'' यह सूत्र केवल सूत्रोक्त नकारान्तों को ही सम्प्रसारण का विधान करता है। युवतीः शब्द नकारान्त नहीं है अतः उसे सम्प्रसारण भी नहीं होता। सिद्धान्तकौमुदी में उक्त इष्टिवचन उपलब्ध नहीं होता।

[7.35] **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधाया:**[529]:– प्रस्तुत सूत्रस्थ "तमे तादेश्च" यह वार्तिक तमप्प्रत्य परे "तिक्" तथा "क" का बाहुलकात् लुक् करता है जिससे तिक्लोप से अन्तम:, लोपाभाव में अन्तिकतम: तथा कलोप में अन्तितम: ये प्रयोग निष्पन्न होते हैं। कुछ लोग अन्तम: और अन्तिकतम: इन प्रयोगों को केवल छान्दस न समझ बैठें इस निमित्त भाषावृत्तिकार ने "भाषायामपीच्छन्ति" यह कहकर उक्त इष्टिवचन द्वारा इस सन्देह का निवारण किया है। काशिकाकार तथा सिद्धान्तकौमुदीकार ने इन शब्दों के विषय में किसी प्रकार के स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता नहीं समझी है।

[7.36] **अद्ड्डतरादिभ्य: पञ्चभ्य:**[530]– प्रस्तुत सूत्र डतरादि से उत्तरवर्त्ती सु तथा अम् के स्थान में अद्डादेश का विधान करता है। एकतर शब्द में "एकाच्च प्राचाम्"[531] सूत्र से डतरच्प्रत्यय होता है अत: इस शब्द से परवर्त्ती सु तथा अम् के स्थान में भी उक्त सूत्र से अद्डादेश प्राप्त है लेकिन "एकतरान्नेष्यते" इस इष्टि द्वारा उसकाप्रतिषेध हो जाता है जिससे "अतोऽम्"[532] सूत्र की प्रवृत्ति होने से एकतरम् यही रूप निष्पन्न होता है न कि एकतरत्। काशिका ने "नेतराच्छन्दसि"[533] सूत्र में प्रकारान्तर से उक्त इष्टिवचन पढ़ा है–"एकतराद्धि सर्वत्र छन्दसि भाषायां प्रतिषेध इष्यते"। सिद्धान्तकौमुदी में उक्त सूत्र में यह इष्टिवचन उपलब्ध नहीं होता है।

[7.37] **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्त:**[534]– प्रस्तुत सूत्र टादि अच् परे केवल नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान अस्थ्यादि शब्दों को अनङादेश का विधान करता है तदनुसार सुसक्थ्ना विप्रेण यहाँ पर अनङादेश सम्भव नहीं है क्योंकि बहुव्रीहिसमास में सुसक्थि शब्द विप्र का विशेषण होने से पुल्लिङ्ग में विद्यमान है अत: "गुणानामपीष्यते" इस इष्टि द्वारा गुणरूप सुसक्थि शब्द को भी अनङादेश हो जाता है। काशिकाकार ने शब्दान्तर से उक्त इष्टिवचन स्वीकार किया है–"एतैरस्थ्यादिभिर्नपुंसकैरनपुंसकस्याप्यङ्गस्य तदन्तग्रहणमिष्यते"। उनके अनुसार नपुंसक और अनपुंसक उभयविध अस्थ्याद्यन्त शब्दों को अनङादेश हो जाता है।

अभयनन्दी,[535] रामचन्द्र,[536] भट्टोजि[537] तथा अन्नम्भट्ट[538] ने भी उक्त पक्ष को स्वीकार किया है। भाष्य में उक्ताशय वाला कोई वचन उपलब्ध नहीं होता है।

[7.38] **ऋदुशनस्पुरोदंशोऽनेहसाञ्च**[539]– प्रस्तुत सूत्र केवल सम्बुद्धिभिन्न सु परे उशनस् शब्द को अनङादेश का विधान करता है तदनुसार सम्बोधन में उशनस् शब्द को अनङादेश अप्राप्त है किन्तु ''सम्बोधने उशनसस्त्रैरूप्यमिच्छन्ति सान्तं नान्तमदन्तञ्चेति'' इस इष्टिवचन द्वारा उशनस् शब्द को सम्बोधन में विकल्प से अनङादेश भी हो जाता है तथा अनङादेश पक्ष में विकल्प से नलोप भी होता है जिससे उशनस् शब्द के सम्बोधन में तीन रूप निष्पन्न होते हैं–नान्त, अदन्त और सान्त। अनङादेश तथा नलोपाभाव में हे उशनन्, अनङादेश तथा नलोप में हे उशन एवम् अनङादेशाभाव में 'हे उशनः' ये रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका में यह इष्टिवचन शब्दान्तररूप में पठित हुआ है–''सम्बुद्धावपि पक्षेऽनङ् इष्यते–हे उशनन्। न ङिसम्बुद्ध्योरिति न लोपप्रतिषेधोऽपि पक्ष इष्यते–हे उशन। तथा चोक्तम् सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम्। माध्यंदिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः।'' सिद्धान्तकौमुदी में यह इष्टिवचन वार्त्तिक के रूप में पठित हुआ है–''अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः''।[540]

[7.39] **तीषसहलुभरुषरिषः**[541]– प्रस्तुत सूत्र इषादि धातुओं को तादि आर्धधातुक परे विकल्प से इट् का विधान करता है। इष् धातु तीन प्रकार का पाया जाता है–इषु इच्छायाम्, इष् गतौ और इष् आभीक्ष्ण्ये। सूत्र निर्देशानुसार सभी प्रकार के इष् धातु को तादि आर्धधातुक परे विकल्प से इडागम प्राप्त है। लेकिन ''इष गतावित्यस्य नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा गत्यर्थक इष् धातु को विकल्प से इडागम नहीं होता है। यही कारण है कि इष् गतौ के तादि आर्धधातुक में नित्य इडागम होने से प्रेषिता, प्रेषितुम् आदि रूप निष्पन्न होते हैं।

भाषावृत्तिकार के समान सिद्धान्तकौमुदीकार ने भी इषु इच्छायाम् और इष् आभीक्ष्ण्ये इन धातुओं को तादि आर्धधातुक परे विकल्प से तथा इष् गतौ को नित्य इडागम स्वीकार किया है–''तीषसहेत्यत्र सहिना साहचर्यादकारविकरणस्य तौदादिकस्यैव इषेर्ग्रहणं न तु इष्यतीष्णात्योरित्याहुः। एषिता। वस्तुतस्तु इष्णातेरपि इड्विकल्प उचितः। तथा च वार्त्तिकम्। इषेस्तकारे श्यन्प्रत्ययात्प्रतिषेध इति''।[542]

काशिका में भी उक्त सूत्र पर इष्टिवचन पाया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि भाषावृत्तिकार तादि आर्धधातुक परे इषु इच्छायाम् और इष् आभीक्ष्ण्ये में विकल्प से तथा इष् गतौ में नित्य इडागम मानता है लेकिन काशिकाकार केवल इषु इच्छायाम् में ही विकल्प से तथा इष् गतौ, इष् आभीक्ष्ण्ये में नित्य इडागम

स्वीकार करता है–"इषु इच्छायामित्यस्यायं विकल्प इष्यते।" यस्तु इष गताविति दैवादिकस्तस्य प्रेषिता प्रेषितुं प्रेषितव्यमिति नित्यं भवति। योऽपि, इष आभीक्ष्ण्य इति क्र्यादौ पठ्यते तस्याप्येवमेव। तदर्थमेव, तीषसहेति सूत्रे केचिदुदितमिषं पठन्ति।"

[7.40] **अष्टन आ विभक्तौ**[543]– प्रस्तुत सूत्र विशुद्ध अष्टन् शब्द को आत्व का विधान करता है तदनुसार परमाष्टौ, उत्तमाष्टौ ये रूप निष्पन्न नहीं हो सकते हैं क्योंकि इनमें विशुद्ध अष्टन् शब्द न होने के कारण आत्व सम्भव नहीं है अतः "तदन्तविधिरत्रेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा सूत्र में तदन्तविधिग्रहण करने से अष्टन् शब्दान्त को भी आत्वादेश हो जाता है।

"अष्टन आ विभक्तौ" यह सूत्र नित्य ही अष्टन् को आत्व का विधान करता है तदनुसार अष्ट, अष्टभिः, अष्टसु ये आत्वाभाव वाले रूप निष्पन्न नहीं हो सकते हैं जबकि लोक में इनका प्रयोग देखा जाता है अतः "पक्षे नेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा पक्ष में आत्व नहीं भी होता है क्योंकि "अष्टनो दीर्घात्"[544] सूत्र में जो दीर्घग्रहण किया गया है वह यह ज्ञापित करता है कि लोक में ह्रस्वान्त अष्टन् शब्द भी है तथा उसी की व्यावृत्ति के लिये सूत्र में दीर्घग्रहण किया गया है।

सूत्र में तदन्तविधि के ग्रहण करने से अष्टन् शब्दान्त को सर्वत्र ही आत्वादेश की प्राप्ति है तदनुसार प्रियाष्टन् शब्द को भी जसादि विभक्तियों के परे आत्वादेश की प्राप्ति है लेकिन पुरुषोत्तमदेव को यह आत्वादेश अभीष्ट नहीं है अतः उन्होंने "अप्राधान्ये नेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा गौणत्व में उक्त आत्वादेश का प्रतिषेध किया है जिससे प्रियाष्टा, प्रियाष्टानौ, प्रियाष्टानः ये अभीष्ट रूप निष्पन्न होते हैं।

काशिकाकार ने भी उक्त सूत्र में तदन्तविधि तथा वैकल्पिक आत्वादेश स्वीकार किया है–"विकल्पेनायमाकारो भवत्येतज्ज्ञापितमष्टनो दीर्घादिति दीर्घग्रहणाद्। अष्टाभ्य औशिति च कृतात्वस्य निर्द्देशात्तेनाष्टभिरष्टभ्य इत्यपि भवति। तदन्तविधिश्चात्रेष्यते–प्रिया अष्टौ येषां ते प्रियाष्टानः। प्रियाष्टौ"। अन्तर केवल इतना है कि भाषावृत्तिकार अप्राधान्य में आत्वादेश स्वीकार ही नहीं करता है किन्तु काशिकाकार अप्राधान्य में भी वैकल्पिक आत्वादेश मानता है। यही कारण है कि पुरुषोत्तमदेव के मत में प्रियाष्टन् शब्द के प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में केवल प्रियाष्टानः यह रूप निष्पन्न होता है लेकिन काशिकाकार के मत में

प्रियाष्टानः, प्रियाष्टौ ये द्विविध रूप निष्पन्न होते हैं। भट्टोजिदीक्षित ने भी काशिका के मत को ही अधिमान दिया है–''वैकल्पिकं चेदमष्टन आत्वम्। अष्टनो दीर्घादिति सूत्रे दीर्घग्रहणाज्ज्ञापकात्। अष्टौ, परमाष्टौ, अष्टाभिः...। आत्वाभावे अष्ट, अष्ट. ...। गौणत्वे त्वात्वाभावे राजवत्। शसि प्रियाष्ट्नः इह पूर्वस्मादपि विधावल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न ष्टुत्वम्। कार्यकालपक्षे बहिरङ्गस्याल्लोपस्यासिद्धत्वाद्वा। प्रियाष्ट्नाइत्यादि। जश्शसोरनुमीयमानमात्वं प्राधान्य एव न तु गौणतायाम्। तेन प्रियाष्ट्नो हलादावेव वैकल्पिकमात्वम्। प्रियाष्टाभ्याम्''[545]। अन्नम्भट्ट[546] तथा ओरम्भट्ट[547] ने भी उक्त सूत्र में तदन्तविधि को माना है।

[7.41] **त्यदादीनामः**[548]– प्रस्तुत सूत्र विभक्ति परे त्यदादि शब्दों के स्थान में अकारादेश का विधान करता है तदनुसार अतित्यद् शब्द को भी उक्त सूत्र से अकारादेश की प्राप्ति है किन्तु ''अप्राधान्ये नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा गौणत्व में आकारादेश का प्रतिषेध होने से अतितदौ, अतितदः आदि रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका ने उक्ताशय को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है–''संज्ञोपसर्जनीभूतास्त्यदादयः पाठादेव पर्युदस्ता इतीह न भवति–त्यद्, त्यदौ, त्यदः, अतित्यद्, अतित्यदौ, अतित्यदः। त्यदादिप्रधाने तु शब्दे भवत्येव परमसः, परमतौ, परमते''। भट्टोजिदीक्षित ने भी ''संज्ञायामुपसर्जनत्वे च नात्वम्''[549] कहकर भाषावृत्ति तथा काशिका के मत का ही अनुसरण किया है।

[7.42] **अचो ञ्णिति,**[550] **अत उपधायाः,**[551] **तद्धितेष्वचामादेः**[552]– ये तीनों सूत्र ञिति, णिति, प्रत्ययों के परे क्रमशः अन्तवृद्धि, उपधावृद्धि और आदिवृद्धि का विधान करते हैं। त्वष्टुरपत्यं इस अर्थ में त्वष्टृ शब्द से अण्प्रत्यय होने पर अन्त तथा आदि दोनों ही प्रकार की वृद्धि की प्राप्ति है तथा इसी प्रकार परिषदि साधु इस अर्थ में परिषद् शब्द से णप्रत्यय होने पर उपधा तथा आदि दोनों ही प्रकार की वृद्धि की प्राप्ति है किन्तु ''इह त्वाष्ट्रः पारिषद इत्यन्तोपधा-वृद्धिभ्यामादिवृद्धिरिष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा अन्त तथा उपधा वृद्धि को बाध कर दोनों ही प्रयोगों में आदिवृद्धि हो जाती है जिससे त्वाष्ट्रः और पारिषदः ये दोनों रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका तथा सिद्धान्तकौमुदी में उक्त सूत्र पर यह इष्टिवचन उपलब्ध नहीं होता।[553]

[7.43] **दयतेर्दिगिलिटि**[554]– प्रस्तुत सूत्र से लिट् परे देङ् को दिगि आदेश होने के बाद दिगि लिट् इस अवस्था में दिगि को द्वित्व की प्राप्ति है किन्तु ''द्विरुक्तिरत्र नेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा उक्त द्वित्व का प्रतिषेध होने से

अवदिग्येऽम्बरं नाद: यह प्रयोग निष्पन्न होता है। काशिका[555] तथा सिद्धान्तकौमुदी[556] में भी शब्दान्तर से यह इष्टिवचन पठित हुआ है।

[7.44] **तस्मान्नुड् द्विहल:**[557]– प्रस्तुत सूत्र दीर्घीभूत अभ्यासस्थ अकार से परे हल्द्वयघटित अङ्ग को नुडागम का विधान करता है तदनुसार ऋच्छ् धातु के लिट् लकार में आ अर्च्छ् इस अवस्था में उक्त सूत्र से नुडागम सम्भव नहीं है क्योंकि अर्च्छ् में दो हल् न होकर तीन हल् हैं। भाषावृत्तिकार ने सूत्रस्थ द्विहल शब्द को अनेकहलों का उपलक्षण माना है अत: ''त्रिहलोऽपीष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा तीनहल् वाले शब्द को भी नुडागम होने से आनर्च्छ यह रूप निष्पन्न हो जाता है। भाषावृत्तिकार के समान सिद्धान्तकौमुदीकार ने भी सूत्रस्थ द्विहल शब्द को अनेकहल् का उपलक्षण माना है–''द्विहलग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्''[558]।

[7.45] **नित्यं वीप्सयो:**[559]– सूत्रनिर्देशानुसार वीप्सा में विद्यमान शब्द को द्वित्व हो जाता है लेकिन ''इहाद्यतरमाद्यतरमानयेति जातप्रकर्षप्रत्ययस्य द्विरुक्तिरिष्यते'' इस इष्टिवचन के अनुसार वीप्सा में आद्य शब्द से प्रकर्षार्थक तरप्प्रत्यय के विधान के अनन्तर द्वित्व हो जाता है जिससे ''आद्यतरमाद्यतरमानय'' यह रूप निष्पन्न हो जाता है। काशिका में उक्त इष्टिवचन शब्दान्तर से पठित हुआ है–''इह तु आद्यतरमाद्यतरमानयेति प्रकर्षयुक्तस्य वीप्सा योग इष्यते''। सिद्धान्तकौमुदी में उक्त सूत्र पर उक्त इष्टिवचन पठित नहीं हुआ है।

[7.46] **प्रकारे गुणवचनस्य**[560]– प्रस्तुत सूत्र सादृश्यार्थक गुणवाचक शब्द को द्वित्व का विधान करता है यथा पटुपटु:।

सूत्रोक्त गुणवचन शब्द से क्या गुण है उपसर्जन जिसमें ऐसे द्रव्यवाची शब्द का ग्रहण होता है? अथवा केवल गुणवाचीशब्द का। इस सन्देह की निवृत्ति हेतु भाषावृत्तिकार ने यह इष्टिवचन पढ़ा है–''इदञ्च द्विर्वचनं गुणविशिष्टद्रव्यवृत्तेर् गुणमात्रवृत्तेश्चेष्यते''। इस इष्टिवचन के अनुसार गुणवचनशब्द से गुणोपसर्जनीभूतद्रव्यवाची तथा केवलगुणवाची दोनों ही प्रकार के शब्दों को द्वित्व होता है जिससे शुक्लशुक्ल: पट:, शुक्लशुक्लमस्य रूपम् ये प्रयोग निष्पन्न हो जाते हैं। प्रथम प्रयोग में गुणोपसर्जनीभूत द्रव्यार्थक शुक्लशब्द को द्वित्व होता है तथा द्वितीय प्रयोग में केवल गुणवाचक शुक्लशब्द को। यह शुक्लशब्द गुणवाचक भी है तथा रूप का उपनायक भी है काशिकावृत्ति इस सम्बन्ध में मौन है।

भट्टोजिदीक्षित ने उक्ताशय वाला यह वचन पढ़ा है–"गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिनः केवलगुणवाचिनश्चेह गृह्यन्ते"।[561]

उक्त सूत्रस्थ "पूर्वप्रथमयोरतिशये" वार्त्तिक द्वारा पूर्व तथा प्रथम शब्दों के अर्थ में अतिशय के प्रतिपाद्य होने पर केवल पूर्व तथा प्रथम शब्दों को ही द्वित्व होता है। यथा–पूर्वं पूर्वं पुष्यन्ति, प्रथमं प्रथमं भुक्तम्, तदनुसार पूर्वतरं पूर्वतरं पुष्यन्ति। यहाँ पूर्वतर शब्द को द्वित्व नहीं हो सकता है क्योंकि पूर्व शब्द के अर्थ में अतिशय अर्थ प्रतिपाद्य न होकर तरप् प्रत्यय द्वारा उसका निर्देश किया गया है अतः "अतिशायिनोऽपीष्टः" इस इष्टिवचन द्वारा अतिशयार्थक प्रत्यय विशिष्ट पूर्वतर शब्द को भी द्वित्व हो जाता है। काशिकाकार ने भी उक्त तथ्य को स्वीकार किया है–"अतिशायिकोऽपि दृश्यते"। भट्टोजिदीक्षित इस सम्बन्ध में मौन है।

[7.47] **धि च**[562]– यह सूत्र धकार परे रहते सामान्य सलोप का विधान करता है लेकिन "अतः परं तु सिचो लोप एवेष्यत इत्याहुः" इस इष्टिवचन द्वारा "झलो झलि" आदि उत्तरवर्ती सूत्रों में सिज्लोप का ही विधान माना जाता है जिससे "अभित्तः" आदि रूप निष्पन्न होते हैं। काशिका में उक्त इष्टिवचन शब्दान्तर से पठित हुआ है। सिद्धान्तकौमुदी में उक्त इष्टिवचन पूर्वोक्त सूत्र पर पठित नहीं हुआ है।

[7.48] **ह्रस्वादङ्गात्**[563]– प्रस्तुत सूत्र ह्रस्व से परे सलोप का विधान करता है तदनुसार द्विष्टराम्, द्विष्टमाम्, त्रिष्टमाम्, इन प्रयोगों में सुजन्त द्विस् और त्रिस् शब्दों के "स" का लोप भी प्राप्त है किन्तु "सिचोऽन्यस्य नेष्यते" इस इष्टिवचन द्वारा सिच् भिन्न सकार होने के कारण इस "स" लोप का प्रतिषेध हो जाता है। काशिका ने भी उक्त तथ्य को स्वीकार किया है–"अयमपि सिच एव लोपस्तेनेह न भवति–द्विष्टरां द्विष्टमामिति"। सिद्धान्तकौमुदी में उक्त स्थल पर यह वचन उपलब्ध नहीं होता है।

[7.49] **समः सुटि**[564]– प्रस्तुत सूत्र सुट् परे रहते सम् के म को रुत्व का विधान करता है लेकिन "समो वा लोपमेक इच्छन्ति"[565] इस भाष्यस्थ इष्टिवचन के अनुसार सम् के म का विकल्प से लोप होता है। भाष्यस्थमत में सम् के म का लोप होने से स स्कर्त्ता इस अवस्था में सकार के अकार को "अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा"[566] सूत्र से विकल्प से अनुनासिक तथा अनुनासिकाभाव पक्ष में "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः"[567] सूत्र से अनुस्वारागम

सम्भव नहीं हो सकता है क्योंकि अनुनासिक तथा अनुस्वार ये दोनों ही कार्य रु से पूर्ववर्त्ती वर्ण को होते हैं। अतः ''लोपपक्षेऽप्यनुनासिकानुस्वाराविष्येते'' इस इष्टिवचन द्वारा मलोप पक्ष में भी अनुनासिक तथा अनुस्वार का विधान होता है जिससे सँस्कर्त्ता, संस्कर्त्ता ये रूप निष्पन्न हो जाते हैं।

काशिका में न तो उक्त भाष्यवचन उपलब्ध होता है और न ही उक्त इष्टिवचन पठित हुआ है। भट्टोजिदीक्षित ने उक्त भाष्यवचन उद्धृत किया है तथा भाषावृत्ति के समान लोप पक्ष में भी अनुनासिक और अनुस्वार का विधान स्वीकार किया है-''समो वा लोपमेक इति भाष्यम्। लोपस्यापि रुप्रकरणस्थ त्वादनुस्वा-रानुनासिकाभ्यामेकसकारं रूपद्वयम्''।[568]

[7.50] **अग्नेःस्तुत्स्तोमसोमाः**[569]– प्रस्तुत सूत्र अग्नि शब्द से परवर्त्ती स्तुत्, स्तोम और सोम शब्द के सकार को षत्व का विधान करता है। तदनुसार ''अग्निसोमौ माणवकौ'' इस प्रयोगस्थ सोम शब्द के सकार को भी षत्व की प्राप्ति है लेकिन ''दीर्घादेवेष्यते'' इस इष्टिवचन द्वारा ह्रस्वान्त अग्नि शब्द से परवर्त्ती सोम शब्द के सकार को षत्व का प्रतिषेध हो जाता है यही कारण है कि ''अग्नीषोमच्छायया त्वं परीतस्तापाह्लादौ शत्रुमित्रेषु कुर्वन्'' इस प्रयोग में केवल दीर्घान्त अग्नी शब्द से उत्तरवर्त्ती सोम के सकार को ही षत्व दृष्टिगोचर हो रहा है। काशिका ने भी उक्त इष्टिवचन पढ़ा है-''अग्नेर्दीर्घात्सोमस्येष्यते''। भट्टोजि ने यद्यपि उक्त सूत्र पर कोई इष्टिवचन नहीं पढ़ा है तथापि उनका अग्नीषोमौ यह सूत्रोदाहरण यही अभिव्यक्त करता है कि वे भी काशिका तथा भाषावृत्ति के मत से सहमत है।[570]

[7.51] **सदिस्वञ्जोः परस्यलिटि**[571]– ''असंयोगाल्लिट् कित्''[572] सूत्र निर्देशानुसार असंयोगान्त धातु से परे अपित्लिट् को ही कित् होता है लेकिन ''संयोगादपि लिटो विभाषा कित्त्वमिच्छन्तीति वामनवृत्तिः'' इस इष्टिवचन के अनुसार संयोगान्त धातु से परे अपित्लिट् को भी विकल्प से कित्त्व हो जाता है जिससे परिपूर्वक स्वञ्ज् धातु से लिट्लकार के प्रथमपुरुष के एकवचन में पाक्षिक कित्त्व तथा नलोप होने से परिषस्वजे यह रूप भी निष्पन्न हो जाता है। सिद्धान्तकौमुदी में उक्त सूत्र में स्वञ्ज् का पाठ नहीं है तथा उक्त इष्टिवचन भी पठित नहीं है।[573]

उपर्युक्त अध्याय में विवेचित विषयों से स्पष्ट होता है कि भाषावृत्ति का लक्ष्य संक्षिप्त, सरल, सरस तथा सारगर्भित भाषा में पाणिनि के लौकिक सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत करना है।

भाषावृत्ति में पठित पाणिनि के सूत्रों की कुल संख्या 3983 है जिनमें से वृत्तिकार ने 620 सूत्रों को छान्दस तथा 3363 सूत्रों को लौकिक माना है। वृत्तिकार ने इन्हीं लौकिक सूत्रों की व्याख्या अपनी वृत्ति में प्रस्तुत की है। वृत्तिकार ने जिन सूत्रों को छान्दस माना है उनके छान्दसत्व का निर्देश भी यथास्थान किया है। वृत्तिकार के मत में प्लुतविषयकसूत्र तथा सूत्रांश छान्दस हैं। इन छान्दससूत्रों में सात सूत्रों को कतिपय अन्य आचार्यों ने लौकिकसूत्र भी माना हैं। भाषावृत्तिकार ने जिन सूत्रों को लौकिक माना है उनमें से चौदह सूत्रांशों को स्वयं उन्होंने छान्दस माना है।

भाषावृत्तिकार ने जिन 3363 सूत्रों को लौकिक माना है उनमें से पन्द्रह सूत्रों तथा एक सूत्रांश को कतिपय अन्य आचार्यों ने छान्दस माना है। वृत्तिकार ने उन सूत्रांशों का भी निर्देश किया है जो भाषावृत्ति की दृष्टि से अनुपयोगी हैं।

वृत्तिकार ने स्वपूर्ववर्त्ती ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के व्याकरणिक मतों का भी यथास्थान निर्देश किया है तथा इन मतों को संक्षिप्त, सरल तथा सरगर्भित स्वभाषा में निबद्ध किया है। वृत्तिकार ने उन मतों की ओर भी सङ्केत किया है जो मत उन्हें सर्वथा अरुचिकर लगे। वृत्तिकार ने जिन मतों का निर्देश अपनी वृत्ति में किया है उन मतों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ये मतभेद प्राय: कतिपय सूत्र तथा सूत्रांशों के छान्दसत्व और लौकिकत्व के सम्बन्ध में, सूत्रशब्दार्थ, सूत्रसार्थक्य, सूत्रप्रयोजन, सूत्रपाठ, सूत्रपदच्छेद, सूत्रों के बाध्यबाधकभाव, तदन्तविधि, अनुक्तसमुच्चय प्रकर्षप्रत्ययान्त से पुन: प्रकर्षप्रत्यय के विधान तथा गणपाठ सूत्र तथा वार्त्तिकों से अगतार्थ अभीष्टरूपों की निष्पत्ति हेतु व्याकरणशास्त्र में इष्टिवचनों के पाठ की परम्परा है। इन इष्टिवचनों में इष्टसिद्धि और अनिष्ट निवारण किया जाता है। भाषावृत्ति में भी इष्टिवचन पठित हुये हैं। इन इष्टिवचनों में से कतिपय इष्टिवचन काशिकादि पूर्ववर्त्तीग्रन्थों में भी उल्लिखित हुये हैं किन्तु यहाँ कतिपय ऐसे भी इष्टिवचन पठित हुये हैं जो काशिकादि पूर्ववर्त्तीग्रन्थों में अप्राप्य हैं [574]अथवा केवल सन्देहनिवृत्ति के लिये पठित हुये हैं।[575] भाषावृत्ति में पठित कतिपय इष्टिवचन काशिकावृत्ति में वार्त्तिक

के रूप में पठित हुये हैं[576] अथवा इसमें प्रकारान्तर से इष्टिवचन के कार्य का सम्पादन किया गया है।[577] इन मतभेदों के कारण सूत्रार्थ तथा तन्निष्पन्न प्रयोगों के स्वरूप, सत्ता, साधनप्रक्रिया तथा साधुता में भी विषमता दृष्टिगोचर होती है।

---

1. भा.वृ.प्रस्ता.– पृ.20
   ``In fact a few centuries back the king Lakshmanasena had been, if Sristidhara is to be believed, tired of the vedic portions of Panini's Grammar. Purushottama too helped him in keeping them away from the people as much as he could".
2. भा.वृ. पृ.1
3. वही, पृ. 573
4. तु.पा.अष्ट 1.1.17; 1.4.58; 2.1.11; 6.1.32; 73; 6.2.107; 6.3.7; 7.3.118; 8. 4.19 काशि.वृ. 1.1.17,18; 1.4.58,59; 2.1.11, 12; 6.1.32, 33; 6.1.75, 76; 7. 2.107, 108; 6.3.7, 8; 7.3.118, 119; 8.4.19, 20.
5. काशि.वृ. 4.1.166, 167; 4.2.8; 4.3.132, 133; 5.1.36; 6.1.62, 100, 136, 156; 6.3.6
6. द्र. भा.वृ.
7. द्र. भा.वृ.
8. भा.वृ. 1.2.28, 6.1.157
9. भा.वृ. 1.2.27, 8.1.8
10. वही, 3.2.106-7
11. सि.कौ. सूत्राङ्क 4112-13
12. भा.वृ. 3.2.106-7
13. वही, 6.4.127-28
14. न्या.द्वि.भा. 6.4.127-28
15. पद.मं.द्वि.भा. 6.4.127-28
16. सि.कौ.सूत्राङ्क 491-94
17. भा.वृ. 7.2.67-68
18. भा.वृ. 7.2.67-69
19. वही, 3.2.108
20. भा.वृ. 8.2.65
21. वही, 6.1.134
22. भा.वृ. 1.1.39

23. वही, 1.1.40
24. वही, 1.1.58
25. वहीं, 3.2.60
26. वही, 4.1.29
27. वही, 6.1.125
28. वही, 6.4.55
29. वही, 7.2.102
30. भा.वृ. 7.2.104
31. वही, 7.3.1
32. वही, 8.2.2.
33. वही, 8.2.65
34. वही, 8.2.73
35. वही, 8.4.28
36. वही, 6.3.35
37. वही, 6.4.114
38. वही, 4.4.109
39. वही, 4.4.114, 16, 18, 20, 28, 29, 41-43
40. भा.वृ. 4.4.143
41. वही, 6.1.63
42. तत्त्व. सि.कौ. सूत्राङ्क 397
43. महि.श्लो. 7
44. भा.वृ. 6.4.6
45. भा.वृ. 7.3.94
46. वही, 8.2.65
47. वही, 6.4.174
48. वा.भा.वृ. 4.3.23
49. वही, 5.4.119
50. वा.भा.वृ. 1.1.16
51. भा.वृ. 3.4.99
52. वही, 4.3.22
53. वही, 6.3.20
54. आचार्यों के परम्परा से प्राप्त उपदेश अथवा शास्त्रकार आचार्यों की व्यवस्था ''स्मृति'' कहलाती है। द्र.भा.वृ.पृ.44, टि.33
55. व्याकरणशास्त्र के परम्परागतसिद्धान्तों का बोधकशास्त्र ''आगम'' कहलाता है। द्र.वा. 1.27

56. भा.वृ. 1.1.41
57. वही, 2.4.82
58. वही, 5.3.71
59. भा.वृ. 1.2.6
60. वही, 1.2.5
61. वही, 6.4.24
62. वही, 7.2.115
63. वही, 3.4.117
64. वही, 1.2.04
65. भा.वृ. परिभाषा सं.39
66. भा.वृ. 1.2.57
67. भा.वृ. 1.2.53
68. वही, 1.2.54
69. वही, 1.2.55
70. वही, 1.2.56
71. भा.वृ. 1.2.51
72. भा.वृ. 4.2.69
73. भा.वृ. 5.2.70
74. भा.वृ. 4.2.81
75. भा.वृ. 4.2.82
76. भा.वृ. 4.2.56
77. भा.वृ. 1.2.57
78. द्र. तत्त्व.बो.सि.कौ., सूत्राङ्क 1826 "पूर्वाचार्यानुरोधेन कृतं सूत्रं सम्प्रति प्रत्याचष्टे-तदशिष्यमिति"।
79. भा.वृ. 1.2.59
80. भा.वृ. 1.3.7
81. वही, 5.2.26
82. वही, 6.1.66
83. भा.वृ. 1.3.21
84. भा.वृ. 1.4.3
85. भा.वृ. 1.4.5
86. वही, 1.4.6
87. भा.वृ. 1.4.7
88. भा.वृ. 2.2.32
89. भा.वृ. 2.2.16

90. वही, 2.2.12
91. वही, 2.2.13
92. वही, 2.2.14
93. वही, 2.2.15
94. वही, 2.2.8
95. भा.वृ. 2.3.5
96. वही, 1.4.49
97. भा.वृ. 2.3.67
98. भा.वृ. 2.3.65
99. भा.वृ. 2.3.67
100. टि.– इन प्रयोगों की निष्पत्ति दो प्रकार से सम्भव हो सकती है। प्रस्तुत सूत्र में बहुलग्रहण की अनुवृत्ति द्वारा इनमें षष्ठी विभक्ति का निषेध और कर्तृत्व विवक्षा में तृतीया विभक्ति का विधान सम्भव है। दूसरे में यहाँ केवल प्रकरण से वर्तमानकालता द्योतित हो रही है, पदार्थ तो भूतत्व का प्रतिपादन कर रहा है अत: यहाँ ''क्तस्य च वर्तमाने'' की प्रवृत्ति सम्भव नहीं।
101. भा.वृ., 2.4.54
102. भा.वृ., 2.4.74
103. भा.वृ., 2.4.73
104. भा.वृ. 6.4.87
105. भा.वृ. 6.4.86
106. भट्टि, 14.67
107. भा.वृ., 3.1.11
108. भा.वृ. 3.1.16
109. भा.वृ. 1.3.21, 2.2.16, 3.1.16
110. भा.वृ. 1.3.21
111. भा.वृ. 3.1.16
112. भा.वृ.टि.सं. 30
113. वही, 6
114. भा.वृ. 3.1.23
115. भा. वृ. 3.1.22
116. वही, 3.1.25
117. वही, 3.1.35
118. भा.वृ. 3.1.56
119. वही, 3.1.87

120. टि.– दुग्धे-दोग्धि, अदुग्ध-अधुक्षत्, पच्यते-पचति।
121. भाष्य 3.1.87, टि. बहुवचनं किमर्थम्। परस्मैपदार्थम्।
122. भा.वृ. 3.1.89
123. भा.वृ. 3.1.96
124. वही, 4.3.54
125. वही, 3.1.137
126. भा.वृ. 3.2.29, 30
127. वही, 3.2.47
128. सि.कौ.वा. 3.2.38
129. सि.कौ.वा., 3.2.38
130. वही, 3.2.38
131. वही, 3.2.48
132. वही, 3.2.48
133. भा.वृ., 3.2.56
134. भा.वृ. 3.2.69
135. वही, 3.2.68
136. वही, 3.1.94
137. वही, 3.2.75
138. चा.सू., 1.2.53
139. भा.वृ., 3.2.74
140. वही, 3.2.87
141. भा.वृ. 3.2.106 तथा 3.2.107
142. कुमार. 6.15
143. भट्टि. 6.139
144. अ.को. 2.7.10
145. भा.वृ. 3.2.138
146. काशि. 3.2.178
147. भा.वृ. 6.4.2
148. वही, 6.4.66
149. वही, 3.2.188
150. दुर्घट वृ. 3.2.188
151. भा.वृ. 3.2.188
152. दुर्घट वृ. 3.2.188
153. भा.वृ. 3.3.15

154. काशि. 3.3.15
155. भा.वृ. 3.3.19
156. भा.वृ. 3.3.56
157. भा.वृ. 3.3.57
158. वही 3.3.82
159. भा.वृ. 8.4.3
160. वही 3.3.99
161. वही 3.2.22
162. वही 3.2.188
163. वही 5.2.112
164. भा.वृ. 3.4.18
165. वही 3.4.42
166. वही 3.4.41
167. भा.वृ. 3.4.45
168. उद्द्योत. 3.4.42
169. भा.वृ. 3.4.46
170. वही 3.4.34
171. भा.वृ. 3.4.45
172. वही, 4.1.10
173. अ.को. 2.6.29
174. भा.वृ. 4.1.13
175. वही 4.1.7
176. वही 4.1.12
177. भा.वृ. 4.1.18
178. वही 4.1.17
179. भा.वृ. 4.1.38
180. वही 4.1.93
181. वही 4.1.105
182. भा.वृ. 4.1.94
183. तत्त्व. सि.कौ. सूत्राङ्क 1570
184. भा.वृ. 4.1.123
185. वही 4.1.154
186. भा.वृ. 4.1.155
187. भा.वृ. 4.1.172

188. वही 4.1.151
189. वही 4.2.52
190. वही 4.3.120
191. भा.वृ. 4.1.175
192. वही 4.1.168
193. वही 4.1.174
194. भा.वृ. 4.2.38
195. वही 6.3.35
196. वही 4.2.37
197. वही 4.2.43
198. सि.कौ. सूत्राङ्क सं. 1245 ''शत्रन्तादनुदात्तादेरञ् यौवतम्''।
199. भा.वृ. 4.2.92
200. वही 4.3.120
201. पद.म. द्वि.भा. 4.2.92
202. भा.वृ. 4.2.132
203. वही 4.2.119
204. वही 4.2.138
205. चान्द्र. 3.2.58 ''स्वपरजनदेवराज्ञां कुक् च''।
206. भा.वृ. 4.3.23
207. भा.वृ. 4.3.144
208. भा.वृ. 4.4.60
209. वही, 4.4.76
210. काशि.वृ. 4.4.76 ''एतच्चकाशिकादिविरुद्धम्। रथं वहति रथ्य इति काशिकोदाहरणात्।
211. अमर. 2.8.46 ''रथ्यो वोढ़ा रथस्य य इत्यमराच्च।
212. शिशु. 4.14– ''तथा च माघे सूर्य्यस्य रथ्याः परितः स्फुरन्तीति''।
213. भा.वृ. 4.4.78
214. वही, 4.4.101
215. भा.वृ. 4.4.143
216. भा.वृ. 5.1.13
217. वही 5.1.20
218. वही 5.1.2
219. वही 5.1.75
220. भा.वृ. 5.1.72
221. वही 5.1.26

222. वही 5.1.28
223. वही 5.1.1
224. वही 5.1.57
225. वही 4.4.7
226. भा.वृ. 5.1.18
227. वही 5.1.28
228. वही 5.1.56
229. वही 5.1.56
230. भा.वृ.वा. 5.1.124
231. भा.वृ. 5.1.125
232. भा.वृ. 5.1.126
233. भा.वृ. 5.1.132
234. वही 5.1.124
235. काशि. 5.1.132
236. भा.वृ. 5.2.13
237. वही 5.2.12
238. जया.व.भा.वृ. 5.2.13
239. भाग वृ.व.भा.वृ. 5.2.13
240. भा.वृ. 5.2.81
241. भा.वृ. 5.2.95
242. वही 5.2.94
243. भा.वृ. 5.2.107
244. वही 5.2.109
245. अमर. 2.8.76 ''रथिनो रथिको रथी'' यही पाठ है।
246. भा.वृ. 5.2.110
247. भा.वृ. 5.2.112
248. भट्टि. 4.12 ''उपलब्ध ग्रन्थों में पर्षद्वलान् लिखा हुआ है।
249. म.भा. 1.4.51
250. भा.वृ. 5.2.121
251. भा.वृ. 5.2.118
252. भा.वृ. 1.4.19
253. भा.वृ.वा. 5.2.135
254. भा.वृ. 5.2.115
255. भा.वृ. 5.3.12

256. भा.वृ. 5.3.60
257. भा.वृ. 5.3.61
258. भा.वृ. 5.3.71
259. उद्द्योत. 5.3.71 तथा 5.3.72– यद्यपि भाष्य में स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया गया है कि किन-किन शब्दों के सुबन्त के पूर्व टि को अकच् होता है तथापि उद्द्योतादि टीकाओं के अनुसार उक्त नियम केवल युष्मद् और अस्मद् शब्दों पर ही लागू होता है अन्यत्र तो प्रातिपदिक की टि को ही अकच् होता है– **''तत्र सुबन्तस्येति युष्मदस्मद्विषयकमेव, अन्यत्र तु प्रातिपदिकस्यैव टेरिति बोध्यम्, उदाहरणपरभाष्यप्रामाण्यात्''**।
260. भा.वृ. 5.3.102
261. भा.वृ. 5.3.106
262. भा.वृ. 5.3.109
263. वही 5.3.117
264. वही 5.4.5
265. वही 5.4.4
266. भा.वृ. 5.4.42
267. भा.वृ. 5.4.42
268. भा.वृ. 5.4.75
269. भा.वृ. 5.4.119
270. भा.वृ. 5.4.122
271. भा.वृ. 5.4.124
272. भा.वृ. 5.4.145
273. भा.वृ. 5.4.151
274. भा.वृ. 6.1.3
275. चान्द्र. 5.1.7
276. भा.वृ. 6.1.63
277. भा.वृ. 6.1.63
278. वही, 6.1.60
279. भा.वृ. 6.1.64
280. वही 8.3.59
281. भा.वृ. 6.1.65
282. भा.वृ. 8.4.14
283. भा.वृ. 6.1.73
284. भा.वृ. 6.1.77

285. वही 6.1.94
286. वही 6.1.92
287. भा.वृ. 6.1.96
288. वही, 6.1.144
289. भा.वृ. 6.3.3
290. भट्टि. 2.20
291. भा.वृ. 6.3.34
292. भा.वृ. 6.3.35
293. भा.वृ. 6.3.51
294. भा.वृ. 6.3.70
295. भा.वृ. 6.3.85
296. वही 6.3.84
297. टि.– चान्द्रव्याकरण में पक्ष, ज्योतिस्, जनपद, रात्रि, नाभि, बन्धु, पत्नी, ब्रह्मचारिन् शब्दों में नित्य तथा नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन, धर्म, जातीय शब्दों में विकल्प से समान को सभाव किया गया है। द्रष्टव्य चा. व्या. 5.2.103, 5.2.104.
298. भा.वृ. 6.3.99
299. वही 6.3.109
300. म.भा. 6.3.109
301. म.भा. 6.3.109
302. भा.वृ. 6.3.137
303. म.भाष्य 6.4.74
304. उदाहरणों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि भाषावृत्तिकार यहाँ भागवृत्ति से सहमत है।
305. भा.वृ. 6.4.6
306. तत्त्व. सि.कौ.सूत्राङ्क 397
307. महि.श्लो. 7
308. भा.वृ. 6.4.5
309. तत्त्व.सि.कौ.सू.त्राङ्क 397
310. कुमार. 4.28
311. भा.वृ. 6.4.11
312. वही 5.4.74
313. वही 6.4.19
314. वही 8.2.36
315. भा.वृ. 3.2.77

316. वही 6.4.66
317. वही 6.4.92
318. रघु. 12.104
319. भा.वृ. 6.4.127
320. वही 6.4.128
321. शिशु. 12.31
322. भा.वृ. 6.4.140
323. वही 7.1.37
324. वही 6.4.18
325. वही 4.1.83
326. वही 4.4.2
327. टि. ''चाप्, टाप्'' आदि स्त्रीलिङ्ग विधायक प्रत्यय ''आप्'' के नाम से अभिहित किये जाते हैं।
328. भा.वृ. 6.4.171
329. भा.वृ. 6.4.174
330. वही 7.1.72
331. भा.वृ. 7.2.17
332. वही 7.2.67
333. वही 7.2.68
334. वही 7.2.69
335. भा.वृ. 7.2.73
336. भा.वृ. 7.2.75
337. वही 7.2.38
338. वही 7.2.90
339. वही 6.1.97
340. वही 6.1.107
341. भा.वृ. 7.2.113
342. वही 7.2.112
343. वही 7.3.102
344. वही 7.3.94
345. चान्द्र.व्या. 6.2.35
346. भा.वृ. 7.3.105
347. भा.वृ. 7.4.47
348. वही 7.4.93

349. सि.कौ. गणसू. 3416
350. सि.कौ. सूत्राङ्क 3416
351. भा.वृ. 8.1.4
352. भा.वृ. 8.1.12
353. भावृ. 8.2.8
354. भा.वृ. 8.2.18
355. भा.वृ. 8.2.25
356. वही 8.3.79
357. वही 8.2.78
358. भा.वृ. 8.3.5
359. वही 8.3.36
360. वही 8.3.37
361. भा.वृ. 8.3.41
362. भा.वृ. 8.3.42
363. वही 1.4.71
364. वही 8.3.118
365. वही 8.3.65
366. वही 6.4.24
367. म.भा. 8.3.118 ''परिषस्वजे'' ''स्वञ्जेर्लिटि वा कित्त्वञ्च''
368. कुमार 8.14 ''सस्वजे प्रियमुरोनिपीडनम्''।
369. शिशु. 6.13 ''वलिभयालिभयादिव सस्वजे''।
370. भा.वृ. 8.4.20
371. वही 8.4.47
372. संवा.ग.अष्टा.सू.पा. 3.3.95
373. प्र.भा. 7.1.62
374. भा.वृ. 7.2.114
375. भा.वृ.इ. 1.1.5
376. भा.वृ. 2.2.32
377. वही 2.2.33
378. वही 2.2.34
379. म.भा. 1.1.47
380. काशि. भा.वृ. 1.1.47
381. न्या.प्र.भा. 1.1.47
382. म.भा. 7.1.12

383. अष्टा. 2.1.69
384. अष्टा. 8.2.83
385. काशि, भा.वृ. 1.1.5
386. काशि. 4.2.60
387. Panini His Place in Sanskrit Literature, p. 133.
388. व्या.वा.एक.समीक्षा. अध्ययन पृ. 157 पर उद्धृत
389. वही पृ. 158 पर उद्धृत, श.कौ.गु.प्र.शा.सं. पृ. 161
390. काशि. 1.1.68
391. म.भा. 1.1.67
392. वही 6.4.82
393. म.भा. 2.2.26
394. सि.कौ.सूत्राङ्क 1217
395. काशि. 4.3.144
396. काशि. 7.2.75
397. पद मं. द्वि.भा. 7.2.75 ''दीर्घत्वं नेच्छन्ति''।
398. काशि. 2.2.3
399. श.कौ. 2.2.3, पृ. 195
400. काशि. 2.4.18
401. म.भा. 3.3.95
402. पद.मं.प्र.भा. पृ.2
403. पद चं.वि.पृ.1, काशि.का समालो.अध्ययन पृ. 177 अङ्क 9 पर उद्धृत
404. व्या.वा. एक समीक्षा. अध्ययन पृ.160
405. काशि.का.समालो. अध्ययन पृ.177
406. म.भा. 1.1.68
407. वही 6.4.82
408. काशि. 1.1.5
409. पद मं. वि.पृ. 1, काशि.का समालो. अध्ययन पृ. 177 अङ्क 9 पर उद्धृत
410. काशि. एवं पदमं. प्र.भा. 2.4.56, 6.1.115, 176, 6.4.82, 7.2.38, 75, 7.4.54, 8.1.12, 8.2.22,84
411. म.भा. 1.1.1
412. वही 2.2.26
413. सि.कौ.सूत्राङ्क 1217
414. काशि. 6.1.176
415. काशि. 1.2.6

416. म.भा. 4.3.121
417. काशि. 4.4.91
418. म.भा. एवं काशि. 6.4.40
419. काशि. 6.3.116
420. म.भा. 1.1.47
421. काशि. 1.1.47
422. म.भा. 2.1.69
423. म.भा. 1.1.1
424. काशि. 7.2.75
425. पदं.मं. द्वि.भा. 7.2.75
426. तत्त्व.सि.कौ.सूत्राङ्क 3468
427. बालमनो.सि.कौ.सूत्राङ्क 3468
428. काशि. 4.3.101
429. काशि. 4.3.115
430. म.भा. 1.1.59
431. म.भा. 1.4.32
432. वही 3.1.15
433. वही 3.2.29
434. वही 3.2.30
435. वही 1.1.39
436. Katyayana and Patanjali, p. 46. Whenevr Katyayana in such words as उक्तं or उक्तं वा refers to another of his Varttikas, as Varttika so instanced or refered to is invariably found in the Mahabhasya.
437. व्या.वा. एक समीक्षा. अध्ययन, पृ. 107
438. काशि. का एक समालो.अध्ययन पृ. 140
439. म.भा. प्रत्याहार सू. 1.1.1
440. भा.वृ. 7.2.114
441. वही 1.1.5
442. म.भा. 1.1.3
443. सि.कौ.वा. 3286
444. भा.वृ. 1.1.47
445. वही 7.1.60
446. सि.कौ.वा 3371 ''मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः''।
447. भा.वृ. 1.2.6

448. वही 1.2.21
449. सि.कौ.वा. 4.71
450. भा.वृ. 1.4.24
451. भा.वृ. 1.4.105
452. पदमं.प्र.भा. 1.4.105–"तदेवं भवच्छब्दस्यासम्बोधनविषयत्वाल्लिङ्गवत्त्वाच्चा-युष्मदर्थत्वान्मध्यमो न भवतीति स्थितम्"।
453. भा.वृ. 2.2.11
454. वही 2.4.15
355. वही 7.3.131
456. सि.कौ.सूत्राङ्क 1022
457. भा.वृ. 2.2.32
458. वही 2.2.33
459. भा.वृं. 2.2.34
460. वही 2.4.77
461. वही 3.1.7
462. भा.वृ. 3.1.56
463. वही 3.2.139
464. वही 6.4.66
465. काशि. 3.2.139
466. सि.कौ.सूत्राङ्क 4139
467. भा.वृ. 3.3.94
468. प्र.भा. 3.3.108–"क्तिन्नपि बहुलवचनाद्भवतीति सम्पत्तिः"।
469. व्याक.दीपि. पृ. 228–"क्तिन्नपीष्यते बाहुलकाद्" सम्पत्तिः विपत्ति इत्यादि।
470. सि.कौ.वा. 5072
471. भा.वृ. 4.2.93
472. सि.कौ.वा. 1851
473. भा.वृ. 4.3.22
474. वही 4.3.16
475. सि.कौ.सूत्राङ्क 1942
476. भा.वृ. 4.3.144
477. काशि. 4.3.144 "एकाचो नित्यं मयटमिच्छन्ति"।
478. सि.कौ.वा. 2.28 [एकाचोनित्यम्]
479. भा.वृ. 4.4.101
480. सि.कौ.सूत्राङ्क 2247

481. भा.वृ. 5.2.118
482. वही 5.2.128
483. सि.कौ.वा. 2627
484. व्या.मिता. 5.2.128, पृ.525
485. व्या.दीपि. पृ. 500
486. जैनेन्द्र महा. 4.1.91, पृ.252
487. भा.वृ. 5.3.12
488. द्र. तत्त्व.सि.कौ. सूत्राङ्क 2660
489. सि.कौ.सूत्राङ्क 2660 ''वाग्रहणमपकृष्यते सप्तम्यन्ताद् किमोऽत् वा स्यात् पक्षे त्रल्''।
490. भा.वृ. 5.3.70
491. वही 5.3.96
492. काशि. 5.3.70 ''तिङन्तादयं प्रत्ययो नेष्यते, अकच् इष्यते''।
493. भा.वृ. 5.4.1
494. सि.कौ.वा. 2801
495. भा.वृ. 5.4.118
496. काशि. 5.4.118 ''पक्षेऽच्प्रत्ययोऽपीष्यते''।
497. सि.कौ.वा. 1235 ''पक्षेऽजपीष्यते''।
498. जैनेन्द्र महा. 4.2.118, पृ.282
499. व्या.मिता. 5.4.118 ''पक्षे अच्'' पृ. 578
500. भा.वृ. 6.1.30
501. वही 6.1.17
502. काशि. 6.1.30 ''यदा च धातोर्न भवति तदा लिट्यभ्यासस्योभयेषामित्यभ्यासस्यापि न भवति''।
503. सि.कौ.वा. 3225 ''श्वयतेर्लिट्यभ्यासलक्षणप्रतिषेधः। तेन लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणं न''।
504. भा.वृ. 6.1.66
505. वही 6.1.67
506. भा.वृ. 6.1.144
507. भा.वृ. 6.3.41
508. वा.भा.वृ. 6.3.35
509. पद.मं. द्वि.भा. 6.3.41
510. शा.या. 2.2.43
511. जैनेन्द्र महा. 4.3.153 ''च शब्दः किमर्थः भस्याढ इति प्राप्तस्य पुंवद्भावस्य निषेधो न भवतीति अनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन हस्तनीनां समूहो हास्तिकम्''।

512. व्या.मिता. पृ.691 ''अयं निषेध औपसङ्ख्यानिकस्य नेष्यते''।
513. सि.कौ. सूत्राङ्क 1214
514. भा.वृ. 6.3.45
515. सि.कौ.सूत्राङ्क 1417
516. भा.वृ. 6.3.61
517. सि.कौ.वा. 1435
518. भा.वृ. 6.3.72
519. वही 6.3.67
520. सि.कौ. सूत्राङ्क 1454
521. भा.वृ. 6.4.34
522. वही 6.4.82
523. सि.कौ.वा. 381.
524. भा.वृ. 6.4.114
525. वा.भा.वृ. 7.2.49
526. भा.वृ. 6.4.64
527. सि.कौ.वा. 3301
528. भा.वृ. 6.4.133
529. भा.वृ. 6.4.149
530. भा.वृ. 7.1.25
531. वही 5.3.94
532. वही 7.1.24
533. वही 7.1.26
534. वही 7.1.75
535. जैनेन्द्र महा. 5.1.54, पृ.343
536. प्रक्रि. कौ.प्र.भा. पृ.303 ''एवमस्थिसक्थि अक्षि। तदन्तस्याप्यनङिष्यते''।
537. सि.कौ.सूत्राङ्क 445 ''एवमस्थिसक्थ्यक्षि। तदन्तस्याप्यनङ्''।
538. मिताक्षरा 7.1.75, पृ.768 ''तदन्तविधिरत्रेष्यते''।
539. भा.वृ. 7.1.94
540. सि.कौ.वा. 584
541. भा.वृ. 7.2.48
542. सि.कौ.सूत्राङ्क 3392
543. वही 6.1.172
544. भा.वृ. 6.1.172
545. सि.कौ.सूत्राङ्क 505, 6

546. व्या.मिता. 7.2.84, पृ. 794
547. व्या.दीपि. 7.2.84, पृ. 806
548. भा.वृ. 7.2.102
549. सि.कौ.वा. 371
550. भा.वृ. 7.2.115
551. वही 7.2.116
552. वही 7.2.117
553. सि.कौ.सूत्राङ्क 1537
554. भा.वृ. 7.4.9
555. काशि. 7.4.9 ''दिग्यादेशेन द्विर्वचनस्य बाधनमिष्यते''।
556. सि.कौ.सूत्राङ्क 3181 ''दिग्यादेशेन द्वित्वबाधनमिष्यत इतिवृत्तिः''।
557. भा.वृ. 7.4.71
558. सि.कौ.वा. 3361
559. भा.वृ. 8.1.4
560. भा.वृ. 8.1.12
561. सि.कौ.सूत्राङ्क 2892
562. भा.वृ. 8.2.25
563. भा.वृ. 8.2.27
564. वही 8.3.5
565. भाष्य 8.3.5,6,12
566. भा.वृ. 8.3.2
567. वही 8.3.4
568. सि.कौ.वा. 208
569. भा.वृ. 8.3.82
570. सि.कौ.सूत्राङ्क 1327
571. भा.वृ. 8.3.118
572. भा.वृ. 1.2.5
573. सि.कौ. सूत्राङ्क 3154
574. तु. काशि., भा.वृ. 2.2.11, 33; 5.2.118
575. तु. काशि., भा.वृ.वा.पा.सूत्राङ्क 6.4.149; 8.1.12; 8.3.5
576. तु. काशि. भा.वृ. 2.4.77; 3.1.7
577. तु. काशि., भा.वृ. 3.1.56; 3.2.139; 4.3.22; 5.4.1

तृतीय अध्याय

3. संस्कृतव्याकरणशास्त्र तथा भाषावृत्ति में प्रयुक्तव्याख्या शैली

3.1 संस्कृत व्याकरण शास्त्र में प्रयुक्त व्याख्या शैलियाँ–

अंग्रेजी के स्टाइल शब्द का अर्थ शैली है। Style is the man himself- इस वाक्य के आधार पर कहा जाता है कि शैली ग्रन्थकार की अलग पहचान है। इसी शैली के प्रभाव से एक ही विषय पर विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार उपलब्ध होते हैं।

अष्टाध्यायी संस्कृतव्याकरणशास्त्र का मुख्य ग्रन्थ है। पाणिनि इसे सूत्रात्मकशैली में निबद्ध करता है। ''सूत्र'' शब्द की निष्पत्ति चौरादिकण्यन्त ''सूत्र वेष्टने'' धातु से अच् प्रत्यय का विधान करने से होती है।[1] प्राचीन ग्रन्थकार सूत्र शब्द का ''सूचनात् सूत्रम्'' यह निर्वचन करते हैं।[2] काव्यमीमांसा में सूत्र का निम्नलक्षण है–

''अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः''।।[3]

सूत्र के उक्त लक्षण को ध्यान में रखकर वैयाकरणों में अर्धमात्रा तक के लाघव को भी अति प्रसन्नता का कारण माना ज़ाता रहा है–''अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:''।[4]

महर्षि पाणिनि सूत्रों के निर्माण में अति सतर्कता से कार्य करते हैं। उनके समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी अत: विद्वान् लोग बिना किसी परेशानी के सूत्रों के अर्थ को समझ लेते थे। जब वे महसूस करते हैं कि साधारणजन

उनके सूत्रों के अर्थ को समझने में असमर्थ हैं तो वे अपने सूत्रों की वृत्ति का निर्माण भी करते हैं जिसकी पुष्टि "इग्यण: सम्प्रसारणम्"[5] सूत्र पर महाभाष्यदीपिका में तथा "तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्य:"[6] सूत्र पर काशिका में पठित क्रमश: "उभयथा आचार्येण शिष्या: प्रतिपादिता: केचिद् वाक्यस्य केचिद् वर्णस्य", "सूत्रार्थद्वयमपि चैतदाचार्येण शिष्या: प्रतिपादिता:, तदुभयमपि ग्राह्यम्" इन वचनों से हो जाती है।

यद्यपि पाणिनि से पूर्व श्रौत, धर्म और गृह्यसूत्रों एवं प्रातिशाख्य आदि वैदिक परिषदों के ग्रन्थों में सूत्रात्मकशैली का प्रयोग मिलता है तथापि इस शैली के परिमार्जन का पूर्णश्रेय पाणिनि को ही जाता है। वे प्रयत्नपूर्वक परिमार्जित किये हुये सूत्रों को प्रतिष्णात की संज्ञा देते हैं–"सूत्रं प्रतिष्णातम्"।[7]

पाणिनि के पश्चात् वार्त्तिककार कात्यायन का संस्कृतव्याकरणशास्त्र के क्षेत्र में उदय होता है। वह पाणिनि के सूत्रों को पढ़कर विचार करता है कि इन सूत्रों में कमी है और इस कमी को दूर करने के लिये सूत्रात्मकशैली में ही वार्त्तिकों की रचना करता है। वार्त्तिककार कात्यायन भी अपने वार्त्तिकों को आठ अध्यायों में विभक्त करता है तथा प्रत्येक अध्याय को चार-चार पादों में बाँट देता है तथा इनमें वार्त्तिक के मुख्य कार्य उक्त, अनुक्त और दुरुक्त का ही विवेचन प्रस्तुत करता है।[8] यथा–

उक्त का विवेचन–यथा–"नड़ादिभ्य: फक्"[9] सूत्र में पठित नड़ादि– गणीय शलङ्कु और शलङ्कम् से फक् प्रत्यय स्वीकार कर "शालङ्कायन:" शब्द निष्पन्न करता है। इसी प्रकार "अनृष्यानन्तर्य्ये बिदादिभ्योऽञ्"[10]–सूत्र पर पठित बिदादिगणीय परशु शब्द से अञ् प्रत्यय का विधानकर "पारशव:" शब्द सिद्ध करता है।

अनुक्त का विवेचन– वार्त्तिककार इति वक्तव्यम्, इतिवाच्यम्, इति कर्त्तव्यम्, इति उपसंख्यानम् आदि शब्दों द्वारा सूत्र में अनुक्त विषय का प्रतिपादन करता है। यथा–"सृस्थिरे"[11] सूत्र पर वह अनुक्त विषय को "व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम्" इस वार्त्तिक द्वारा प्रस्तुत करता है।

दुरुक्त का विवेचन– दुरुक्त से यहाँ तात्पर्य है–अस्पष्टता से उक्त बात। "विशिष्टलिङ्गो नदी देशोऽग्रामा:"[12] सूत्र में पठित अग्रामा: शब्द से कात्यायन

निम्न अर्थ निकालता है ''ग्रामाणां प्रतिषेधे नगराणामप्रतिषेध:''। यह अर्थ आसानी से पकड़ में नहीं आता है।

यह बड़े खेद का विषय है कि वार्त्तिक जो पाणिनीय व्याकरण का एक मुख्य अङ्ग है, उनका कोई प्रामाणिकग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। प्रक्रियाकौमुदीविमर्श के रचयिता डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र ने कात्यायन के वार्त्तिकों की संख्या लगभग 4263 बताई है[13] जोकि चिन्त्य है। विश्वेश्वरानन्द पुस्तकालय में ''कात्यायन के वार्त्तिक'' नामक एक सङ्कलन उपलब्ध होता है जिसका मुख पृष्ठ लुप्त है। उक्त सङ्कलन में पठित वार्त्तिकों के अतिरिक्त वार्त्तिक भी काशिका और भाषावृत्ति में उपलब्ध होते हैं इसलिये वार्त्तिकों की ठीक संख्या निश्चित नहीं हो पायी है। सूत्रों में उक्त, अनुक्त और दुरुक्त का विवेचन करना वार्त्तिककार की शैली है।

वार्त्तिककार कात्यायन के अनन्तर महर्षि पतञ्जलि का संस्कृतव्याकरण-शास्त्र के क्षेत्र में आविर्भाव होता है। पतञ्जलि के समक्ष पाणिनि के सूत्र तथा कात्यायन के वार्त्तिक दोनों थे। वह इन दोनों का भली-भान्ति अध्ययन करता है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पाणिनि के सूत्र प्राय: अपने में पूर्ण हैं तथा कात्यायन ने जो इनकी कमी देखकर वार्त्तिक रचे हैं वे सब व्यर्थ हैं। वह पाणिनि के सूत्रों में पूर्णता का बोध कराने के लिये भाष्य का निर्माण करता है। वह आक्षेप-समाधानपरक[14] शैली का इसमें प्रयोग करता है। वह शब्द का दार्शनिक विवेचन प्रश्नोत्तरपद्धति से प्रस्तुत करता है। वह गुरु-शिष्य परम्परा की भान्ति सूत्र के सम्बन्ध में उठाये गये प्रश्नों का निराकरण छोटे-छोटे प्रश्नों तथा उपप्रश्नों के माध्यम से करता है। वह ज्ञात आचार्यों के मतों का निर्देश उनके नामों के साथ तथा अज्ञात आचार्यों के मतों का प्रकटीकरण केचित्, अपरे इत्यादि शब्दों के द्वारा करता है। वह सूत्र में जहाँ कुछ वृद्धि करना चाहता है, वहाँ उसकी न्यूनता को ''अत्यल्पमिदमुच्यते'' के द्वारा दिखाता है। महाभाष्य एक अद्वितीयभाष्य है परन्तु यह दुर्भाग्य ही है कि वर्तमान में यह अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों पर उपलब्ध नहीं होता है। पतञ्जलि इसमें, सरल, लघुवाक्यों से युक्त और आसानी से समझ में आ जाने वाली भाषा का प्रयोग करता है। वह इसमें समस्तपदप्रधान और विद्वान् लोगों के समझने योग्य कठिन भाषा का प्रयोग नहीं करता है। इन सभी पक्षों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

पतञ्जलि महाभाष्य में अथ शब्दानुशासन, अनुशासनीय शब्दनिर्णय, शब्दानुशासनप्रयोजननिरूपण, प्रयोजनग्रन्थोपपत्तिनिरूपण, शास्त्रनिर्माणरीति-निरूपणाधिकरण, जातिव्यक्तिपदार्थनिर्णयाधिकरण, शब्दनित्यत्वानित्य- त्वविचा-रभाष्य, सिद्धशब्दार्थनिरूपण, शास्त्र की धर्मकता निरूपण, अप्रयुक्तशब्द-साधकशास्त्रसार्थक्याधिकरण, शब्द ज्ञान की धर्मजनकताधिकरण, व्याकरण-पदार्थनिरूपण और वर्णोपदेशप्रयोजननिरूपण इन विषयों का प्रथमाह्निक में तथा विवृतोपदेशप्रतिज्ञानिरूपण, वर्णसमाम्नाय में जातिपक्षाधिकरण और प्रत्याहारा-ह्निक का द्वितीयाह्निक में निर्देश करता है। इन दोनों आह्निकों को पस्पशाह्निक भी कहा जाता है। महाभाष्य में ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से पस्पशाह्निकों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। पतञ्जलि उक्त दोनों आह्निकों में व्याकरणशास्त्र के साथ-साथ शब्ददर्शन की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत करता है। यथा–

''अथ शब्दानुशासनम्।। अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्।। यह शास्त्रारम्भप्रतिज्ञाभाष्य है। केषां शब्दानाम्? यह आक्षेपभाष्य है। लौकिकानां वैदिकानां च। तत्र लौकिकास्तावद्गौरश्वः पुरुषो हस्ती....। वैदिकाः खल्वपि–शं नो देवीरभिष्टये।....। यह समाधानभाष्य है। ''अथ गौरित्यत्र कः शब्द? यह आक्षेपभाष्य है। किं यत्तत्सास्नालाङ्गूलककुदखुर विषाण्यर्थरूपं स शब्दः यह आक्षेपोपपादकभाष्य है। नेत्याह। द्रव्यं नाम तत्। यह आक्षेपबाधकभाष्य है। यत्तर्हि तदिङ्गितं चेष्टितं निमिषितमिति, स शब्दः? यह आक्षेपोपपादक भाष्य है। नेत्याह। क्रिया नाम सा। यह निराकरणभाष्य है। यत्तर्हि तच्छुक्लो नीलः कपिलः कपोत इति, स शब्दः? यह आक्षेपोपपादकभाष्य है। नेत्याह। गुणो नाम सः। यह निराकरणभाष्य है। यत्तर्हि तद्भिन्नेष्वभिन्नं छिन्नेष्वच्छिन्नं सामान्यभूतं, स शब्दः? यह आक्षेपोपपादकभाष्य है। नेत्याह। आकृतिर्नाम सा। यह निराकरणभाष्य है। कस्तर्हि शब्दः? यह आक्षेपोपसंहारभाष्य है। येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां संप्रत्ययो भवति स शब्दः। यह समाधान भाष्य है। अथवाप्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते। तद्यथा–शब्दं कुरु, मा शब्दं कार्षीः शब्दकार्ययं माणवकः, इतिध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते। तस्माद् ध्वनिः शब्दः''।।[15]

महाभाष्यकार गुरु-शिष्य परम्परा के समान सूत्रसम्बन्धी छोटे-छोटे प्रश्नों और उपप्रश्नों के द्वारा उठायी गयी शङ्काओं का अति सरल भाषा में समाधान करता है। यथा–''वृद्धिरादैच्''[16] सूत्र पर कुत्वं कस्मान्न भवति ''चोः कुः, पदस्य'' इति यह आक्षेपभाष्य है। भत्वात्।। यह समाधान भाष्य है। कथं भसंज्ञा?

यह आक्षेपभाष्य है। ''अयस्मयादीनिच्छन्दसि'' इति।। यह समाधान भाष्य है। छन्दसीत्युच्यते, न चेदं छन्दः।। यह समाधानबाधकभाष्य है। यदि भसंज्ञा, ''वृद्धिरादैजदेङ् गुणः'' इति जशत्वमपि प्राप्नोति''। यह आक्षेपभाष्य है। उभयसंज्ञान्यपि छन्दसि दृश्यन्ते। तद्यथा ''स सुष्टुभास ऋक्वता गणेन'' पदत्वात्कुत्वम्, भत्वाज्जशत्वं न भवति। एवमिहापि पदत्वाज्जशत्वम्, भत्वात्कुत्वं न भविष्यति।।.....।।

उक्त प्रकार का आक्षेप-समाधानपरक व्याख्यान महाभाष्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

महाभाष्यकार ज्ञात आचार्यों के मतों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत करता है। यथा-''उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्'' सूत्र पर ''भारद्वाजीयाः पठन्ति विदेराम् कित्।। निपातनाद्वा अगुणत्वम्।। इति।। उषविद''।।[17]

महाभाष्यकार उन आचार्यों के मतों को केचित्, अपरे इत्यादि शब्दों के द्वारा निर्दिष्ट करता है जिनके नाम अज्ञात हैं। यथा-''ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य द्वे भवतः''[18] वार्त्तिक पर केचित् का मत-केचिदाहुः.... एकाच इति। ईर्ष्यिषिषति।

पूर्वोक्त वार्त्तिक पर ही अपरे का मत-

अपर आह-व्यञ्जनस्येति। ईर्ष्यियिषति। वह ''वा नामधातूनाम्''[19] इस वार्त्तिक पर भी अपरे का मत उद्धृत करता है। यथा-अपर आह-यथेष्टं वा। जिससे पुपुत्रीयिषति आदि रूप निष्पन्न करता है।

पतञ्जलि सूत्र में पायी जाने वाली कमी का ''अत्यल्पमिदमुच्यते'' इस शब्द द्वारा उल्लेख करता है। यथा-''कष्टाय क्रमेण''[20] इस सूत्र पर वह न्यूनताप्रदर्शक भाष्य- ''अत्यल्पमिदमुच्यते-''कष्टायक्रमेण'' इति'' निर्दिष्ट करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि महाभाष्यकार लघुप्रश्नोत्तर कार्यक्रम से शब्द का दार्शनिक विवेचन तथा सूत्रसम्बन्धी शङ्काओं का समाधान प्रस्तुत करता है। वह ज्ञात और अज्ञात आचार्यों के मत दिखाता है। जहाँ वह सूत्र में सुधार करना चाहता है, वहाँ सर्वप्रथम प्रायः ''अत्यल्पमिदमुच्यते'' द्वारा सूत्र में पायी जाने वाली कमी को उद्धृत करता है, तत्पश्चात् सुधारसम्बन्धी अपना मत देता है। महाभाष्यकार की भाषा सरल, सुबोध और परिमार्जित है। इसमें केवल विद्वानों के ही समझने योग्य भाषा का बाहुल्य नहीं है। यह अष्टाध्यायी के सूत्रों पर एक बृहद्व्याख्यान है।

पतञ्जलि के पश्चात् अष्टाध्यायी के सूत्रों पर विरचित वृत्तिग्रन्थ काशिकावृत्ति है। काशिका जयादित्य और वामन की संयुक्तरचना है। पुरुषोत्तमदेव इसके प्रथम पाँच अध्याय जयादित्यविरचित और अन्तिम तीन अध्याय वामनविरचित स्वीकार करता है। काशिकाकार इसमें अष्टाध्यायी के 3983 सूत्रों की वृत्ति निर्दिष्ट करता है। वह इसमें पर्वूवर्त्ती वृत्तियों, भाष्य, धातुव्याख्यात्मकशास्त्र तथा गणशब्दव्याख्यात्मकशास्त्रों के सार का सङ्ग्रह करता है।[21] वह इसमें सूत्रवृत्ति के साथ-साथ पर्याप्त उदाहरण प्रत्युदाहरण प्रस्तुत करता है। वह आवश्यक स्थलों पर अनुवृत्ति का भी निर्देश करता है। काशिकाकार इसमें महाभाष्य की भान्ति ज्ञात आचार्यों के मत नामनिर्देशपूर्वक तथा अज्ञात आचार्यों के मत एके, अपरे, केचिद्, अपरावृत्ति इत्यादि शब्दों के द्वारा उद्धृत करता है। जहाँ वह महसूस करता है कि सूत्र में सुधार की आवश्यकता है वहाँ महाभाष्य के समान ''अत्यल्पमिदमुच्यते'' कहकर कमी को प्रकट करता है तथा तदनन्तर उसका समाधान भी प्रस्तुत करता है। काशिका की भाषा सरल, सुबोध और परिमार्जित है। इसमें कहीं-कहीं समस्तपदों का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। यह अष्टाध्यायी के सूत्रों पर एक विस्तृतव्याख्या है। इन सभी पक्षों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। यथा–वह ''लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने''[22] इस सूत्र में पठित लुपि पद की अनुवृत्ति उत्तरवर्त्ती सूत्र ''विशेषणानां चाजातेः'[23] में भी स्वीकार करता है। इसी प्रकार वह ''तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्''[24] इस सूत्र में पठित अशिष्यपद की अनुवृत्ति उत्तरवर्त्ती सूत्रों में भी स्वीकार करता है।

काशिकाकार आपिशल और सौनागों के मतों को अपनी वृत्ति में उद्धृत करता है। यथा–''आपिशलास्तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासुच्छन्दसीति पठन्ति। तत्र सर्वेषामेव छन्दसि विषये विधिरयं भवति''।[25] ''सौनागाः कर्मणि निष्ठायां शकेरिटमिच्छन्ति विकल्पेन। शकितोघटः कर्तुम्। शक्तो घटः कर्तुम्''।[26]

काशिकार जिन आचार्यों के नाम अज्ञात हैं, उनके मतों को एके, अपरे, केचिद् तथा अपरावृत्ति के द्वारा उद्धृत करता है। यथा–

एके के द्वारा– ''सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येके''[27] इस वार्तिक द्वारा वह कुछ आचार्यों के मत में सभी प्रातिपदिकों से क्यङ्प्रत्यय का विधान स्वीकार करता है जिससे ''अश्व इवाचरत्यश्वायते'' ''गर्दभायते'' ये रूप निष्पन्न होते हैं।

अपरे के द्वारा– "यजुष्युर:"[28] सूत्र के पाठ के सम्बन्ध में वह कहता है कि कुछ आचार्य इसका पाठ निम्नप्रकार से करते हैं–"अपरे यजुष्युरो इति सूत्रं पठन्ति"।

केचिद् के द्वारा– "अव्यक्तानुकरणाद्द्वयजवरार्द्धादनितौ डाच्"[29] इस सूत्र पर वह केचिद् के द्वारा कुछ आचार्यों का निम्न मत प्रदर्शित करता है–"केचिद्द्वयजवरार्ध्यादिति यकारं पठन्ति स स्वार्थिको विज्ञेय:"। इसी प्रकार वह "सहस्रेण सम्मितौघ:"[30] सूत्र पर "केचित्तु समिताविति पठन्ति" यह केचित् का मत दिखाता है।

अपरावृत्ति के द्वारा– काशिकाकार प्राचीन वृत्तियों में पायी जाने वाली सूत्रवृत्ति का निर्देश अपरावृत्ति शब्द द्वारा करता है। यथा–

"तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्य:"[31] सूत्र की वृत्ति में वह वृत्ति के भेद से सूत्र के द्विविध अर्थ प्रस्तुत करता है। एकवृत्ति के अनुसार वह भार शब्दोत्तरपदकवंशादि शब्द से तथा द्वितीयावृत्ति के अनुसार भारस्वरूपवंशादि शब्दों से ठक्प्रत्यय का विधान करता है। इसमें द्वितीयावृत्ति में निर्दिष्ट अर्थ "अपरावृत्ति:" का है।

वह "अत्यल्पमिदमुच्यते" इस वाक्य द्वारा सूत्र की कमी का निर्देश करता है तथा इस कमी को यथासम्भव दूर करने का यत्न करता है। यथा–वह "कष्टाय क्रमणे"[32] सूत्र पर "अत्यल्पमिदमुच्यते" यह वाक्य पढ़ता है तथा इस कमी को दूर करने हेतु "सत्रकष्टकक्षकृच्छ्रगहनेभ्य: कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम्" इस वार्त्तिक का पाठ करता है तथा उक्त वार्तिक में पठित शब्दों से भी क्यङ्प्रत्यय का विधान स्वीकार करता है, जिससे सत्रायते, कष्टायते, कक्षायते, कृच्छ्रायते और गहनायते रूप निष्पन्न होते हैं। इसी प्रकार "न पदान्ताट्टोरनाम्"[33] सूत्र पर भी वह अत्यल्पमिदमुच्यते' यह वाक्य लिखता है तथा सूत्र की कमी को दूर करने के लिए "अनाम्नवतिनगरीणामिति वक्तव्यम्" इस वार्त्तिक को निर्दिष्ट करता है, जिससे षण्णाम्, षण्णवति: और षण्णगरी ये रूप सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि काशिकाकार ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के मतों का प्रस्तुतीकरण महाभाष्य के समान प्रस्तुत करता है। वह महाभाष्य के समान ही सूत्र में पायी जाने वाली कमी को "अत्यल्पमिदमुच्यते" कहकर उल्लिखित करता है तथा उसका समाधान भी प्रस्तुत करता है। वह इसमें प्रा

वृत्तियों, भाष्य, धातुव्याख्यात्मक तथा गणशब्द्व्याख्यात्मकशास्त्रों के सार को सङ्गृहीत करता है। वह सूत्रवृत्ति में पर्याप्त उदाहरण तथा प्रत्युदाहरणनिर्दिष्ट करता है। वह सरल, सुगम और परिमार्जित भाषा का प्रयोग करता है। कहीं-कहीं वह समस्तपदों का प्रयोग भी करता है। काशिका अष्टाध्यायी के सूत्रों पर एक विस्तृत व्याख्या है।

3.2 भाषावृत्ति की व्याख्याशैली–

पुरुषोत्तमदेव पाणिनि के लौकिकसूत्रों पर भाषावृत्ति लिखता है। यह वृत्ति अति संक्षिप्त, सरल और सारगर्भित है। इसीलिये इसका ''लघुवृत्ति'' यह नाम भी है। पुरुषोत्तमदेव संक्षिप्तता और सारगर्भिता हेतु इसमें अनेक तरीके अपनाता है। वह सूत्र का अपेक्षित अर्थ प्रस्तुत करता है। वह जिन सूत्रों में निर्दिष्ट कतिपय शब्द सर्वसाधारण के लिये सुगम और सुबोध समझता है, उन शब्दों का अर्थ निर्दिष्ट नहीं करता है। वह जिन सूत्रों का अर्थ उदाहरण-प्रत्युदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है, उनकी वृत्ति को निर्दिष्ट नहीं करता है। वह सूत्रार्थ स्पष्टता हेतु अपेक्षित उदाहरण-प्रत्युदाहरण प्रस्तुत करता है। वह सूत्रनिर्देशानुसार वृत्ति तथा उदाहरण-प्रत्युदाहरण का निर्देश करता है। वह दो-दो सूत्रों की एकवाक्यता करके एकवृत्ति प्रस्तुत करता है। वह पुनरावृत्ति रोकने तथा सङ्क्षेप की दृष्टि से सर्वनामशब्दों का प्रयोग करता है। वह समस्तपदों का प्रयोग करके, उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण में जानबूझकर कमी करके, किसी शास्त्रीय शब्द की जानकारी हेतु अन्य ग्रन्थ को उद्धृत करके तथा वैदिकसूत्रों के परित्याग करने से भी सङ्क्षेप करता है। वह स्वपूर्ववर्त्ती आचार्यों के सन्देहास्पद सूत्रार्थ को सप्रयोजन सङ्क्षेप में प्रस्तुत करता है। वह कतिपय सूत्रों के अर्थ के विषय में परमत का खण्डन करता है तथा स्वमत की स्थापना करता है। वह कतिपय प्रंयोगों को जो सूत्र, वार्त्तिक और इष्टिवचनों से निष्पन्न नहीं होते उन्हें ''चिन्त्य'' कहकर खण्डित करता है। कतिपय सूत्रों के स्वकीय अर्थ को उचित ठहराने हेतु अन्य आचार्यों के मतों का आश्रय लेता है।

पुरुषोत्तमदेव व्याकरण के सम्बन्ध में पाये जाने वाले मत-मतान्तर को प्रदर्शित करने हेतु ज्ञात आचार्यों में सौनाग, भारद्वाज, भागुरि, वररुचि, माथुरीवृत्तिकार, पतञ्जलि, भर्तृहरि, चन्द्रगोमी, जयादित्य-वामन, भागवृत्तिकार, न्यासकार और केशवादि को उद्धृत करता है। इसी प्रकार अज्ञात आचार्यों की

व्याकरणिक भिन्नता को स्मृति, आगम, एके, अन्ये, अपरे, केचित् तथा इच्छन्ति इत्यादि शब्दों के द्वारा निर्दिष्ट करता है।

पुरुषोत्तमदेव सरसता और सरलता लाने के उद्देश्य से काव्यादि ग्रन्थों के 380 के लगभग श्लोकों तथा श्लोकांशों का प्रयोग उदाहरणों के रूप में करता है तथा लोकप्रचलित शब्दों का उदाहरणों के रूप में निर्देश करता है।

पुरुषोत्तमदेव अपने मत के दिखाने हेतु तथा उसकी जानकारी लोगों तक पहुँचाने के उद्देश्य से बौद्धमत से सम्बन्धित प्रतिष्ठित शाब्दिक प्रयोग उदाहरणों के रूप में निर्दिष्ट करता है। वह अपने जन्मस्थान की जानकारी देने हेतु स्थानवाचक शब्दों का उदाहरणों के रूप में प्रयोग करके बङ्गाल के प्रति अपनी विशेष आस्था का प्रकटीकरण करता है।

भाषावृत्तिकार व्याख्यान की समस्तप्रक्रिया के साथ-साथ अपनी वृत्ति में अनुवृत्ति को भी महत्त्व देता है। भाषावृत्ति की भाषा सरल, अत्यन्त सुगम तथा परिमार्जित है। इसमें लोकभाषा का बाहुल्य है। संक्षेप की दृष्टि से इसमें समस्तपदों का प्रयोग भी है परन्तु उससे किसी प्रकार की जटिलता नहीं आती है। यह अष्टाध्यायी के लौकिक सूत्रों पर अति संक्षिप्त व्याख्या है। इन सभी विषयों पर क्रमशः विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

[1] **संक्षिप्तता के उपाय**– भाषावृत्तिकार अनेक उपायों से संक्षेप करता है। यथा–सूत्र के अपेक्षित अर्थ का प्रस्तुतीकरण, सूत्र में निर्दिष्ट सुबोध और सुगम शब्दों के अर्थ का अनिर्देश, सूत्रार्थ में अनिर्दिष्ट अर्थ का उदाहरण-प्रत्युदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण, सूत्रार्थसङ्क्षेप तथा स्पष्टता हेतु अपेक्षित उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का प्रस्तुतीकरण, सूत्रनिर्देशानुसार वृत्ति तथा उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का निर्देश, सूत्रों की एकवाक्यता द्वारा सङ्क्षेप, सर्वनामशब्दों के प्रयोग द्वारा सङ्क्षेप, समस्तपदों के प्रयोग द्वारा सङ्क्षेप, उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण में जानबूझकर कमी करके सङ्क्षेप, वैदिकसूत्रों के परित्यागद्वारा सङ्क्षेप।

[1.1] **सूत्र के अपेक्षित अर्थ का प्रस्तुतीकरण**– भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप की दृष्टि से कतिपय सूत्रों की वृत्ति में सूत्र का उतना ही अर्थ निर्दिष्ट करता है जितना उनके अर्थ को समझने के लिये आवश्यक है। यथा–वह "वृद्धिरादैच्" सूत्र का "आदैकार औकारश्च वृद्धिसंज्ञकाः स्युः" तथा "अदेङ् गुणः" सूत्र

का "अदेकार ओकारश्च गुणसंज्ञका: स्यु:" यह अर्थ देता है। जबकि काशिकावृत्तिकार इन सूत्रों का विस्तृत अर्थ देता है।[34]

[1.2] **सूत्र में निर्दिष्ट सुबोध और सुगम शब्दों के अर्थ का अनिर्देश–** भाषावृत्तिकार लाघव के उद्देश्य से कतिपय सूत्रों में प्रयुक्त शब्दों को सर्वसाधारण के लिये सुबोध और सुगम मानकर व्याख्यात नहीं करता है। यथा–"कमेर्णिङ्" सूत्रवृत्ति में वह केवल "स्यात्" शब्द ही लिखता है। इसी प्रकार "शरीरावयवाद् यत्" सूत्र में भी केवल स्यात् ही लिखता है। जबकि काशिकाकार पूर्वोक्त दोनों सूत्रों में कमेर्णिङ् और शरीरावयवाद् के पाठसहित लम्बी व्याख्या देता है।[35]

[1.3] **सूत्रार्थ में अनिर्दिष्ट अर्थ का उदाहरण-प्रत्युदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण–** भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप की दृष्टि से ऐसे कतिपय सूत्रों की वृत्ति प्रस्तुत नहीं करता है जिनकी वृत्ति का स्पष्टीकरण उदाहरण-प्रत्युदाहरणों के माध्यम से ही हो जाता है। यथा–"भृञोऽसंज्ञायाम्" सूत्र की वृत्ति में वह "क्यप् स्यात्" द्वारा वृत्ति को स्पष्ट करता है और भृञ् धातु से असंज्ञा में क्यप्प्रत्यय के विधान से निष्पन्न "भृत्य:" यह उदाहरण प्रस्तुत करता है। संज्ञा में भार्य्या प्रत्युदाहरण देता है। इसी प्रकार वह "सूत्रं प्रतिष्णातम्" सूत्र में "प्रतिस्नातमन्यत्र" यह उदाहरण उक्त उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये ही देता है। जबकि काशिकाकार सूत्रार्थ और उदाहरण उक्त दोनों सूत्रों में अलग-अलग प्रस्तुत करता है।[36]

[1.4] **सूत्रार्थ सङ्क्षेप तथा स्पष्टता हेतु अपेक्षित उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का प्रस्तुतीकरण–** भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप तथा स्पष्टता की दृष्टि से अपेक्षित उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण ही प्रस्तुत करता है। यथा–वह "इद्गोण्या:" सूत्र की वृत्ति में वह केवल "पञ्चगोणि: पट:" यह उदाहरण प्रस्तुत करता है। वह वृद्धिरादैच्" सूत्र वृत्ति में उदाहरण नहीं पढ़ता है जबकि "अदसो मात्" सूत्र की वृत्ति में अमी अत्र, अमू आसाते उदाहरणों के साथ अमुकेऽत्र तथा शम्यत्र दो प्रत्युदाहरण भी प्रस्तुत करता है। काशिकाकार उक्त सभी सूत्रों में भाषावृत्तिकार की अपेक्षा उदाहरण-प्रत्युदाहरण अधिक देता है।[37]

[1.5] **सूत्रनिर्देशानुसार वृत्ति तथा उदाहरण-प्रत्युदाहरणों का निर्देश–** भाषावृत्तिकार संक्षिप्तता के उद्देश्य से सूत्र के निर्देशानुसार वृत्ति तथा उदाहरण-प्रत्युदाहरण प्रस्तुत करता है। यथा–वह "अव्ययीभावश्च" सूत्र की वृत्ति

सूत्रनिर्देशानुसार "अव्ययीभावो नाम समासोऽव्ययं स्यात्" इस प्रकार प्रस्तुत करता है तथा उपाग्नि, प्रत्यग्नि उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार वह "ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य" सूत्र का "क्लीबे प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्" यह अर्थ देता है तथा "अतिरि, अतिनु, ग्रामणि कुलम्" तीन उदाहरण प्रस्तुत करता है। वह रमते कुलम्, काण्डीभूतं कुलम्, वनाग्रम् और वनाय प्रत्युदाहरण देता है। जबकि काशिकाकार "अव्ययीभावश्च" सूत्र की वृत्ति तो लगभग बराबर देता है परन्तु "ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य" सूत्र की विस्तृत व्याख्या देता है। किञ्च वह उदाहरण और प्रत्युदाहरण समझाने की दृष्टि से भी अधिक विस्तार करता है।[38]

[1.6] **सूत्रों की एकवाक्यता द्वारा सङ्क्षेप**– भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप की दृष्टि से कतिपय सूत्रों में जहाँ सम्भव हो सका है दो-दो सूत्रों की एकवाक्यता करके एक ही वृत्ति प्रस्तुत करता है। यथा–"ष्णान्ता षट्" तथा "डति च" इन दोनों सूत्रों की वह "षकारनकारान्ता संख्या डतिप्रत्ययान्ता च षट्संज्ञा स्यात्" यह वृत्ति देता है। इसी प्रकार "शि सर्वनामस्थानम्" तथा "सुड़नपुंसकस्य" और "पिता मात्रा" तथा "श्वशुरः श्वश्रवा" उक्त दो-दो सूत्रों की एकवाक्यता करके एक ही वृत्ति उद्धृत करता है। जबकि काशिकाकार उक्त सभी सूत्रों की अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत करता है।[39]

[1.7] **सर्वनाम शब्दों के प्रयोग द्वारा सङ्क्षेप**– भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप करने के उद्देश्य से अनेक सूत्रों की वृत्ति में पठित शब्दों की पुनरावृत्ति नहीं करता है तथा उन शब्दों की पुनरावृत्ति रोकने के लिये उनके स्थान पर सर्वनामशब्दों का प्रयोग करता है। यथा–"क्तक्तवतू निष्ठा" सूत्र की वृत्ति में क्त तथा क्तवतू के स्थान पर एतौ सर्वनामशब्द का तथा "न बहुव्रीहौ" सूत्र की वृत्ति में सर्वनामसंज्ञा के स्थान पर 'सा' शब्द का और "सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्व-चवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्योणिच्" सूत्र में पठित इन सभी शब्दों के स्थान में एभ्यः सर्वनामशब्द का प्रयोग करता है। जबकि काशिकाकार सर्वनामवाचक शब्दों का उक्त सूत्रों की वृत्ति में प्रयोग नहीं करता है।[40]

[1.8] **समस्तपदों के प्रयोग द्वारा सङ्क्षेप**– भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुये कतिपय सूत्रों की वृत्ति में समस्तपदों का प्रयेग भी करता है। यथा–

"अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा" सूत्र की वृत्ति में वह "अन्त्यात् पूर्वम्" के स्थान पर "उपान्त्यो" इस समस्तपद का प्रयोग करता है। इसी प्रकार "ख्यत्यात् परस्य" सूत्र की वृत्ति में वह "खितिशब्दौ ह्रस्वौ खीतीशब्दौ दीर्घौ वा कृतयणादेशौ ख्यत्यौ" अर्थात् खिति च खिति च तथा खीती च खीती च दोनों विग्रहों में ख्यत्यौ यही समस्तपद बनाता है तथा इस प्रकार इस सूत्र की वृत्ति में पर्याप्त संक्षेप करने में समर्थ बन जाता है। यद्यपि काशिकाकार ने भी समस्तपद विधि को प्रकारान्तर से अपनाया है तथापि उसकी वृत्ति का विस्तार भी दृष्टिगोचर होता है। "अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा" में काशिकाकार समस्तपद का प्रयोग नहीं करता है।[41]

[1.9] **उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण में जानबूझकर कमी करके सङ्क्षेप–** भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप करने की दृष्टि से "त्वमावेकवचने" सूत्र की वृत्ति में स्वयं लिखता है कि ग्रन्थ में विस्तार होने के भय से अतिक्रान्त से सम्बन्धित प्रयोगों की उपेक्षा करता है–"इहातिक्रान्तप्रयोगा ग्रन्थविस्तरभ्यादुपेक्षिताः"। इसी प्रकार वह "समः सुटि" सूत्र की वृत्ति में भी स्वयं उल्लेख करता है कि ग्रन्थ में विस्तार होने के भय से ही कैयट और श्रुतपाल के मतभेद से निष्पन्न सौलह रूप नहीं दिखा रहा है–"अत्र च संस्करोतेः कैयटश्रुतपालयोर्मतभेदात् षोडश रूपाणि ग्रन्थविस्तरभयान्न दर्शितानि"। काशिकाकार उक्त दोनों सूत्रों में से प्रथम पर अतिक्रान्त से सम्बन्धित प्रयोग उद्धृत करता है। द्वितीय पर तो वह केवल वृत्ति और उदाहरण ही प्रस्तुत करता है।[42]

इसके अतिरिक्त भाषावृत्तिकार सङ्क्षेप को ध्यान में रखकर "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" सूत्र की वृत्ति में स्वयं शिष्ट के लक्षण को निर्दिष्ट न कर उसके निर्धारणार्थ महाभाष्य को पढ़ने की प्रेरणा देता है–"शिष्टलक्षणं तु भाष्यादवधार्य्यम्"। काशिकाकार शिष्ट के लक्षण के विषय में यहाँ मौन है।[43]

[1.10] **वैदिकसूत्रों के परित्याग द्वारा सङ्क्षेप–** पुरुषोत्तमदेव लघूकरण की दृष्टि से 620 वैदिकसूत्रों की वृत्ति निर्दिष्ट नहीं करता है। वह इन सूत्रों को छन्दोभागः या छान्दस कहकर त्याग देता है। यथा–वह "शे" सूत्र की "शे इति सूत्रं छन्दोभागः सुपामादेशः" तथा "भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि" सूत्र की छान्दसम् कहकर वृत्ति प्रस्तुत नहीं करता है। जबकि काशिकाकार उक्त दोनों सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत करता है।[44]

[2] **स्वपूर्ववर्त्ती आचार्यों के सन्देहास्पद सूत्रार्थ को सप्रयोजन सङ्क्षेप में प्रस्तुत करना**– भाषावृत्तिकार अपने से पूर्ववर्त्ती आचार्यों के द्वारा प्रस्तुत कतिपय सूत्रों के सन्देहास्पद सूत्रार्थ को सप्रयोजन निर्दिष्ट करता है। यथा–''शेषे'' इस सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ''इह चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्.... तस्येदमिति विवक्षायामिति भागवृत्तिः'' इस वाक्य द्वारा स्पष्ट करता है कि भागवृत्तिकार उक्त सूत्र को अधिकार सूत्र स्वीकार करता है। इसके विपरीत भाषावृत्तिकार ''शेष इत्यधिकारो लक्षणञ्चेति जयादित्यः'' इस वाक्य द्वारा स्पष्ट करता है कि जयादित्य इसे अधिकार और लक्षण उभयविध सूत्र स्वीकार करता है। भाषावृत्तिकार भी उक्त सूत्र को अधिकार सूत्र ही मानता है।[45]

[3] **भाषावृत्ति में परमत का खण्डन**– भाषावृत्तिकार दो प्रकार से परमत का खण्डन करता है–प्रथम प्रकार में अन्य आचार्यों के मत को खण्डित कर वह अपने मत की स्थापना करता है। द्वितीय प्रकार में वह केवल ''चिन्त्य'' शब्द का प्रयोग लोक में प्रयुक्त शब्द को खण्डित करने के लिये करता है।

[3.1] **सूत्रार्थविषय में परमत का खण्डन तथा स्वमत की स्थापना**– भाषावृत्तिकार कतिपय सूत्रों में सूत्रार्थविषय में अन्य आचार्यों के मत का खण्डन करता है तथा स्वमत की स्थापना भी करता है। यथा–वह ''यङोऽचि च''[46] इस सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार जयादित्य, भागवृत्तिकार और भाष्यकार के मतों को उद्धृत करता है। जयादित्य चकारग्रहणसामर्थ्य से प्रस्तुत सूत्र में पूर्ववर्त्ती सूत्र से बहुलग्रहण की अनुवृत्ति और छन्दसि पद का परित्याग मानकर भाषा में अच्भिन्न परे होने पर भी यङ् के लुक् का विधान मानता है–''इह चकारेण बहुलग्रहणमनुकृष्यते न तु च्छन्दसीति। तेन भाषायामनच्यपि यङ्लुक्। लालपीति वावदीतीति जयादित्यः''।

भागवृत्तिकार के अनुसार उक्त सूत्र में पठित चकारग्रहणसामर्थ्य से प्रस्तुत सूत्र में पूर्ववर्त्ती सम्पूर्णसूत्र की अनुवृत्ति आती है अतः प्रस्तुत सूत्र अच्भिन्न परे भी छन्द में ही बाहुलक से यङ्लुक् का विधान करता है। भागवृत्ति यङ्लुक् के सम्बन्ध में भाष्य के उस मत को भी निर्दिष्ट करती है जिसके अनुसार यङ्लुक् का ''बोभवीति'' यह एकमात्र प्रयोग ही भाषा में स्वीकार किया गया है। भाषावृत्ति उक्त सूत्र की वृत्ति में इन दोनों मतों का निर्देश करती है–''चकाराद् बहुलं छन्दसीति सर्वमनुवर्त्तते। तेन बाहुल्यादनच्यपि च्छन्दस्येव यङ्लुक्। भाष्ये तु हुश्नुग्रहणज्ञापकबलाद् बोभवीतीत्येवं पदं भाषायां साधु, नान्यदिति भागवृत्तिः''।

भाषावृत्तिकार भाष्य तथा भागवृत्ति के उक्त मतों से असहमति प्रकट करता है तथा स्पष्ट करता है कि यङ्लुक् के अन्य शिष्टप्रयोग भाषा में दृष्टिगोचर होते हैं। यथा–

''यदि देवो वरीवर्ष्टि कोकिलो रोरवीति च।
मयूरोऽपि नरीनर्त्ति मरीमर्मि तदा प्रिये''।।इति।।

तेजांसि शंशमाञ्चक्रुरिति भट्टिः।
''हरिणा सह संख्यं ते बोभूत्विति यदब्रवीः।
न जाघटीति युक्तौ तत् सिंहद्विदरयोरिव''।।

–इति पाणिनेर्जाम्बवतीविजयकाव्यम्।

[3.2] **''चिन्त्य'' शब्द के द्वारा अनिष्पन्न प्रयोगों का खण्डन–** भाषावृत्तिकार कतिपय प्रयोगों को सूत्रों, वार्त्तिकों और इष्टिवचनों द्वारा निष्पन्न न होते देखकर उन्हें ''चिन्त्य'' कहकर खण्डित करता है। यथा–''तसिलादिष्वाकृत्वसुचः''[47] सूत्र वृत्तिस्थ ''सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्य इति तु दिङ्नामान्यन्तराल इत्यत्र भाष्यम्'' भाष्यस्थ इस वार्तिक से ''भवतीप्रसादात्'' इस प्रयोग में वह भवती को पुंवद्भाव होते न देखकर ''चिन्त्य'' शब्द द्वारा उस को खण्डित करता है। जबकि काशिकाकार उक्त भाष्यस्थ वार्तिक का उक्त सूत्र में पाठ नहीं करता है। भाषावृत्ति में कई सूत्रों पर ''चिन्त्य'' शब्द से सम्बन्धित मत हैं।[48]

[4] सूत्रार्थविषय में स्वमत के मण्डन हेतु परमत का आश्रयग्रहण– भाषावृत्तिकार सूत्रार्थविषय में अपने मत के मण्डन हेतु अन्य आचार्यों के मतों का आश्रयग्रहण करता है। यथा–

वह ''तव्यत्तव्यानीयरः''[49] सूत्र की वृत्ति में वास्तव्यः शब्द को तद्धितान्त बताता है–''इह वास्तव्यस्तद्धितान्तः''। वह अपने मत की पुष्टि के लिये भाष्यमत को भी उक्त सूत्र की वृत्ति में उद्धृत करता है–''तदुक्तं भाष्ये तद्धितो वा पुनरेषः। वास्तुनि भवो वास्तव्य इति''। काशिकाकार उक्त सूत्र में ''वास्तव्यः'' प्रयोग को कृदन्त स्वीकार करता है जिसकी निष्पत्ति वस् धातु से तव्यत्प्रत्यय तथा णिद्वद्भाव करने से होती है।

[5] **व्याकरणिक मत-मतान्तरों का प्रदर्शन–** भाषावृत्तिकार द्विविध प्रकार से व्याकरणिक मत-मतान्तरों का प्रदर्शन करता है–[5.1] ज्ञात आचार्यों के मतों का उल्लेख तथा [5.2] अज्ञात आचार्यों के मतों का उल्लेख।

[5.1] **ज्ञात आचार्यों के मतों का उल्लेख–** भाषावृत्तिकार सौनाग, भारद्वाज, भागुरि, वररुचि, माथुरीवृत्तिकार, पतञ्जलि, भर्तृहरि, चन्द्रगोमी, जयादित्य-वामन, भागवृत्तिकार, न्यासकार और केशवादि अनेक आचार्यों के मतों का सङ्क्षेप में उल्लेख करता है। वह उक्त आचार्यों के मतों में से भाष्य के मतों को भाष्ये तु, अत्र भाष्यम्, तदुक्तम् भाष्ये, इति भाष्यम्, भाष्यस्थितिः, उक्तं च भाष्ये, भाष्यकारस्य तु, भाष्योदाहरणात् और भाष्यप्रयोग इत्यादि शब्दों के द्वारा निरूपित करता है। यहाँ भाष्य और काशिका से एक-एक उदाहरण प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यथा–''चुटू''[50] सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार भाष्य के मत को अपनी भाषा में सार रूप में सङ्क्षेप से उद्धृत करता है–''कथं केशचुञ्चुः केशचणः? चित्कार्य्याभावात्। यादी चुञ्चुप्चणपौ लुप्तनिर्दिष्टयकाराविति भाष्यम्''। महाभाष्य उक्त मत को स्पष्ट करने के लिये निम्न व्याख्यान निर्दिष्ट करता है–चुञ्चुप्चणपोश्चकारस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः केशचुञ्चुः। केशचणः।। इत्कार्याभावादत्रेत्संज्ञा न भविष्यति।। इदमस्तीत्कार्यम्। ''चितः'' अन्त उदात्तो भवतीति अन्तोदात्तत्वं यथा स्यात्। पित्करणं किमर्थमिति चेत्पर्यायार्थमेतत्स्यात्।। एवं तर्हि यकारादी चुञ्चुप्चणपौ।। किं यकारो न श्रूयते? लुप्तनिर्दिष्टो यकारः''।

''यङोऽचि च''[51]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार काशिका के मत को अपनी भाषा में सङ्क्षेप से उद्धृत करता है–''इह चकारेण बहुलग्रहणमनुकृष्यते, न तु च्छन्दसीति। तेन भाषायामनच्यपि यङ्लुक्। लालपीति वावदीतीति जयादित्यः''।

काशिका उक्त मत को निम्न प्रकार से उद्धृत करती है–''चकारेण बहुलमनुकृष्यते, न तु च्छन्दसीति, तेन छन्दसि भाषायां च यङो लुग्भवति। लोलुवः। पोपुवः। सनीस्रंसः। दनीध्वंसः। बहुलग्रहणादनच्यपि भवति। शाकुनिको लालपीति। दुन्दुभिर्वावदीति''।।

इन्हीं ज्ञात आचार्यों के मतों के उल्लेख के सम्बन्ध में भाषावृत्ति के निम्न सूत्रों पर पठित भाष्य,[52] भर्तृहरि,[53] चान्द्रव्याकरण,[54] काशिका,[55] भागवृत्ति[56] और न्यासादि[57] के मत देखे जा सकते हैं।

[5.2] **अज्ञात आचार्यों के मतों का उल्लेख**– भाषावृत्तिकार को जिन आचार्यों के नामों की जानकारी नहीं मिलती, उनके मत वह स्मृति, आगम, एके, अन्ये, अपरे, केचित् तथा इच्छन्ति इत्यादि शब्दों के द्वारा निर्दिष्ट करता है। इन मतों में से एक-एक प्रमाण के रूप में यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। यथा–

[5.2.क] **''अव्ययीभावश्च''**[58]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार स्मृतिवचन को उद्धृत करता है–''इह लुगेव संज्ञाप्रयोजनम्। नाकजादिरिति स्मृतिः''।

[5.2.ख] **''क्तस्य च वर्त्तमाने''**[59]– सूत्र की वृत्ति में वह आगम के मत को निर्दिष्ट करता है–' कथं त्वया शीलितः, मया रक्षितः? कार्योऽत्र यत्नः। इह च्छात्रस्य हसितम्, मयूरस्य नृत्तमिति शेषषष्ठीयम्, ''न लोक'' इति कृद्योगायाः प्रतिषेधात्। कारकविवक्षायां तु च्छात्रेण हसितमिति आगमः''।

[5.2.ग] **''मनो रौ वा''**[60]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ''एके'' के मत को निम्न प्रकार से उद्धृत करता है–''मनुरपीत्येके''।

[5.2.घ] **''गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्''**[61]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ''अन्ये'' के मत को निम्न प्रकार से निर्दिष्ट करता है–''अजो विष्णुः। को ब्रह्मा। तद्योगादजकवमित्यन्ये''।

[5.2.ङ] **''अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः''**[62]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार अपरे के मत को निम्न प्रकार से उल्लिखित करता है–''फुल्लवान् क्षीबवान् कृशवान् उल्लाघवानित्यपरे''।

[5.2.च] **''ओजः सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः**[63]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार केचिद् के मत को निम्न प्रकार से उद्धृत करता है–''इह तमः शब्दं तप इति केचिदूचिरे''।

[5.2.छ] **''नित्यं वृद्धशरादिभ्यः''**[64]– सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार इच्छन्ति शब्द द्वारा भी कतिपय आचार्यों के मत को निम्न प्रकार से प्रस्तुत करता है–''नित्यमेकाचोऽशरादेरपीच्छन्ति''। इन्हीं अज्ञात आचार्यों के मतों के उल्लेख के सम्बन्ध में भाषावृत्ति के निम्न सूत्रों पर पठित स्मृति,[65] आगम,[66] एके,[67] अन्ये,[68] अपरे,[69] केचित्[70] तथा इच्छन्ति[71] इत्यादि के मत देखे जा सकते हैं।

[6] **सरसता और सरलता हेतु प्रयास–** भाषावृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में सरसता और सरलता लाने हेतु द्विविध तरीके अपनाये हैं–[6.1] सूत्रोदाहरण के रूप में काव्यादिग्रन्थों के श्लोकों का प्रस्तुतीकरण तथा [6.2] लोकप्रचलित शब्दों का उदाहरणों के रूप में निर्देश।

[6.1] **सूत्रोदाहरण के रूप में काव्यादिग्रन्थों के श्लोकों का प्रस्तुतीकरण–** यह सर्वविदित तथ्य है कि वेद के यथार्थ ज्ञान के लिये उसके छः अङ्गों का अध्ययन आवश्यक है। वेद के इन छः अङ्गों में व्याकरण नामक वेदाङ्ग सर्वश्रेष्ठ है। अपनी इसी श्रेष्ठता के कारण उसे मुखरूप भी माना जाता है–"मुखं व्याकरणं स्मृतम्"। मुखरूप होते हुए भी यह शास्त्र अपनी दुरूहता तथा नीरसता के लिये प्रसिद्ध है। यही कारण है कि या तो अनेक लोग इसके अध्ययन की ओर उन्मुख ही नहीं होते अथवा उन्मुख होने के बाद मध्य में ही पलायन कर जाते हैं। भाषावृत्तिकार व्याकरणशास्त्र की इस दुरूहता तथा नीरसता को कम करने का प्रयास करता है। वह अपनी भाषावृत्ति में अनेक सूत्रों के उदाहरण के रूप में स्वपूर्ववर्त्ती अनेक काव्यादिग्रन्थों के लगभग 380 श्लोक अथवा श्लोकांश उद्धृत करता है। इन श्लोकों का सम्बन्ध रामायण, महाभारत, रघुवंश, मेघदूत, कुमारसम्भव, भट्टिकाव्य, किरातार्जुनीय, माघ, कीचकवध, जाम्बवतीविजय, व्योष, मालतीमाधव, वेणीसंहार, काव्यालङ्कार, सूर्यशतक, महिम्नस्तोत्र, पञ्चतन्त्र, मनुस्मृति, अमरकोश, प्रमाणवार्त्तिक, तथा भाष्यादि ग्रन्थों से है। इन ग्रन्थों के उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण से इस व्याकरण के ग्रन्थ में सरलता और सरसता का समावेश हो गया है। इसके अतिरिक्त इन उदाहरणों से जहाँ व्याकरणज्ञान के साथ-साथ अनेक व्यावहारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों का ज्ञान होता है वहीं काव्यगत आनन्द भी प्राप्त होता है। रस, गुण, अलङ्कार तथा रीतियों से सम्बन्धित ये उदाहरण पाठक का यथेष्ट मनोरञ्जन करते हैं। ये श्लोक कितने शिक्षाप्रद हैं, इस सम्बन्ध में कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं–

[1] **न माङ् योगे**[72]– इस सूत्र पर पुरुषोत्तमदेव वाल्मीकिरामायण का यह श्लोक पढ़ता है–

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा"।[73]

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि ऋषि का हृदय जहाँ दुःखी के प्रति सदैव करुणा प्रधान रहता है, वहीं आततायी के प्रति अभिशाप प्रधान भी बन जाता है।

[2] **पुरोऽव्ययम्**– सूत्र पर वह महाभारत का यह श्लोक पढ़ता है–''पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्''[74] प्रस्तुत श्लोक महाभारत की उस कथा का स्मरण दिला रहा है, जिसमें अर्जुन शिखण्डी को सामने कर भीष्म पितामह से शस्त्रत्याग करवाता है और उन्हें बाणों से घायल कर शरशय्या पर सोने के लिये विवश कर देता है। यह उदाहरण महाभारतकाल की उस नीति की ओर भी इङ्गित करता है जिसके अनुसार एक वीर पुरुष का नपुंसक पर प्रहार सम्मानजनक नहीं माना जाता था।

[3] **षष्ठी हेतुप्रयोगे,**[75] **शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययो:,**[76] **ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चस:**[77]– इन तीन सूत्रों पर वह रघुवंश के क्रमश: ये तीन श्लोक पढ़ता है–''अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्'',[75] ''शशाक शालीनतया न वक्तुम्''[76] ''हेतोस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्''।[77] इन तीनों श्लोकों से यह शिक्षा मिलती है कि थोड़े के लिये अधिक त्याग करना अज्ञानता है तथा जहाँ तपस्वी रहते हैं वहीं वास्तविक सुख रहता है। इसके अतिरिक्त इस आदर्श का भी बोध होता है कि भारतीय नारी का भूषण लज्जा है।

[4] **वा ल्यपि**[78]– इस सूत्र पर वह कुमारसम्भव का यह श्लोक पढ़ता है– चतुर्दिगीशानवमन्यमानिनी।[78] यह श्लोक उस भारतीय नारी की गौरव गाथा का कथन कर रहा है जिसको मन से वरण किये गये पति के प्रति भी अटूट आस्था तथा अनन्य प्रेम होता है। किञ्च जिसे प्राप्त करने के लिये वह पौष रात्री में भी जलनिवास जैसे असह्य कष्टों को भी सहन कर सकती है।

[5] **ओषधेरजातौ**[79]– सूत्र पर वह यह कुमारसम्भवीय श्लोक उद्धृत करता है–''भवन्ति यत्रौषधयो रजन्याम्''।[79] प्रस्तुत श्लोक पर्वतराज हिमालय के उस गौरव को अभिव्यक्त कर रहा है जिसमें मृतसञ्जीवनी जैसी औषधियाँ पैदा होती हैं।

[6] **''श्वसस्तुट् च,''**[80] **इङ्धार्यो: शत्रकृच्छ्रिणि'',**[81] **''कण्ड्वादिभ्यो यक्''**[81]- इन तीनों सूत्रों पर वह क्रमश: भट्टिकाव्य के ये तीन श्लोक पढ़ता है–''शौवस्तिकत्वं विभवा न येषाम्[80]'' ''धारयन् मस्करिव्रतम्'',[81] ''हृणीयते वीरवती न भूमि:''।[82] इन श्लोकों का आशय यह है कि सङ्ग्रह तथा शोषण की प्रवृत्ति न रखने वालों का वध करना एवं विश्वासघात करना जघन्य अपराध है। किञ्च वीरों को जन्म देने वाली भूमि ही सम्मान के योग्य होती है।

[7] **''संघे चानौत्तराधर्ये''**[83] **''विभाषा कदाकर्ह्योः''**[84]– इन सूत्रों पर वह क्रमशः ''मृग्याः शत्रुनिकायानाम्''[83] ''कदा भवति में प्रीतिः''[84] ये भट्टिकाव्य के श्लोक उद्धृत करता है। यहाँ प्रथम श्लोक में नीतिगत वचन है। इस वचन के अनुसार शत्रुगृह में सदैव अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाये रखना चाहिये। द्वितीय श्लोक मनुष्य की महानता का परिचायक है। व्यक्ति के दोषों से घृणा करनी चाहिये व्यक्ति से नहीं, यही मनुष्य की महानता है। विभीषण भी रावण से नहीं अपितु उसके दुर्गुणों से घृणा करता था।

[8] किरातार्जुनीय नीतिविषयक वचनों की खान है। भाषावृत्तिकार ''यज्ञे समि स्तुवः'',[85] ''पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च'',[86] ''अस्मायामेधास्रजोविनिः''[87]–इन सूत्रों पर क्रमशः किरातार्जुनीय के ये श्लोक उद्धृत करता है–''गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः[85]'' ''गुणगृह्या वचने विपश्चितः''[86], ''भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः''।[87] इन वचनों से यह शिक्षा मिलती है कि प्रिय कार्य के लिये गुणी व्यक्ति को ही नियुक्त करना चाहिये। गुणग्राही विद्वानों का वक्ता विशेष के प्रति कोई आग्रह नहीं होता है। किञ्च मायावी के साथ मायावी बनो यही नीति है।

[9] **दुःखात् प्रातिलोम्ये,**[88] **आत्मन् विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः,**[89] **उदोऽनूर्ध्वकर्मणि,**[90] **समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः**[91]– इन सूत्रों पर वह क्रमशः माघ प्रणीत शिशुपालवध के ये श्लोक पढ़ता है–अदो दुःखाकरोति माम्,[88] क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते,[89] जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः,[90] समूलघातं न्यवधीदरींश्च।[91]

इन वचनों का सार यह है कि जनहित के लिये शत्रुता मोल लेना महान् कार्य है। असली उपदेश वही है जिससे विश्वकल्याण हो। खड़े होकर प्रणाम करना शिष्टाचार है। शत्रु का समूलनाश कर अग्रसर होना स्वाभिमान की निशानी है।

[10] **अधः शिरसी पदे**[92]– सूत्र पर वह व्योष काव्य का यह श्लोक पढ़ता है–अधस्पदं यस्य निरस्तभूपतेः शिरस्पदं तस्य नतेऽङ्घ्रिपीठकम्।

इस श्लोक का सार यह है कि पराजित व्यक्ति को पराजित करने वाले के सामने नतमस्तक होना पड़ता है।

[11] **भञ्जभासमिदो घरच्,**[93] **सपत्ननिष्पत्त्रादतिव्यथने,**[94] **आशिषि लिङ्लोटौ**[95]– इन सूत्रों पर वह काव्यालङ्कार, महिम्नस्तोत्र और सूर्यशतक

के क्रमशः ये श्लोक उद्धृत करता है–अनङ्गं मानभङ्गुरम्,[93] धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम्,[94] कल्याणं वः क्रियासु।[95] इनमें प्रथम श्लोक इस सत्यता की ओर इङ्गित कर रहा है कि कामदेव सबका मान मर्दन करने वाला है। दूसरा श्लोक एक पौराणिक गाथा की ओर सङ्केत कर रहा है, इस गाथा के अनुसार एक बार ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती पर आसक्त हो जाते हैं, सरस्वती के निवेदन करने पर भगवान् शिव धनुषबाण लेकर ब्रह्मा को दण्डित करने के लिये उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। तृतीय श्लोक में भगवान्सूर्य के विश्वकल्याणकारक स्वरूप का चित्रण है।

पुरुषोत्तमदेव सूत्रोदाहरण के रूप में जो श्लोक उद्धृत करता है, उनसे अनेक प्रकार की शिक्षा तो मिलती ही है परन्तु ये श्लोक रस, गुण, अलङ्कारादि से भी सम्बन्धित हैं जिससे पाठकों का मनोरञ्जन भी होता है। यथा–

[1] **न माङ्योगे**[96]– सूत्र पर वह "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा"[97] यह वाल्मीकिरामायण का श्लोक पढ़ता है। इस श्लोक में उस घटना का वर्णन है जब व्याध नर क्रौञ्च को मार देता है तथा मादा क्रौञ्ची उसके वियोग में बिलखती है। कवि वाल्मीकि इस कारुणिक दृश्य को देखकर तड़प उठते हैं तथा व्याध को शाप दे देते हैं।

प्रस्तुत श्लोक में मृत पक्षी विभाव है, कौञ्ची का रुदन अनुभाव है तथा विषादादि व्यभिचारिभाव है इनके संयोग से कवि हृदयस्थ शोक नामक स्थायीभाव करुण रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। इसमें अतिशयोक्ति नामक अलङ्कार, प्रसादगुण तथा वैदर्भी रीति विद्यमान है।

[2] इसी प्रकार **"उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्"**[98]– सूत्र पर वह "औपनीविकमरुद्ध किल स्त्री वल्लभस्य करमात्मकराभ्याम्"।[98] यह श्लोक पढ़ता है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि जब प्रियतमा दोनों हाथों से नीवि के समीप से अपने प्रियतम के हाथ को हटाने लगी तो ऐसा प्रतीत होता था कि वह उसके हाथों को हटाने के व्याज से उसके हाथ को धीरे से पकड़ रही है।

प्रस्तुत श्लोक में नायिका की नाभि विभाव है, नीवि उन्मोचन अनुभाव है तथा रोमाञ्च, औत्सुक्यादि व्यभिचारिभाव है। इनके संयोग से रति नामक स्थायीभाव श्रृङ्गार रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। यहाँ अनुप्रास अलङ्कार, माधुर्यगुण तथा वैदर्भीरीति है।

इस प्रकार भाषावृत्ति के अध्ययन से व्याकरण का ज्ञान तो होता ही है परन्तु इसके साथ-साथ काव्यरस तथा भक्ति का अलौकिक आनन्द भी प्राप्त होता है।

[6.2] **लोकप्रचलित शब्दों का उदाहरणों के रूप में निर्देश**– भाषावृत्तिकार सरलता और सरसता लाने के उद्देश्य से कतिपय सूत्रों में लोकप्रचलित शब्दों का उदाहरणों के रूप में निर्देश करता है। यथा–''सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये''[99]– सूत्रवृत्ति में शीघ्रभोजी, मृदुभाषी, वृद्धसेवी तथा नित्यजागरी। ''विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम्''[100]–सूत्रवृत्ति में प्रभुः, सम्भुः, कृपालुः, लज्जालुः। ''आतश्चोपसर्गे''[101]–सूत्रवृत्ति में प्रतिमा, प्रतिभा, श्रद्धा। ''ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्''[102] सूत्रवृत्ति में दुष्करः, दुर्लभः, सुबोधः, सुलभः। ''निनदीभ्यां स्नातेः कौशले''[103] सूत्रवृत्ति में निष्णातः शास्त्रे तथा ''सात्पदादयोः[104] सूत्रवृत्ति में विस्फोटः।

[7] **स्वकीय मत का प्रचार करने में प्रयत्नशील**– पुरुषोत्तमदेव बौद्धमतावलम्बी था अतः वह बौद्धमत के प्रदर्शन हेतु तथा उसकी सही जानकारी लोगों तक पहुँचाने के लिये उसमें प्रतिष्ठित शाब्दिक प्रयोगों को उदाहरणों के रूप में निर्दिष्ट करता है। यथा–''विशेषणं विशेष्येण बहुलम्''[105]–सूत्रवृत्ति में वह ''बोधिसत्त्वो महासत्त्वः'', ''समवप्रविभ्यः स्थः''[106] सूत्रवृत्तिस्थ ''आङः स्थः प्रतिज्ञाने'' वार्तिक पर ''वस्तु क्षणिकमातिष्ठन्ते बौद्धाः'', ''सुप् प्रतिना मात्रार्थे''[107] सूत्रवृत्ति में ''न सुखप्रति संसारे'', तथा ''न दोषप्रति बौद्धदर्शने'' और ''एनपा द्वितीया''[108] सूत्र की वृत्ति में ''दक्षिणेन गयां महाबोधि''।

[8] **स्थानवाचक शब्दों का उदाहरणों के रूप में प्रयोग**– पुरुषोत्तमदेव कतिपय ऐसे स्थानवाचक शब्दों का उदाहरणों के रूप में प्रयोग करता है जिनसे उसकी बङ्गाल के प्रति विशेष आस्था का प्रकटीकरण होता है। इसी आधार पर वह वङ्गवासी भी सिद्ध होता है। यथा–''विशेषणानाञ्चाजातेः''[109] सूत्रवृत्ति में वह ''वङ्गाजनपदो रमणीयः'' यह प्रत्युदाहरण, ''द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ''[110] सूत्रवृत्ति में ''पाश्चात्या गौड़ेभ्यः आढ्यतराः'' यह उदाहरण देता है।

[9] **सूत्रार्थव्याख्यान की समस्त-प्रक्रिया का निर्वाह**– सामान्यतः सूत्र के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये व्याकरणशास्त्र में पदच्छेद, पदार्थोक्ति, विग्रह,

वाक्ययोजना और पूर्वपक्ष-समाधान ये पाँच लक्षण स्वीकार किये जाते हैं। भाषावृत्ति के टीकाकार सृष्टिधर ने इन सूत्रार्थव्याख्यान के प्रकारों को अपनी टीका में निर्दिष्ट किया है–

''पदच्छेद: पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
पूर्वपक्षसमाधानं व्याख्यानं पञ्चलक्षणम्''॥[111]

भाषावृत्तिकार अपनी वृत्ति में सूत्रार्थव्याख्यान की उक्त समस्तप्रक्रिया का निर्वाह करता है। अत्यावश्यक स्थलों पर ही सूत्र के पदच्छेद, सूत्र की पदार्थोक्ति, सूत्र में समस्तपद का विग्रह और सूत्र के पूर्वपक्ष तथा समाधान का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त वह कतिपय सूत्रों में अनुवृत्ति के अधिकार को भी प्रदर्शित करता है। सूत्रव्याख्यान के पूर्वोक्त सभी प्रकारों का यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जाता है–

[9.1] **पदच्छेद** – पदच्छेद का अर्थ है–शब्द विभाग। भाषावृत्तिकार अपनी वृत्ति में सूत्रों को आसानी से समझने के लिये कतिपय सूत्रों में पदच्छेद करता है। यथा–

''गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्''[112] सूत्रस्थ गाण्ड्यजगात् शब्द में दो प्रकार का पदच्छेद सम्भव है–गाण्डी+अजगात् और गाण्डि+अजगात्। भाषावृत्तिकार उक्त शब्द में दीर्घान्त गाण्डी शब्द का पाठ स्वीकार करता है लेकिन जयादित्य दीर्घान्त और ह्रस्वान्त उभयविध गाण्डी शब्द का। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्रस्थ ''गाण्ड्यजगात्'' शब्द के पदच्छेद के सम्बन्ध में दोनों आचार्यों में मतभेद परिलक्षित होता है। इसी प्रकार वह ''ॠदोरप्''[113] सूत्र में ''ॠद् ओ: अप्'' यह पदच्छेद करता है।

[9.2] **पदार्थोक्ति**–पदार्थोक्ति का अर्थ है–शब्द के अर्थ का कथन। भाषावृत्तिकार कतिपय सूत्रों के ऐसे पदों के अर्थ को भी निर्दिष्ट करता है जिनका अर्थ विवादास्पद है। यथा–

''आकर्षात् ष्ठल्''[114] सूत्र की वृत्ति में वह ''आकर्ष:'' इस शब्द का ''निकषोपल'' यह अर्थ देता है। इसी प्रकार ''कुटीशमीशुण्डाभ्यो र:''[115] सूत्र की वृत्ति में वह एके के मत में ''कुटी'' इस पद का ''मृतशरीरम्'' यह अर्थ प्रस्तुत करता है। यहाँ यह अवधेय है कि इन शब्दों के अनेक अर्थ हैं लेकिन यहाँ उनका यही अर्थ अभिमत है।

[9.3] **विग्रह–** विग्रह से अभिप्राय है–समस्तपद में विग्रह करना या शब्द का निर्वचन करना। भाषावृत्तिकार कतिपय सूत्रों के समस्तपदों में विग्रह भी करता है। इसी प्रकार वह कतिपय सूत्रों में पठित शब्द का निर्वचन भी प्रस्तुत करता है। यथा–

''प्रथमयो: पूर्वसवर्ण:''[116] सूत्र की वृत्ति में वह ''प्रथमयो:'' समस्तपद का ''प्रथमाद्वितीययो:'', ''ईदग्ने: सोमवरुणयो:''[117] सूत्र की वृत्ति में ''सोमवरुणयो:'' समस्तपद का ''सोमे वरुणे च'' यह विग्रह निर्दिष्ट करता है। वह ''भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयो:''[118] सूत्र की वृत्ति में ''भुज'' शब्द का ''भुज्यतेऽनेनेति भुज:'' यह निर्वचन तथा भुज: का अर्थ पाणि उल्लिखित करता है।

[9.4] **वाक्ययोजना–** वाक्ययोजना से तात्पर्य है–वाक्य के निर्माण करने का उपाय। भाषावृत्तिकार वाक्य बनाते समय कर्त्ता, कर्म, क्रिया इत्यादि सभी बातों का ध्यान रखता है। इसके अतिरिक्त वह कतिपय सूत्रों में पठित शब्दों का विग्रह करता है। वह कतिपय सूत्रों में पठित शब्दों के स्थान पर पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करता है तथा कतिपय सूत्रों में पठित शब्दों के स्थान पर सर्वनाम शब्दों को निर्दिष्ट करता है। यथा–''मुखनासिकावचनोऽनुनासिक:''[119] सूत्र की वृत्ति में वह वाक्य बनाते समय ''मुखनासिका'' समस्तपद में ''मुख सहितया नासिकया'' यह विग्रह कर, ''वचन:'' के स्थान पर ''वर्ण:'' इस शब्द का निर्देश तथा विधिलिङ्लकार के स्यात् क्रियापद का प्रयोग करके निम्न प्रकार से वाक्य बनाता है–''मुखसहितया नासिकया यो वर्ण उच्चार्य्यते सोऽनुनासिकसंज्ञक: स्यात्''।

''उद: स्थास्तम्भो: पूर्वस्य''[120] सूत्र की वृत्ति में वह ''स्थास्तम्भो:'' इन शब्दों के स्थान में ''अनयो:'' सर्वनामशब्द का, ''पूर्वस्य'' के स्थान में ''आदे:'' इस पर्यायवाचीशब्द का तथा स्यात् क्रियापद का प्रयोग कर ''उद: परयोरनयोरादेरल: स्थाने पूर्वसवर्ण: स्यात्'' यह वाक्य बनाता है।

[9.5] **पूर्वपक्ष-समाधान–** पूर्ववक्ष से तात्पर्य है–प्रयोग की सिद्धि के सम्बन्ध में उठायी जाने वाली शङ्का तथा समाधान से तात्पर्य है–उस शङ्का का मान्य हल निकालना। भाषावृत्तिकार कतिपय प्रयोगों की निष्पन्नता के विषय में अतिसंक्षिप्त शङ्कायें उठाता है, तत्पश्चात् उन शङ्काओं का स्वयमेव अतिसूक्ष्म रीति से मान्य हल भी निर्दिष्ट करता है। यथा–

"क्ङिति च"[121] सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार मार्जन्ति तथा ममार्जुः प्रयोगों की सिद्धि कैसे होगी? यह शङ्का अभिव्यक्त करता है, पुनः "मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते" यह इष्टिवचन उद्धृत कर उक्त शङ्का का स्वयं निवारण कर देता है।

इसी प्रकार "विज इट्"[122] सूत्र वृत्ति में वह "उद्वेजिता" इस प्रयोग की सिद्धि कैसे? यह शङ्का उठाकर, पुनः "ण्यन्तात्" यह कहकर उसका समाधान बता देता है।

[9.6] **अनुवृत्ति**– अनुवृत्ति से अभिप्राय है–पूर्ववर्त्ती सूत्रों की वृत्ति का उत्तरवर्त्ती सूत्रों में पढ़ा जाना। भाषावृत्तिकार कतिपय सूत्रों में पठित वृत्ति के अधिकार को उत्तरवर्त्ती सूत्रों में भी स्वीकार करता है। यथा–"इको झल्"[123] सूत्र की वृत्ति में पठित झलादि शब्द की अनुवृत्ति वह उत्तरवर्त्ती नौ सूत्रों में स्वीकार करता है।

उपर्युक्त अध्याय में विवेचित विषयों से स्पष्ट होता है कि पुरुषोत्तमदेव अपनी वृत्ति में सङ्क्षेपीकरण की दृष्टि से अनेक विधियाँ अपनाता है। वह स्वपूर्ववर्त्ती अनेक आचार्यों के सन्देहास्पद सूत्रार्थ को सप्रयोजन निर्दिष्ट करता है। वह सूत्रार्थविषय में कतिपय स्थलों पर परमत का खण्डन तथा स्वमत की स्थापना भी करता है तथा कतिपय प्रयोगों को सूत्र, वार्तिक तथा इष्टिवचन द्वारा अनिष्पन्न जानकर "चिन्त्य" शब्द द्वारा खण्डित कर देता है। वह कतिपय स्थलों पर स्वमत की पुष्टि हेतु अन्य आचार्यों के मतों को उद्धृत करता है।

वह व्याकरण के सम्बन्ध में ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के मत-मतान्तरों को प्रस्तुत करता है। वह अपनी वृत्ति में सरसता तथा सरलता लाने हेतु काव्यादिग्रन्थों के श्लोक तथा लोकप्रचलित शब्दों को सूत्रोदाहरण के रूप में प्रयोग करता है। वह स्वकीय मत की श्रेष्ठता और प्रसार करने के लिये बौद्धमत में प्रतिष्ठित शाब्दिक प्रयोगों को उदाहरणों के रूप में निर्दिष्ट करता है। वह स्थानवाचक शब्दों का उदाहरणों के रूप में प्रयोग करता है जिनसे उसकी बङ्गाल के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है। वह सूत्रार्थव्याख्यान की समस्तप्रक्रिया का निर्वाह करता है तथा सूत्रों में अनुवृत्ति का उल्लेख भी करता है। भाषावृत्ति की भाषा सरल, सुबोध और परिमार्जित है। इसमें समस्तपदों के प्रयोग से भी जटिलता नहीं पायी जाती है। यह अष्टाध्यायी के सूत्रों की अतिलघु व्याख्या है।

---

1. काशि. 3.3.56
2. सु.सू. 3.12 ''सूचनात् सूत्रणाच्चैव...सूत्रस्थानं प्रचक्षते''। ''सूचयति सूते सूत्रयति वा सूत्रम्''। दुर्गसिंह, कात.वृ.टी., परिशि. पृ.469, अभि.चि. 2.254, पृ. 65 ''सूत्रं सूचनकृत्''।
3. का.मी. पृ. 20, वृ.भा.वृ.पृ. 16–
''स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं शास्त्रविदो विदु:''॥
4. भा.वृ. परिशि.परि.सं. 95
5. म.भा.दीपि. 1.1.45, पृ.221
6. काशि. 5.1.50
7. भा.वृ. 8.3.90
8. श.क.द्रु., चतु.भा.पृ. 352 ''उक्तानुक्तदुरुक्तार्थचिन्ताकारि तु वार्त्तिकम्''। अभि.चि., हेमचन्द्र 2.256, पृ.65 ''उक्तानुक्तदुरुक्तार्थचिन्ताकारि तु वार्त्तिकम्''।
9. भा.वृ. 4.1.99
10. भा.वृ. 4.1.104
11. भा.वृ. 3.3.17
12. भा.वृ. 2.4.7
13. प्रकि.कौ.वि.पृ.5; प्र. अध्या.
14. पद मं. प्र.भा. पृ. 3, पं. 24–''आक्षेपसमाधानपरो ग्रन्थो भाष्यम्''। का.मी.पृ. 20 ''आक्षिप्य भाषणात् भाष्यम्''। अभि. चि. 2.254 पृ.65 ''भाष्यं सूत्रोक्तार्थप्रपञ्चकम्''।
15. म.भा. परस्पशा. प्र.आ. 1.1.1
16. म.भा. 1.1.1
17. म.भा. 3.1.38
18. म.भा. 6.1.3
19. म.भा. 6.1.3
20. वही 3.1.14
21. काशि.प्रारम्भ श्लो. 1, 2–
''वृत्तौ भाष्ये तथा धातुनामपारायणादिषु।
विप्रकीर्णस्य तन्त्रस्य क्रियते सारसङ्ग्रहः॥
इष्ट्युपसंख्यानवती शुद्धगणा विवृतगूढसूत्रार्था।
व्युत्पन्नरूपसिद्धिर्वृत्तिरियं ''काशिका'' नाम''॥
22. काशि. 1.2.51
23. काशि. 1.2.52
24. काशि. 1.2.53=1.2.54, 56, 57
25. काशि. 7.3.95
26. वही 7.2.17

27. वही 3.1.11
28. वही 6.1.117
29. काशि. 5.4.57
30. काशि. 4.4.135
31. काशि. 5.1.50
32. वही 3.1.14
33. वही 8.4.42
34. तु. कीजियेगा भा.वृ. 1.1.1, 1.1.2=काशि. 1.i.1., 1.1.2 सूत्रवृत्ति।
35. वही, 3.1.30, 5.1.6=वही 3.1.30, 5.1.6 सूत्रवृत्ति
36. वही 3.1.112, 8.3.90=वही 3.1.112, 8.3.90 सूत्रवृत्ति
37. तु. कीजियेगा भा.वृ. 1.2.50, 1.1.1, 1.1.12=काशि, 1.2.50, 1.1.1, 1.1.12 सूत्रवृत्ति।
38. तु. कीजियेगा भा.वृ. 1.1.41, 1.2.47=काशि. 1.1.41, 1.2.47 सूत्रवृत्ति।
39. तु. कीजियेगा भा.वृ. 1.1.24, 25, 1.1.42, 43, 1.2.70, 71=काशि. 1.1.24, 25, 1.1.42, 43, 1.2.70, 71.
40. तु. कीजियेगा भा.वृ. 1.1.26, 1.1.29, 3.1.25=काशि. 1.1.26, 1.1.29, 3.1.25
41. वही 1.1.65, 6.1.112=वही 1.1.65, 6.1.112
42. तु. कीजियेगा भा.वृ. 7.2.97, 8.3.5=काशि. 7.2.97, 8.3.5
43. वही 6.3.109=वही 6.3.109
44. वही 1.1.13, 6.1.83=काशि, 1.1.13, 6.1.83
45. तु. कीजियेगा भा.वृ. 4.2.92=काशि. 4.3.92
46. भा.वृ. 2.4.74
47. भा.वृ. 6.3.35
48. वही, 3.2.16, 6.3.34, 6.4.69, 74
49. तु. कीजियेगा भा.वृ. 3.1.96=काशि. 3.1.96
50. भा.वृ. 1.3.7
51. वही 2.4.74
52. भा.वृ. 1.2.6, 1.4.3, 2.3.5, 3.1.87, 96, 3.2.56, 69, 87, 178; 3.3.15, 57; 3.4.42; 4.1.13; 93; 5.1.59; 5.2.95, 121, 135; 5.3.71; 106; 5.4.7, 124; 6.1.64, 65, 96, 144; 6.3.35, 99, 109; 6.4.66, 127-128; 7.3.105; 8.2. 8, 78; 8.3.5; 41.
53. वही 1.3.21; 2.2.16; 3.1.16
54. वही 3.2.75; 4.2.138; 6.1.3; 6.3.85; 7.2.67-69; 7.3.94.
55. वही 4.2.38, 92, 138; 4.3.23; 4.4.101; 5.1.57, 125, 126, 132; 5.2.13, 81, 107, 110; 5.3.12, 60-61; 5.4.5, 75, 122, 124, 145, 151; 6.3.70, 84-85, 137; 7.2.75; 8.3.5, 118.
56. वही 1.4.3; 2.4.74; 3.2.188; 3.3.56; 3.4.18, 46; 4.2.38, 92; 4.3.23; 5. 1.125, 132; 5.2.13, 112;

6.1.144; 6.3.85, 137; 7.2.75; 7.3.94.

57. वही 1.3.21; 1.4.7; 3.2.106-107; 3.3.99.

58. भा.वृ. 1.1.41

59. वही 2.3.67

60. वही 4.1.38

61. वही 5.2.110

62. वही 8.2.55

63. वही 6.3.3

64. वही 4.3.144

65. भा.वृ. 1.4.6; 3.1.11, 23, 25, 35; 3.2.29; 3.3.19; 4.1.18, 94, 155, 175; 4.4.76; 5.1.13, 20; 5.4.42; 119; 6.1.49, 73, 144; 8.1.12.

66. वही 5.3.117; 6.1.63; 8.4.47.

67. वही 3.1.11; 3.2.75; 136; 3.3.99; 4.1.123; 4.2.132; 4.4.60, 78; 5.3.102; 6.1.63; 6.4.6; 19, 92, 140, 174; 7.1.72; 7.2.90; 113; 7.3.19, 105; 7.4.93; 8.1.4; 8.2.18, 25, 55; 8.3.98; 8.4.47.

68. वही 3.3.108; 4.1.38; 4.4.60; 78; 5.3.109; 6.1.63; 6.4.174; 7.4.47; 8.2.55, 62; 8.4.47.

69. वही 2.2.31; 2.4.54; 3.1.11; 4.1.172; 6.1.63; 7.2.73; 7.4.92; 8.4.47.

70. वही 3.1.137; 3.3.82; 6.1.94; 144; 6.3.51; 6.4.11, 74; 8.3.42

71. वही 3.1.56

72. भा.वृ. 6.4.74

73. रामा.बा.का. 2.15.

74-74. भा.वृ. 1.4.67, महा. 6.114.46 तथा 6.114.53

75-75. भा.वृ. 2.3.26, रघु. 2.47

76-76. भा.वृ. 5.2.20, रघु. 6.81

77-77. भा.वृ. 5.4.78, रघु. 1.63

78-78. भा.वृ. 6.4.38, कुमार. 5.53

79-79. भा.वृ. 5.4.37, कुमार. 1.10

80-80. भा.वृ. 4.3.15, भट्टि. 2.33

81-81. वही 3.2.130, वही 5.63

82-82. वही 3.1.27, वही 2.38

83-83. भा.वृ. 3.3.42, भट्टि. 7.42

84-84. वही 3.3.5, वही 18.35

85-85. भा.वृ. 3.3.31, किरात. 4.25

86-86. वही 3.1.119, वही 2.5

87-87. वही 5.2.121, वही 1.32

88-88. वही 5.4.64, शिशु. 2.11

89-89. वही 5.1.9, वही 1.41
90-90. वही 1.3.24, वही 1.12
91-91. वही 3.4.36, वही 2.33
92. भा.वृ. 8.3.47
93-93. वही, 3.2.161, काव्यालङ् 2.27
94-94. वही 5.4.61, महिम्न. 22
95-95. वही 3.3.173, सूर्य. 2
96. वही 6.4.74
97. रामा. बा.का. 2.15
98-98. भा.वृ. 4.3.40, शिशु. 10.60
99. भा.वृ. 3.2.78
100. भा.वृ. 3.2.180
101. वही 3.3.106
102. वही 3.3.126
103. वही 8.3.89
104. वही 8.3.111
105. वही 2.1.57
106. वही 1.3.22
107. भा.वृ. 2.1.9
108. वही 2.3.31
109. वही 1.2.52
110. वही 5.3.57
111. वृ.भा.वृ. भूमि. पृ.16
112. भा.वृ. 5.2.110
113. वही 3.3.57
114. वही 4.4.9
115. वही 5.3.88
116. भा.वृ. 6.1.102
117. वही 6.3.27
118. वही 7.3.61
119. वही 1.1.8
120. भा.वृ. 8.4.61
121. वही 1.1.5
122. वही 1.2.2
123. वही 1.2.9

चतुर्थ अध्याय

4. भाषावृत्ति का पञ्चाङ्ग रूप

संस्कृतव्याकरणशास्त्र के पाँच अङ्ग स्वीकार किये जाते हैं–सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ और लिङ्गानुशासन। इन पाँचों अङ्गों से समन्वित व्याकरण को ही पूर्णव्याकरण की संज्ञा दी जाती है। महर्षि पाणिनि ने उक्त व्याकरणिक पाँचों अङ्गों का पाठ किया है जो पाणिनिकृत पञ्चाङ्ग व्याकरण के नाम से अभिहित किया जाता है।

भाषावृत्तिकार ने भी उक्त पाणिनिकृत व्याकरणिक पाँचों अङ्गों का उल्लेख भाषावृत्ति में किया है। इनमें से गणपाठ, धातुपाठ और लिङ्गानुशासन को भाषावृत्ति के परिशिष्टों में अलग से भी पढ़ा गया है। प्रस्तुत अध्याय में भाषावृत्तिस्थ पाणिनीयव्याकरणिक पञ्चाङ्ग तथा व्याकरणशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध पाणिनीयव्याकरणिक पञ्चाङ्ग का विवेचन तथा तुलना प्रस्तुत की जायेगी।

4.1 भाषावृत्ति तथा उसका पाठ–

अजमेरस्थ वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित महर्षि पाणिनिकृत ''अष्टकं पाणिनीयम्'' में सूत्रों की कुल संख्या 3963 उल्लिखित हुई है। इन सूत्रों में लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र विन्यस्त हुये हैं। योगविभाग तथा महाभाष्यस्थ कतिपय वार्त्तिकों को सूत्र के रूप में विन्यस्त करने के कारण भाषावृत्ति में सूत्रों की संख्या 3983 पायी जाती है। इसके अतिरिक्त भाषावृत्ति के अनेक सूत्रों में पाठभेद भी पाया जाता है। इस पाठभेद के मुख्य चार कारण हैं–[1] सूत्रों का योगविभाग [2] महाभाष्यस्थ वार्त्तिकों का सूत्ररूप में निर्देश [3] सूत्रों में महाभाष्य के वार्त्तिकों का प्रक्षेप तथा [4] कतिपय सूत्रों में शब्द तथा शब्दांश के स्वरूप में परिवर्तन।

[1] **सूत्रों का योग विभाग**– भाषावृत्ति ने अष्टाध्यायी के नौ सूत्रों में योगविभाग स्वीकार किया है। इन सूत्रों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

क्रमा०	अ.पा. सूत्राङ्क	अष्टकं पाणिनीयम् का सूत्रपाठ	भा.वृ. सूत्राङ्क	भाषावृत्ति का सूत्रपाठ
1.	1.1.17	उञ ऊँ	1.1.17 1.1.18	उञः ऊँ
2.	1.4.58	प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे	1.4.58 1.4.59	प्रादयः उपसर्गाः क्रियायोगे
3.	2.1.11	विभाषापपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या	2.1.11 2.1.12	विभाषा अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या
4.	6.1.32	ह्वः सम्प्रसारणमभ्यस्तस्य च	6.1.32 6.1.33	ह्वः सम्प्रसारणम् अभ्यस्तस्य च
5.	6.1.73	दीर्घात् पदान्ताद्वा	6.1.75 6.1.76	दीर्घात् पदान्ताद्वा
6.	6.2.107	उदाराश्वेषुषु क्षेपे	6.2.107 6.2.108	उदराश्वेषुषु क्षेपे
7.	6.3.7	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य	6.3.7 6.3.8	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य च
8.	7.3.118	औदच्च घेः	7.3.118 7.3.119	औत् अच्च घेः
9.	8.4.19	अनितेरन्तः	8.4.19 8.4.20	अनितेः अन्तः

यहाँ पूर्वोक्त इन नौसूत्रों के योगविभाग के विषय में ध्यातव्य है कि सर्वप्रथम यह योगविभाग काशिकाकार ने किया है तथा भाषावृत्तिकार, सिद्धान्तकौमुदीकार

इत्यादि ने इसको ज्यों का त्यों अपने-अपने ग्रन्थों में स्वीकार कर लिया है।

[2] **महाभाष्यस्थवार्त्तिकों का सूत्ररूप में निर्देश–** भाषावृत्तिकार ने काशिकाकार की तरह महाभाष्यस्थ नौ वार्त्तिकों को सूत्र के रूप में पढ़ा है। उक्त सूत्रों को रेखाचित्र द्वारा उल्लिखित किया जाता है–

क्रमा०	महाभाष्यस्थ वार्त्तिकाङ्क	महाभाष्यस्थ वार्त्तिक का स्वरूप	भा.वृ. में सूत्राङ्क	भाषावृत्ति में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	4.1.163	वृद्धस्य च पूजायाम्	4.1.166	वृद्धस्य च पूजायाम्
2.	4.1.162	जीवद्वंश्यञ्च कुत्सितम्	4.1.167	यूनश्च कुत्सायाम्[1]
3.	4.2.7	दृष्टं साम कलेर्ढक्	4.2.8	कलेर्ढक्
4.	4.3.131	कौपिञ्जलहास्तिपदादण्	4.3.132	कौपिञ्जलहास्तिपदादण्
5.	5.1.35	द्वित्रिपूर्वादण्च्	5.1.36	द्वित्रिपूर्वादण्च
6.	6.1.61	अचि शीर्ष:	6.1.62	अचि शीर्ष:
7.	6.1.99	नित्यमाम्रेडिते डाचि	6.1.100	नित्यमाम्रेडिते डाचि
8.	6.1.135	अड्व्यवाय उपसंख्यानम्, अभ्यासव्यवाये च	6.1.136	अडभ्यासव्यवायेऽपि
9.	6.3.5	आत्मनश्च पूरणे	6.3.6	आत्मनश्च पूरणे

पूर्वोक्त भाषावृत्ति के इन नौ सूत्रों के अतिरिक्त अष्टकं पाणिनीयम् में "आथर्वणिकस्येकलोपश्च"[2] और "कारस्करो वृक्ष:"[3] का सूत्र के रूप में पाठ नहीं है। यद्यपि उक्त दोनों सूत्रों में से प्रथम सूत्र महाभाष्य में है तथापि प्रदीपकार ने इसे अपाणिनीय बताया है।[4] उद्द्योतकार का कथन है कि हरदत्त भी प्रस्तुत सूत्र को वार्त्तिक ही स्वीकार करता है।[5]

सिद्धान्तकौमुदीकार भी उक्त सूत्र को वार्त्तिक के रूप में ही स्वीकार करता है।[6] द्वितीय सूत्र को महाभाष्य में "पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्"[7] सूत्र तथा

पारस्करादिगण में पढ़ा गया है जिसको भाषावृत्ति तथा काशिकावृत्ति ने सूत्र के रूप में स्वीकार किया है। यहाँ यह अवधेय है कि "कारस्करो वृक्षः" पाणिनिकृत सूत्र नहीं है।

[3] **सूत्रों में महाभाष्य के वार्त्तिकों का प्रक्षेप**– काशिकाकार ने पन्द्रह सूत्रों में महाभाष्यस्थ वार्त्तिकों का प्रक्षेप किया है। भाषावृत्तिकार ने भी काशिका का अनुसरण करते हुए भाषावृत्ति में उक्त प्रक्षेप को स्वीकार कर लिया है। यहाँ उन स्थलों का निर्देश प्रस्तुत किया जाता है जहाँ भाषावृत्ति में काशिका के आधार पर ही महाभाष्यस्थ वार्त्तिकों का सूत्र के रूप में प्रक्षेप किया गया है–

क्रमा०	अष्टकं पाणिनीयम् में सूत्र का स्वरूप	महाभाष्यस्थ में पठित वार्तिक	भाषावृत्ति में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	समोगम्यृच्छिभ्याम् [1.3.29]	समोगमादिषु विदिप्रच्छि स्वरतीनामुपसंख्यानम्, अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च [1.3.29]	समोगम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्त्ति श्रुविदिभ्यः [1.3.29]
2.	छन्दसि परेऽपि	छन्दसिपरव्यवहित-	छन्दसि परेऽपि,
3.	व्यवहिताश्च [1.4.80, 81]	वचनं च [1.4.79]	व्यवहिताश्च [1.4.81, 82]
4.	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः [3.1.118]	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि [3.1.118]	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि [3.1.118]
5.	आसुयुवपिरपिलपित्र पिचमश्च [3.1.126]	लपिदभिभ्यां च [3.1.124]	आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च [3.1.126]
6.	अध्यायन्यायोद्याव संहाराश्च (3.3.122)	घञ् विधाववहाराधा-रावायानामुपसंख्यानम् [3.3.121]	आध्यायन्यायोद्याव संहाराधारावायाश्च [3.3.122]

क्रमा०	अष्टकं पाणिनीयम् में सूत्र का स्वरूप	महाभाष्यस्थ में पठित वार्तिक	भाषावृत्ति में पठित सूत्र का स्वरूप
7.	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ् मात्रच्तयप्ठक्ठञ् कञ्क्वरप: [4.1.15]	ख्युन उपसंख्यानम् [4.1.15]	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम् [4.1.15]
8.	लाक्षारोचनाट्ठक् [4.2.2]	ठक्प्रकरणेशकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् [4.2.2]	लाक्षारोचनाशकलकर्दमाट्ठक् [4.2.2]
9.	ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् [4.2.42]	गजसहायभ्यां च [4.2.43]	ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल् [4.2.43]
10.	कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्वि: [5.4.50]	च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् [5.4.50]	अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्वि: [5.4.50]
11.	विष्किर: शकुनौ वा [6.1.145]	विष्किर: शकुनौ विकिरो वा [6.1.150]	विष्किर: शकुनिर्विकिरो वा [6.1.150]
12.	स्वाङ्गाच्चेत: [6.3.38]	स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि [6.3.40].	स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि [6.3.40]
13.	प्रकृत्याऽऽशिषि [6.3.81]	प्रकृत्याशिष्यगवादिषु [6.3.83]	प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु [6.3.83]
14.	पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्य: [8.1.67]	काष्ठादिभ्य: पूजनादिति वक्तव्यम् [8.1.67]	पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्य: [8.1.67]
15.	सदे: परस्य लिटि [8.3.118]	सदो लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसंख्यानम् [8.3.118]	सदिस्वञ्जो: परस्य लिटि [8.3.118]

[4] **सूत्रों के शब्द तथा शब्दांश के स्वरूप में परिवर्तन**– "अष्टकं पाणिनीयम्" में पाणिनि के जिन सूत्रों का निर्देश हुआ है। भाषावृत्ति में उनमें से ग्यारह सूत्रों में शब्दों तथा शब्दांशों के स्वरूप में अन्तर पाया जाता है। "अष्टकं पाणिनीयम्" की अपेक्षा भाषावृत्ति के जिन सूत्रों में उक्तविध परिवर्तन पाया जाता है उनका निर्देश यहाँ किया जाता है–

क्रमां.	अष्टकं पाणिनीयम् में सूत्र का स्वरूप	भाषावृत्ति में सूत्र का स्वरूप
1.	कृत्याः [3.1.95]	कृत्याः प्राङ् ण्वुलः[8] [3.1.95]
2.	दण्डादिभ्यो यत् [5.1.66]	दण्डादिभ्यो यः[9] [5.1.66]
3.	एतदोऽन् [5.3.5]	एतदोऽश् [5.3.5][10]
4.	इन्द्रे च [6.1.120]	इन्द्रे च नित्यम् [6.1.124]
5.	प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् [6.1.121]	प्लुतप्रगृह्या अचि [6.1.125]
6.	सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे [6.1.132]	सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे[11] [6.1.137]
7.	सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् [7.2.49]	सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्[12] [7.2.49]
8.	नामन्त्रिते समानाधिकरणे [सामान्यवचनम्] [8.1.73]	नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्[13] [8.1.73]
9.	विभाषितं विशेषवचने [8.1.74]	विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम्[14] [8.1.74]
10.	उपसर्गादनोत्परः [8.4.27]	उपसर्गाद् बहुलम्[15] [8.4.28]
11.	अ अ [8.4.67]	अ अ इति[16] [8.4.68]

इन पूर्वोक्त सूत्रों के अतिरिक्त कतिपय सूत्र ऐसे भी है जिनमें अष्टकं पाणिनीयम् तथा भाषावृत्ति में तो एक समान पाठ है परन्तु महाभाष्य तथा सिद्धान्तकौमुदी में पाठान्तर दृष्टिगोचर होता है। उक्त प्रकारक सूत्रों को रेखाचित्र द्वारा यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

भाषावृत्ति और महाभाष्य में सूत्रपाठभेद–

क्रमां०	भाषावृत्ति में पठित सूत्र का स्वरूप	महाभाष्य में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	प्रकृत्यान्त: पादमव्यपरे [6.1.115]	नान्त: पादमव्यपरे[17] [6.1.115]
2.	इषुगमियमाञ्छ: [7.3.77]	इषगमियमां छ:[18] [7.3.77]

भाषावृत्ति और सिद्धान्तकौमुदी में सूत्रपाठभेद–

क्रमां०	भाषावृत्ति में पठित सूत्र का स्वरूप	महाभाष्य या सिद्धान्तकौमुदी में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् [1.4.81]	दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्[19] [सि.को. सूत्राङ्क 1696]
2.	बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् [4.4.64]	बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ्[20] [सि.कौ. सूत्राङ्क 2208]
3.	न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटबुधकतरसलसेभ्य: [5.1.121]	न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्य:[21] [सि.कौ. सूत्राङ्क 2414]
4.	विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये [6.3.92]	विष्वग्देवयोश्च टेरद्रयञ्चतावप्रत्यये[22] [सि.कौ. सूत्राङ्क 560]

इसके अतिरिक्त "सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे" तथा "समवाये च" इन दोनों सूत्रों का जो अष्टकं पाणिनीयम् में पाठ है। इनमें से "समवाये च" के पाठ के सम्बन्ध में महाभाष्यकार का मत है कि "समवाये च" सूत्र के अलग से पाठ करने की आवश्यकता नहीं है। महाभाष्यकार के उक्त मत की पुष्टि महाभाष्य के निम्नवचन से हो जाती है–"इह सम्परिभ्यां भूषणसमवाययोः करोतावितीहैव स्यात्.."।[23]

उक्त प्रकारक सूत्र भेद के अतिरिक्त कतिपय सूत्र भाषावृत्ति में ऐसे भी पठित हैं जिनमें "अष्टकं पाणिनीयम्" में पठित ड के स्थान में ड़ और ढ के स्थान में ढ़ वर्ण का निर्देश पाया जाता है।[24] इसके अतिरिक्त भाषावृत्ति के कतिपय सूत्रों में अशुद्धपाठ भी पाया जाता है। यथा–कत्वातोसुन्क्वसुनः,[25] कणेमनसी श्रद्धाप्रतिघाते,[26] मन्त्रेघ्वसहव्‌रणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः।[27] इन उक्त सूत्रों का शुद्धपाठ यह है–कत्वातोसुन्कसुनः, कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते, मन्त्रेघसह्व-रणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः। इन उक्त सूत्रों की शुद्धता के सम्बन्ध में भाषावृत्तिकार की सूत्रवृत्ति तथा व्याकरणिक नियम ही प्रमाण हैं।

4.2 भाषावृत्ति तथा उसका गणपाठ–

पाणिनीय अष्टाध्यायी में गणपाठ का विशिष्ट स्थान है। गण का अर्थ है–समूह तथा पाठ का अर्थ है–पढ़ना। इन दोनों शब्दों का समन्वित अर्थ है–समूह का पाठ करना। दूसरे शब्दों में गणपाठ का अर्थ है–समूह का बोधक शब्द।

पाणिनि कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक शब्दों का ज्ञान लोक को प्रस्तुत करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में वह गागर में सागर भरने की इच्छा रखते थे अतः उन्होंने अनेक शब्दों के पाठ करने की अपेक्षा अनेक शब्दों के साथ आदि, प्रभृति और आदिनाञ्च इत्यादि शब्दों को जोड़कर उन्हें अनेक शब्दों का परिचायक बना दिया। ये शब्द ही व्याकरणशास्त्र में गण के नाम से अभिहित किये जाते हैं। आचार्य पाणिनि की तरह वार्तिककार कात्यायन ने भी वार्तिकों में गणों का पाठ किया है। आचार्य पाणिनि का गणपाठ "सूत्रगणपाठ" तथा वार्तिककार कात्यायन का गणपाठ "वार्तिकगणपाठ" के नाम से प्रसिद्ध है।

वर्तमान में उपलब्ध पाणिनीय अष्टाध्यायी के 3963 सूत्रों से सम्बन्धित गणों की कुल संख्या 238 है[28] तथा कात्यायन के वार्त्तिकों की संख्या 38 है। भाषावृत्तिकार ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के केवल 212 सूत्रसम्बन्धीगणों को तथा केवल 34 वार्त्तिकों को भाषावृत्ति की दृष्टि से उपयुक्त बताया है। उक्त द्विविध सूत्रसम्बन्धीगणों तथा वार्त्तिकगणों को दो भागों में विभक्त किया गया है–[1] नियतगण और [2] आकृतिगण।

[1] **नियतगण**– जिस गण में शब्दों की संख्या नियत होती है उसे नियतगण कहते हैं। यथा–सर्वादि, प्रादि और श्रमणादि। यह गण भी द्विविध रूप में विभक्त हैं–[1.1] सूत्रसम्बन्धी नियतगण और [1.2] वार्त्तिकसम्बन्धी नियतगण।

[1.1] **सूत्रसम्बन्धी नियतगण**– जिस गण का निर्देश सूत्रों में किया जाता है तथा जिसमें पठित शब्दों की संख्या नियत होती है उसे सूत्रसम्बन्धी नियतगण कहते हैं। भाषावृत्ति में इन गणों की कुल संख्या 176 है। इनमें से 29 गणों में पठित शब्द तथा उनकी संख्या अष्टाध्यायी के समान ही है लेकिन अवशिष्टगण नियतगण होने पर भी उनमें पठित शब्दों के स्वरूप और संख्या में पाणिनीज ग्रामेटिक में निर्दिष्ट अष्टाध्यायी गणपाठ की तुलना में किञ्चिद् भिन्नता पायी जाती है। पाणिनीज़ ग्रामेटिक गणपाठ की अपेक्षा भाषावृत्तिस्थ गणपाठ में जो वैषम्य पाया जाता है उसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है [1.1.क] भाषावृत्ति तथा पाणिनीजग्रामेटिक के गणपाठान्तर्गत शब्दों के स्वरूप में भेद तथा [1.1.ख] भाषावृत्ति तथा पाणिनीज़ ग्रामेटिक के गणपाठान्तर्गत शब्दों तथा उनकी संख्या में भेद।

[1.1.क] **भाषावृत्ति तथा पाणिनीज़ ग्रामेटिक के गणपाठान्तर्गत शब्दों के स्वरूप में भेद**– भाषावृत्तिस्थ 78 गणपाठ ऐसे हैं जिनमें पठित कतिपय शब्दों का स्वरूप पाणिनीज़ग्रामेटिक गणपाठ में पठित शब्दों के स्वरूप से किञ्चिद् भिन्न है। इस भिन्नता को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है–

क्र०	गण नामोल्लेख	भा० वृ० में गण सूत्र संख्या	भाषावृत्तिगण पाठान्तर्गत शब्द स्वरूप	पाणिनीज ग्रामेटिक में गण संख्या	पाणिनीज ग्रामेटिक गणपाठान्तर्गत शब्द स्वरूप
1.	ऊर्यादि:	1.4.61	शंसकला, गुलगुधा, सजुस्, फल, औषट्।	31	संशकला, गुलुगुधा सजूष् [सजू:], फल [फलू], वौषट्
2.	राजदन्तादि:	2.2.31	आरग्वायनबन्धकि, केशश्मश्रू।	194	आरग्वायकबन्धकी केशश्मश्रु [श्मश्रुकेशौ]।
3.	तौल्वल्यादि:	2.4.61	वैमति, बैकर्णि।	110	दैवमति, वैकर्णि।
4.	यस्कादि:	2.4.63	उत्काम, क्रोष्टुकमान।	184	उत्कास, क्रोष्टुमान।
5.	तिककितवादि:	2.4.68	उत्तरशलङ्खटा:, भ्राष्ट्ककपिष्ठला:, अग्निवेशदासेर का:	104	उत्तरशलङ्कटा:, भ्रष्टककपिष्ठला:, अग्निवेशदशेरका:।
6.	उपकादि:	2.4.69	कुषीणक,जटिरक, पिञ्जूल, जपजग्ध।	29	कुषीतक, जटिलक, पिञ्जूलक [पिञ्जल] अपजग्ध।
7.	भृशादि:	3.1.12	संसत्।	174	संश्चत्।
8.	ग्रहादि:	3.1.134	निश्रावी।	83	मिश्रावी।
9.	लोहितादि:	4.1.18	मण्ढु, शङ्ख, पुहलु, आलिगु।	71	मण्डु, शङ्कु [शङ्क], गुहलु [गुलु], अलिगु।
10.	गौरादि:	4.1.41	मेकय, ऋष्य, कारण, फर्कर, कर्करक, आथक, मेघ, मयत्।	82	मुकय, ऋश्य, काकण, कर्कर, फर्करक, आढक, मेथ, महत्।
11.	क्रौड्यादि:	4.1.80	चौठयत।	67	चैटयत [वैटयत]।

12.	उत्सादि:	4.1.86	त्रिष्टुप्, अनुष्टुभ्	26	त्रिष्टुभ्, अनुष्टुभ्।
13.	कुञ्जादि:	4.1.98	शुण्ड।	53	शुण्डा।
14.	नड़ादि:	4.1.99	उशक, द्विप, फातल।	125	उपक, द्वीप, कातल।
15.	हरितादि:	4.1.100	सृपाकु, पुनर्भु	164	सुपाकु, पुनर्भू।
16.	बिदादि:	4.1.104	कुचवार।	164	कूचवार।
17.	अश्वादि:	4.1.110	वाग्ग्मिन्, धर्म	15	वाग्मिन्, धर्म्य [मन]
18.	रेवत्यादि:	4.1.146	चामग्राह।	198	चामरग्राह।
19.	कुर्वादि:	4.1.151	एड़का, श्यावरय, शावपुत्र, शङ्गु, शालिन्	58	एरका [एरक], श्यावरथ, श्यावपुत्र, शङ्कु, शाकिन्।
20.	तिकादि:	4.1.154	गौकक्ष, कोख्य, आरब्ध, बाह्यक	103	गौकक्ष्य, कौरव्य, आरद्ध [आरटव] वह्यका।
21.	वाकिनादि:	4.1.158	कार्कश।	210	कार्कष [कार्कट्य]
22.	यौधेयादि:	4.1.178	शौभ्रेय	189	शौभ्रेय [ग्रावाणेय]।
23.	भिक्षादि:	4.2.38	चर्णिन्।	170	चर्मन् [चर्मिन्]।
24.	पाशादि:	4.2.49	पोट।	141	पोत।
25.	भौरिक्यादि:	4.2.54	मौलिकी।	175	भौलिकि।
26.	ऐषु कार्य्यादि:	4.2.54	सोवीरायण, शपण्ड, शयाण्डि।	34	सौवीरायण, शापण्डायन, सायण्डि।
27.	संकलादि:	4.2.75	उद्वेष, कूलात, गवेश अन्,	236	उद्वेप [उद्वप], कूलास, गवेष, आन्।
28.	अरीहणादि:	4.2.80	वैमतायण,	11	वैमतायन

			क्रौन्दायन		[वैमत्तायन], क्रौन्दायण
29.	ऋश्यादि:	4.2.80	नियात।	33	निवात।
30.	कुमुदादि:	4.2.80	शकरा, यवास।	55	शर्करा, यवाष।
31.	काशादि:	4.2.80	गुह, सौपाल।	47	गुहा, शीपाल।
32.	तृणादि:	4.2.80	वरण।	110	वराण
33.	प्रेक्षादि:	4.2.80	प्रेक्षा, बक्कट, पुल।	156	प्रेक्षका, इक्कट [इर्कुट], पुक।
34.	अश्मादि:	4.2.80	गह।	14	गह्व।
35.	सख्यादि:	4.2.80.	चीर, सपक।	235	वीर, सराक [सकर]
36.	संकाशादि:	4.2.80	कपिल, चिरन्तन।	237	कम्पिल, विरत [चिरन्त, बिरत]।
37.	बलादि:	4.2.80	बट।	160	वट।
38.	पक्षादि:	4.2.80	पथः, सहक, हंस।	132	पथिन् [पान्थायन] सकल [सलक], हंसक [हंसका]
39.	कर्णादि:	4.2.80	जैव।	42	जव।
40.	सुतंगमादि:	4.2.80	खड़ण्डत।	248	खण्डिन।
41.	प्रगद्यादि:	4.2.80	कवित, भडार।	150	कविल [कलिव] मडार [मार्जार]।
42.	वराहादि:	4.2.80	बलाहक, निभग्न	207	बलाह, विभग्न।
43.	मध्वादि:	4.2.86	समी, कड।	176	शमी, खड [खडा]।
44.	उत्करादि:	4.2.90	वातारगार	25	वातागर।
45.	नद्यादि:	4.2.97	शाल्व, वाड़वाया वृषे	147	शाल्वा [साल्वा], वडबाया वृषे

46.	कण्वादि:	4.2.111	मन्त्रित, भिषज।	71	मन्त्रित, भिष्णज।
47.	काश्यादि:	4.2.116	वेदि।	48	बैदी।
48.	धूमादि:	4.2.127	मद्रकस्थली, द्वयाहव, त्र्याहव, संस्फाय।	124	मद्रुकस्थली, द्वयाहाव, त्र्याहाव, संस्फीय [संहीय]
49.	परिमुखादि:	4.3.59	उपस्थूण, अनुसीत।	(कपिल०) 4.3.59	उपस्थूल, अनुशीत।
50.	सिध्वादि:	4.3.93	मधु।	[पा० ग्रा०] 245	मधुमत्।
51.	शौनकादि:	4.3.106	शानेय, कठशाट, तण्ड।	232	शापेय [सांपेय], कठशाठ, दण्ड।
52.	कुलालादि:	4.3.118	चाण्डाल, सिरिध्रि, वध्रू	59	चण्डाल, सिरिध्र, वधू।
53.	रैवतिकादि:	4.3.131	औदमेधि।	199	औदमेघि [औदमेयि]।
54.	पलाशादि:	4.3.141	पुलाक।	137	पूलाक।
55.	हरीतक्यादि:	4.3.167	नखरञ्जनी।	260	नखरजनी [नखररजनी]।
56.	उत्सङ्गादि:	4.4.15	उत्पन्न।	27	उत्पपन्न।
57.	भस्त्रादि:	4.4.16	मरण।	169	भरण [भारण]।
58.	अक्षद्यूतादि:	4.4.19	यातायात	2	यातोपयात।
59.	छत्रादि:	4.4.62	पपस्, पुरोहा, विहा।	90	तपस्, प्ररोह [पुरोह], विक्षा।
60.	प्रतिजनादि:	4.4.99	परकूल।	152	परकुल।

61.	गुड़ादि:	4.4.103	सङ्क्रम।	75	सङ्क्राम।
62.	अपूपादि:	5.1.4	अभ्रोष, यूष।	9	अभ्योष, यूप
63.	संतापादि:	5.1.101	संयाम।	238	संग्राम।
64.	दृढ़ादि:	5.1.123	चुक्र, कष्ट।	118	चक्र, कृष्ट [आकृष्ट]।
65.	मनोज्ञादि:	5.1.133	अमुष्यपुत्र।	177	अमुष्यपत्र।
66.	विमुक्तादि:	5.2.61	दशार्ह।	212	दशाह।
67.	गोषदादि:	5.2.62	देवींधीय कृशाकु।	80	देवीं [दैवीं] धिय, धिया [धियम्], कृशानु [दृशान]।
68.	आकर्षादि:	5.2.64	अचय, हाद।	18	आचय, ह्लाद।
69.	इष्टादि:	5.2.88	अवहित।	22	अवधान।
70.	ब्रीह्यादि:	5.2.116	मेखल।	सि.कौ. 5.2.116	मेखला
71.	सुखादि:	5.2.131	आस्र, कृच्छ्।	पा.ग्रा. 247	[आम्र], कृच्छ्र।
72.	बलादि:	5.2.136	शूल।	161	सुल।
73.	देवपथादि:	5.3.100	शङ्कुपथ, वामरज्जु:।	119	शङ्कपथ, वायरज्जु [चामररज्जु]।
74.	दामन्यादि:	5.3.116	भौञ्जायनि।	114	मौञ्जायन।
75.	यौधेयादि:	5.3.117	धौर्तेय।	190	धार्तेय।
76.	यावादि:	5.4.29	सान्द्र।	186	लान्द्र।
77.	प्रियादि:	6.3.34	अबला।	155	वामना।
78.	अजिरादि:	6.3.119	हंसक, कारण्ड।	5	हंस, कारण्डव [हंसकारण्डव]।

[1.1.ख] **भाषावृत्ति तथा पाणिनीज़ ग्रामेटिक के गणपाठान्तर्गत शब्दों तथा उनकी संख्या में भेद**– भाषावृत्ति तथा पाणिनीज़ ग्रामेटिक के गणपाठान्तर्गत शब्दों तथा उनकी संख्या में भी भेद दृष्टिगोचर होता है। भाषावृत्ति के गणपाठ में कुछ ऐसे शब्द पठित हुए हैं जिनका पाणिनीज़ ग्रामेटिक के गणपाठ में निर्देश नहीं पाया जाता है। ऐसे शब्दों की संख्या 51 है। इस भेद को नीचे रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है–

क्र०	गणसूत्र	भा० वृ० में गणसूत्राङ्क	पा० ग्रा० गण संख्या	भाषावृत्ति में पठित परन्तु पाणिनीज ग्रामेटिक में अपठित शब्द	भाषावृत्ति में अतिरिक्त पठित शब्दों की संख्या
1.	ऊर्यादि:	1.4.61	31	सेवासी, पांपी।	2
2.	श्रेण्यादि:	2.1.59	234	विषय	1
3.	राजदन्तादि:	2.2.31	194	आरग्वायनि, गौपालिधानपूलासम।	2
4.	यस्कादि:	2.4.63	184	मथक, पुष्कर।	2
5.	उपकादि:	2.4.69	29	कृशकृत्स्न।	1
6.	लोहितादि:	4.1.18	71	शंसित, कपिकत।	2
7.	शाङ्र्गखादि:	4.1.73	227	काप्य।	1
8.	नड़ादि	4.1.99	125	कुश्यप, अमुष्म।	2
9.	हरितादि:	4.1.100	164	वह्यस्क, अर्कजूष, रचित।	3
10.	बिदादि:	4.1.104	164	ऋषिषेण।	1
11.	कल्याणादि:	4.1.126	44	अनुसृति।	1
12.	गृष्ट्यादि:	4.1.136	77	कुद्रि।	1
13.	कुर्वादि:	4.1.151	58	तक्षन्।	1

14.	तिकादि:	4.1.154	103	संज्ञाबालशिख, स्वल्पक	2
15.	भिक्षादि:	4.2.38	170	भरत।	1
16.	ऐषु कार्य्यादि:	4.2.54	34	वैश्वध्येनव।	1
17.	उक्थादि:	4.2.60	23	श्लक्ष, आयुर्वेद।	2
18.	संकलादि:	4.2.75	236	सुनव।	1
19.	सुवास्त्वादि:	4.2.77	249	सुवस्तु।	1
20.	अरीहणादि:	4.2.80	11	अहीरण, भलग, कौद्रायण	3
21.	कृशाश्वादि:	4.2.80	61	कुविद्या।	1
22.	ऋश्यादि:	4.2.80	33	अनडुह।	1
23.	सख्यादि:	4.2.80	235	समप।	1
24.	बलादि:	4.2.80	160	पुख, उलडुल।	2
25.	कर्णादि:	4.2.80	42	आकन।	1
26.	वराहादि:	4.2.80	207	शेरीष, पलाशा।	2
27.	कुमुदादि:	4.2.80	56	गोमथ।	1
28.	धूमादि:	4.2.127	124	मज्जाली।	1
29.	परिमुखादि:	4.3.59	कपिल० 4.3.59	अनुसाय, अनुपद, प्रतिशाख।	3
30.	पुरोहितादि:	5.1.128	पा० ग्रा० 144	बालमन्द, रूपिक।	2
31.	सुखादि:	5.2.131	247	कठिन।	1
32.	पुष्करादि:	5.2.135	146	कल्लोल।	1
33.	दामन्यादि:	5.3.116	144	सावित्री।	1
34.	स्थूलादि:	5.4.3	251	माषेषु।	1
35.	यावादि:	5.4.29	186	कुमार क्रीड़नकानि।	1
					51

[1.1.ग] **भाषावृत्तिस्थ गणपाठों में अपठित पाणिनीज़ ग्रामेटिक में पठित अष्टाध्यायी के गणपाठीय शब्द–** भाषावृत्ति में उक्त प्रकारक गणों के अतिरिक्त कतिपय ऐसे गण भी हैं जिनमें कतिपय उन शब्दों का उल्लेख नहीं है। जिनका उल्लेख पाणिनीज़ ग्रामेटिक के गणपाठ में पाया जाता है। ऐसे गणों की संख्या 84 है तथा शब्दों की संख्या 394 है। उक्त भेद को नीचे रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है–

क्र०	गणसूत्र	भा० वृ० में गणसूत्राङ्क	पा० ग्रा० में गण संख्या	भाषावृत्ति में अपठित तथा पाणिनीज ग्रामेटिकगण पाठ में में पठित शब्द	शब्दों की कुल संख्या
1.	ऊर्यादिः	1.4.61	31	आक्ली, बन्धा, अत्, कराली।	4
2.	श्रेण्यादिः	2.1.59	234	ऊक, कुन्द, विशेष, विधान, निधन, विशिष्ट [विशिख]	6
3.	राजदन्तादिः	2.2.31	194	अर्पितोतम्, चित्ररथ-बाह्लीकम्, गजवाजम्, पूलासककरण्डम्, जिज्ञास्थि, पुत्रपशु।	6
4.	तौल्वल्यादिः	2.4.61	110	दैवलि, बैंकि, आनुमति, [प्राणाहति], रान्धकि, पौष्कि, प्रावाहणि, मान्धातकि, श्वाफल्कि, आयुधि, वैलकि, कामलि, आसुराहति, कान्दकि, दौषकगति, आन्तराहति।	15
5.	यस्कादिः	2.4.63	184	लभ्य, दुह्य, कम्बलभार, अहिर्याग, कर्णाटक, रक्षामुख, कटुकमन्थक,	

				वर्मक, भडित, भण्डित, बस्ति, कद्रु।	12
6.	तिकक्रित-वादि:	2.4.68	104	बकनरवश्वगुदपरिणद्धा, उरसलङ्कटा, अग्निवेशदासेरका।	3
7.	उपकादि:	2.4.69	29	अण्डारक, सुपर्यक, सुपिष्ट, खारिजङ्घ, शलाबल, पण्डारक।	6
8.	भृशादि:	3.1.12	174	रेहस्, तृपत्, शुचिस्, बृहत्, नृषत्, शुधि, अधर	7
9	लोहितादि:	4.1.18	71	कवि, पुरुकुत्स, शक्ति।	3
10.	गौरादि:	4.1.41	82	पुट, तूण, कण, उकण, आमल, सलन्द, गहुज, आपच्चिक, आपिच्छिक, सूर्म, पूष, धातक, बृस, [पृस], उभय, पारक, [आप, स्थूण], [भौरि], पान, [नाट], पोतन, पानठ, अग्रहायणी, सेचंन, [कुर्द], [गूर्द], आर्द, ह्रद, पाण्ड [पाण्ट], भाण्डल, लोहाण्ड [लोफाण्ड], [कन्दल], शमीकरीरी, कोष्ट्री, सुगेठ, सुब, सकलूक, आलिङ्गि, पावन, एत, बिटक, भट्ट, दहन, कन्द।	37
11.	शाङ्र्गखादि:	4.1.73	227	कैकसेय। [ब्राह्मकृतेय],	1
12.	उत्सादि:	4.1.86	26	विनोद, [कुल], [दंशे] [सत्त्वन्तु], [सुपर्ण]।	1
13.	क्रौड्यादि:	4.1.80	67	शैकयत्, वैकल्पयत, कौटि, गौलक्ष्य	
14.	कुञ्जादि:	4.1.98	53	विपाश, शाकट, शुम्भा, शिव, शुभंया।	5

15.	नड़ादि:	4.1.99	125	एक, शालङ्कायन, क्रौष्टायन, अध्वर, [अध्वरादण्डय], अश्वला, अश्वक, वानव्य, नाव्य, अन्वजत्, अन्तजन, इत्वरा, अंशक:, याम, काम, वात।	15
16.	हरितादि:	4.1.100	164	[वध्योष], विष्णु, वृद्ध, मृडाकु, [मद], [पारशव, पारशवायन], परस्त्री, किलालप, सम्बक, श्यायक।	7
17.	बिदादि:	4.1.104	164	किंदर्भ [किदर्भ]	1
18.	गर्गादि:	4.1.105	71	[शठ], [मनस], [जनमान]।	0
19.	अश्वादि:	4.1.110	15	बिदापुट, खञ्जार [खञ्जूल] बस्त पिञ्जूल, [क्षत्र], [स्वन], [श्रविष्ठा] [पविन्दा], [वेश, आत्रेय], [विशाला], [चुम्प], [क्षान्त], [कुत्स], भण्डिक, ग्रीवा, कुल, काण, नड, वीक्ष्य, वह, खेड, नत्त, ओजस्, नम।	15
20.	कल्याणादि:	4.1.126	44	बलीवदी।	1
21.	गृष्ट्यादि:	4.1.136	77	फलि, अलि, दृष्टि।	3
22.	कुर्वादि:	4.1.151	58	[अजमारक], [वाच्], [एरक], [इनपिण्डी], विस्फोटक, काक, स्फाण्टक, घातकि, धेनुंजि, बुद्धिकार।	6
23.	तिकादि:	4.1.154	103	[उरश], [शाठ्य], [करु], तैतल, [औरश], भौलिकी], चैय्यत, शीकयत, क्षैतयत, [ध्वाजवत], [आरटव], खल्यका [खल्या, खल्य], उदज्ञ, सुयामन्, ऋश्य [ऋष्य], भीत, जाजल, रस, लावक,	

				ध्वजवद, वसु, बन्धु, आवन्धका, [आबन्धका]।	16
24.	वाकिनादि:	4.1.158	210	[गारेध]।	0
25.	यौधेयादि:	4.1.178	189	[ग्रावाणेय], [घार्तेय], वार्त्तेय।	1
26.	भिक्षादि:	4.2.38	170	[धर्मन्], [अर्वन्], [भूत]।	0
27.	पाशादि:	4.2.49	141	पाटलका, शकट, [नड], बालक।	3
28.	भौरिक्यादि:	4.2.54	175	[चौटयत], [वालिज, वालिज्यक], [शैकयत], वैपेय।	1
29.	ऐषुकार्यादि:	4.2.54	34	[त्र्यायण], [शौद्राण], [नद], [विशदेव, वैश्वदेव], शौण्डि, अलायत, औलालायत	3
30.	उक्थादि:	4.2.60	23	[द्विपदी, ज्योतिषि], [पद, क्रम], [संघात], [गुणागुण], अनुगुण।	1
31.	संकलादि:	4.2.75	236	[विधान], सुनेत्र, सिकता, पूतीकी, पलाश, सद्योज, शर्मन्, गृह, भूत।	8
32.	सुवास्त्वादि:	4.2.77	249	[कण्डु], [सेचालिन्], शाटीकर्ण, [कृष्ण] कर्कन्धूमती, [गोह्य, गाहि]।	2
33.	अरीहणादि:	4.2.80	11	[गोमतायन], [खण्ड], [कृशकृत्स्न], [जाम्बवन्त], [बैल्व], [सुशर्म], दलतृ, खण्डु, कनल, सार, वैगर्तायण, खाण्डायन ।	6
34.	कृशाश्वादि:	4.2.80	61	[अरीश्व, [विनता, वनिता] विकुट्यास,	

				[कुविद्यास, विकुघास], मौद्गल्य, यूकर [मौद्गल्याकर], रोमन, बर्बर, अवयास, अयावस्।	7
35.	ऋश्यादि:	4.2.80	33	[शिरा], स्थूल, बाहु।	2
36.	कुमुदादि:	4.2.80	55	[इत्कट, उत्कट], कण्टक, पलाश, त्रिक, कत।	3
37.	काशादि	4.2.80	47	[वाश], पीयूष, [विश, विस], [गृह], नर, कण्टक।	3
38.	तृणादि:	4.2.80	110	जन, लव	2
39.	प्रेक्षादि:	4.2.80	156	[इर्कुट], [कर्कटा], [महा], यवाष, [कूपका], बधुका, सुकटा, मङ्कट, सुक।	5
40.	अश्मादि:	4.2.80	14	[यूष], [रूष, रुष], नद, कोट, पांम।	3
41.	सख्यादि:	4.2.80	235	गोपित [गोहित, गोहिल] [चर्क], [सीकर], समर, चक्र-पाल, चक्रवाल, वक्रपाल, उशीर।	6
42.	संकाशादि:	4.2.80	237	कश्मर, शूरसेन, [सुपथिन्], [सक्थ] [चिरन्त], बिरत, एग, चिकार, विरह।	7
43.	बलादि:	4.2.80	160	वुल, तुल, कवल।	3
44.	पक्षादि:	4.2.80	132	[कम्बलिक], [सीरज], [अतिस्वन्] सिंहक, [सकण्डक], अश्मन्, अस्तिबल	3
45.	कर्णादि:	4.2.80	42	[लूष], [डुपद], [अनडुह्य], स्फिग्, [जित्व], [जीवन्ती], अलुश, शल, स्थिरा।	3
46.	सुतंगमादि:	4.2.80	248	[मुनिचित्त], [विप्रचित्त]।	0

47.	प्रगद्यादि:	4.2.80	150	[शरदिन्], [खडिव], [गदिव]।	0
48.	वराहादि:	4.2.80	207	पिनद्ध, [स्थूण], विरुद्ध, मूल।	3
49.	कुमुदादि:	4.2.80	56	[शाल्मली], [मुनिस्थूल], मुचुकर्ण, कुन्द।	2
50.	मध्वादि:	4.2.86	176	[किरीर], [शर्पणा][आमिधि] [मुष्टि, हुष्टि], वेटा, रम्य, ऋक्ष, मरुव, दार्वाघाट।	5
51.	उत्करादि:	4.2.90	25	[सुपर्ण], [शकाक्षुद्र], [अजिन], क्षान्त, [नैव, बक] [नितान्तवृक्ष, नितान्त, वृक्ष], तृणव, अन्य, मञ्च, अर्जुनवृक्ष।	5
52.	नद्यादि:	4.2.97	127	[वनकोशाम्बी], [पावा], [मावा], शाल्वा [साल्वा], वासेनकी, दाल्वा।	3
53.	कण्वादि:	4.2.111	71	उचथ, संहित, पथ, कन्थु, श्रुव, कर्कटक, रुक्ष, प्रचुल, विलम्ब, विष्णुज।	10
54.	काश्यादि:	4.2.116	48	[मोहमान], [कुदामन्], [गोधाशन], [दासग्राम], [सौधावतान], सधमित्र, संज्ञा, भौरिकि, भौलिङ्गि, सर्वमित्र	5
55.	धूमादि:	4.2.127	124	षडण्ड [खडण्ड], आर्जुनाद, माषस्थली, [शिष्य], [मित्र, वल] भक्षाली, [आञ्जीकूल], [वर्चगर्त], [वल्ली], [अवयात तीर्थ], अन्तरीय, [उज्जयिनी], घोषस्थली, भक्षास्थली, गर्तकूल, मानवल्ली, सुराज्ञी।	10

56.	परिमुखादि:	4359	कपिल० 4.3.59	अतुपथ।	1
57.	सिन्ध्वादि:	4.3.93	245	[उरस], [गब्दिका], कुलून, दिरसा।	2
58.	शौनकादि:	4.3.106	232	[शाखेय], [स्कम्भ], कुठशाठ, [कशाय], दण्ड, [पुरुषासक], [अश्वपेय], साङ्गख, स्कन्द, देवदत्तशठ, तलवकार।	6
59.	कुलालादि:	4.3.118	59	सैरिन्ध्र [सेन्द्रिय], ध्रुव।	1
60.	रैवतिकादि:	4.3.131	199	[औदवाहि]।	0
61.	पलाशादि:	4.3.141	137	[स्यन्दन]।	0
62.	हरीतक्यादि:	4.3.167	260	शाकण्डी, [ध्वाङ्क्षा], [गर्गरिका], [चिम्पा], दडी।	2
63.	उत्सङ्गादि:	4.4.15	27	[उत्पत], उडप।	2
64.	अक्षद्यूतादि:	4.4.19	2	[जानुप्रहूत], [जङ्घाप्रहूत]।	0
65.	छत्रादि:	4.4.62	90	[आस्था, संस्था, अवस्था], [ऋषि], [विशिका], पुरोडा, चुक्षा।	2
66.	अपूपादि:	5.1.4	9	अवोष, इर्गल, प्रीप, कट, अय: स्थूण।	5
67.	अश्वादि:	5.1.39	16	[भङ्ग], क्षण, [वर्ष]।	1
68.	संतापादि:	5.1.101	238	असर्ग।	1
69.	दृढ़ादि:	5.1.123	118	[आकृष्ट], पण्डित, [लाभ, लात] अम्ल, बाल, तरुण, मन्द, बहुल, दीर्घ।	7

70.	पुरोहितादि:	5.1.128	144	[असमासे, राजन्, असे], संग्रामिक, [वर्मित], शिलिक, [तिलिका], अञ्जनिक [अञ्जतिका], [पुत्रक], पर्षिक, [पथिका], चर्मिक, [सारथिक], शाक्वर [राक्वर], एषिक, मिलिक, स्तनिक, चूडितिक, कृषिक, पूतिक, पत्रिक, सलनिक, पक्षिक, जलिक, शर्मिक, तिथ्विक, प्रचिक, प्रविक, परिक्षक, पूजनिक, मूचिक, स्वरिक	24
71.	मनोज्ञादि:	5.1.133	177	[वैश्वदेव], [ग्रामखण्ड], [अवश्य], कुशल।	1
72.	विमुक्तादि:	5.2.61	212	[सुपर्ण], [परिषादक्], [मरुत्वत्], महीयत्व [महीयल], [दशार्हपयस्], [पतत्रि], अग्नाविष्णु, [वृत्रहति] मित्री, सोम, हेतु।	5
73.	गोषदादि:	5.2.62	80	गोषद, [इषेत्व], सहस्रशीर्षा, वातस्यते, कृशाश्व, स्वाहाप्राण, प्रसप्त।	6
74.	आकर्षादि:	5.2.64	18	[पिपासा], [विचय], [निपाद], अय।	1
75.	इष्टादि:	5.2.88	22	उपसादित, [आम्नातश्रुत], परिकथित, संकल्पित, विकलित, निपतित, पठित, पूजित, परिगणित, उपगणित, परित, अपवारित, उपनत, निगृहीत, अपचित।	14

76.	सुखादि:	5.2.131	247	करुण [करुणा], प्रमीप।	2
77.	पुष्करादि:	5.2.135	146	[प्रवास], वयस्।	1
78.	बलादि:	5.2.136	161	[उद्भाव], उद्वास, उद्वाम, शिखावल, वूगमूल, दंश।	5
79.	देवपथादि:	5.3.100	119	[सिंहपथ], [सिंहगति], [उष्ट्रग्रीवा], [चामररज्जु], जलपथ, रज्जु।	2
80.	दामन्यादि:	5.3.116	114	[औतकी, औतकि], [काकदन्ति], सावित्रीपुत्र, काकरन्ति, देववापि, अपच्युत्की, कर्की, पिण्ड।	6
81.	यौधेयादि:	5.3.117	190	जाबालये, क्रौशेय, वार्त्तय।	3
82.	स्थूलादि:	5.4.3	251	[कुमार, श्वसुर]।	0
83.	यावादि:	5.4.29	186	[पीतस्तम्ब], [पशौ-लूनवियाते], श्रेयस्क, चण्ड।	2
84.	प्रियादि:	6.3.34	155	स्वा, समा, अम्बा।	3

यहाँ यह अवधेय है कि कोष्ठक में लिखे हुये शब्दों को उक्त 394 शब्दभेद संख्या में परिगणित नहीं किया गया है।

[1.2] **वार्त्तिकसम्बन्धी नियतगण**– जिस गण का निर्देश वार्त्तिकों में किया जाता है तथा जिसमें पठित शब्दों की संख्या नियत होती है उसे वार्त्तिक सम्बन्धी नियतगण कहते हैं। भाषावृत्ति में नियतगणों की कुल संख्या 24 है जिनमें से 22 गणों में पठित शब्द तथा उनकी संख्या अष्टाध्यायी वार्त्तिकगणपाठ के समान ही है। शेष 2 वार्त्तिकगण पाठों में वैषम्य परिलक्षित होता है। यह वैषम्य द्विविध रूप में पाया जाता है–शब्दस्वरूपसम्बन्धी तथा अपरिज्ञातसम्बन्धी।

भाषावृत्ति के ज्योत्स्नादिगण[29] में ''विपादिका'' शब्द का पाठ किया गया है जबकि अष्टाध्यायी में यह शब्द ''वैयादिक:'' के रूप में विन्यस्त हुआ है। इसी प्रकार भाषावृत्ति में अहरादिगण[30] में जो शब्द गिर् और धुर् शब्दों के रूप में निर्दिष्ट हुये हैं वही अष्टाध्यायी में गीर् और धूर् इस रूप में विन्यस्त किये गये हैं। इसके साथ-साथ अष्टाध्यायी में अहरादिगण में पुर् शब्द पठित नहीं हुआ है लेकिन भाषावृत्ति में इसका पाठ किया गया है।

[2] **आकृतिगण**– आकृतिगण अपरिमितशब्दों का समूह[31] होता है इसलिये इनका पाठ करना सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें देश और काल के अनुसार समय-समय पर नये शब्दों का योग हो जाता है। यथा–पात्रेसमितादि:, व्याघ्रादि:, कृतादि: और आहिताग्न्यादि:। यह गण भी द्विविध रूप में विभक्त हैं–[2.1] सूत्रसम्बन्धी आकृतिगण और [2.2] वार्त्तिकसम्बन्धी आकृतिगण।

[2.1] **सूत्रसम्बन्धी आकृतिगण**– सूत्रों से सम्बन्ध रखने वाले आकृतिगण सूत्रसम्बन्धी आकृतिगण कहलाते हैं। भाषावृत्तिकार ने निम्नलिखित 36 गणों को आकृतिगण स्वीकार किया है। यथा–स्वरादि:,[32] चादि:,[33] साक्षात्प्रभृति:,[34] शौण्डादि:[35] पात्रेसमितादि:,[36] व्याघ्रादि:,[37] कृतादि:,[38] मयूख्यंसकादि:,[39] आहिताग्न्यादि:,[40] अर्धर्चादि:,[41] पैलादि:,[42] लोहितादि:,[43] सुखादि:,[44] कण्ड्वादि:,[45] पचादि:[46] भिदादि:,[47] भीमादि:,[48] बह्वादि:,[49] क्रोड़ादि:,[50] बाह्वादि:,[51] शिवादि:,[52] शुभ्रादि:,[53] गहादि:,[54] इन्द्रजननादि:,[55] ब्राह्मणादि:,[56] कर्णादि:,[57] तारकादि:,[58] सिध्मादि:,[59] अर्श आदि:,[60] प्रज्ञादि:,[61] पृषोदरादि:,[62] अनुशतिकादि:,[63] यवादि:,[64] कस्कादि:,[65] सुषामादि:[66] और क्षुभ्नादि:।[67]

[2.2] **वार्त्तिकसम्बन्धी आकृतिगण**– जिन आकृतिगणों का सम्बन्ध वार्त्तिकों से है वे वार्त्तिकसम्बन्धी आकृतिगण कहलाते हैं। भाषावृत्तिकार ने निम्न 10 गणों को आकृतिगण स्वीकार किया है–शाकपार्थिवादि:,[68] एहीड़ादि:,[69] मूलविभुजादि:,[70] वेणुकादि:,[71] अध्यात्मादि:,[72] चातुर्वर्ण्यादि:,[73] आद्यादि:,[74] क्षिपकादि:,[75] इरिकादि:,[76] और गिरिनद्यादि:।[77]

यहाँ यह अवधेय है कि भाषावृत्ति तथा अष्टाध्यायी के सूत्र तथा वार्त्तिक सम्बन्धी आकृतिगणपाठ में भी पर्याप्त वैषम्य परिलक्षित होता है। अष्टाध्यायीगणपाठ में पठित अनेक शब्द भाषावृत्ति के गणपाठ में पठित नहीं हुये हैं। आकृतिगण अपरिमित शब्दों का समूह है अत: इसका वैषम्य प्रक्रिया

में विशेष महत्त्व नहीं रखता है। वृत्तिकार ने उक्त गण में उतने ही शब्दों का समावेश किया है जितना उसकी वृत्ति के लिये उपयोगी है। इसीलिये उक्त प्रकारक वैषम्य को यहाँ प्रदर्शित नहीं किया गया है।

4.3 भाषावृत्ति तथा उसका धातुपाठ–

जो शब्द नामविभक्तियों से युक्त होकर नाम बन जाये, आख्यातविभक्तियों से सम्पृक्त होकर क्रिया को द्योतित करे तथा उभयविभक्तियों से रहित होकर स्वार्थमात्र का द्योतक होवे वह मूलशब्द ही धातुवाच्य होता है। इस दृष्टि से पाणिनि का धातुपाठ एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। भाषावृत्ति के परिशिष्ट में उल्लिखित पाणिनीयधातुपाठ तथा एन.वी. वेंकटसुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा सम्पादित पाणिनीयधातु पाठ में अनेक प्रकार का अन्तर पाया जाता है। भाषावृत्तिस्थ तथा शास्त्रिसम्पादित पाणिनीयधातुपाठ में जो मुख्य अन्तर परिलक्षित होता है उसके निम्नलिखित कारण हैं–भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में 76 धातुओं के अधिक धातुपाठ का होना, बीस धातुओं के पाठ का अभाव, 140 धातुओं को शब्दांशभेद से पढ़ना तथा बारह धातुओं के पौर्वापर्य का विपर्यय होना। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त उभयविधधातुपाठों में कतिपय धातुयें मतान्तर से भी पठित हुई हैं। इन सब का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

[1] **भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में अधिक धातुपाठ**– शास्त्रि सम्पादित धातुपाठ की अपेक्षा भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में निम्नलिखित 76 धातुयें अधिक पठित हुई हैं इनमें से भ्वादिगण में 49, अदादिगण में एक, दिवादिगण में पाँच, स्वादिगण में दो, क्र्यादिगण में दो और चुरादिगण में 17 धातुओं का अधिक पाठ हुआ है। इन सभी धातुओं का निर्देश यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। यथा–

[1.1] भ्वादिगण में–गुद क्रीडायामेव, तिकृ गत्यर्थः तीकृगत्यर्थः, रट परिभाषणे, उठ उपघाते, हूड़ गतौ, रोड़ उन्मादे, लोड़ उन्मादे, कपि चलने, क्लीबृ अधाष्ट्र्ये, ओणृ अपनयने, नील वर्णे, तिलगतौ, क्षेवृ निरसने, गर्व दर्पे, ह्रेषृ अव्यक्ते शब्दे, ग्लह च, करवे हसने, दलि, बलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, क्षपि च, जनी, जृष्, कन्सु, रञ्जो, अमन्ताश्च, ज्वल, ह्वल, ह्मल, नमामनुपसर्गाद्वा, ग्ला, स्ला, वनु, वमां च, न कम्य, मि, चमाम्, टुभ्लाशृदीप्तौ, जल घातने, भ्लेषृगतौ, भ्रक्ष अदने, शै पाके, ष्णै वेष्टने, स्तुड् गतौ, और रध साधने।[78]

[1.2] **अदादिगण** में टुक्षु शब्दे।[79]

[1.3] **दिवादिगण** में णसु निरसने, नूरी हिंसागत्योः, घूरी हिंसावयोहान्योः, जूरी हिंसावयोहान्यो: और शक विभाषितो मर्षणे।[80]

[1.4] **स्वादिगण में**– तिग गतौ च और तृप प्रीणने।[81]

[1.5] **क्र्यादिगण** में– श्रन्थ सन्दर्भे और हिठ च।[82]

[1.6] **चुरादिगण** में– शम्ब च, मार्ज शब्दार्थौ मर्च च, भुवोऽवकल्कने, कृप च, दशि भाषार्थ: लघि च, लडि, तड, नल च, जि च, अर्ह पूजायाम्, जुष परितर्कणे, चह परिकल्कने, केत आमन्त्रणे निमन्त्रणे च, कुण सङ्कोचनेऽपि और धेक दर्शने इत्येके[83] ये 17 धातु अधिक पठित हुये हैं।

[2] **भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में कतिपय धातुओं के पाठ का अभाव–** शांस्त्रिसम्पादितधातुपाठ की अपेक्षा भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में 20 धातुओं का पाठ उपलब्ध नहीं होता है। इनमें से भ्वादिगण में आठ, अदादिगण में एक, दिवादिगण में दो, तुदादिगण में एक, क्र्यादिगण में एक और चुरादिगण में सात धातुओं के पाठ का अभाव पाया जाता है। इन सभी धातुओं का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। यथा–

[2.1] **भ्वादिगण में**– माथि हिंसासंक्लेशनयो:, म्लेटृ उन्मादे, फर्व पूरणे, बृहि शब्दे च, ध्वन्सु गतौ च ष्ठगे संवरणे, हुल हिंसासंवरणयोश्च और जु गुळौ वेष्टितायाम्।[84]

[2.2] **अदादिगण में**– टु वृद्धौ।[85]

[2.3] **दिवादिगण में**– शुच शोके और दासु दाने।[86]

[2.4] तुदादिगण में तुम्फ हिंसायाम्।[87]

[2.5] क्र्यादिगण में स्पृ हिंसायाम्।[88]

[2.6] चुरादिगण में वृ विज्ञाने, णिसश्च धान्यादयोऽप्रतिदाने च, रुशि च, चुप सन्दीपने, छुप सन्दीपने, तुप सन्दीपने और दुप सन्दीपने।[89]

[3] **भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में पठित धातुओं में शब्दांश भेद**– शास्त्रिसम्पादित,धातुपाठ की अपेक्षा भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में शब्दांशभेद से 140 धातु पठित हुये हैं। इनमें से भ्वादिगण में 62, अदादिगण में पाँच, जुहोत्यादिगण में एक, दिवादिगण में छ:, स्वादिगण में एक, तुदादिगण में 15, रुधादिगण में दो, क्रयादिगण में पाँच और चुरादिगण में 42 धातुओं में शब्दांश भेद पाया जाता है। इन सभी धातुओं को रेखाचित्र द्वारा यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

क्र०	गण	भा० वृ० में धा० सं०	भा. वृ. धा. पा. में धातु का स्वरूप	शा. सम्पा. पा.धा. पा. में धा. सं.	शा. सम्पा. पा. धा. पा. में धातु का स्वरूप
1.	भ्वादि:	10	विदि श्वैत्ये।	10	श्विदि श्वैत्ये।
2,3.	भ्वादि:	33,34	वितृ, वेतृ याचने।	32, 33	विधृ, वेधृ याचने।
4.	भ्वादि:	50	खद स्थैर्ये हिंसायां च।	50	ख्रद स्थैर्ये हिंसायां च।
5.	भ्वादि:	159	घष हसने।	157	घघ हसने।
6.	भ्वादि:	165	षच व्यक्तायां वाचि।	163	शच व्यक्तायां वाचि।
7.	भ्वादि:	196	ग्लुचु गत्यर्थ:।	194	म्लुचु गत्यर्थ:।
8.	भ्वादि:	239	लजि भर्जने।	237	लाजि [लजि] भर्जने ।
9.	भ्वादि:	241	लाजि भर्त्सने च।	239	अजि [लाजि] भर्त्सने च।
10.11	भ्वादि:	242, 243	जज, जजि युद्धे।	240, 241	जभ [जज], जक्षि [जजि] युद्धे।
12.	भ्वादि:	287	वाड़ृ आप्लाव्ये।	285	बाड़ृ आप्लाव्ये।
13.	भ्वादि:	293	मेटृ उन्मादे।	291	म्रेटृ उन्मादे।
14.	भ्वादि:	295	कटे वर्षावरणयो:।	294	[illegible] [कटे] वर्षावरणयो:।

15.	भ्वादि:	305	विट अनादरे।	304	षिट अनादरे।
16.	भ्वादि:	307	शट सङ्घाते।	305	झट सङ्घाते।
17.	भ्वादि:	308	झट भृतौ।	306	भट भृतौ।
18.	भ्वादि:	315	लुट विलोड़ने।	313	लुट [लुठ] विलोटने [विलोडने]
19.	भ्वादि:	325	चुडि अल्पीभावे।	323	चुटि [चुडि] अल्पीभावे।
20.	भ्वादि:	328	लुठि स्तेये।	326	लुटि [लुठि] स्तेये।
21.	भ्वादि:	334	रट परिभाषणे।	332	रठ परिभाषणे।
22.	भ्वादि:	351	तुड़ृ तोडने।	348	तोड़ृ तोडने।
23.	भ्वादि:	388	जभि गात्रविनामे।	380	जभ [भी] गात्रविनामे।
24.	भ्वादि:	394	ष्टुभ स्तम्भे।	386	ष्टुभु स्तम्भे।
25.	भ्वादि:	453	भ्रण शब्दार्थः।	445	मृण [भ्रण] शब्दार्थः।
26.	भ्वादि:	454	ध्व्रण शब्दार्थः।	446	ध्वण शब्दार्थः।
27.	भ्वादि:	459	पैण्ट गतिप्रेरण-श्लेषणेषु।	450	प्रेण्ट गतिप्रेरणश्लेषणेषु।
28.	भ्वादि:	461	कनीदीप्तिका-न्तिगतिषु	452	कन [कनी] दीप्तिकान्तिगतिषु।
29.	भ्वादि:	468	हम्म गतौ।	459	हम [म्म] गतौ।
30.	भ्वादि:	469	मीम्ट गतौ।	460	मीम [म्ट] गतौ।
31.	भ्वादि:	474	कमु पादविक्षेपे।	465	क्रमु पादविक्षेपे।
32.	भ्वादि:	518	मील निमेषणे।	509	मलि निमेषणे।
33.	भ्वादि:	616	पेषृ प्रयत्ने	604	येषृ प्रयत्ने।
34.	भ्वादि:	641	बर्ह।	628	वर्ह।

35.	भ्वादि:	642	बल्हपरिभाषण-हिंसाछादनेषु।	629	वल्ह परिभाषणहिंसाछादनेषु।
36.	भ्वादि:	662	स्तृक्ष गतौ।	648	स्टृक्ष गतौ।
37.	भ्वादि:	669	वाक्षि काङ्क्षायाम्	655	पाक्षि [वाक्षि] काङ्क्षायाम्
38.	भ्वादि:	702	श्रिषु दाहे।	688	श्रिष दाहे।
39.	भ्वादि:	703	शिलषु दाहे।	689	शिलष दाहे।
40,41	भ्वादि:	704,705	प्रुषु। प्लुषु दाहे।	690, 691	प्रुष। प्लुष दाहे।
42.	भ्वादि:	716	घस्लृ अदने।	702	घस अदने।
43.	भ्वादि:	722	हसे हसने।	708	हस हसने।
44.	भ्वादि:	729	शंसु स्तुतौ।	715	शंस स्तुतौ।
45.	भ्वादि:	752	शुभ सञ्चलने।	739	क्षुभ सञ्चलने।
46.	भ्वादि:	772	कृप कृपायां गतौ च।	760	क्रप कृपायां गतौ च।
47.	भ्वादि:	788	हगे संवरणे।	755	ह्गे संवरणे।
48.	भ्वादि:	790	वगे संवरणे।	777	षगे संवरणे।
49.	भ्वादि:	801	श्लथ हिंसार्थ:	789	कत्थ हिंसार्थ:।
50.	भ्वादि:	804	वन च।	792	चंन च।
51.	भ्वादि:	805	वनु नोच्यते।	793	वनु च नोच्यते।
52.	भ्वादि:	851	स्यमु शब्दे।	815	स्यम शब्दे।
53.	भ्वादि:	855	षूम अवैकल्ये।	819	ष्टम अवैकल्ये।
54,55	भ्वादि:	859,860	टल। ट्वल वैकल्ब्ये।	822, 823	अल। चल वैकल्ब्ये।

56.	भ्वादि:	922	श्रिञ् सेवायाम्।	884	श्रीं [श्रिञ्] सेवायाम्
57.	भ्वादि:	965	स्रु गतौ।	925	स्नु गतौ।
58.	भ्वादि:	974	गुङ् अव्यक्ते शब्दे।	935	गुम् अव्यक्ते शब्दे।
59.	भ्वादि:	975	गाङ् गतौ।	936	गाम् गतौ।
60.	भ्वादि:	985	धृङ् अवध्वंसने।	945	दृङ् [धृङ्] अवध्वंसने।
61.	भ्वादि:	989	प्यै पालने।	949	प्यैङ् पालने।
62.	भ्वादि:	.1006	णम प्रह्वत्वे।	965	नम: प्रह्वत्वे।
63.	अदादि:	17	शिजि अव्यक्ते शब्दे	1011	शृजि अव्यक्ते शब्दे।
64.	अदादि:	19	वृजी वर्जने।	1013	व्रज वर्जने।
65.	अदादि:	20	पृजी सम्पर्चने।	1014	पृचि सम्पर्चने।
66.	अदादि:	21	षूङ् प्राणिग-र्भविमोचने।	1015	षूञ् प्राणिगर्भविमोचने।
67.	अदादि:	53	मृजू शुद्धौ।	1050	मृजूष् शुद्धौ।
68.	जुहो-त्यादि:	19	कित ज्ञाने।	1085	कि ज्ञाने।
69.	दिवादि:	82	ष्विदा गात्रप्रक्षरणे	1168	ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे।
70.	दिवादि:	100	क्षमू सहने।	1187	क्षमूष् सहने।
71.	दिवादि:	118	भ्रशु अध: पतने।	1206	भृशु अध: पतने।
72.	दिवादि:	129	युपु विमोहने	1217	युप विमोहने।
73,74.	दिवादि:	130,131	रुपु। लुपु विमोहने।	1218,1219	रुप। लुप विमोहने।
75.	स्वादि:	19	ष्टिघ्र आस्कन्दने।	1247	ष्टिघ आस्कन्दने।

76.	तुदादिः	4	भ्रस्ज पाके	1265	भ्रस्जो पाके।
77.	तुदादिः	31	तुफ तुम्फ हिंसायाम्	1292	तुफ हिंसायाम्।
78.	तुदादिः	32	दृप उत्क्लेशे।	1294	दृफ उत्क्लेशे।
79.	तुदादिः	34	ऋफ हिंसायाम्।	1296	ऋप हिंसायाम्।
80.	तुदादिः	68	स्तृहू हिंसार्थः।	1330	ष्टृहू हिंसार्थः।
81.	तुदादिः	70	इष इच्छायाम्।	1332	इषु इच्छायाम्।
82.	तुदादिः	77	षिल संवरणे।	1339	विल संवरणे।
83.	तुदादिः	100	लुट संश्लेषणे।	1362	लुठ [ट] संश्लेषणे।
84.	तुदादिः	106	थुड संवरणे।	1368	धुड संवरणे।
85.	तुदादिः	107	स्थुड संवरणे।	1369	स्फुड संवरणे।
86.	तुदादिः	113	क्रुड निमज्जने।	1375	ग्रुड निमज्जन इत्येके।
87.	तुदादिः	130	दृङ् आदरे।	1392	धृञ् [दृङ्] आदरे।
88.	तुदादिः	148	मिल सङ्गमे।	1410	मिळसङ्गमने।
89.	तुदादिः	150	लुप्लृ छेदने।	1412	लुप [लुप्लृ] छेदने।
90.	तुदादिः	153	षिच क्षरणे।	1415	षिचि क्षरणे।
91.	रुधादिः	11	ञिइन्धी दीप्तौ।	1429	इन्धी दीप्तौ।
92.	रुधादिः	13	विद विचारणे।	1431	खिद विचारणे।
93.	क्र्यादिः	8	क्रूञ् शब्दे।	1461	क्नूञ् शब्दे।
94.	क्र्यादिः	13	स्तृञ् हिंसायाम्।	1465	स्तृञ् हिंसायाम्।
95.	क्र्यादिः	26	गू शब्दे।	1480	गृ शब्दे।
96.	क्र्यादिः	30	व्ली वरणे।	1484	प्ली वरणे।

97.	क्र्यादि:	37	वृङ् सम्भक्तौ।	1491	वृञ् सम्भक्तौ।।
98.	चुरादि:	6	कुद्रि अनृतभाषणे।	1519	कुदि अनृतभाषणे।
99.	चुरादि:	29	षुट्ट अनादरे।	1541	घट्ट अनादरे।
100.	चुरादि:	30	लुण्ठ स्तेये।	1542	लुण्ट स्तेये।
101.	चुरादि:	38	वल्क परिभाषणे।	1550	पल्क [वल्क] परिभाषणे।
102.	चुरादि:	61	धक्क नाशने।	1573	युक्क नाशने।
103.	चुरादि:	62	चक्क व्यथने।	1575	बुक्क व्यथने।
104.	चुरादि:	64	क्षल शौचकर्मणि।	1576	क्षळ शौचकर्मणि।
105.	चुरादि:	80	चुट छेदने।	1592	लुट [चुट] छेदने।
106.	चुरादि:	102	चुबि हिंसायाम्।	1614	चुम्बि हिंसायाम्।
107.	चुरादि:	107	कीट वर्णे।	1619	किट [कीट] वर्णे।
108.	चुरादि:	111	शुठ आलस्ये।	1623	शुध आलस्ये।
109.	चुरादि:	125	ह्लप व्यक्तायां वाचि।	1635	ग्लप व्यक्तायां वाचि।
110.	चुरादि:	126	चुटि छेदने।	1636	चुडि छेदने।
111.	चुरादि:	136	पिडि सङ्घाते	1646	पीड [पिडि] सङ्घाते।
112.	चुरादि:	145	तत्रि कुटुम्बधारणे।	1655	तन्त्रिकुटुम्बधारणे।
113.	चुरादि:	146	मत्रि गुप्तपरिभाषणे	1656	मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे।
114.	चुरादि:	152	विष्क हिंसायाम्।	1663	किष्कु हिंसायाम्।
115.	चुरादि:	155	कण सङ्कोचने।	1666	कुण सङ्कोचने।
116.	चुरादि:	174	गृ विज्ञाने	1686	ग्रह विज्ञाने।
117.	चुरादि:	176	मान स्तम्भे	1687	मन [मान] स्तम्भे।

118.	चुरादिः	180	वुक्क भषणे।	1691	बुक्क भषणे।
119.	चुरादिः	186	पश बन्धने।	1697	पाश [पश] बन्धने।
120.	चुरादिः	203	रक आस्वादने।	1719	रग आस्वादने।
121.	चुरादिः	211	वस स्नेहच्छेदा-पहरणेषु।	1715	वस स्नेहाच्छेदनाप-हरणेषु।
122.	चुरादिः	216	ग्रह ग्रहणे।	1726	ग्रस ग्रहणे।
123.	चुरादिः	218	दल विदारणे।	1728	दळ विदारणे।
124.	चुरादिः	242	पुथ भाषार्थः	1751	पुस भाषार्थः।
125.	चुरादिः	251	लचि च।	1760	लजि च।
126.	चुरादिः	256	शीक च।	1766	शीकु च।
127.	चुरादिः	259	पुटि च।	1768	घुटि च।
128.	चुरादिः	260	जि च।	1769	जु च।
129.	चुरादिः	295	चर्द हिंसायाम्।	1803	अर्द हिंसायाम्।
130.	चुरादिः	308	वद सन्देशवचने।	1814	पद [वद] सन्देहवचने।
131.	चुरादिः	323	वट ग्रन्थे।	1829	चट ग्रन्थे।
132.	चुरादिः	327	गदी देवशब्दे।	1833	गद शब्दे।
133.	चुरादिः	337	श्रथ दौर्बल्ये।	1842	श्लथ दौर्बल्ये।
134.	चुरादिः	343	गोम उपलेपने।	1848	गोट उपलेपने।
135.	चुरादिः	347	वेश कालोपदेशे।	1852	वेल कालोपदेशे।
136.	चुरादिः	366	गृह ग्रहणे।	1869	ग्रह ग्रहणे।
137.	चुरादिः	382	कत्र शैथिल्ये।	1884	कर्त्र शैथिल्ये।
138.	चुरादिः	401	छेद द्वैधीकरणे।	1903	छिदिर् [छेद] द्वैधीकरणे।

139.	चुरादि:	406	पर्ण हरितभावे।	1908	एण हरितभावे।
140.	चुरादि:	408	क्षिप्र प्रेरणे।	1910	क्षम [क्षप] प्रेरणे।

[4] **भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में पठित धातुओं के पौर्वापर्य का विपर्यय**–शास्त्रिसम्पादित धातुपाठ की अपेक्षा भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में बारह धातु पौर्वापर्य के विपर्यय से पठित हुये हैं। इन धातुओं को रेखाचित्र द्वारा यहाँ प्रस्तुत किया जाता है–

क्र०	गण	भा० वृ० में धा० सं०	भा. वृ. में पठित धातु	शा. सम्पा. पा.धा. पा. में धा. सं.	शा. सम्पा. पा० धा० पा० में पठित धातु
1.	भ्वादि:	402	रप व्यक्तायां वाचि।	394	लप व्यक्तायां वाचि।
2.	भ्वादि:	403	लप व्यक्तायां वाचि।	395	रप व्यक्तायां वाचि।
3.	भ्वादि:	619	एषृ गतौ।	607	प्रेषृ गतौ।
4.	भ्वादि:	620	प्रेषृ गतौ।	608	एषृ गतौ।
5.	भ्वादि:	748	लुट प्रतिघाते।	735	रुट प्रतिघाते।
6.	भ्वादि:	749	रुट प्रतिघाते।	736	लुट प्रतिघाते।
7.	भ्वादि:	774	क्लदि वैकल्ब्ये।	762	क्रदि वैकल्ब्ये।
8.	भ्वादि:	775	क्रदि वैकल्ब्ये।	763	क्लदि वैकल्ब्ये।
9.	भ्वादि:	798	शण दाने च।	786	श्रण दाने च।
10.	भ्वादि:	799	श्रण दाने च।	787	शण दाने च।
11.	भ्वादि:	971	जि अभिभवे।	931	ज्रि अभिभवे।
12.	भ्वादि:	972	ज्रि अभिभवे।	932	जि अभिभवे।

[5] **उभयविध धातुपाठों में मतान्तर से पठित धातुयें–** शास्त्रिसम्पादित धातुपाठ में चार धातुयें मतान्तर से पठित हुई हैं। इसी प्रकार भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में भी 108 धातुयें मतान्तर से पठित हुई हैं। इन उभयविध धातुपाठों में मतान्तर से पठित धातुओं को यहाँ निर्दिष्ट किया जाता है।

[5.1] **एन.वी. वेंकटसुब्रह्मण्य शास्त्री सम्पादित पाणिनीयधातुपाठ में मतान्तर से पठित धातुयें–** शास्त्रिसम्पादित पाणिनीयधातुपाठ में भ्वादिगण में–गुद क्रीडायामेव इत्येके और तिकृ तीकृ गत्यर्थः इति क्वचित् अधिकः पाठः[90] तथा स्वादिगण में–धृञ् कम्पन इत्येके।[91]

[5.2] **भाषावृत्तिस्थ पाणिनीयधातुपाठ में मतान्तर से पठित धातुयें–** भाषावृत्तिस्थ पाणिनीयधातुपाठ में भ्वादिगण में 45, अदादिगण में चार, जुहोत्यादिगण में एक, दिवादिगण में तीन, स्वादिगण में दो, तुदादिगण में नौ, क्र्यादिगण में तीन और चुरादिगण में 41 धातुयें एके, केचित्, क्वचित्, अन्ये और अपरे शब्दों के द्वारा मतान्तर से पठित हुई है। यथा–

[5.2.क] **भ्वादिगण में–** भिदि अवयव इत्येके, ध्राघृ सामर्थ्य इत्यपि केचित्, रिख त्रख त्रिखि शिखि गत्यर्था इत्यपि केचित्, चटे वर्षावरणयोः इत्येके, लुड विलोड़न इत्येके, हिट इत्येके, पुडि खण्डन इत्येके, स्फुटि विशरण इत्यपि केचित्, रठ परिभाषण इत्येके ऊठ उपघात इत्येके, तूडृ तोडने इत्येके, लल विलास इत्येके कडि मद इत्येके, अभिरभी शब्दयोः क्वचित् पठ्येते, षिभु षिम्भु हिंसार्थौ इत्येके, धणः शब्दार्थ इत्यपि केचित्, रण शब्द इत्यपि केचित्, केवृ खेवृ क्लेवृ सेवन इत्येके, चुच्य अभिषव इत्येके, तिल्ल गतौ इत्येके, षेलृ गतौ इत्येके, म्लेषृ अन्विच्छायाम् इत्येके, निक्षेपे निद्राक्षय इत्येके, घष कान्तिकरण इति केचित् स्रक्ष सङ्घात इत्येके, बृहिर् शब्द इत्येके, ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः इत्येके, भ्रंशु गतौ इत्यपि केचित्, अचु गतौ याचने च इत्येके, अचि गतौ याचने च इत्यपरे, अष गतिदीप्त्यादानेषु इत्येके, उङ्, कुङ्, खुङ्, गुङ्, घुङ्, ङुङ् शब्द इत्यन्ये, क्लुङ्गतौ इत्येके।[92]

[5.2.ख] **अदादिगण में–** कस गतिशासनयोः इत्येके, कश इत्यपि, पृजि अव्यक्ते शब्द इत्येके, वृजि वर्जन इत्यन्ये।[93]

[5.2.ग] **जुहोत्यादिगण में–** पृ पालनपूरणयोः इत्येके।[94]

[5.2.घ] **दिवादिगण में–** अन प्राणन इत्येके, व्युस विभाग इत्यन्ये, युस विभाग इत्यपरे।[95]

[5.2.ङ] **स्वादिगण में**– धृञ् कम्पन इत्येके, क्षिरि भाषायाम् इत्येके।[96]

[5.2.च] **तुदादिगण में**– रिह कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु इत्येके, तृफ तृप्तौ इत्येके, जुन गतौ इत्येके, बृहू उद्यमन इत्यन्ये, खुड छुड संवरणयोः इत्येके, स्फुर सञ्चलन इत्यन्ये, क्रुड निमज्जन इत्येके, भृड निमज्जन इत्येके।[97]

[5.2.छ] **क्र्यादिगण में**– झृ वयोहानौ इत्येके, धृ वयोहानौ इत्यन्ये, खप भूतप्रादुर्भाव इत्येके।[98]

[5.2.ज] **चुरादिगण में**– उलडि उत्क्षेपण इत्यन्ये, लज अपवारण इत्येके, वर्ण वर्णन इत्येके, पथ प्रक्षेप इत्येके, साम्ब च इत्येके, श्वठि असंस्कारगत्योः इत्येके, तुज पिज हिंसाबलादाननिकेतनेषु इति केचित्, लजि लुजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु, स्फिट स्नेहन इत्येके, ष्मिङ् अनादर इत्येके, कुठि वेष्टन इत्यन्ये, गुठि वेष्टन इत्यपरे, ज्ञम ज्ञानज्ञापनमारणतोषणनिशाननिशामनेषु इत्येके, चप परिकल्कन इत्येके, पूर्ण सङ्घात इत्येके, पुण सङ्घात इत्यन्ये, धूष कान्तिकरण इत्येके, धूश् कान्तिकरण इत्यन्ये, कुभि आच्छादन इत्येके, क्लृप व्यक्तायां वाचि इत्येके, रुठ रोष इत्येके, दस दर्शनदंशनयोः इत्येके, हिष्क हिंसायाम् इत्येके, कुट छेदन इत्येके, रघ आस्वादन इत्येके, रग आस्वादन इत्यन्ये, च्युस सहन इत्येके, स्वाद अस्वादन इत्येके, चृप छृप दृप सन्दीपन इत्येके, चन श्रद्धोपहननयोरित्येके, खोट, भक्षण इत्यन्ये, काल इति पृथग्धातुरित्येके, धेक दर्शन इत्येके, कर्त शैथिल्य इत्यप्येके, वटिलजि प्रकाशनयोः इत्येके, कर्ण इति धात्वन्तरमित्यपरे।[699]

यहाँ यह अवधेय है कि शास्त्रिसम्पादित धातुपाठ तथा भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में भ्वादिगणीय गुद, तिकृ और तीकृ धातुओं को प्रकारान्तर से पढ़ा गया है। इसके साथ-साथ स्वादिगणीय धूञ् धातु को दोनों धातुपाठों में एके के मत में ही पढ़ा गया है।

4.4 भाषावृत्ति तथा उसका लिङ्गानुशासन–

लिङ्गानुशासन को शब्दानुशासन का साक्षात् अवयव माना जाता है। इसीलिये प्रत्येक शब्दानुशासन के प्रवक्ता ने स्वग्रन्थ सम्बद्ध लिङ्गानुशासन का भी प्रणयन किया है। पाणिनि ने भी स्वशब्दानुशासन से सम्बद्ध लिङ्गानुशासन का प्रणयन किया है जोकि सूत्रात्मक है। इस लिङ्गानुशासन पर अनेक वृत्तिया पायी जाती हैं। इन वृत्तियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पाणिनीय लिङ्गानुशासन की

सूत्रपाठ अत्यधिक भ्रष्ट है। भाषावृत्ति के परिशिष्ट में तथा सिद्धान्तकौमुदी में पाणिनीय लिङ्नुशासन का सूत्रपाठ निर्दिष्ट हुआ है। इस द्विविध ग्रन्थरूप में पठित सूत्रपाठों में भेद है। यह भेद त्रिविध रूप में पाया जाता है–[1] शब्दस्वरूपसम्बन्धी पाठान्तर [2] सापेक्ष दृष्टि से अतिरिक्त अथवा अपठित शब्दपाठसम्बन्धी पाठान्तर और [3] पौर्वापर्यक्रमसम्बन्धी पाठान्तर।

[1] **शब्दस्वरूप सम्बन्धी पाठान्तर–** भाषावृत्तिस्थ तथा सिद्धान्तकौमुदीस्थ पाणिनीय लिङ्गानुशासन के निम्नलिखित शब्दों के स्वरूप में अन्तर पाया जाता है–

क्र०	लिङ्गा-नुशासन वर्ग	भा. वृ. सूत्राङ्क	भा. वृ. में. पठित शब्द का स्वरूप	सि. कौ. सूत्र	सिद्धान्तकौमुदी में पठित शब्द का स्वरूप
1.	स्त्रीलिङ्ग	24	अभ्रि	24	अश्रि
2.	स्त्रीलिङ्ग	27	युत्	27	पुत्
3.	पुल्लिङ्ग	18	सरयू	52	सरयु
4.	पुल्लिङ्ग	24	जतु	58	जत्रु
5.	पुल्लिङ्ग	29	दण्डक	63	शण्डक
6.	पुल्लिङ्ग	31	बीट	65	वीट
7.	पुल्लिङ्ग	31	करट	65	कराट
8.	पुल्लिङ्ग	39	गूथानि	73	गाथानि
9.	पुल्लिङ्ग	48	जम्भम्	82	जृम्भम्
10.	पुल्लिङ्ग	60	शिरीषजोष	95	शिरीषर्जोष
11.	नपुंसक	28	बाल	143	वाल
12.	नुपंसक	51	अस्थ्यास्पद	165	अक्ष्यास्पद
13.	नपुंसक	53	धिष्ण्य	167	धृष्य
14.	नपुंसक	54	कबर	168	वर
15.	स्त्रीपुंसयो:	3	मन्यु	172	मृत्यु
16.	पुंनपुंसकयो:	3	भूत	176	सूत
17.	पुंनपुंसकयो:	7	अर्बुद	181	अम्बुद

[2] **सापेक्ष दृष्टि से अतिरिक्त रूप में पठित अथवा अपठित शब्दपाठ सम्बन्धी पाठान्तर**– भाषावृत्तिस्थ पाणिनीय लिङ्गानुशासन में कतिपय शब्द ऐसे भी पठित हुये हैं जो सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन में नहीं पाये जाते हैं। इसी प्रकार सिद्धान्तकौमुदीस्थ पाणिनीय लिङ्गानुशासन में भी कतिपय शब्द ऐसे पठित हुये हैं जो भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन में नहीं पाये जाते हैं। इस प्रकार सापेक्ष दृष्टि से अतिरिक्त रूप में पठित अथवा अपठित शब्दपाठ सम्बन्धी पाठान्तर भी इनमें पाया जाता है।

सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन की अपेक्षा भाषावृत्ति में निम्नलिखित शब्दों का अतिरिक्त शब्दपाठ के रूप में निर्देश पाया जाता है–कल्क, नक्षत्राणि, अस्त्र, स्कन्ध,[100] शिष्टः, युद्ध, कृषत्।[101]

इसी प्रकार भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन की अपेक्षा सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन में निम्नलिखित शब्दों का अतिरिक्त[102] शब्दपाठ के रूप में निर्देश पाया जाता है–वसु, अजस्र, चित्र, शष्प, वास, शकन्, चित्त, अङ्क,[103] दर्भ।[104]

[3] **पौर्वापर्यक्रमभेद**– भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन तथा सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन में निर्दिष्ट कतिपय शब्दों के पौर्वापर्यक्रम में भी भेद पाया जाता है। यथा–

क्र०	लिङ्गानुशास वर्ग	भा. वृ. में सूत्राङ्क	भा. वृ. में पाठ	सि. कौ. में सूत्राङ्क	सिद्धान्तकौमुदी में पाठ
1.	पुल्लिङ्ग	56	द्वाराग्रस्फारतक्रवक्र-वप्रक्षिप्रक्षुद्रच्छिद्र-नारतीरदूरकृच्छ्र-रन्ध्राश्रश्वभ्रभीर-गभीरक्रूरविचित्र-केयूरकेदारोदर-शरीरकन्दरमन्दर-पञ्जराजरजठरा-जिरवैरचामरपुष्कर-गह्वरकुहरकुटीर-	90	द्वाराग्रस्फारतक्रवक्र-वप्रक्षिप्रक्षुद्रनारतीरदूर-कृच्छ्ररन्ध्राश्रश्वभ्रभीर-गभीरक्रूरविचित्रकेयूर-केदारोदराजस्रशरीर-कन्दरमन्दारपञ्जरा-जरजठराजिरवैरचामर-पुष्करगह्वर कुहरकुटीर-कुलीरचत्वर

			कुलीरचत्वर काश्मीर-नीराम्बरशिशिर-तन्त्रयन्त्रक्षत्रक्षेत्र-मित्रकलत्रच्छत्रमूत्र-सूत्रवक्त्रनेत्रगोत्राङ्गु-लित्रमलत्रास्त्रशस्त्र-शास्त्रवस्त्रपत्रपात्रनक्ष-त्राणिनपुंसके		काश्मीर-नीराम्बरशिशिरतन्त्र-यन्त्रक्षत्रक्षेत्रमित्र-कलत्रचित्रमूत्रसूत्रवक्त्र-नेत्रगोत्राङ्गुलित्रभलत्र-शस्त्रशास्त्रवस्त्रपत्त्र-पात्रच्छत्राणि नपुंसके।

क्र०	लिङ्-नुशास वर्ग	भा. वृ. में सूत्राङ्क	भा. वृ. का पाठ	सि. कौ. में सूत्राङ्क	सिद्धान्तकौमुदी में पाठ
2.	पुंनपुंस-कयो:	2	घृतभूतमुस्तक्ष्वे-लितैरावतवुस्त-पुस्तलोहिता:	174	घृतसूतमुस्तक्ष्वेलि-तैरावतपुस्त-बुस्तलोहिता:।

इसके अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों में निर्दिष्ट पाणिनीय लिङ्गानुशासन के कतिपय शब्दों में अशुद्ध शब्दाशों का सन्निवेश भी हो गया है। यथा–भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन में निम्नलिखित शब्द अशुद्ध प्रतीत होते हैं। यथा–उट्,[105] तटि,[106] पर्दाति,[107] प्रातिपादिक,[108] कीटकटैनि।[109] इन शब्दों के शुद्ध शब्द रुट्,[110] तृटि,[111] पदानि,[112] प्रातिपदिक,[113] कीटकटानि[114] हैं क्योंकि उट् शब्द का कहीं भी अर्थ निर्देश नहीं है। वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि में व्याख्यात लिङ्गानुशासन[115] तथा अजमेर वैदिकयन्त्रालय में मुद्रित नामिक में उल्लिखित लिङ्गानुशासन में[116] तृटि शब्द का पाठ है न कि तटि का। किञ्च पर्दाति आदि अन्य शब्द भी व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध नहीं है। इसी प्रकार सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन में पठित पोतृ और बेतन शब्द अशुद्ध प्रतीत होते हैं। इनके स्थान पर भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन के पातृ और वेतन शब्द शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। सिद्धान्तकौमुदी

की तत्त्वबोधिनी व्याख्या में याता शब्द का अर्थ स्पष्ट किया गया है–''भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम्''।[117] इसी प्रकार वेतन शब्द का ही प्रयोग सर्वत्र होता है न कि बेतन का।

4.5 भाषावृत्ति तथा उसका उणादिपाठ–

''उणादयो बहुलम्''[118] तथा ''भूतेऽपि दृश्यन्ते''[119] इन सूत्रों के व्याख्यान से ज्ञात होता है कि पुरुषोत्तमदेव शब्दानुशासन के अङ्ग के रूप में उणादिपाठ को मान्यता प्रदान करते हैं। उज्ज्वलदत्त तथा शरणदेव द्वारा प्रदत्त उदाहरणों से प्रतीत होता है कि पुरुषोत्तमदेव ने उणादिपाठ पर किसी वृत्ति की रचना की थी। उज्ज्वलदत्त ने इस वृत्ति के अनेक उद्धरण अपनी उणादिवृत्ति में देववृत्ति के नाम से उद्धृत किये हैं।[120] शरणदेव ने दुर्घटवृत्ति में स्पष्ट रूप से पुरुषोत्तमदेव के नाम से उणादिवृत्ति की ओर इङ्गित किया है–पुरुषोत्तमदेवस्तु ''ग्लाज्याहाभ्यः'' इत्यत्र म्लै धातुमपि पठति।[121]

उपर्युक्त विवेचन से भाषावृत्तिकार द्वारा उणादिपाठ की मान्यता सिद्ध होती है। भाषावृत्ति के टीकाकार सृष्टिधर ने भाषावृत्ति के अन्त में धातुपाठादि जिन चार पाठों का निर्देश किया है, उनमें उणादिपाठ सम्मिलित नहीं है अतः पुरुषोत्तमदेव द्वारा स्वीकृत उणादिपाठ के सम्बन्ध में इससे अतिरिक्त जानकारी वर्तमान समय मे उपलब्ध नहीं है।

उपर्युक्त अध्याय में विवेचित विषयों से स्पष्ट होता है कि अष्टाध्यायी के मान्यताप्राप्त सूत्रादि पाठों तथा भाषावृत्ति के सूत्रादि पाठों में किञ्चिद् वैषम्य परिलक्षित होता है। भाषावृत्ति में ''अष्टकं पाणिनीयम्'' की अपेक्षा सूत्रपाठभेद पाया जाता है। इस पाठभेद का मुख्य कारण ''अष्टकं पाणिनीयम्'' के कुछ सूत्रों में योगविभाग स्वीकार करना, महाभाष्य के कुछ वार्त्तिकों को सूत्र के रूप में पढ़ना, कतिपय सूत्रों में महाभाष्य के वार्त्तिकों का प्रक्षेप करना तथा कतिपय सूत्रों के शब्द तथा शब्दांश के स्वरूप में परिवर्तन करना। ''अष्टकं पाणिनीयम्'' की अपेक्षा भाषावृत्ति मे नौ सूत्रों में योगविभाग तथा ग्यारह सूत्रों के शब्द तथा शब्दांश के स्वरूप में परिवर्तन पाया जाता है। यहाँ महाभाष्य के नौ वार्त्तिकों को सूत्र के रूप में विन्यस्त किया गया है तथा इसके पन्द्रह सूत्रों में महाभाष्य के वार्त्तिकों का प्रक्षेप पाया जाता है।

अष्टाध्यायी के सूत्रगणपाठों की कुल संख्या 238 है जिनमें से भाषावृत्ति में अष्टाध्यायी के 212 गणों का निरूपण पाया जाता है। इनमें से 176 नियतगण तथा 36 आकृतिगण हैं। इस गणपाठसंख्या के भेद का मुख्य कारण भाषावृत्ति में छान्दसगणों का परित्याग तथा लौकिकता का परिग्रहण है। पाणिनीज़ ग्रामेटिक में निर्दिष्ट अष्टाध्यायीगणपाठ की अपेक्षा भाषावृत्तिस्थ अष्टाध्यायीगणपाठ में शब्द, शब्द स्वरूप तथा संख्याविषयक अन्तर पाया जाता है। भाषावृत्ति के 78 गणपाठों में कतिपय शब्दों के स्वरूप में अन्तर पाया जाता है। इस वृत्ति के 35 गणपाठों में पाणिनीज़ ग्रामेटिक में निर्दिष्ट अष्टाध्यायीगणपाठ में अपठित 51 नये शब्दों का सन्निवेश पाया जाता है। किञ्च इसमें 84 गणपाठों में उन 394 शब्दों का पाठ नहीं किया गया है। जिनका निर्देश पाणिनीज ग्रामेटिक अष्टाध्यायीगणपाठ में पाया जाता है।

अष्टाध्यायी के वार्तिकगणपाठों की संख्या 38 है जिनमें से भाषावृत्ति में 34 गणपाठों का निरूपण हुआ है। इन गणपाठों में 24 नियतगण तथा 10 आकृतिगण हैं। यहाँ 24 नियतगणपाठों में से केवल दो गणपाठों में भेद परिलक्षित होता है। यह भेद पठितशब्दस्वरूपसम्बन्धी तथा अपठितपाठसम्बन्धी है।

एन०वी० वेंकटसुब्रह्मण्य शास्त्रिसम्पादित तथा भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। शास्त्रिसम्पादित अष्टाध्यायीधातुपाठ में धातुओं की कुल संख्या 1912 है जबकि भाषावृत्तिस्थ अष्टाध्यायीधातुपाठ में 1968 धातुयें निर्दिष्ट हुई हैं। इस प्रकार भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में 56 धातुयें अधिक पठित हुई हैं। उक्त संख्याविषक भेद के अतिरिक्त भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में 76 धातुयें ऐसी हैं जो शास्त्रिसम्पादित धातुपाठ में पठित नहीं हुई हैं। इन धातुओं की भ्वादिगण में संख्या 49, अदादिगण में एक, दिवादिगण में पाँच, स्वादिगण में दो, क्र्यादिगण में दो और चुरादिगण में 17 है। इसी प्रकार भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में शास्त्रिसम्पादित धातुपाठ में पठित 20 धातुओं का पाठ नहीं है। इन धातुओं की भ्वादिगण में संख्या आठ, अदादिगण में एक, दिवादिगण में दो, तुदादिगण में एक, क्र्यादिगण में एक और चुरादिगण में सात है। इसके अतिरिक्त भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ के 140 धातुओं में शब्दांशभेद है। इसके साथ-साथ भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ के बारह धातुओं में पौर्वापर्यक्रमसम्बन्धी भेद पाया जाता है। इसी प्रकार शास्त्रिसम्पादित धातुपाठ में मतान्तर से पठित धातुओं की संख्या चार है जबकि भाषावृत्तिस्थ धातुपाठ में मतान्तर से पठित धातुओं की संख्या 108 है।

भाषावृत्तिस्थ पाणिनीयलिङ्गानुशासन तथा सिद्धान्तकौमुदीस्थ पाणिनीयलिङ्गानुशासन में तीन प्रकार का पाठान्तर पाया जाता है। इन दोनों ग्रन्थों में निर्दिष्ट लिङ्गानुशासन में 17 शब्दों के स्वरूप में पाठान्तर है। भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन में सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन की अपेक्षा सात शब्दों का अतिरिक्त शब्दपाठ है जबकि सिद्धान्तकौमुदीस्थ लिङ्गानुशासन में भाषावृत्तिस्थ लिङ्गानुशासन की अपेक्षा नौ शब्दों का अतिरिक्त शब्दपाठ के रूप में निर्देश है। इसके अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों में कतिपय शब्दों का पौर्वापर्यक्रम से पाठान्तर है तथा कुछ शब्दों में अशुद्ध शब्दांशों का सन्निवेश भी हो गया है।

---

1. द्र०प्र०भा० 4.1.162, ''यूनश्च कुत्सायाम्'' इति सूत्रमनार्षमिति वचनम्।
2. भा०वृ० 4.3.133
3. वही 6.1.156
4. प्र०भा० 4.3.132,''अण्वक्तव्य इति।''कौपिञ्जलहास्तिपदादण्'' इत्यस्यापाणिनीयत्वात्''।
5. उद्द्योत० 4.3.132 ''इदमपि वार्त्तिकमिति तु हरदत्त:''।
6. सि०कौ०वा० 2085
7. म०भा० 6.1.157
8. टि०–भाषावृत्ति में उक्त सूत्र का अधिकार स्पष्ट कर दिया गया है।
9. टि०–भाषावृत्तिकार उक्त सूत्र में य: प्रत्यय स्वीकार करता है।
10. टि०–भाषावृत्तिकार के अनुसार उक्त सूत्र अश् प्रत्ययविधायक है।
11. टि०–भाषावृत्तिकार ने उक्त सूत्र में उप का अधिक पाठ किया है।
12. टि०–भाषावृत्तिकार ने यूर्ण के स्थान पर उक्त सूत्र में यूर्णुपाठ किया है।
13. टि०–महाभाष्य में उक्त सूत्र ''नामन्त्रिते समानाधिकरणे'' इस रूप में पठित हुआ है।
14. टि०–महाभाष्य [8.1.74] में उक्त सूत्र का पाठ ''सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने'' यह है।
15. टि०–महाभाष्य [8.4.28] सूत्र पर उक्त सूत्र का पाठ ''उपसर्गादनोत्पर:'' है परन्तु भाष्यकार ने सूत्रपाठ ''उपसर्गाद्बहुलम्'' ऐसा होना चाहिये यह भी सङ्केत किया है।
16. टि-भाषावृत्तिकार ने काशिकाकार के समान ग्रन्थ समाप्तिसूचक इतिशब्द को सूत्र में प्रक्षिप्त किया है।
17. टि०–महाभाष्यकार को ''[illegible]'' [6.1.127] सूत्र पर

''किमर्थश्चकार:? प्रकृत्येत्येतदनुकृष्यते'' इस उक्ति से यही प्रतीत होता है कि भाष्यकार को प्रकृत्या का पाठ स्वीकार्य है।

18. टि०–प्रदीपकार ने ''इषुगमीति पाठोऽनार्ष:'' इस पाठ को अनार्ष कहकर इषु के स्थान पर इष पाठ और गमि के स्थान पर गम पाठ स्वीकार किया है।
19. टि०–भाषावृत्ति में उक्त सूत्र में काण्ठे पाठ है जबकि सिद्धान्तकौमुदी में काण्डे।
20. टि०–भाषावृत्ति, काशिका, अष्टकं पाणिनीयम् इत्यादि ग्रन्थों में उक्त सूत्र में ठच् प्रत्यय ही है जबकि सिद्धान्तकौमुदी में ठञ्।
21. टि०–भाषावृत्ति में उक्त सूत्र में बुधपाठ है जबकि सिद्धान्तकौमुदी में युध।
22. टि०–सिद्धान्तकौमुदी के अ प्रत्यय से उद्द्योतकार [6.3.92] तथा प्रक्रियाकौमुदीकार ने सूत्राङ्क 260 द्वि०भा० पर सहमति प्रकट की है।
23. म०भा० 6.4.110
24. द्र०भा०वृ० 1.1.43; 1.2.7; 1.4.1; 2.1.38; 2.4.27
25. भा०वृ० 1.1.40
26. वही 1.4.66
27. वही 2.4.80
28. टि०–उक्त संख्या का निर्धारण ''पाणिनीज़ ग्रामेटिक'' तथा ''दा गणपाठ आस्क्राइब्ड टु पानिनि'' ग्रन्थों के आधार पर किया है।
29. भा०वृ० 5.2.103
30. भा०वृ० 8.2.79
31. गण०महो०अध्या०1, श्लो० 19, पृ० 46–
    ''**आकृतिगणश्चायं तेनापरिमितशब्दसमूह:।**
    आकृत्या आकारेण लक्ष्यते स आकृतिगण:॥''
32. भा०वृ० 1.1.37
33. वही 1.4.57
34. वही 1.4.74
35. वही 2.1.40
36. वही 2.1.48
37. वही 2.1.56
38. वही 2.1.59
39. वही 2.1.72

40. वही 2.2.37

41. भा.वृ. 2.4.31
42. वही 2.4.59
43. वही 3.1.13
44. वही 3.1.18
45. वही 3.1.27
46. वीह 3.1.134
47. वही 3.3.104
48. वही 3.4.74
49. भा० वृ० 4.1.45
50. वही 4.1.56
51. वही 4.1.96
52. वही 4.1.112
53. वही 4.1.123
54. वही 4.2.138
55. वही 4.3.88
56. वही 5.1.124
57. वही 5.2.24
58. वही 5.2.36
59. वही 5.2.97
60. वही 5.2.127
61. वही 5.4.38
62. वही 6.3.109
63. वही 7.3.20
64. भा.वृ. 8.2.9
65. वही 8.3.48
66. वही 8.3.98
67. वही 8.4.39
68. वा.भा.वृ. 2.1.60
69. वही 2.1.72
70. वही 3.2.5

71. वही 4.2.138
72. वही 4.3.60
73. वही 5.1.124
74. वही 5.4.44
75. वही 7.3.45
76. वही 8.4.6
77. वही 8.4.10
78. भा.वृ. परिशि. भ्वा. धा. सं. 24, 105, 106, 298, 338, 352, 356, 357, 375, 381, 455, 523, 535, 569, 584, 623, 652, 785, 819-825, 827-842, 850, 858, 910, 917, 943, 948, 983, 999.
79. भा०वृ० परिशि० अदा०धा०सं० 26.
80. भा०वृ० परिशि० दिवा०धा०सं० 6,48, 49, 50, 81
81. भा०वृ० परिशि० स्वा० धा०सं० 21, 26
82. भा०वृ० परिशि० क्र्या० धा०सं० 40, 60
83. भा०वृ० परिशि० चुरा० धा०सं. 23, 115, 116, 214, 215, 231, 263, 267-269, 282, 297, 301, 333, 362, 363, 381
84. शा०सम्पा०पा०धा०पा०भ्वा०धा०सं० 46, 293, 567, 724, 745, 779, 834, 933.
85. शा०सम्पा०पा०धा०पा० अदा०धा०सं० 1019.
86. शा०सम्पा०पा०धा०पा०दिवा०धा०सं० 1172, 1195.
87. शा०सम्पा०पा०धा०पा०तुदा०धा०सं. 1293
88. शा० सम्पा० पा० धा० पा० क्रया० धा० सं० 1471
89. शा०सम्पा०पा०धा०पा०चुरा० धा० सं० 1660, 1714, 1765, 1792-1795.
90. शा०सम्पा०पा०धा०पा० में धा०सं० 23, 106
91. शा०सम्पा०पा०धा०पा० में धा०सं० 1237
92. भा०वृ०भ्वा०धा०सं० 64. 114, 155, 155, 155, 155,295, 315, 318, 326, 329, 334, 338, 351, 359, 360, 385, 385, 432, 432, 454, 460, 507, 507, 507,514, 535, 544, 615, 647, 653, 665, 737, 745, 757, 887, 887, 911, 979, 979, 979, 979, 979, 979, 983.
93. भा०वृ० अदा०धा०सं० 14, 14, 18, 19.
94. भा०वृ० जुहो०धा०सं० 4.

95. भा०वृ० दिवा०धा०सं० 69, 87, 87.

96. भा०वृ० स्वा०धा०सं० 9, 35
97. भा०वृ० तुदा०धा०सं० 26, 27, 45, 66, 107, 107, 109, 113, 114.
98. भा०वृ० क्र्या० धा०सं० 22, 22, 59.
99. भा०वृ० चुरा०धा०सं० 9, 10, 19, 21, 23, 32, 34, 34, 34, 34, 39, 40, 51, 51, 91, 93, 103, 103, 106, 106, 122, 125, 137, 142, 152, 165, 204, 204, 213, 272,287, 287, 287, 307, 341, 347, 381, 382, 387, 387, 391.
100. भा०वृ०पुल्लिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 29, 56, 56, 82.
101. भा०वृ० नपुंसकलिङ्गानुशासन'' 14, 28, 49.
102. सि०कौ० पुल्लिड्ङ्गानुशासन सूत्राङ्क 54, 90, 90, 78, 98
103. सि०कौ० नपुंसकलिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 163, 64, 65.
104. सि०कौ० पुंनपुंसकयो: लिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 178
105. भा०वृ० स्त्रीलिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 23
106. वही सूत्राङ्क 31
107. भा०वृ० पुल्लिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 4
108. वही सूत्राङ्क 28
109. वही सूत्राङ्क 32
110. सि०कौ० स्त्रीलिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 23, ''रुट् रोष:'' हर्षवर्द्धन लिङ्गानुशासन, पृ०7
111. सि०कौ० स्त्रीलिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 31
112. सि०कौ० पुल्लिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 38
113. वही सूत्राङ्क 62
114. वही सूत्राङ्क 66
115. वैया०सि०सुधानिधि स्त्रीलिङ्गानुशासन पृ० 1122.
116. नामिक में उद्धृत स्त्रीलिङ्गानुशासन सूत्राङ्क 31
117. सि०कौ० तत्त्व० सूत्राङ्क 428
118. भा०वृ० 3.3.1
119. वही 3.3.2
120. द्र०युधि० व्या०शा०इति०भा० 2, पृ०208
121. द्र० टि० 2 युधि. व्या. शा. इति. भा. 2, पृ. 208

पञ्चम अध्याय

पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों का भाषावृत्ति पर प्रभाव तथा उसकी मुख्य प्रक्रियाग्रन्थों से तुलना

5.1 पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों का भाषावृत्ति पर प्रभाव-

भाषावृत्ति विविध व्याकरणिक सिद्धान्तों की निधि है। इसमें व्याकरणशास्त्र की सुदीर्घकाल से चली आ रही परम्परा का सुन्दर निर्वाह हुआ है। यहाँ अनेक ज्ञात तथा अज्ञात पूर्ववर्त्ती वृत्तियों, आचार्यों तथा भाष्यादिग्रन्थों के व्याकरणिक सिद्धान्त निर्दिष्ट हुये हैं। इसमें माथुरीवृत्ति,[1] काशिकावृत्ति, भागवृत्ति, तथा केशववृत्ति[2] आदि वृत्तियों, व्याडि,[3] भारद्वाज,[4] सौनाग,[5] भागुरि, पौष्करसादि,[6] गालव,[7] वररुचि,[8] चन्द्रगोमी, जयादित्य-वामन, भर्त्तृहरि आदि आचार्यों, भाष्य एवं न्यासादि ग्रन्थों तथा स्मृति और आगम के वचनों तथा मतों का यत्र-तत्र निर्देश हुआ है। इतना ही नहीं, यहाँ अनेक अज्ञात वृत्तियों तथा आचार्यों के मतों का निर्देश एके, अन्ये, अपरे, केचित् आदि शब्दों के द्वारा किया गया है।

वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में जो तत्तद्व्याकरणिक मतों का उल्लेख किया है। उसका मुख्य प्रयोजन कहीं स्वमत की पुष्टि करना है तो कहीं सूत्र, सूत्रार्थ तथा सूत्र प्रयोजनादि से सम्बन्धित सन्देह की निवृत्ति करना है। इसके अतिरिक्त वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में उन वृत्तियों तथा आचार्यों के उन मतों का भी निर्देश किया है जो तत्तत् सूत्रों के अर्थ, उदाहरण, प्रयोजन, स्वरूप, त्रुटि और त्रुटिनिवारक वचनादि के विषय में अपना विशिष्टमत रखते हैं तथा व्याकरणिक सिद्धान्तों की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं। इन मतों के निर्देश के द्वारा वृत्तिकार ने पूर्ववर्त्ती व्याकरणिकपरम्परा को निर्दिष्ट करने का यथेष्ट प्रयास किया है। इतना ही नहीं जो व्याकरणिक मत वृत्तिकार के मतों के साथ मेल नहीं खाते हैं वृत्तिकार ने व्याकरणिकपरम्परा के निर्वाह हेतु निदर्शनार्थ से उन मतों का भी निर्देश किया है।

वृत्तिकार ने जो मत अपने मत की पुष्टि के लिये निर्दिष्ट किये हैं तथा जिन मतों का निर्देश सूत्रादि से सम्बन्धित सन्देहनिवृत्ति के लिये किया गया है, वृत्तिकार उन मतों से तो प्रभावित है ही परन्तु इसके अतिरिक्त वृत्तिकार ने विविध वृत्तियों तथा आचार्यों के उन स्वतन्त्र मतों को भी पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है जो तत्त्त सूत्रादि के विषय में अपना विशिष्ट मत रखते हैं तथा जिनके निर्देश करने से सुदीर्घकालीन व्याकरणिकपरम्परा का निर्वाह होता है।

यद्यपि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दृष्टि से उपर्युक्त सभी आचार्यों के व्याकरणिक सिद्धान्तों का प्रभाव भाषावृत्ति पर परिलक्षित होता है तथापि ग्रन्थविस्तार के भय से यहाँ केवल कतिपय मुख्य वृत्तियों, आचार्यों तथा भाष्यादिग्रन्थों के प्रभाव को वर्णित किया जा रहा है–

[1] भाषावृत्ति पर आचार्य भागुरि का प्रभाव–

[1.1] अधिकांश वैयाकरण "**शिवशमरिष्टस्य करे**"[9] सूत्र द्वारा निष्पन्न शिवतातिः आदि प्रयोगों को छान्दस मानते हैं लेकिन वृत्तिकार ने इन प्रयोगों को भाषा में भी साधु माना है। उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिये भागुरि के मत को उद्धृत किया है–"अमी शब्दाश्छान्दसा अपि क्वचिद् भाषायां प्रयुज्यन्त इति त्रिकाण्डे भागुरिनिबन्धनाद्वाऽव्युत्पन्नसंज्ञाशब्दत्वाद्वा सर्वथा भाषायां साधवः"। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने जो भागुरि के मत को उद्धृत किया है उससे स्पष्ट होता है कि वृत्तिकार भागुरि के मत से प्रभावित है।

[1.2] अधिकांश वैयाकरण स्वस्रादिगण में "नप्तृ" शब्द का पाठ स्वीकार नहीं करते हैं जिससे उनके मत में "न षट्स्वस्रादिभ्यः"[10] इस ङीप् निषेधक सूत्र की प्रवृत्ति न होने से नप्तृ शब्द से नप्त्री यह रूप निष्पन्न होता है। भागुरि के मत में स्वस्रादिगण में नप्तृ शब्द का पाठ है अतः उसके मत में उक्त ङीप् निषेधक सूत्र की प्रवृत्ति होने से नप्त्री के स्थान में नप्ता यह रूप निष्पन्न होता है–"नप्तेति भागुरिः"। वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में भागुरि के मत का निर्देश कर उनके मत को अधिमान देने का प्रयास किया है।

[2] **भाषावृत्ति पर महाभाष्य का प्रभाव**– भाषावृत्तिकार महाभाष्य को एक प्रामाणिकग्रन्थ स्वीकार करता है। इसीलिये उन्होंने अनेकत्र महाभाष्य के मतों को उद्धृत किया है। इनमें से कतिपय मतों द्वारा वृत्तिकार ने अपने मत

की पुष्टि की है तो कतिपय मत सूत्रसम्बन्धी सन्देहनिवृत्ति के लिये उद्धृत किये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने भाष्य के ऐसे मत भी उद्धृत किये हैं जिनका सम्बन्ध कतिपय सूत्रों के अर्थ, उदाहरण, प्रयोजन तथा कमी का निर्देश करना है। यद्यपि भाषावृत्तिकार भाष्य के प्रति विशेष आदरभाव रखते हैं तथापि जिन स्थलों पर वृत्तिकार को भाष्यकार के मत अरुचिकर लगे उन्होंने उन स्थलों का भी निर्देश किया है। इन मतों का संक्षिप्त विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

[2.1] वृत्तिकार ने भाष्य के कतिपय मत अपने मत की पुष्टि के लिये उद्धृत किये हैं। यथा–

[2.1क] काशिकाकार वस् धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय, णिद्वद्भाव तथा उपधावृद्धि द्वारा वास्तव्यः इस रूप को निष्पन्न करते हैं लेकिन पुरुषोत्तमदेव "तव्यत्तव्यानीयरः"[11] सूत्र की वृत्ति में वास्तव्यः प्रयोग को तद्धितान्त मानते हैं–"इह वास्तव्यस्तद्धितान्तः" तथा अपने समर्थन में इस भाष्यवचन को उद्धृत करते हैं–"तदुक्तं भाष्ये तद्धितो वा पुनरेषः। वास्तुनो भवो वास्तव्य इति"।

[2.1ख] काशिकाकार के अनुसार "आढ्यसुभग....."[12] सूत्रस्थ अच्वि पद सार्थक है। उनके मत में अच्व्यन्त उपपद रहते ख्युन् प्रत्यय का निषेध होता है और ख्युनभावपक्ष में ल्युट् प्रत्यय भी नहीं होता है लेकिन भाषावृत्तिकार के मत में प्रस्तुत सूत्र में अच्वि ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि ख्युन् के अभाव में ल्युट् प्रत्यय सम्भव होने से रूपनिष्पत्ति में कोई अन्तर नहीं आता है। इसलिये वे उक्त सूत्रस्थ अच्वि पद को उत्तरार्थ स्वीकार करते है–"अच्वावित्युत्तरार्थम् इह तु ख्युना मुक्ते ल्युटाभाव्यम्। आढ्यीकरणो रसविधिः। स्थूलीकरणमौषधम्" तथा अपने मत की पुष्टि में भाष्यकार को उद्धृत करते है–"तदुक्तं भाष्ये ख्युनि च्विप्रतिषेधानर्थक्यम्। ल्युट्ख्युनोरविशेषादिति"।

[2.1ग] **एकोगोत्रे**[13] सूत्र की वृत्ति के अनुसार गोत्रापत्य में प्रथम शब्द ही प्रत्यय को प्राप्त करता है, अनन्तरापत्यप्रत्ययान्तप्रत्यय नहीं–"आद्यप्रकृतेर्गोत्रे एक एव प्रत्ययः स्यात्"। वृत्तिकार ने अपने उक्त अर्थ के समर्थन के लिये भाष्यकार को उद्धृत किया है–"उक्तञ्च भाष्ये एको गोत्र इति। गोत्रे एकः प्रथमशब्द एव प्रत्ययमुत्पादयतीति। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। तत्पुत्रोऽपि गार्ग्यः"। इसी प्रकार वृत्तिकार ने अनेकत्र अपने मत की पुष्टि के लिये भाष्यकार को उद्धृत किया है।[14]

[2.2] भाषावृत्तिकार ने अनेकत्र सूत्रसम्बन्धी सन्देह की निवृत्ति के लिये भाष्यमत को उद्धृत किया है। यथा–

[2.2क] ''केशचुञ्चुः'' और ''केशचणः'' इन प्रयोगों में ''तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ''[15] सूत्र द्वारा जो चुञ्चुप् और चणप् प्रत्ययों का विधान किया गया है, ''चुटू''[16] सूत्र द्वारा उनके आदि चकार की इत्संज्ञा क्यों नहीं होती है इस सन्देह की निवृत्ति के लिये वृत्तिकार ने भाष्य के मत को उद्धृत किया है–''चित्कार्य्याभावात्। यादी चुञ्चुप्चणपौ लुप्तनिर्दिष्टयकाराविति भाष्यम्''।

[2.2ख] **यू स्त्र्याख्यौ नदी**[17]– यह सूत्र नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की नदीसंज्ञा का विधान करता है। सूत्र के उक्त अर्थ के अनुसार ''अतिलक्ष्म्यै विप्राय'' और ''बहुप्रेयस्यां राजनि'' इन प्रयोगों में अतिलक्ष्मी और बहुप्रेयसी शब्दों की नदीसंज्ञा सम्भव नहीं है क्योंकि ये समस्त शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान नहीं हैं। वृत्तिकार ने भाष्य के मत को उद्धृत कर उक्त प्रयोगों की निष्पत्ति की है तथा सन्देह का निवारण किया है–''कथमतिलक्ष्म्यै विप्राय? बहुप्रेयस्यां राजनि? अवयवस्त्रीविषयत्वात् सिद्धमिति भाष्यम्''।

[2.2ग] **समासाच्च तद्विषयात्**[18]– यह सूत्र इवार्थ विषयक समास से छ प्रत्यय का विधान करता है यहाँ यह सन्देह उत्पन्न होता है कि जब समास से ही इवार्थ उक्त हो गया है तो पुनः इवार्थ में छप्रत्यय के विधान की क्या आवश्यकता है। वृत्तिकार ने इस सन्देह के निवारण हेतु भाष्य के मत को उद्धृत किया है–'' अत्र भाष्यं–''द्वाविमाविवार्थौ। काकगमनमिव तालपतनमिव देवदत्तस्य दस्युसमागमः। काकतालम्। निपातनात् समासः। ततस्तालेन काकस्य वध इव देवदत्तस्य वधो दस्युभिः काकतालीयमिति''। उक्त प्रकारक भाष्य के मत भाषावृत्ति में अन्यत्र भी निर्दिष्ट हुये हैं।[19]

[2.3] वृत्तिकार का भाष्य के प्रति अत्यधिक आदरभाव होने पर भी कतिपय स्थलों पर भाष्यकार और वृत्तिकार में वैमत्य परिलक्षित होता है। यथा–

[2.3क] पुरुषोत्तमदेव ''समीधे'' और ''बभूव'' इन दोनों प्रयोगों की सत्ता लोक मे भी स्वीकार करते हैं तथा उनकी निष्पत्ति हेतु ''इन्धिभवतिभ्याञ्च''[20] सूत्र को सार्थक मानते हैं। इसके विपरीत भाष्य के मत में उक्त किद्वचन निरर्थक

है क्योंकि उनके मत में इन्ध् धातु छान्दस है और "छन्दस्युभयथा" सूत्र के द्वारा ही उसकी निष्पत्ति सम्भव है। इसी प्रकार वृद्धि की अपेक्षा वुक् को नित्य मानकर बभूव रूप भी निष्पन्न किया जा सकता है–"अत्रेन्धेश्छन्दोविषयत्वाद् भुवो वुको नित्यत्वादाभ्यां किद्वचनानर्थक्यमिति भाष्यम्"।

[2.3ख] वृत्तिकार के अनुसार रसवान्, रूपवान् आदि प्रयोगों में "**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**"[21] सूत्र द्वारा भी मतुप् प्रत्यय सम्भव है अत: उनके मत में अन्य मत्वर्थीय प्रत्ययों की निवृत्ति के लिये "रसादिभ्यश्च"[22] सूत्र निर्दिष्ट किया गया है–"रसादेर्मतुबेव स्यात्। नान्ये मत्वर्थीया:"। इसके विपरीत भाष्यकार के मत में उक्त सूत्र नियामक न होकर निरर्थक है क्योंकि उनकी दृष्टि में रसादि शब्दों से मतुप् प्रत्यय के अतिरिक्त ठन् और इनादि अन्य मत्वर्थीय प्रत्यय भी दृष्टिगोचर होते हैं। इसीलिये भाष्यकार ने उक्त सूत्र का प्रत्याख्यान किया है–"भाष्यकारस्य तु सूत्रस्यास्य प्रत्याख्यानमभिमतम्। रसिको राजा। रूपिण्योऽप्सरस:। स्पर्शी वायुरित्यादिदर्शनात्"।

[2.3ग] वृत्तिकार ने अर्थशब्द से असन्निहित अर्थ में इनिप्रत्यय के विधान हेतु "अर्थाच्चासन्निहिते"[23] इस वार्तिक को अपनी स्वीकृति प्रदान की है लेकिन भाष्यकार के अनुसार अर्थ याच्ञायाम् धातु से "अत इनिठनौ"[24] सूत्र द्वारा इनिप्रत्यय होने से अर्थी यह रूप निष्पन्न हो जाता है अत: उनके मत में यह वार्तिक निष्फल है और इसी कारण उन्होंने इसका प्रत्याख्यान भी किया है–"भाष्ये त्वेतत्प्रत्याख्यायार्थनमर्थ इति याच्ञावचनात् मत्वर्थीयं कृत्वार्थी अर्थिक इति च साधितम्। एवं च धनवचनादर्थशब्दादिनिर्याच्ञावचनाच्च मतुबनभिधानान्न भवतीति वाच्यम्।

इसके अतिरिक्त वृत्तिकार ने भाष्य के ऐसे मत भी उद्धृत किये हैं जिनका सम्बन्ध कतिपय सूत्रों के अर्थ, उदाहरण, प्रयोजन तथा कमी का निर्देश करना है। "कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रिय:" [3.1.87], "क्रव्ये च" [3.2.69] आदि[25] सूत्रों में इस प्रकार के मत देखे जा सकते हैं।

[3] **भाषावृत्ति पर चान्द्रव्याकरण का प्रभाव**– भाष्यकार के समान आचार्य चन्द्रगोमी का भी भाषावृत्ति पर प्रभाव परिलक्षित होता है। वृत्तिकार ने अनेकत्र कतिपय प्रयोगों की पुष्टि के लिये चान्द्रव्याकरण के सूत्रों को उद्धृत किया है। यथा–

[3.1] कतिपय आचार्य ''पीवा'' इस प्रयोग को छान्दस मानते हैं परन्तु कतिपय लौकिक और वैदिक उभयविध-''पीवेति भाषायामपीत्येके''।[26] जो आचार्य इस प्रयोग को लौकिक भी मानते हैं, उनके समर्थन में वृत्तिकार ने चान्द्रसूत्र को उद्धृत किया है-''तथा च क्विब्विज्मनिन्क्वनिब्वनिप इति चान्द्रसूत्रम्''।

[3.2] **ईर्ष्यतेस्तृतीयस्य**[27]- यह वार्तिक सन् परे रहते ईर्ष्य धातु के तृतीय वर्ण को द्वित्व का विधान करता है। कुछ आचार्य ईर्ष्य धातु के तृतीय एकाच् को तो कुछ तृतीय व्यञ्जन को द्वित्व स्वीकार करते हैं-''तृतीयस्यैकाच इत्येके। ईर्ष्यिषिषति। व्यञ्जनस्येत्यपरे। ईर्ष्यियिषति''। भाषावृत्तिकार ने इन उभयविध मतों की पुष्टि हेतु चान्द्रसूत्र को उद्धृत किया है-''ईर्ष्यो यि: सन् वा द्विरिति चान्द्रं सूत्रम्''। यहाँ यह अवधेय है कि उपर्युक्त दोनों मत वृत्तिकार को भी अभिमत हैं इसीलिये वे इन दोनों मतों की पुष्टि के लिये चान्द्रसूत्र को उपस्थित करते हैं।

[3.3] **यङो वा**[28]- भागवृत्तिकार यङ्लुक को केवल छान्दस मानता है लेकिन भाषावृत्तिकार तथा कुछ अन्य आचार्य यङ्लुक् को लौकिक भी मानते हैं-''यङ्लुक् छान्दस इति भागवृत्तिः। नेत्यन्ये''। भाषावृत्तिकार ने यङ्लुक् की लौकिकता में भाषासूत्रकार चन्द्रगोमी के सूत्र को उपस्थित किया है-''चन्द्रगोमी भाषासूत्रकारो यङो वेति सूत्रितवान्''।

इसके अतिरिक्त भाषावृत्तिकार ने अन्यत्र भी चन्द्रगोमी के विविध मतों को उद्धृत किया है।[29]

[4] **भाषावृत्ति का काशिका पर प्रभाव**- भाषावृत्ति पर काशिकावृत्ति का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। वृत्तिकार ने काशिकावृत्ति के सूत्रपाठ को ही अपनी वृत्ति में अपनाया है। किञ्च अनेक सूत्रों से सम्बन्धी सन्देहों की निवृत्ति के लिये तथा तत्तत् सूत्रों के सम्बन्ध में उसके विशिष्ट मत को अपनी वृत्ति में निर्दिष्ट किया है। इनका संक्षिप्त विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है-

[4.1] **भाषावृत्ति का सूत्रपाठ**- भाषावृत्ति ने काशिका के सूत्रपाठ को ही अपनी वृत्ति में अपनाया है। यहाँ काशिका के समान पाणिनि के नौ सूत्रों में योगविभाग स्वीकार किया गया है[30] तथा महाभाष्य के नौ वार्तिकों को सूत्र रूप में पढ़ा गया है।[31] इसी प्रकार पन्द्रह सूत्रों में महाभाष्य के वार्तिकों का प्रक्षेप

किया गया है[32] तथा यहाँ काशिका के समान ही दो अतिरिक्त सूत्र भी पठित हुये हैं।[33]

[4.2] वृत्तिकार ने सूत्रादि से सम्बन्धित सन्देहों की निवृत्ति के लिये अनेकत्र वामन और जयादित्य के मतों को उद्धृत किया है। यथा–

[4.2क] **स्तेनात् यन्न लोपश्च**[34]– यह सूत्र स्तेन शब्द से भाव अथवा क्रिया मे यत् प्रत्यय और न लोप का विधान कर स्तेयम् यह रूप निष्पन्न करता है परन्तु अमरकोशादि ग्रन्थों में स्तेयम् शब्द के साथ-साथ स्तैन्यम् यह रूप भी उपलब्ध होता है जोकि प्रस्तुत सूत्र से निष्पन्न नहीं हो सकता है। वृत्तिकार ने इस रूप की निष्पत्ति हेतु जयादित्य के मत को उद्धृत किया है–"योगविभागात् ष्यञिति जयादित्य:"। इस मत के अनुसार उक्त सूत्र में स्तेनात् यह योगविभाग स्वीकार कर तथा उसमें पूर्ववर्त्ती सूत्रों से ष्यञ् प्रत्यय की अनुवृत्ति मानकर स्तैन्यम् यह रूप निष्पन्न हो जाता है। इस प्रकार उक्त रूप की निष्पत्ति में सन्देह के निवारण हेतु वृत्तिकार ने जयादित्य के मत को अधिमान दिया है।

[4.2ख] **अन्येषामपि दृश्यते**[35]– प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में वृत्तिकार ने जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह सूत्र समास में ही पूर्वपद के अन्तिम अच् को दीर्घ का विधान करता है अत: उक्त अर्थ के अनुसार पूरुष: और नारक: इन शब्दों के आदि अच् को दीर्घ सम्भव नहीं है। वृत्तिकार ने इन प्रयोगों की निष्पत्ति हेतु वामनवृत्ति को उद्धृत किया है–"दृशिग्रहणादिह पूरुषो नारक इत्यादावप्ययं दीर्घ इति वामनवृत्ति:"। इस वृत्ति के अनुसार सूत्रस्थ दृशिग्रहणसामर्थ्य से यह सूत्र असमास अर्थ में भी आदि अच् को दीर्घ का विधान कर देता है। इस प्रकार वृत्तिकार ने उक्त प्रयोगों की निष्पत्ति में उत्पन्न सन्देह की निवृत्ति के लिये वामनवृत्ति के मत को उद्धृत किया है।

[4.2ग] **किरश्च पञ्चभ्य:**[36]– सूत्रस्थ चिकरिषति, जिगरिषति, दिदरिषते आदि प्रयोगों में "वृतो वा"[37] सूत्र के द्वारा इडागम को विकल्प से दीर्घ क्यों नहीं होता है? इस सन्देह की निवृत्ति के लिए वृत्तिकार ने वामनवृत्ति को उद्धृत किया है–"वृतो वेत्यस्येटो दीर्घो नेहास्तीति वामनवृत्ति:। वृत्तिकार ने "किरश्च पञ्चभ्य:" सूत्र के जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनमें "वृतो वा" सूत्र के द्वारा दीर्घ का निर्देश नहीं किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि वृत्तिकार वामनवृत्ति के मत से सहमत है। काशिकावृत्ति के इस प्रकार के अन्य मत भी भाषावृत्ति में उपलब्ध होते हैं।[38]

[4.3] इसके अतिरिक्त भाषावृत्ति में काशिकावृत्ति के कतिपय ऐसे मत भी उद्धृत हुये हैं जो भाषावृत्ति के मतों से मेल नहीं खाते हैं। यथा–

[4.3क] भाष्यकार तथा भाषावृत्तिकार दोनों ही ''धर्मादनिच् केवलात्''[39] सूत्र का यह अर्थ स्वीकार करते हैं–केवल धर्म शब्द के साथ जहाँ समास हुआ है ऐसे तदन्तबहुव्रीहि से अनिच् प्रत्यय होता है जिससे उनके मत में धर्म शब्दान्त द्विपद और त्रिपद-बहुव्रीहि में भी अनिच् प्रत्यय हो जाता है–''साक्षात्कृतो धर्मो यैस्ते साक्षात्कृतधर्माणो मुनय इति भाष्यप्रयोग:''। इसके विपरीत जयादित्य ने प्रस्तुत सूत्र में पठित केवल शब्द के आधार पर सूत्र का यह अर्थ स्वीकार किया है–केवल एकपद पूर्ववाला जो धर्म शब्द तदन्त बहुव्रीहि से अनिच् प्रत्यय होता है। जयादित्य के इस अर्थ के आधार पर परमस्वधर्म:। इस त्रिपदबहुव्रीहि में अनिच् प्रत्यय नहीं होता। इसी त्रुटि के कारण भाषावृत्तिकार ने जयादित्य के मत का खण्डन किया है–''यथा तु जयादित्यस्तथा नैतत्''।

इसके अतिरि्क्त ''अस्मदो द्वयोश्च'' [1.2.59], ''भिक्षादिभ्योऽण्'' [4. 2.38] आदि[40] सूत्रों में भाषावृत्तिकार ने तत्तत् सूत्रादि के सम्बन्ध में काशिकावृत्ति के विशिष्ट मतों को निर्दिष्ट किया है।

[5] **भाषावृत्ति पर भर्त्तृहरि का प्रभाव**– भाषावृत्ति पर आचार्य भर्त्तृहरि का प्रभाव भी परिलक्षित होता है क्योंकि उन्होंने तीन स्थलों पर उनके मत को श्रद्धाभाव से उद्धृत किया है। यथा–

[5.1] भर्त्तृहरि **''हरतेर्गतताच्छील्ये''**[41] इस वार्त्तिक द्वारा सादृश्यशीलन अर्थ में हृञ् धातु से आत्मनेपद का विधान स्वीकार करते हैं–''हरतेर्गतताच्छील्ये। गतविधप्रकारास्तुल्यार्था इति भर्त्तृहरि। सादृश्यशीलने हृञस्तत् स्यात्''। भाषावृत्तिकार भर्त्तृहरि के उक्त मत से सहमत प्रतीत होते हैं। इसीलिये वे भर्त्तृहरि के अनुसार वार्त्तिक का अर्थ निर्देशकर तत्पश्चात् उसके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इसके अतिरिक्त ''कर्त्तरि च''[42] और ''वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने''[43] सूत्रों में भी उन्होंने भर्त्तृहरि के मतों को उद्धृत किया है।

[6] **भाषावृत्ति पर भागवृत्ति का प्रभाव**– भाषावृत्ति पर भाष्य के अनन्तर भागवृत्ति का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। वृत्तिकार ने अनेकत्र अपने मत

की पुष्टि के लिये अथवा सन्देहनिवृत्ति के लिये भागवृत्ति के मतों को उद्धृत

किया है। इसके अतिरिक्त यहाँ तत्तत् सूत्रों के विषय में भागवृत्ति के जो विशिष्ट मत हैं उनको भी उद्धृत किया गया है। इतना ही नहीं वृत्तिकार ने भागवृत्ति के वे मत भी उद्धृत किये हैं जो उनके मत से मेल नहीं खाते। इनका संक्षिप्त विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

[6.1] भाषावृत्तिकार ने भागवृत्ति के कतिपय मत अपने मत की पुष्टि के लिये उद्धृत किये हैं। यथा–

[6.1क] भाषावृत्तिकार "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च"[44] सूत्र द्वारा वर्त्तमान अर्थ में इच्छार्थक, ज्ञानार्थक और पूजार्थक धातुओं से क्तप्रत्यय का विधान स्वीकार करता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि वृत्तिकार भूतकालिक क्तप्रत्यय के बाध को स्वीकार कर ही वर्त्तमान अर्थ में क्तप्रत्यय का विधान मानता है। वृत्तिकार ने उक्त सूत्र की वृत्ति में भागवृत्ति के उस मत को उद्धृत किया है जो उनके मत से मेल खाता है–"इह वर्त्तमानक्तेन भूतक्तस्य बाधनमिष्यते। तेन त्वया ज्ञातो मयार्चित इत्याद्यचिकित्स्यमिति भागवृत्तिः"।

[6.1ख] **कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः**[45]– प्रस्तुत सूत्र के निर्देशानुसार कर्मकारक या कर्त्तृकारक के उपपद होने पर ही धातु से ण्वुल् प्रत्यय होता है किन्तु भागवृत्ति के अनुसार कर्मकारकादि तथा धातु के बीच में व्यवधान होने पर भी ण्वुल् प्रत्यय होता है–"स च क्रियासमभिहारानुप्रयोगवद् व्यवधानेऽपि भवति यथा घृतनिधायकमुदकं निदधातीति भागवृत्तिः"। भाषावृत्तिकार भी भागवृत्ति के उक्त मत से सहमत प्रतीत होता है क्योंकि उसने "उपमाने कर्मणि च" सूत्र की वृत्ति में इसी प्रकार के व्यवधान वाले उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

[6.1ग] कतिपय आचार्य "शेषे"[46] सूत्र को अधिकारसूत्र मानते हैं परन्तु कतिपय अधिकार और लक्षण उभयविध सूत्र। भागवृत्ति के अनुसार चाक्षुषं रूपम् आदि प्रयोगों में "तस्येदम्"[47] सूत्र से ही अण् प्रत्यय सम्भव है अतः उसकी दृष्टि में यह सूत्र केवल अधिकार सूत्र है विधायक नहीं–"इह चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। अश्वैरुह्यते आश्वो रथः। चातुरं शकटम्। दृषदि पिष्टा दार्षदा माषाः। औदूखलाः सक्तवः। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्ष इति सामान्येन तस्येदमिति विवक्षायामिति भागवृत्तिः"। भाषावृत्ति के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वे भी "शेषे" सूत्र को अधिकार सूत्र ही मानते हैं। इस प्रकार उक्त सूत्र के

प्रयोजन के सम्बन्ध में वृत्तिकार ने भागवृत्ति के मत से सहमति प्रकट की है।

[6.2] भाषावृत्तिकार ने कतिपय स्थलों पर सन्देहनिवृत्ति के लिये भागवृत्ति के मतों को उद्धृत किया है। यथा–

[6.2क] **स्तेनात् यन्न लोपश्च**[48]– यह सूत्र स्तेन शब्द से भाव अथवा क्रिया में यत् प्रत्यय और न लोप का विधान करता है जिससे "स्तेयम्" यह रूप निष्पन्न होता है परन्तु अमरकोशादि ग्रन्थों में उपलब्ध स्तैन्यम् रूप की निष्पत्ति उक्त सूत्र से सम्भव नहीं है। भाषावृत्तिकार ने इस रूप की निष्पत्ति के लिये भागवृत्ति के मत को उद्धृत किया है–"स्तैन्यशब्दस्तु पाञ्चायतलौहितिक इति वदागमिक इति भागवृत्तिः"। इस मत के अनुसार स्तैन्यम् यह प्रयोग पारम्परिक प्रयोग है अतः इसमें बिना सूत्र के ही ष्यञ् प्रत्यय की कल्पना कर ली जाती है।

[6.2ख] **अन्येषामपि दृश्यते**[49]– सूत्रस्थ उदाहरणों से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत सूत्र समास में ही पूर्वपद के अन्तिम अच् को दीर्घ का विधान करता है। तदनुसार पूरुषः, नारकः इन प्रयोगों के आदि अच् को दीर्घ सम्भव नहीं है। इन प्रयोगों की निष्पत्ति तथा सन्देहनिवृत्ति के लिये वृत्तिकार ने भागवृत्ति के मत को उद्धृत किया है–"अनेनोत्तरपदविधानादप्राप्तिरिति पूरुषादयो दीर्घोपदेशा एव संज्ञाशब्दा इति भागवृत्तिः।

[6.3] भाषावृत्तिकार ने भागवृत्ति के उन मतों को उद्धृत किया है जो उनके मत से मेल नहीं खाते हैं। यथा–

[6.3क] भाषावृत्तिकार "यू स्त्र्याख्यौ नदी"[50] सूत्र में तदन्तविधि स्वीकार करता है जिससे उनके मत में ईदन्त और ऊदन्त स्त्रीलिङ्ग की ही नदीसंज्ञा होती है लेकिन भागवृत्तिकार उक्त सूत्र में तदन्तविधि स्वीकार नहीं करता है अतः उनके मत में ईकार अथवा ऊकार रूपवर्ण की स्त्रीलिङ्ग में नदीसंज्ञा होती है–"ईदूतोरेवेयं संज्ञेति भागवृत्तिः"।

[6.3ख] भाषावृत्तिकार के अनुसार "यङोऽचि च"[51] यह सूत्र लौकिकसूत्र है लेकिन भागवृत्ति के अनुसार यह सूत्र केवल छान्दससूत्र है–"चकाराद् बहुलं छन्दसीति सर्वमनुवर्त्तते। तेन बाहुल्यादनच्यपिच्छन्दस्येव यङ्लुक। भाष्ये तु हुश्नुग्रहणज्ञापकबलाद् बोभवीतीत्येवं पदं भाषायां साधु, नान्यदिति भागवृत्तिः"।

[6.3ग] वृत्तिकार ने "किरश्च पञ्चभ्यः"[52] सूत्रस्थ चिकरिषति, दिदरिषते आदि रूपों में "वृतो वा"[53] सूत्र की प्रवृत्ति प्रदर्शित नहीं की है लेकिन भागवृत्तिकार

इन प्रयोगों में उक्त सूत्र से वैकल्पिक दीर्घ का विधान स्वीकार करता है–"वृतो वेत्यस्येटो दीर्घो इहास्तीति भागवृत्तिः"। भाषावृत्तिकार ने इसके अतिरिक्त "एरच्" [3.3.56] आदि[54] सूत्रों में भी भागवृत्ति के ही विशिष्ट मतों को उद्धृत किया है।

जहाँ भाषावृत्ति पर अनेक पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों का प्रभाव परिलक्षित होता है वहीं भाषावृत्ति का भी कतिपय उत्तरवर्त्ती वैयाकरणों पर प्रभाव देखा जा सकता है। यथा–

शरणदेव विरचित दुर्घटवृत्ति में अनेकत्र भाषावृत्ति तथा उसमें उद्धृत सिद्धान्तों का निर्देश किया गया है। यथा–

"ङिति ह्रस्वश्च"[55] सूत्र की वृत्ति में सुमतये, विप्राय आदि प्रयोगों में पाक्षिक नदीसंज्ञा के वारण हेतु भाषावृत्तिकार ने स्मृतिवचन को उद्धृत किया है–"इहामि ङिति च ह्रस्वयोरियङुवङ्स्थानयोश्च य्वोः पाक्षिकी नदीसंज्ञा। सा स्त्रीवचन एवेष्यते। नावयवाश्रयेति स्मृतिः"। दुर्घटवृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में यह स्पष्ट निर्देश किया है कि उक्त स्मृतिवचन भाषावृत्ति में उद्धृत हुआ है– "ह्रस्वयोरियङुवङ्स्थानयोश्च "ङिति ह्रस्वश्च" इति स्त्रीवचन एव पाक्षिकी नदीसंज्ञेष्यते। न चावयवाश्रयेति स्मृतिः" इति भाषावृत्तिः।[56] जिससे स्पष्ट है कि दुर्घटवृत्तिकार ने अपने कतिपय रूपों की निष्पत्ति हेतु भाषावृत्ति में उद्धृत वचनों का आश्रय लिया है।

इसी प्रकार दुर्घटवृत्तिकार ने "सप्तम्यधिकरणे च" [2.3.36], "अमनुष्यकर्तृके च" [3.2.53] आदि[57] सूत्रों की वृत्ति में भाषावृत्ति में उद्धृत वचनों और मतों का निर्देश किया है। जो दुर्घटवृत्तिकार पर भाषावृत्तिकार के प्रभावों के पोषक हैं।

नागेशकृत परिभाषेन्दुशेखर तथा भाषावृत्ति के परिशिष्ट में निर्दिष्ट परिभाषाओं का स्वरूप तथा क्रम समान है[58] जिससे स्पष्ट है कि नागेश ने परिभाषाओं के सम्बन्ध में आचार्य पुरुषोत्तमदेव का अनुसरण किया है। यथा–

भाषावृत्ति में "व्याख्यनतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्", यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम्" आदि[59] परिभाषायें नागेशकृत परिभाषेन्दुशेखर में उसी क्रम से पठित हुई है जिस क्रम से इन्हें भाषावृत्ति में रखा गया है। यहाँ यह अवधेय है

कि भाषावृत्ति में केवल 95 परिभाषायें निर्दिष्ट की गई हैं जबकि परिभाषेन्दुशेखर में 133 परिभाषायें उपलब्ध होती हैं।

5.2 **भाषावृत्ति की मुख्य प्रक्रियाग्रन्थों से तुलना–** भाषावृत्ति अष्टाध्यायीक्रम से विरचित ग्रन्थ है। इसमें अष्टाध्यायी के सूत्र उसीप्रकार व्याख्यात हुये हैं जिस प्रकार उन्हें ''पाणिनीय-अष्टकम्'' में रखा गया है। अष्टाध्यायी पर कतिपय ग्रन्थ रूपसाधना की दृष्टि से भी लिखे गये हैं जो प्रक्रियाक्रम के नाम से अभिहित किये जाते हैं। इनमें सूत्रों को उपयोग की दृष्टि से विभिन्न प्रकरणों में विभाजित किया गया है। पाणिनीय व्याकरण को सीखने की दृष्टि से प्रक्रियाक्रम से लिखित ग्रन्थ एक सरल उपाय माना जाता है। प्रक्रियाक्रम से लिखित ग्रन्थों में धर्मकीर्तिकृत रूपावतार, रामचन्द्राचार्यकृतप्रक्रियाकौमुदी तथा भट्टोजिदीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी मुख्य हैं। इन ग्रन्थों की भाषावृत्ति से संक्षिप्त तुलना यहाँ प्रस्तुत की जा रही है–

1. भाषावृत्ति तथा धर्मकीर्तिकृत रूपावतार–

धर्मकीर्तिकृत रूपावतार प्रक्रियाक्रम का प्रथम ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ छोटा तथा सरल है जिससे कोमल बुद्धि वाले बालक भी इसको हृदयङ्गम करने में समर्थ हो जाते हैं। यह बात रूपावतार के निम्न श्लोक से सिद्ध हो जाती है–

> **''सर्वज्ञमनन्तगुणं प्रणम्य बालप्रबोधनार्थमिमम्।**
> **रूपावतारमल्पं सुकलापमृजुं करिष्यामि।।''**[60]

यद्यपि उपर्युक्त श्लोक में 'सर्वज्ञ,' शब्द के प्रयोग के आधार पर रूपावतार के सम्पादक रङ्गाचार्य ने धर्मकीर्ति को बौद्ध माना है तथापि इस ग्रन्थ में उल्लिखित निम्नलिखित उदाहरणों से उसके बौद्ध होने में सन्देह है–

यथा–येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्,[61] प्रणम्य शिरसा देवीं बालानां हितकारिणीम्,[62] देवो वां रक्षतु, देवो नौ पातु, देव दयालो नः पाहि, वासुदेवादृते न मुक्तिः, देवब्राह्मणः, दानीयो ब्राह्मणः।[63]

उक्त उदाहरणों में सनातन धर्म की आस्थाएँ और मान्यताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं।

भाषावृत्ति से रूपावतार की तुलना करने पर कतिपय साम्य दृष्टिगोचर होता है–

1.1 **सूत्रों में योगविभाग–** भाषावृत्ति तथा रूपावतार में कतिपय सूत्रों में एक समान योगविभाग दृष्टिगोचर होता है–

यथा–

क्र०	अष्ट० पा० में सूत्रपाठ	भा० वृ० में सूत्रपाठ	रूपा० में सूत्रपाठ
1.	प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे [1.4.58]	प्रादयः (1.4.58) उपसर्गाः क्रियायोगे (1.4.59)	प्रादयः (प्र० भा० पृ० 51) उपसर्गाः क्रियायोगे (प्र० भा० पृ०51 तथा दि० भा० पृ० 10)
2.	ह्वः सम्प्रसारणमभ्यस्तस्य च (6.1.32)	ह्वः सम्प्रसारणम् (6.1.32) अभ्यस्तस्य च (6.1.33)	ह्वस्सम्प्रसारणम्, (द्वि०भा०पृ०206) अभ्यस्तस्य च (द्वि०भा०पृ०206)
3.	दीर्घात् पदान्ताद्वा (6.1.73)	दीर्घात् (6.1.75) पदान्ताद्वा (6.1.76)	दीर्घात् (प्र०भा०पृ०7) पदान्ताद्वा (प्र०भा०पृ०7)
4.	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य च (6.3.7)	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (6.3.7) परस्य च (6.3.8)	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (प्र०भा०पृ०203) परस्य च (प्र०भा० पृ० 203)
5.	औदच्च घेः (7.3.118)	औत् (7.3.118) अच्च घेः (7.3.119)	औत् (प्र०भा० पृ०44) अच्च घेः (प्र०भा० पृ०44)

1.2 **वार्त्तिकों का सूत्रों के रूप में निर्देश–** भाषावृत्ति के समान रूपावतार में महाभाष्यस्थ कतिपय वार्त्तिकों को सूत्रों के रूप में स्वीकार किया गया है–

यथा–

क्र०	महाभाष्यस्थ वार्त्तिक का स्वरूप	भा० वृ० में पठित सूत्र का स्वरूप	रूपा० में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	अचि शीर्ष: (6.1.61)	अचि शीर्ष: (6.1.62)	अचि शीर्ष: (प्र०भा० पृ० 245)
2.	नित्यमाम्रेडिते डाचि (6.1.99)	नित्यमाम्रेडिते डाचि (6.1.100)	नित्यमाम्रेडिते डाचि (द्वि० भा० पृ० 232)
3.	अड्व्यवाय उपसंख्यानम्, अभ्यासव्यवाये च (6.1.135)	अडभ्यासव्यवायेऽपि (6.1.136)	अडभ्यासव्यवायेऽपि (द्वि०भा०पृ० 69)

1.3 **सूत्रों में वार्त्तिकों का प्रक्षेप**– भाषावृत्ति के समान रूपावतार में कतिपय सूत्रों में महाभाष्य की वार्त्तिकों का प्रक्षेप पाया जाता है–

यथा–

क्र०	अष्ट० पा० में सूत्र का स्वरूप	महाभाष्य में पठित वार्त्तिक	भा. वृ. में पठित सूत्र	रूपा. में पठित सूत्र का स्वरूप.
1.	प्रत्यपिभ्यां ग्रहे: (3.1.118)	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (3.1.118)	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (3.1.118)	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (द्वि०भा०पृ०252)
2.	आसुयुवपिरपिलपिचमश्च (3.1.126)	लपिदभिभ्यां च (3.1.124)	आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च (3.1.126)	आसु-युः वपि-रपि-लपि-त्रपि-चमश्च द्वि०भा० (पृ० 253)
3.	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप: (4.1.15)	ख्युन उपसंख्यानम्(4.1.15)	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम् (4.1.15)	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम् (प्र०भा० पृ० 69)

4.	ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (4.2.42)	गजसहायभ्यां च (4.2.43)	ग्रामजनबन्धु-सहायेभ्यस्तल् (4.2.43)	ग्रामजनबन्धुसहा-येभ्यस्तल् (प्र०भा०पृ०234)
5.	कृभ्वस्तियोगेसम्प-द्यकर्तरि च्विः (5.4.50)	च्विविधावभू-ततद्भावग्रहणम् (5.4.50)	अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः (5.4.50)	अभूततद्भावेकृ-भ्वस्तियोगे सम्प-द्यकत्तरि च्विः (प्र०भा०पृ०306)

1.4 सूत्रों के शब्दों तथा शब्दांशों के स्वरूप में परिवर्तन से सम्बन्धी साम्य– भाषावृत्ति के समान रूपावतार में कतिपय सूत्रों के शब्दों तथा शब्दाशों के स्वरूप में परिवर्तन सम्बन्धी साम्य दृष्टिगोचर होता है–

यथा–

क्र०	अष्ट० पा० में सूत्र का स्वरूप	भाषावृत्ति में सूत्र का स्वरूप	रूपा. में सूत्र का स्वरूप.
1.	कृत्याः 3.1.15	कृत्याः प्राङ्ण्वुलः 3.1.95	कृत्याः प्राङ्ण्वुलः द्वि० भा० पृ० 247
2.	दण्डादिभ्यो यत् (5.1.66)	दण्डादिभ्यो यः (5.1.66)	दण्डादिभ्यो यः (प्र०भा० पृ०269)
3.	एतदोऽन् (5.3.5)	एतदोऽश् (5.3.5)	एतदोऽश् (प्र०भा० पृ०289)
4.	इन्द्रे च (6.1.120)	इन्द्रे च नित्यम् (6.1.124)	इन्द्रे च नित्यम् (प्र०भा० पृ०13)
5.	प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (6.1.121)	प्लुत प्रगृह्या अचि (6.1.125)	प्लुत प्रगृह्या अचि (प्र०भा० पृ०13)
6.	सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे (6.1.132)	सम्पर्य्युपेभ्यः करोतौ भूषणे (6.1.137)	सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे(द्वि० भा० पृ०69)

7.	सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भु-श्रिस्वृयूर्णभरज्ञपिसनाम् (7.2.49)	सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रि-स्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् (7.2.49)	सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस वृयूर्णुभरज्ञपिंसनाम् (द्वि० भा० पृ० 197)

1.5 **इष्टिवचनों द्वारा रूपसाधना**– भाषावृत्ति तथा रूपावतार में कतिपय इष्टिवचनों द्वारा रूपसाधना एक समान मिलती है–

यथा–

क्रमा०	भा० वृ० में पठित इष्टिवचन	रूपा० में पठित इष्टिवचन
1.	क्तिन्नपीष्यते (3.3.94)	विपरिसमवप्रतिषूपपदेषुक्तिन्निष्यते (द्वि० भा० पृ० 294) योगविभागात् क्तिन्नपीष्यते (द्वि० भा० पृ० 295)
2.	विगृहीताच्च (4.2.93) विपरीताच्च। पारावारीण इति चेष्यते। (4.2.93)	विगृहीतादपीष्यते (इ०) प्र० भा० पृ० 240, विपरीताच्च (भा० इ०) (प्र०भा०पृ०241)
3.	तिङन्तादयं नेष्यते, अकजिष्यत एव। (5.3.96)	तिङन्तादयं प्रत्ययो नेष्यते, अकच् तु इष्यते। (प्र०भा०पृ० 300-301)

भाषावृत्ति तथा रूपावतार में उपर्युक्त साम्य होने पर भी कतिपय वैषम्य दृष्टिगोचर होता है–

1. **व्याख्या हेतु सूत्रों के चयन सम्बन्धी वैषम्य**– भाषावृत्ति. में व्याख्या हेतु अष्टाध्यायी के केवल लौकिक सूत्रों का चयन किया गया है जबकि रूपावतार में लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुए हैं।

2. **व्याख्यात सूत्रों की संख्या में वैषम्य–** भाषावृत्ति में व्याख्यात सूत्रों की संख्या 3363 है जबकि रूपावतार में 2664 सूत्र व्याख्यात हुए हैं।

3. **सूत्रव्याख्या में आकार के अनुसार वैषम्य–** यद्यपि भाषावृत्ति के समान रूपावतार सरल तथा लघुरूप है तथापि इसमें भाषावृत्ति की अपेक्षा विस्तृत सूत्र-व्याख्या उपलब्ध होती है–

यथा–

क्रमा०	सूत्र	भा० वृ० में प्रदत्त व्याख्या	रूपा० में प्रदत्त व्याख्या
1.	उरण् रपरः (1.1.51)	ऋवर्णस्य स्थाने ण् रपरो भूत्वा प्रसजति।	ऋवर्णस्य स्थाने यः अण् आदिश्यमानः स रप्रत्या-हारपरो भवति। यो हि द्वयोः सम्बन्धी भवति सः अन्यतर व्यपदेशं लभते। (प्र० भा० पृ० 9, क्रमा० 4)
2.	वृद्धिरादैच (1.1.1)	आदैकार औकारश्च वृद्धिसंज्ञका स्युः।	आदैचौ वृद्धिसंज्ञौ भवतः, वृद्धिशब्दः संज्ञात्वेन विधीयते, प्रत्येक- मादैचां वर्णानां सामान्येन तद्भावितानां अतद्भावितानां च आदेशौ वृद्धिसंज्ञौ भवतः। (प्र० भा० पृ०9, क्रमा०5)

4. **व्याकरणिक-मतों तथा व्याकरणिक-परम्परा के निर्देश सम्बन्धी वैषम्य–** भाषावृत्ति में जितनी अधिक संख्या में व्याकरणिक-मतों तथा व्याकरणिक-परम्परा का निर्देश किया गया है,[64] उतने व्याकरणिक-मत न तो रूपावतार में पाए जाते हैं तथा न ही उस रूप में व्याकरणिक-परम्परा का निर्देश किया गया है।

5. **काव्यादि ग्रन्थों के श्लोक तथा श्लोकांश उदाहरणों के रूप में प्रदर्शित करने सम्बन्धी वैषम्य–** भाषावृत्ति में व्याकरण की नीरसता को दूर करने के लिए उदाहरणादि के रूप में काव्यादि ग्रन्थों के लगभग 380 श्लोक तथा श्लोकांश पठित हुए हैं[65] परन्तु रूपावतार में प्रायः इस प्रकार के उदाहरणों का अभाव है।

2. **भाषावृत्ति तथा रामचन्द्रकृत प्रक्रियाकौमुदी–** भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाकौमुदी इन दोनों का उपजीव्य ग्रन्थ अष्टाध्यायी है। भाषावृत्ति के समान प्रक्रियाकौमुदी संक्षिप्त और सरल रूप में निबद्ध की गई है। इसकी पुष्टि निम्न कारिका से होती है–

''आनन्त्यात् सर्वशब्दा हि न शक्यन्तेऽनुशासितुम्।
बालव्युत्पत्तयेऽस्माभिः संक्षिप्योक्ता यथामति।।''[66]

भाषावृत्ति से प्रक्रियाकौमुदी की तुलना करने पर कतिपय साम्य परिलक्षित होता है–

1. **सूत्रों में योगविभाग–** भाषावृत्ति के समान प्रक्रियाकौमुदी में कतिपय सूत्रों में योगविभाग दृष्टिगोचर होता है–

यथा–

क्रमा०	अष्ट. पा. में सूत्रपाठ	भा० वृ० में सूत्रपाठ	प्रक्रियाकौमुदी में सूत्रपाठ
1.	उञ ऊँ (1.1.17)	उञः (1.1.17) ऊँ (1.1.18)	उञः (प्र० भा० पृ० 133) ऊँ (प्र० भा०पृ०133)
2.	प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे (1.4.58)	प्रादयः (1.4.58) उपसर्गाः क्रियायोगे (1.4.59)	प्रादयः (प्र० भा० पृ० 67) उपसर्गाः क्रियायोगे (प्र० भा० पृ०58)
3.	ह्वः सम्प्रसारणमभ्यस्तस्य च (6.1.32)	ह्वः सम्प्रसारणम् (6.1.32) अभ्यस्तस्य च (6.1.33)	ह्वः सम्प्रसारणम् (तृ० भा० सूत्राङ्क 425) अभ्यस्तस्य च (तृ० भा० सूत्राङ्क 2659)

4.	दीर्घात् पदान्ताद्वा (6.1.73)	दीर्घात् (6.1.75) पदान्ताद्वा (6.1.76)	दीर्घात् (प्र० भा० पृ० 163) पदान्ताद्वा (प्र०भा० पृ०165)
5.	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य च (6.3.7)	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (6.3.7) परस्य च (6.3.8)	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (द्वि० भा० पृ० 266) परस्य च (द्वि० भा० पृ०266)
6.	औदच्च घेः (7.3.118)	औत् (7.3.118) अच्च घेः (7.3.119)	औत् (प्र० भा० पृ० 245) अच्च घेः (प्र० भा० पृ० 240)
7.	अनितेरन्तः (8.4.19)	अनितेः (8.4.19) अन्तः (8.4.20)	अनितेः (तृ० भा० सूत्रा. 303) अन्तः (तृ० भा० सूत्रा. 826)

2. **वार्त्तिकों का सूत्रों के रूप में निर्देश**– भाषावृत्ति के समान प्रक्रियाकौमुदी में कतिपय वार्त्तिकों का सूत्रों के रूप में निर्देश पाया जाता है–

यथा–

क्रमा०	महाभाष्यस्थ वार्त्तिक का स्वरूप	भा० वृ० में पठित सूत्र का स्वरूप	प्रक्रियाकौमुदी में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	नित्यमाम्रेडिते डाचि (6.1.99)	नित्यमाम्रेडिते डाचि (6.1.100)	नित्यमाम्रेडिते डाचि (द्वि० भा० पृ० 410)
2.	अड्व्यवाय उपसंख्यानम्, अभ्यासव्यवाये च (6.1.135)	अडभ्यासव्यवायेऽपि (6.1.136)	अडभ्यासव्यवायेऽपि (तृ० भा० सूत्राङ्क 383)
3.	आत्मनश्च पूरणे (6.3.5)	आत्मनश्च पूरणे (6.3.6)	आत्मनश्च पूरणे (द्वि० भा० पृ० 266)

3. **सूत्रों में वार्त्तिकों का प्रक्षेप–** भाषावृत्ति के समान प्रक्रियाकौमुदी में कतिपय सूत्रों में महाभाष्य के वार्त्तिकों का प्रक्षेप दृष्टिगोचर होता है–

यथा–

क्रमा०	महाभाष्यस्थ में पठित वार्त्तिक	भा० वृ० में पठित सूत्र	प्रक्रियाकौमुदी में पठित सूत्र
1.	समो गमादिषु विदि प्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम्, अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च (1.3.29)	समोगम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्त्तिश्रुविदिभ्यः (1.3.29)	समोगम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्त्तिश्रुविदिभ्य : (तृ० भा० सूत्रांङ्क (556)
2.	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (3.1.118)	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (3.1.118)	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (तृ० भा० सूत्राङ्क 722)
3.	लपिदभिभ्यां च (3.1.124)	आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च (3.1.126)	आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च (तृ० भा० सूत्राङ्क 701)
4.	ख्युन उपसंख्यानम् (4.1.15)	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम् (4.1.15)	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम (प्र० भा० पृ० 441)
5.	ठक्प्रकरणेशकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् (4.2.2)	लाक्षारोचनाशकलकर्दमाट्ठक् (4.2.2)	लाक्षारोचनाशकलकर्दमाट्ठक् (द्वि० भा० पृ० 301)
6.	च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् (5.4.50)	अभूततद्भावेकृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः (5.4.50)	अभूततद्भावेकृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः (द्वि० भा० पृ० 406)
7.	स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि (6.3.40)	स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि (6.3.40)	स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनि (द्वि० भा० पृ० 200)
8.	सदोलिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसंख्यानम् (8.3.118)	सदिस्वञ्जोः परस्य लिटि (8.3.118)	सदिस्वञ्ज्योः परस्य लिटि (तृ० भा० सूत्राङ्क (215)

4. सूत्रों के शब्द तथा शब्दांश के स्वरूप में परिवर्तन– भाषावृत्ति के समान प्रक्रियाकौमुदी में कतिपय सूत्रों के शब्द तथा शब्दांश के स्वरूप में अन्तर पाया जाता है–

क्रमा०	अष्ट० पा० में सूत्र का स्वरूप	भा० वृ० में सूत्र का स्वरूप	प्रक्रियाकौमुदी में सूत्र का स्वरूप
1.	कृत्या (3.1.95)	कृत्याः प्राङ्ण्वुलः (3.1.95)	कृत्याः प्राङ्ण्वुलः (तृ० भा० सूत्रा० 668)
2.	इन्द्रे च (6.1.120)	इन्द्रे च नित्यम् (6.1.124)	इन्द्रे च नित्यम् (प्र० भा० पृ० 120)
3.	प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् (6.1.121)	प्लुत प्रगृह्या अचि (6.1.125)	प्लुत प्रगृह्या अचि (प्र० भा० पृ० 122)
4.	सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे (6.1.132)	सम्पर्य्युपेभ्यः करोतौ भूषणे (6.1.137)	सम्पर्युपेभ्यः करोतेर्भूषणे (तृ० भा० सूत्रा० 396)
5.	सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णभरज्ञपिसनाम् (7.2.49)	सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् (7.2.49)	सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णभरज्ञपिसनाम् (तृ० भा० सूत्रा० 466)
6.	उपसर्गादनोत्परः (8.4.27)	उपसर्गाद् बहुलम् (8.4.28)	उपसर्गाद् बहुलम् (द्वि० भा० पृ० 208)

5. इष्टिवचनों द्वारा रूपसाधना– भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाकौमुदी में कतिपय इष्टिवचनों द्वारा रूपसाधना एक समान मिलती है। यथा–

क्रमा०	भा० वृ० में पठित इष्टिवचन	प्रक्रियाकौमुदी में पठित इष्टिवचन
1.	मृजेरजादौ सङ्क्रमे विभाषा वृद्धिरिष्यते (7.2.114)	क्ङित्यपि मृजेर्वृद्धिर्वेष्यते (तृ० भा० सूत्रा० 297)
2.	घ्यन्तादजाद्यदन्ताच्च परत्वादिदमिष्यते (2.2.33)	घ्यन्ताजाद्यदन्तयोर्मिथः समासे घ्यन्तं परम् (द्वि० भा० पृ०222)
3.	गुणानामपीष्यते (7.1.75)	तदन्तस्याप्यनङिष्यते (प्र० भा० पृ० 303)

भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाकौमुदी में उपर्युक्त साम्य होने पर भी कतिपय वैषम्य परिलक्षित होता है–

यथा–

1. **व्याख्या हेतु सूत्रों के चयन में वैषम्य–** भाषावृत्तिकार ने अष्टाध्यायी के केवल 3363 लौकिक सूत्रों का व्याख्या के लिए चयन किया है जबकि प्रक्रियाकौमुदीकार ने अष्टाध्यायी के लौकिक और वैदिक उभयविध 2430 सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की है।

2. **सूत्र-व्याख्या में आकार के अनुसार वैषम्य–** यद्यपि भाषावृत्ति के समान प्रक्रियाकौमुदी में संक्षेप और सरलता को अधिमान दिया गया है तथापि इसमें भाषावृत्ति की अपेक्षा विस्तृत व्याख्या पायी जाती है–

यथा–

क्रमा०	सूत्र	भा० वृ० में प्रदत्त व्याख्या	प्रक्रियाकौमुदी में प्रदत्त व्याख्या
1.	सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ (1.2.64)	तुल्यरूपाणामेको-ऽवशिष्यते (1.2.64)	सरूपाणां मध्ये एक एव शिष्यते नेतरे एकविभक्तौ परतः (प्र० भा० पृ० 199)
2.	प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः (1.1.61)	प्रत्ययादर्शनस्य तद्भावितस्य संज्ञात्रयं भवति (1.1.61)	लुक्श्लुलुप् एतैः शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात् लुक्श्लुलुप्संज्ञं स्यात्। (प्र० भा० पृ० 248)

3. **स्वकीय मत अथवा धर्मानुसार उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण में वैषम्य–** भाषावृत्तिकार ने बौद्धमत की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए बौद्धमत से सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं– वस्तुक्षणिकमातिष्ठन्ते बौद्धाः, न सुखप्रति संसारे, न दोषप्रति बौद्ध दर्शने, जितमेनोऽनेनेति जिनः, युष्माकं पालकः शम्भुस्माकं देवाकं जिनः।[7]

प्रक्रियाकौमुदीकार ने सनातन धर्म में पाए जाने वाले अनेक अवतारों का उदाहरणों में उल्लेख किया है तथा उन्हें रक्षा करने में समर्थ बताया है–सत: पालकोऽवतरति, यथा हरिस्तथा हर: बलिं बन्धयति, युष्मान् रक्षतु गोविन्दोऽस्मान् कृष्ण: सर्वदाऽवतु, शिवो हरिश्च मे स्वामी।[68]

4. **सूत्र की वृत्ति में भेद के कारण रूपों की व्युत्पत्ति तथा सूत्र के प्रयोजन में वैषम्य–** भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाकौमुदी में सूत्र की वृत्ति में भेद पाया जाता है जिससे दोनों ग्रन्थों में रूपों की व्युत्पत्ति तथा सूत्र के प्रयोजन में अन्तर आ जाता है। यथा–

4.1 ''भूवादयो धातव:''[69] सूत्र की वृत्ति में भाषावृत्तिकार ने भूवादियों को धातुसंज्ञक बताया है तथा इसको स्पष्ट करने के उद्देश्य से भवति और एधते उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उसने ''भूवादय:'' इस प्रयोग की सिद्धि के लिए ''इकां यणिभर्व्यवधानं व्याड़िगालवयोरिति वक्तव्यम्'' वार्तिक द्वारा उक्त आचार्यों के मत में इक् को यण् का आगम करके ''भूवादय:'' यह प्रयोग निष्पन्न किया है। जबकि प्रक्रियाकौमुदीकार ''भूवादयो धातव:'' सूत्र द्वारा क्रियावाची भ्वादियों की धातुसंज्ञा का विधान मानता है तथा सूत्र में प्रयुक्त भूवादियों के वकार को मङ्गलार्थ प्रयुक्त किया गया स्वीकार करता है–

''भूवादीनां वकारोऽयं मङ्गलार्थ: प्रयुज्यते।
भुवो वार्थं वदन्तीति भ्वर्था वा वादय: स्मृता:''।[70]

4.2 भाषावृत्तिकार ने ''वान्तो यि प्रत्यये''[71] सूत्र की वृत्ति में ''गव्यूति:'' इस शब्द को क्रोशयोजन की तरह अव्युत्पन्न स्वीकार किया है जबकि प्रक्रियाकौमुदीकार ने उक्त प्रयोग की सिद्धि में ''अध्वपरिमाणे च''[72] वार्तिक का विधान अवादेश के लिए स्वीकार किया है।

4.3 भाषावृत्ति में ''उरण् रपर:''[73] सूत्र की ''ऋवर्णस्य स्थानेऽण् रपरो भूत्वा प्रसजति'' यह वृत्ति है। जबकि प्रक्रियाकौमुदी में ''ऋलृ स्थानीयोऽण् र प्रत्याहारपर: स्यात्''[74] यह वृत्ति है।

4.4 भाषावृत्ति में ''क्रय्यस्तदर्थे''[75] सूत्र की भाषावृत्ति में ''विक्रयार्थं प्रसारिते द्रव्ये क्रय्यो निपात्यते'' यह वृत्ति है। जबकि प्रक्रियाकौमुदी में ''क्रयार्थे प्रसारितं क्रय्यम्''[76] यह वृत्ति है।

3. **भाषावृत्ति तथा भट्टोजिदीक्षितकृत वैयाकरसिद्धान्तकौमुदी–** भाषावृत्ति की रचना में त्रिमुनियों के लक्षणों को अधिमान दिया गया है–

यथा–

''नमो बुद्धाय भाषायां यथा त्रिमुनिलक्षणम्।
पुरुषोत्तमदेव लघ्वी वृत्तिर्विधीयते''॥[77]

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की रचना में भी त्रिमुनियों की उक्तियों को आधार बनाया गया है–

यथा–

''मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च।
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीयं विरच्यते''॥[78]

भाषावृत्ति से सिद्धान्तकौमुदी की तुलना करने पर कतिपय साम्य दृष्टिगोचर होता है–

1. **सूत्रों में योगविभाग–** भाषावृत्ति और सिद्धान्तकौमुदी में कतिपय सूत्रों में योगविभाग समान रूप से स्वीकार किया गया है–

यथा–

क्रमा०	अष्ट० पा० में सूत्र का स्वरूप	भा० वृ० में सूत्र का स्वरूप	प्रक्रियाकौमुदी में सूत्र का स्वरूप
1.	उञ ऊँ (1.1.17)	उञः (1.1.17) ऊँ (1.1.18)	उञः (प्र० भा० पृ०118) ऊँ (प्र० भा० पृ०118)
2.	प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे (1.4.58)	प्रादयः (1.4.58) उपसर्गाः क्रियायोगे (1.4.59)	प्रादयः (प्र० भा० पृ० 34) उपसर्गाः क्रियायोगे (प्र० भा० पृ०34)
3.	विभाषापपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (2.1.11)	विभाषा (2.1.11) अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (2.1.12)	विभाषा (द्वि० भा० पृ०490) अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (द्वि० भा० पृ० 491-492)

4.	ह्वः सम्प्रसारणसभ्य-स्तस्य च (6.1.32)	ह्वः सम्प्रसारणम् (6.1.32) अभ्यस्तस्य च (6.1.33)	ह्वः सम्प्रसारणम् (तृ० भा० पृ० 435) अभ्यस्तस्य च (तृ० भा० पृ०252)
5.	दीर्घात् पदान्ताद्वा (6.1.73)	दीर्घात् (6.1.75) पदान्ताद्वा (6.1.76)	दीर्घात् (प्र० भा० पृ० 145) पदान्ताद्वा (प्र० भा० पृ०146)
6.	उदराश्वेषुषु क्षेपे (6.2.107)	उदराश्वेषुषु (6.2.107) क्षेपे (6.2.108)	उदराश्वेषुषु (च० भा० पृ०565) क्षेपे (च० भा० पृ० 565)
7.	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः परस्य च (6.3.7)	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (6.3.7) परस्य च (6.3.8)	वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (द्वि० भा० पृ० 639) परस्य च (द्वि०भा० पृ०639)
8.	औदच्च घेः (7.3.118)	औत् (7.3.118) अच्च घेः (7.3.119)	औत् (प्र० भा० पृ०252) अच्च घेः (प्र० भा० पृ० 246)
9.	अनितेरन्तः (8.4.19)	अनितेः (8.4.19) अन्तः (8.4.20)	अनितेः (तृ० भा० पृ०297) अन्तः (च० भा० पृ० 70)

पूर्वोक्त साम्य के अतिरिक्त भाषावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी में कतिपय वैषम्य पाया जाता है–

यथा–

1. **प्रत्याहार सूत्रों के रचयिता के बारे में वैषम्य–** भाषावृत्तिकार प्रत्याहार सूत्रों के रचयिता के बारे में मौन है लेकिन सिद्धान्तकौमुदीकार इनको महेश्वरकृत स्वीकार करता है।[79]

2. **व्याख्यान हेतु सूत्रों के चयन में वैषम्य–** भाषावृत्ति में अष्टाध्यायी के 3363 लौकिक सूत्र व्याख्यात हुए हैं जबकि सिद्धान्तकौमुदी में अष्टाध्यायी के 3975 लौकिक और वैदिक उभयविध सूत्रों की व्याख्या निर्दिष्ट की गई है।

3. **महाभाष्यस्थ वार्त्तिक को सूत्र या वार्त्तिक स्वीकार करने से सम्बन्धी वैषम्य–** भाषावृत्ति में कतिपय महाभाष्यस्थ वार्त्तिक सूत्र के रूप में पठित हुए हैं जबकि सिद्धान्तकौमुदी में उनका पाठ वार्त्तिक के रूप में ही मिलता है–

यथा–

क्रमा०	महाभाष्यस्थ वार्त्तिक	भाषावृत्तिस्थ सूत्र	प्रक्रियाकौमुदीस्थ वार्त्तिक
1.	वृद्धस्य च पूजायाम् (4.1.63)	वृद्धस्य पूजायाम् (4.1.66)	वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम् (सि० कौ० वा० अंक 1567)
2.	जीवद्वंश्य च कुत्सितम् (4.1.162)	यूनश्च कुत्सायाम् (4.1.167)	यूनश्च कुत्सायां गोत्रसंज्ञेति वाच्यम् (सि० कौ० वा० अङ्क 1568)
3.	कौपिञ्जलहास्तिपदादण् (4.3.131)	कौपिञ्जलहास्तिपदादण् (4.3.132)	कौपिञ्जलहास्तिपदादण् वाच्य: (सि० कौ० वा० अङ्क 2084)
4.	द्वित्रिपूर्वादण्च (5.1.35)	द्वित्रिपूर्वादण्च (5.1.36)	द्वित्रिपूर्वादण् च (सि० कौ० वा० अङ्क 2315)
5.	अचि शीर्ष: (6.1.61)	अचि शीर्ष: (6.1.62)	अचि शीर्ष इति वाच्यम् (सि० कौ० वा० अङ्क 2266)
6.	नित्यमाम्रेडिते डाचि (6.1.99)	नित्यमाम्रेडिते डाचि (6.1.100)	नित्यमाम्रेडिति डाचि (सि० कौ० वा० अङ्क 2870)
7.	अड्व्यवाय उपसंख्यानम्, अभ्यासव्यवाये च (6.1.135)	अडभ्यासव्यवायेऽपि (6.1.136)	अडभ्यासव्यवायेऽपि इति वक्तव्यम् (सि० कौ० वा० अङ्क 3367)

इसके अतिरिक्त "आथर्वणिकस्येकलोपश्च" को महाभाष्य[40] तथा भाषावृत्ति[41] में सूत्र के रूप में पढ़ा गया है जबकि सिद्धान्तकौमुदी[42] में वार्त्तिक के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

4. **सूत्रों के पाठ में वैषम्य–** भाषावृत्ति और सिद्धान्तकौमुदी में कतिपय सूत्रों में पाठभेद दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत पाठ भेद को रेखाचित्र द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है–

क्रमा०	भा० वृ० में पठित सूत्र का स्वरूप	सि० कौ० में पठित सूत्र का स्वरूप
1.	समोगम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्त्तिश्रुविदिभ्य: (1.3.29)	समोगम्यृच्छिभ्याम् (सूत्राङ्क3615)
2.	कृत्या: प्राङ् ण्वुल: (3.1.95)	कृत्या: (सूत्राङ्क 3770)
3.	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (3.1.118)	प्रत्यपिभ्यां ग्रहे: (सूत्राङ्क 3821)
4.	आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च (3.1.126)	आसुयुवपिरपित्रपिचमश्च (सूत्राङ्क 3843)
5.	ग्लाजिस्थश्च क्स्नु: (3.2.139)	ग्लाजिस्थश्च ग्स्नु: (सूत्राङ्क 4139)
6.	अध्यायन्यायोद्यावसंहाराधारावायाश्च (3.3.122)	अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च (सूत्राङ्क 5117)
7.	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्-ठक्ठञ्कञ्क्वरप्ख्युनाम् (4.1.15)	टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठ-क्ठञ्कञ्क्वरप: (सूत्राङ्क 651)
8.	दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेवि-द्धिभ्योऽन्यतरस्याम् (4.1.81)	दैवयज्ञिशौचिवृक्षितात्यमुग्रिकाण्डेवि-द्धिभ्योऽन्यतरस्याम् (सूत्रा० 1696)
9.	लाक्षारोचनशकलकर्दमाट्ठक् (4.2.2.)	लाक्षारोचनाट्ठक् (सूत्राङ्क 1698)
10.	ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल् (4.2.43)	ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (सूत्राङ्क 1768)
11.	बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् (4.4.64)	बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ् (सूत्राङ्क 2208)
12.	दण्डादिभ्यो य: (5.1.66)	दण्डादिभ्य: (सूत्राङ्क 2,352)
13.	न न पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसङ्गतल-वणवटबुधकतरसलसेभ्य: (5.1.121)	न न पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरस-ङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्य: (सूत्राङ्क 2414)
14.	एतदोऽश् (5.3.5)	एतदोऽन् (सूत्राङ्क 2651)

15.	अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः (5.4.50)	कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः (सूत्राङ्क 2855)
16.	इन्द्रे च नित्यम् (6.1.124)	इन्द्रे च (सूत्राङ्क 145)
17.	प्लुतप्रगृह्या अचि (6.1.125)	प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (सूत्राङ्क 146)
18.	सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे (6.1.137)	सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे (सूत्राङ्क 3380)
19.	विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा (6.1.150)	विष्किरः शकुनौ (विकिरौ) वा आत्मनश्च (सूत्राङ्क 1525)
20.	आत्मनश्च पूरणे (6.3.6)	आत्मनश्च (सूत्राङ्क 1382)
21.	स्वाङ्गाच्चेतोऽमानिनी (6.3.40)	स्वाङ्गाच्चेतः (सूत्राङ्क 1212)
22.	प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु (6.3.83)	प्रकृत्याऽऽशिषि (सूत्राङ्क 122 3)
23.	विष्वग्देवयोश्चटेरद्रयञ्चतौ वप्रत्यये (6.3.92)	विष्वग्देवयोश्चटेरद्रयञ्चतावप्रत्यये (सूत्राङ्क 560)
24.	ष्ठिवुक्लम्याचमां शिति (7.3.75)	ष्ठिवुक्लमुचमां शिति (सूत्राङ्क 3098)
25.	विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् (8.1.74)	विभाषितं विशेषवचने (सूत्राङ्क 555)
26.	सदिस्वञ्जोः परस्य लिटि (8.3.118)	सदेः परस्य लिटि (सूत्राङ्क 3154)
27.	उपसर्गाद् बहुलम् (8.4.28)	उपसर्गादनोत्परः (सूत्राङ्क 1237)
28.	अ अ इति (8.4.68)	अ अ (इति) (सूत्राङ्क 24)

5. **सूत्र के प्रयोजन के सम्बन्ध में वैषम्य**— भाषावृत्ति और सिद्धान्तकौमुदी में कतिपय सूत्रों के प्रयोजन के सम्बन्ध में वैषम्य पाया जाता है—

यथा—

5.1 भाषावृत्तिकार ने "शेषे"[83] सूत्र की वृत्ति में चाक्षुषं रूपम्, श्रावण: शब्द: आदि प्रयोगों को भागवृत्ति के मत में "तस्येदम्"[84] सूत्र द्वारा ही निष्पन्न माना है–"इह चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावण: शब्द:। अश्वैरुह्यते आश्वो रथ:। चातुरं शकटम्। दृषदि पिष्टा दार्षदा माष:। औदूखला: सक्तव:। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्ष इति सामान्येन तस्येदमिति विवक्षायामिति भागवृत्ति:"। जिससे "शेषे" सूत्र की कोई उपयोगिता नहीं रहती। भाषावृत्तिकार ने "चाक्षुषं रूपम्" आदि रूपों की निष्पत्ति केवल भागवृत्ति के ही मत में प्रदर्शित की है जिससे स्पष्ट है कि वे भी भागवृत्ति के मत से सहमत हैं। इस प्रकार भाषावृत्तिकार के मत में "शेषे" सूत्र अधिकार सूत्र बन जाता है किन्तु सिद्धान्तकौमुदी में प्रस्तुत सूत्र को लक्षण और अधिकार उभयविध स्वीकार किया गया है–"शेष इति लक्षणं चाधिकारश्च"।[85]

यहाँ यह ध्यातव्य है कि पदमञ्जरीकार ने भी "शेषे" सूत्र को अधिकार सूत्र माना है–तत्र "तस्येदम्" इत्येवं चाक्षुषादय: सिध्यन्ति, दार्षदादयस्तु "संस्कृतं भक्षा:" इति, तस्माल्लक्षणत्वं नातीवोपयुज्यते"।[86]

5.2 भाषावृत्तिकार तद्वहति अर्थ में "तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्"[87] सूत्र द्वारा रथ शब्द से विधीयमान यत् प्रत्यय को केवल समास में ही स्वीकार करता है। इसीलिए भाषावृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में समस्त द्विरथ तथा त्रिरथ शब्दों से ही यत् प्रत्यय का विधान प्रदर्शित किया है तथा इसकी पुष्टि में स्मृतिवचन को उद्धृत किया है–"केवलात्तु रथाद् यतो सिद्धिरिति स्मृति:"। इसके विपरीत सिद्धान्तकौमुदी में उक्त सूत्र से असमस्त रथ शब्द से ही यत् प्रत्यय का विधान निर्दिष्ट किया गया है– "रथं वहति–रथ्य:"।[88]

6. **सूत्र को लौकिक या वैदिक मानने में वैषम्य–** भाषावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी में पाणिनि के कतिपय सूत्रों के लौकिकत्व और वैदिकत्व के सम्बन्ध में मतभेद परिलक्षित होता है–

यथा–

6.1 "आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च"[89] प्रस्तुत सूत्र भाषावृत्ति के मत में लौकिक सूत्र है। इसीलिए उसने प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है–"आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो विज्मनिन्क्वनिब्वनिपश्च प्रत्यया: स्यु:। शुभंया:।

कीलालपाः। मनिन्। सूत्रामा। अश्वत्थामा।'' परन्तु सिद्धान्तकौमुदीकार ने प्रस्तुत सूत्र को वैदिक सूत्र माना है और इस सूत्र की वृत्ति में उन्होंने छन्दस् शब्द का प्रयोग किया है तथा इस सूत्र को वैदिक प्रकरण में विन्यस्त किया है– ''सुप्युपसर्गे चोपपदे आदन्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये मनिन्नादयस्त्रयः प्रत्ययाः स्युः। चाद्विच्। सुदामा। सुधीवा। सुपीवा। भूरिदावा। घृतपावा। विच्। कीलालपाः''।[90]

6.2 भाषावृत्तिकार ने ''अर्वणस्त्रसावनञः''[91] और ''मघवा बहुलम्''[92] ये दोनों सूत्र छान्दस स्वीकार किए हैं–इहच्छन्दः सूत्रद्वयम्। यदुक्तं भाष्ये–''अर्वणस्तृ मघोनश्च न शिष्यं छान्दसं हि तत्''। इसके विपरीत सिद्धान्तकौमुदीकार ने इन दोनों सूत्रों को लौकिक सूत्र माना है और इनका पाठ लौकिक प्रकरण में किया है–नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशः स्यान्न तु सौ। .....अर्वन्तौ अर्वन्तः आदयः।[93]

मघवन् शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः स्यात्। .....मघवान्।[94]

7. **स्वकीय मत तथा धर्मानुसार उदाहरण प्रस्तुतीकरण में वैषम्य**– भाषावृत्तिकार ने बौद्ध मतावलम्बी होने के कारण बौद्ध मत से सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं–नमो बुद्धाय, बौद्धो जिनः पातु वः, बुद्धो नौ पातु, बुद्धो भक्तिरस्य बौद्धः, जिष्णुर्मा रक्षतु मां वा, जितमेनोऽनेनेति जिनः, बोधिसत्त्वो महासत्त्वः, युष्माकं पालकः शम्भुरस्माकं देशको जिनः, बौद्धीयं मतम्, वस्तु क्षणिकमातिष्ठन्ते बौद्धाः, न सुखप्रति संसारे, न दोषप्रति बौद्ध दर्शने, प्रणम्य शास्त्रे सुगताय तायिने, दक्षिणेन गयां महाबोधि, दानीयो भिक्षुः आदयः।[95]

सिद्धान्तकौमुदीकार विष्णु, शिव, विभु आदि ईश्वर के अवतारों के प्रति पूर्ण आस्थावान् है। उसने उक्त अवतारों को रक्षा करने में समर्थ बताया है–

यथा–

श्रीशस्त्वाऽवतु माऽपीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामऽपि नौ विभुः॥[96]

सुखं वा नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥[97]

हरौ हरिश्च में स्वामी, भक्तस्तव रूपं ध्यायति, देवास्मान्पाहि, हरे दयालो नः पाहि, सर्वदा रक्ष देव नः आदयः।[98]

8. **इष्टिवचन तथा वार्त्तिक पढ़ने सम्बन्धी वैषम्य**– भाषावृत्ति में पठित कतिपय इष्टिवचनों को सिद्धान्तकौमुदी में वार्त्तिक के रूप में स्वीकार किया गया है। दोनों आचार्यों के इस वैमत्य को रेखाचित्र द्वारा नीचे प्रस्तुत किया जाता है–

क्रमा०	भा० वृ० में पठित इष्टि का स्वरूप	सि० कौ० में पठित वार्त्तिक का स्वरूप
1.	मस्जेरन्त्यात्पूर्वं नुममिच्छन्ति (1.1.47)	मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः (वा० अङ्क 3371)
2.	घ्यन्तादजाद्यदन्ताच्च परत्वादिदमिष्यते (2.2.34)	घ्यन्तादजाद्यदन्तं विप्रतिषेधने (वा० अङ्क 1298)
3.	क्तिन्नपीष्यते (3.3.94)	क्तिन्नपीष्यते (वा० अङ्क 5072)
4.	विपरीताच्च पारावारीण इति चेष्यते (4.2.93)	अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् (वा० अङ्क 1851)
5.	नित्यमेकाचोऽशरादेरपीच्छन्ति (4.3.144)	एकाचो नित्यम् (वा० अङ्क 2098)
6.	प्राण्यङ्गान्नेष्यते (5.2.128)	प्राण्यङ्गान्न (वा० अङ्क 2627)
7.	अन्येतोऽपीष्यते (5.4.1)	पादशतग्रहणमनर्थकमन्यत्रापि दर्शनात् (वा० अङ्क 2801)

उपर्युक्त अध्याय मे विवेचित विषयों के आधार पर निम्न तथ्य सामने आते हैं–

भाषावृत्ति में एक सुदीर्घकालीन व्याकरणिक परम्परा का निर्वाह हुआ है। यहाँ अनेक पूर्ववर्त्ती ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों के मत निर्दिष्ट हुए हैं। वृत्तिकार ने इन मतों का प्रयोग प्रायः स्वमत की पुष्टि के लिए, सन्देहनिवृत्ति के लिए तथा तत्तत् सूत्रों के विषय में तत्तत् आचार्यों के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करने हेतु किया है जिससे स्पष्ट है कि भाषावृत्तिकार इन पूर्ववर्त्ती आचार्यों से अत्यधिक प्रभावित है।

भाषावृत्ति की मुख्य प्रक्रिया ग्रन्थों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि रूपावतार, प्रक्रियाकौमुदी तथा सिद्धान्तकौमुदी में वैदिक और लौकिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुए हैं जबकि भाषावृत्ति में केवल लौकिक सूत्र। भाषावृत्ति में व्याख्यात सूत्रों की संख्या 3363 है जबकि रूपावतार में यह संख्या 2664, प्रक्रियाकौमुदी में 2430 तथा सिद्धान्तकौमुदी में 3975 है।

यद्यपि भाषावृत्ति के समान रूपावतार तथा प्रक्रियाकौमुदी में भी सूत्रों का सरल तथा संक्षिप्त व्याख्यान पाया जाता है तथापि यह व्याख्यान भाषावृत्ति की अपेक्षा विस्तृत है। इसके अतिरिक्त इस व्याख्यान में भाषावृत्ति के समान आलोचना-प्रत्यालोचना से मुक्त अधिक से अधिक व्याकरणिक मतों का निर्देश नहीं पाया जाता है। भाषावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी में कतिपय स्थलों पर सूत्र वार्तिक तथा इष्टिवचन सम्बन्धी वैषम्य भी पाया जाता है।

यहाँ यह अवधेय है कि भाषावृत्तिकार प्रत्याहार सूत्रों के रचयिता के सम्बन्ध में मौन है जबकि सिद्धान्तकौमुदीकार इन्हें महेश्वरकृत मानता है।

---

1. भा०वृ० 1.2.57
2. वही 5.2.112; 8.4.20
3. वही 6.1.77
4. वही 3.1.89
5. वही 7.2.17
6. वही 8.4.47
7. भा०वृ० 6.1.77
8. वही 5.1.124
9. भा०वृ० 4.4.143
10. भा०वृ० 4.1.10
11. वही 3.1.96
12. भा०वृ० 3.2.56
13. वही 4.1.93
14. वही 5.1.59; 5.2.121; 6.3.109; 6.4.127, 128
15. वही 5.2.26
16. वही 1.3.7
17. वही 1.4.3

18. भा०वृ० 5.3.106
19. वही 6.4.66; 7.3.105; 8.2.8, 78.
20. वही 1.2.6
21. भा०वृ० 5.2.94
22. वही 5.2.95
23. वा०भा०वृ० 5.2.135
24. भा०वृ० 5.2.115
25. वही 3.2.87, 178; 6.1.96, 144, 6.3.99; 8.3.5.
26. भा०वृ० 3.2.75
27. वही 6.1.3
28. वही 7.3.94
29. वही 4.2.138; 6.3.85; 7.2.67-68.
30. द्र० प्रस्तुतग्रन्थ पृ०215
31. वही पृ०239
32. वही पृ० 240-241
33. वही पृ०239
34. भा०वृ० 5.1.125
35. वही 6.3.137
36. भा.वृ. 7.2.75
37. वही 7.2.38
38. वही 5.2.13
39. वही 5.4.124
40. भा.वृ. 2.4.74; 4.2.92, 138; 4.3.23, 23; 4.4.101; 5.1.57, 125, 126, 132; 5.2.81; 107, 110; 5.3.12, 60-61; 5.4.5, 75, 122, 151; 6.3.70, 85; 8.3.5, 118.
41. वही 1.3.21
42. वही 2.2.16
43. वही 3.1.16
44. भा.वृ. 3.2.188
45. वही 3.4.46
46. वही 4.2.92
47. वही 4.3.120
48. भा.वृ. 5.1.125
49. वही 6.3.137

50. वही 1.4.3
51. वही 2.4.74
52. भाव.वृ. 7.2.75
53. वही 7.2.38
54. वही 3.4.18, 4.2.38, 4.3.23, 5.1.132, 5.2.13, 6.1.144, 6.3.85, 137; 7.3.94
55. वही 1.4.6
56. दुर्घट. 1.4.6
57. दुर्घट. 3.2.53
58. वही 3.2.188, 3.3.104, 106; 4.1.21; 4.4.87, 5.1.126; 5.2.112, 121, 5.4.7, 6.1.66, 137, 6.3.3, 27; 6.4.47; 69, 92; 7.1.67
59. तु. कीजियेगा भा.वृ. परिशि.परि. सं. 1-8=परि. इ. शेखर परि. सं. 1-8.
60. रूपा०–प्र० भा० पृ०1, श्लो० 2,
61. वही–प्र० भा० पृ०1, श्लो०1
62. वही–द्वि० भा० पृ०1, श्लो०1
63. वही–प्र० भा० हलन्तेष्वलिङ्गप्रकरण पृ०126, क्रमा०2, पृ० 126, क्रमा० 2, पृ०127, क्रमा० 3, पृ० 158, क्रमा० 12, पृ०180, क्रमा० 12, रूपा०-द्वि भा० कृत्य प्रकरण पृ० 247, सू० सं 3.1.96।
64. द्रष्टव्य–प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृ० 200 से 201.
65. द्रष्टव्य–प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृ० 202 से 205.
66. प्रकि० कौ०–तृ० भा० पृ० 614, कारि०।
67. भा० वृ०–1.3.2.2., 2.1.9, 3.1.172, 6.3.109, 8.1.18.
68. प्रक्रि० कौ० द्वि० भा० पृ० 77, पृ० 104, तृ० भा० सूत्रा० 523, प्र० भा० पृ० 361, 363.
69. भा० वृ०–1.3.1.
70. प्रक्रि० कौ०–प्र० भा० पृ०55
71. भा० वृ०–6.1.79.
72. प्रक्रि० कौ०–प्र० भा० पृ०94.
73. भा० वृ०–1.1.51
74. प्रक्रि० कौ०–प्र० भा० पृ०103
75. भा० वृ०–6.1.82
76. प्रक्रि० कौ०–प्र० भा० पृ०97.
77. भा० वृ० पृ० 1, श्लो०।
78. सि० कौ० पृ० 1, श्लो० 1

79. सि० कौ० तत्त्व० पृ०3

80. म० भा०–4.3.132
81. भा० वृ०–4.3.133
82. सि० कौ०–वा० अङ्क 2085
83. भा० वृ०–4.2,92
84. वही–4.3.120
85. सि० कौ०–सूत्राङ्क 1849.
86. पद० म० प्र० भा०–4.2.92.
87. भा० वृ०–4.4.76
88. सि० कौ०–सूत्राङ्क 2221
89. भा० वृ०–3.2.74
90. सि० कौ०–सूत्राङ्क 5247
91. भा० वृ०–6.4.127
92. वही–6.4.128
93. सि० कौ०–सूत्राङ्क 490
94. वही०–सूत्राङ्क 494
95. भा० वृ०–पृ०1, 3.3.173, 8.1.120, 4.3.95, 8.1.26, 6.3.109, 2.1.57, 8.1.18, 1.1.73 तथा 4.2.114,
    1.3.2.2., 2.1.9, 9, 1.4.32, 2.3.31, 3.3.113
96. सि० कौ०–सूत्राङ्क 545, कारि०–1.
97. वही–सूत्राङ्क 545, कारि०–2.
98. वही–सूत्राङ्क 549; 50; 53; 54; 53.

षष्ठ अध्याय

भाषावृत्ति में प्रतिबिम्बित तत्कालीन भौगोलिक स्थिति, समाज, शिक्षा-व्यवस्था, धर्म और शासन-व्यवस्थाः-

भाषावृत्ति में सूत्रार्थ की सङ्गति के लिए द्विविध उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं—परम्परागत और स्वकीय। यहाँ मुख्य रूप से भाषावृत्तिकार के स्वकीय उदाहरणों के आधार पर उनके समय में विद्यमान भौगोलिक स्थिति, समाज, शिक्षा-व्यवस्था, धर्म और शासन-व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है:-

6.1 **भौगोलिक स्थितिः-** भाषावृत्ति के समय की भौगोलिक स्थिति को छः भागों में विभक्त किया जा सकता है—जनपद, नगर, नगरियाँ, सरित्, नद और नदी।

6.1.1 **जनपदः-** भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण रचयिता के समय के जनपदों की ओर सङ्केत करते हैं:- यथा—वरेन्द्रीमगधम्, ऐकटावतो नाम देशः, अङ्गाः सम्पन्नाबहुक्षीरघृताः, बङ्गा जनपदो रमणीयः, माथुराः स्रौग्घ्नेभ्य आढ्यतराः, पाश्चात्या गौड़ेभ्य आढ्यतराः, नहि पञ्चालानां स्वामित्वात् पञ्चाला जनपदः, पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि भाषावृत्तिकार के समय में वरेन्द्री, ऐकटावत, अङ्ग, बङ्ग, माथुर, स्रौग्घ्न, पाश्चात्य, गौड़, और पञ्चाल जनपद थे। वह पञ्चालों का निवास होने के कारण ही पञ्चाल जनपद को उनका घोषित करता है, उसके द्वारा राजस्व अभिलेख में पाए जाने वाले स्वामित्व के प्रमाण को उक्त विषय में अधिमान नहीं दिया गया। वह जनपद को देश का एक भेद स्वीकार करता है—"जनपदो देशभेदः"।[2] काशिकावृत्ति में ग्रामों के समुदाय को

जनपद नाम से अभिहित किया गया है–"ग्राम-समुदायो जनपदः"।[3] उक्त दोनों प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि जनपद में अनेक ग्राम शामिल होते थे तथा उसका दूसरा नाम देश भी था।

6.1.2 **नगरः**- भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय के नगरों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–अभिजानासि यन्नागविन्देऽतिष्ठाम, अवसाम नगेन्द्रेषु यत्, तत् स्मरसि यत्रानकसत्रं गमिष्यामस्तत्र घृतेनौदनं भोक्ष्यामहे।[4] उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि भाषावृत्तिकार के समय में नागविन्द, नगेन्द्र तथा अनकसत्र नगर थे।

6.1.3. **नगरियाँः**– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण भाषावृत्तिकार के समय की नगरियों की ओर सङ्केत करते हैं– यथा–अयं पन्थाः कपित्थीमुपतिष्ठते, कपित्थ्यां नगर्यां दृष्टोऽसि मया। नाहं कपित्थीञ्जगाम, स्मरसि पुण्डर्यां वत्स्यामः, चम्पातः सोमतीर्थं पञ्च योजनानि; पञ्चसु योजनेषु वा, दक्षिणेन गयां महाबोधिः, बहुसुत्वरी नगरी।[5]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि भाषावृत्तिकार के समय में कपित्थी, पुण्डरी, चम्पा, गया और बहुसुत्वरी नगरियाँ विद्यमान थीं।

यहाँ यह अवधेय है कि चम्पा से पाँच योजन की दूरी पर सोमतीर्थ तथा गया के दक्षिण में महाबोधि है।

6.1.4. **सरित्**– भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण भाषावृत्तिकार के समय की एक सरित् की ओर सङ्केत करता है– यथा–वेतस्वती सरित्।[6]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि उसके समय में वेतस्वती सरित् थी।

6.1.5 **नदः**- भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण उसके समय के एक नद की ओर सङ्केत करता है–

यथा–दारदो नद।[7]

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि उसके समय में दारद नद था।

6.1.6 **नदी**:- भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण उसके समय की एक नदी की ओर सङ्केत करता है–

यथा–पद्मावती।[8]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि उसके समय में पद्मावती नदी थी।

6.2 **समाजः**- यद्यपि समाज शब्द जनसमूह, दल आदि अनेक अर्थों का बोधक है तथापि भाषावृत्तिकार ने इसके दल अर्थ को ही अधिमान दिया है–

यथा–''समाजः शूराणाम्'' अर्थात् शूरों का दल।[9]

भाषावृत्तिकार के समय समाज उभय प्रकारक वर्णव्यवस्था में विभक्त था–वर्ण के अनुसार और व्यवसाय के अनुसार।

1. **वर्ण के अनुसार**– भाषावृति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय की वर्ण के अनुसार वर्ण–व्यवस्था की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–गायत्र्या सूर्यमुपतिष्ठते ब्राह्मणः, ब्राह्मणोपक्रमं प्रतिग्रहः, ब्राह्मणजातिरदुष्टा, गुणवान् ब्राह्मणो दाशः, ब्राह्मणवत्, ब्राह्मणदर्शं प्रणमति, पूजार्हा ब्राह्मणि, कार्य्यार्हा ब्राह्मणी, पुत्रायापह्णुते वणिक्, अस्ति नाम शूद्रो वेदं व्याख्यास्यति, यदा भवद्विधः शूद्रं याजयेदित्यादि।[10]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उसके समय में समाज में ब्राह्मणों का उच्च स्थान था। वे गायत्री का जाप करते थे। दान स्वीकार करना उनकी प्रवृत्ति थी। ब्राह्मण जाति स्वभाव से सज्जन होती थी। गुणवान् ब्राह्मण को दाश संज्ञा से अभिहित किया जाता था। ब्राह्मण के समान आचरण करने वाला अब्राह्मण ब्राह्मणवत् कहलाता था। ब्राह्मणों को समाज में विशेष आदर प्रदान किया जाता था। ब्राह्मणी को पूज्या माना जाता था। वह कार्य करने में भी समर्थ होती थी। वंश परम्परा से ही वणिक् को धोखा करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। शूद्र को वेद का अध्ययन तथा यज्ञ करने का सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं था।

2. **व्यवसाय के अनुसारः**– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय की व्यवसाय के अनुसार समाज में पाई जाने वाली जातियों की ओर सङ्केत करते हैंः-

यथा–विप्रोऽर्कमुपतिष्ठते, पिप्रवाङ्गा विप्राः, प्रिययास्का विप्राः, प्रियगार्ग्या क्षिप्राः, कायस्थः, कुम्भकारः नप्ता, नर्त्तकः, तैलविक्रयी, मांसविक्रयी विप्रः।[11]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उसके समय में समाज में विप्र, कायस्थ, कुम्भकार, नप्ता, नर्त्तक और तैलविक्रयी आदि जातियाँ थी। यहाँ यह अवधेय है कि उस समय व्यवसाय चुनने की व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता थी क्योंकि विप्र भी मांस का विक्रय करता था।

2. **सामाजिक सम्बन्धः–** भाषावृत्तिकार के समय में समाज में उभयविध सामाजिक सम्बन्ध दृष्टिगोचर होते हैं– सामाजिक दृष्टि से मान्य सम्बन्ध तथा सामाजिक दृष्टि से अमान्य सम्बन्ध।

2.1 **सामाजिक दृष्टि से मान्य सम्बन्धः–** भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में सामाजिक दृष्टि से मान्य सम्बन्धों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–मातापितरौ जनयतः, मातुः सपत्नी सपत्नीमाता, पतिस्यन्ती वराङ्गना, हे पते, एकपत्नी, एकभार्य्यः, अश्लिक्षत् भार्य्याम्, कुम्भकारी भार्य्यः, औपगवीभार्य्यः, सुमुखीभार्य्यः, हे वत्स तवाश्वः, कन्यामुपयच्छते, कन्यामलंकरिष्णुः, श्वशुर्य्यौ देवरश्यालौ, बन्धुपोषम्, सखा, वधूं मण्डयमानः, वधूं मुण्डयितारः, पुत्रीयति भृत्यम्, मात्रीयति परकलत्रम्।[12]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि माता-पिता, सौतेली-माता, पति-पत्नी, वत्स, कन्या, सास-ससुर, देवर, शाला, बन्धु, मित्र, बहू, नौकर और परपत्नी सामाजिक दृष्टि से मान्य सम्बन्ध माने जाते थे।

यद्यपि उस समय समाज में एक पत्नी का विधान था तथापि आवश्यकतानुसार दूसरा विवाह करने की समाज अनुमति देता था। अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। बहुओं और कन्याओं को गहनों से सजाया जाता था। भाइयों का पोषण किया जाता था। बहुओं का मुण्डन करवाया जाता था। नौकर से पुत्र जैसा व्यवहार किया जाता था और दूसरे की पत्नी को माता के समान माना जाता था।

2.2 **सामाजिक दृष्टि से अमान्य सम्बन्धः–** भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में सामाजिक दृष्टि से अमान्य सम्बन्धों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–प्रियपञ्चानो वेश्याः, धनिभ्यस्तिष्ठते वेश्याः, परस्त्रीं प्रकुरुते, प्रियायै शपते कामुकः, कुलं कुलमटति कुलटा, अन्यासक्तघाती।[13]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वेश्यावृत्ति, परस्त्री गमन और कुलटा से सम्बन्ध सामाजिक दृष्टि से अमान्य थे। भाषावृत्तिकार ने वेश्याओं का मूल्य पाँच आने बताया है। उन्होंने यह सत्य उद्घाटित किया है कि कामुक की कोई प्रिया नहीं होती। उनके अनुसार अपने कुल को बदलने वाली स्त्री कुलटा होती है। वे लिखते हैं कि दूसरे में आसक्त स्त्री अपने प्रियतम की हत्या कर देती है।

3. नारी का सामाजिक जीवनः- भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में नारी के सामाजिक जीवन की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–कन्यामलङ्कृत्य गतः, भूषयते कन्या, कल्याणाचारा कन्या, स्तोकेन रुष्टा दयिताय नारी स्तोकादुपेता पुनरेव तोषम्, अपरभार्या, सुमानुषी, भोग्या स्त्री, अग्रेसरी, ग्रामणीः, प्राज्ञा स्त्री, विदुषी स्त्री, वाक्यहरा दूती, मांसभक्षिती, सुरापीती।[14]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय नारी के कन्या, भार्या, अपरभार्या, सुमानुषी, भोग्या, अग्रेसरी, ग्रामणी, बुद्धिमती, विदुषी, दूती, मांसभक्षिती और सुरापीती रूप समाज में पाए जाते थे। कन्याएँ साज-सज्जा करती थीं। कन्या से अच्छे आचरण की अपेक्षा की जाती थी। नारी पति से हमेशा के लिए नहीं रूठती थी। पुरुष द्वारा जिसे पत्नी जीवित होने पर या पत्नी के अभाव में पत्नी स्वीकार किया जाता था उसे अपरभार्या कहकर अभिहित किया जाता था। अच्छी प्रकृति वाली सुमानुषी, ग्रामों से सम्बन्ध रखने वाली को ग्रामणी तथा आगे चलने वाली को अग्रेसरी कहा जाता था। नारी को भोग्या समझा जाता था। प्रखर बुद्धि वाली प्राज्ञा तथा पढ़ी-लिखी विदुषी कहलाती थी। सन्देशवाहिका को दूती, मांस खाने वाली को मांस-भक्षिती तथा शराब पीने वाली को सुरापीती नाम से सम्बोधित किया जाता था।

4. मनुष्यों के भोज्य एवं पेय-पदार्थः- भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय मनुष्यों के भोज्य एवं पेय-पदार्थों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–भोज्यते विप्रो भक्तम्, आशयति भोजयति विप्रमोदनम्, ओदनः सिध्यति, ओदनं बुभुक्षुः व्रीहीन् प्रोक्षति, ओदनं भोजको व्रजति, ओदनं भोक्तुं व्रजति,

प्रभुक्त ओदनं विप्रः, प्रभुक्त ओदनो विप्रेण, कार्पर ओदनः, पाचयत्योदनं सहायेन, व्रीहिश्च माषः, माषाणामश्नीयात्, तिलतण्डुलाः, धारयसि मे तिलमोदकरवादिकाम् गुड़भोजनं भिक्षोः सुखम्, पैठराः, सुपानं पयः, गौडिकं पयः, एहि मन्ये पयः पास्यसि, न पास्यसि! पीतं तदतिथिभिः, तक्रं विलापयति, सक्तून् पिब, पीयूषपाणं पानं वा, दधि, शरावेषूद्धृतं शारावंदधिः, एहि मन्यसे दध्यन्नं भोक्ष्यें, दधिक्षीरम्, दधिसर्पिषी, घृतविलायं विलीनः नवोदकम्, पुष्टिकरं मांसम्, मांसभक्षिती, सुरापानो मनुष्यः, सुरापीती, मधुसेचौ, माक्षिकं मधु, क्षौद्रंमधु विप्रेण पच्यते, व्रतसमापनीयं भोजनम्, पृथुकिनी, कौल्माषी तिथि, वटकमयी।[15]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मनुष्यों के भोज्य पदार्थों में भात, खिचड़ी, माह, तिल-चावल, तिल के लड्डू, गुड़, पैठर तथा मांस प्रमुख थे। उस समय दूध श्रेष्ठ पेय माना जाता था। अतिथियों की सेवा में दूध प्रस्तुत किया जाता था। समाज में लस्सी, सत्तू, और अमृत पीने का रिवाज़ था। दही और घी का प्रयोग होता था। ताजा पानी पीना अच्छा माना जाता था। माँस को पुष्ट करने वाला समझा जाता था तथा स्त्रियाँ भी माँस भक्षण करती थीं। माक्षिक और क्षौद्र उभयविध शहद प्रयुक्त होता था। सामूहिक भोजों पर रसोई का कार्य विप्र करता था। व्रत की समाप्ति पर अनेक सगे-सम्बन्धियों तथा भाईचारे की सेवा में भोज आयोजित किए जाते थे। विशेष तिथियों पर श्रेष्ठ पकवान बनाए जाते थे।

5. भोजन पकाने, माप-तोल तथा अन्य वर्तनः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में पाए जाने वाले भोजन पकाने के, माप-तोल के तथा अन्य वर्तनों का सङ्केत करते हैं–

यथा–नाव्यते द्रोणी, कटाहः, ओदनपचनः कटाहः, गोदोहनीं स्थाली, व्रीहिभरणः कुसूलः, घृतोदङ्कः, चर्म्मपूरं तिलान् ददाति, कुम्भिकः।[16]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय द्रोणी, कटाह, स्थाली, कुसूल, उदङ्क, चर्म्मपूर और कुम्भिक आदि भोजन पकाने के, माप-तोल के एवं अन्य प्रयुक्त होने वाले वर्तन थे।

6. औजार, शस्त्र तथा अस्त्रः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के औजारों, शस्त्रों तथा अस्त्रों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–कुठारः, लौहघनः, शस्त्रोद्यतः, शूलपाणिः, खङ्गच्छायम्, रम्यः खड्गः रम्यः खड्गोत्ता, असिधारा, [illegible], विस्फोटकः।

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय कुठार तथा घन औजार, शूल और तलवार शस्त्र तथा वाण और विस्फोटक अस्त्र पाए जाते थे।

7. विहार, कटक और महल निर्माणः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय के विहार, कटक और महल निर्माण की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–विहारकाः, आयुक्तो विहारकरणस्य विहारकरणे वा, कटकात् संवादयति, अश्मनो विकार आश्मः प्रासादः।[18]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय विहार, कटक और महल बनाए जाते थे जिनमें क्रमशः बौद्ध भिक्षु, सैनिक और राजा निवास करते थे।

8. आर्थिक स्थितिः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय की आर्थिक स्थित की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–प्रापयत्यर्थान् धीरः, धनाय स्पृहयति, अर्थस्य हेतोर्वसति, द्रव्यादन्यो गुणः, वित्तमस्यास्ति वित्तः, रत्नधिायं निहितः, ऋद्धेष्वासीनेषु दरिद्रा भुञ्जते।[19]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि धीर व्यक्ति धन को प्राप्त करता था। धन के लिए स्पर्द्धा थी। धन के लिए व्यक्ति दूसरों के पास रहता था। धन की गणना गुणों के अन्तर्गत की जाती थी। धनवान् 'वित्तः' कहलाता था। यह सुनिश्चित था कि धन सभी को प्रिय था 'द्रव्यमेव खलु सर्ववल्लभम्'।[20] तराशे हुए रत्न जनता अपने पास रखती थी तथा सम्पन्न निर्धनों को भोजन खिलाते थे।

9. अर्थ प्राप्ति के साधनः– भाषावृत्ति के उदाहरणों से उभयविध अर्थ प्राप्ति के साधनों का सङ्केत मिलता है–अर्थ प्राप्ति के उत्तम साधन तथा अर्थ प्राप्ति के अधम साधन।

9.1 अर्थ प्राप्ति के उत्तम, साधनः– भाषावृत्तिकार के समय में अर्थ प्राप्ति के उत्तम साधनों में व्यवसाय से अर्थ प्राप्ति, पशुओं से अर्थ प्राप्ति तथा नौकरियों से अर्थ प्राप्ति परिगणित किए जाते थे–

क) व्यवसाय से अर्थ प्राप्तिः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में व्यवसाय से अर्थ प्राप्ति की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–हारयति भारं दासं दासेन वा, कुशलः सेवायाः सेवायां वा, कार्यनिपुणः, विप्रेण पच्यते, सम्भाण्डयते कुलालः, पश्यतोहरः।[21]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि समाज में दास प्रथा प्रचलित थी। दास सेवा में तथा कार्य में चतुर होते थे। विप्र रसोइए के कार्य से धन अर्जित करते थे। कुम्हार भाण्डे बनाता था तथा सुनार देखते-देखते चोरी करता था।

ख) पशुओं से अर्थ प्राप्तिः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में पशुओं से अर्थ प्राप्ति की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–धेनुष्या गौर्महिषी वा यावद् या दुग्ध बन्धके स्थिता, शतिकोऽश्वः, अश्वतरी खरजाता।[22]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय दूध देने वाली गाए या भैंस को ही बन्धन में रखा जाता था। घोड़े का मूल्य सौ रुपए था तथा श्रेष्ठ घोड़ी गधे से पैदा होती थी।

ग) नौकरियों से अर्थ प्राप्तिः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में नौकरियों से अर्थ प्राप्ति की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–जीविकाकृत्य व्याचष्टे, परिचर्य्या, मासिकः कर्मकरः, दौवारिकः सम्पत्स्यते, रणपण्डितः।[23]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि नौकरों से सेवा करवाई जाती थी। मासिक कर्मकर अर्थात् मजदूर रखे जाते थे। द्वारपाल रिश्वत लेते थे तथा राजा रणपण्डित रखते थे।

9.2 अर्थ प्राप्ति के अधम साधनः– भाषावृत्ति में प्रदत्त दो उदाहरणों से उस समय के अर्थ प्राप्ति के अधम साधन का सङ्केत मिलता है–

यथा–धनिभ्यस्तिष्ठते वेश्या (स्वं प्रकाशयतीत्यर्थः), प्रियपञ्चानो वेश्याः।[24]

उक्त दोनों उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वेश्या धनियों के समक्ष स्वयं को प्रदर्शित करती थी तथा उसे पाँच आनों से प्यार होता था।

10. खेलः– भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण उसके समय में प्रचलित खेल की ओर सङ्केत करता है–

यथा–दमनक भञ्जिका नाम क्रीड़ा।[25]

उक्त उदाहरण से दमनक भञ्जिका अर्थात् दमनक तोड़ने वाली खेल का ज्ञान मिलता है।

11. मनोरञ्जन के साधनः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में पाए जाने वाले मनोरञ्जन के साधनों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–शङ्खध्वनिरुदचरत्, पटहध्वनिः, विप्रैः सामानि गीयन्ते।[26]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि शङ्ख ऊँची आवाज़ में पूरे जाते थे। नगाड़े बजाए जाते थे तथा विप्रों द्वारा सामवेद के गीत गाए जाते थे।

12. वस्त्र और पताकाः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में पाए जाने वाले वस्त्रों और पताका का सङ्केत करते हैं–

यथा–अवदात्तं वस्त्रम्, रौचनिकी शाटी, विप्रार्था शाटी, प्रावारो वस्त्रम्, अतिकम्बलम्, बहिर्लोमः कम्बलः माञ्जिष्ठी पताका।[27]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय साफ वस्त्र धारण किए जाते थे। महिलाएँ साड़ी का प्रयोग करती थीं। अँगरखा पहनने और कम्बल ओढ़ने का रिवाज़ था। गेरुए रंग की पताका तैयार की जाती थी।

13. यज्ञ, उसका फल तथा जापः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के यज्ञों, उनके फलों तथा मन्त्र-जाप की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–याजका यजन्तीति यजिर्हविष् प्रेक्षणार्थः, हविर्याजी, होता, राजसूययाजी, यज्ञबलिः, होममनुवृष्टो देवः, यज्ञमनु प्रावर्षत्, उरसिकृत्य कृत्वा वा जपेन्मन्त्रः, एकैकमक्षरं जपति।[28]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि यज्ञ में हवन डाला जाता था। हवन का कार्य करने वाले को 'होता' नाम से अभिहित किया जाता था। राजसूय यज्ञ किए जाते थे। यज्ञ में बलि देने की रीति प्रचलित थी। समाज में यह मान्यता थी कि हवन और यज्ञ के पश्चात् देवता वर्षा करता था। मन्त्रों का जाप मन में किया जाता था।

14. सामाजिक मान्यताएँ:– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय की सामाजिक मान्यताओं की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–ब्राह्मणाय गां ददाति धार्मिक:, विप्राय गां ददाति, विप्राय शतं धारयति, सममब्राह्मणे दानम्, आढ्योपक्रमं दानम्, सुभङ्करणं दानम्, कलहसमापनीयं दानम्, छन्द: समापनीयं दानम्, नान्तरेण गुणान् सुखम्, कल्याणं व: क्रियासु:, य: पितरि जीवति स्वतन्त्र: स जाल्म:, वश्य: सर्वो जन: स्त्रीणाम्, विवेकस्य पिनष्टि काम:, स्त्रियमीर्ष्यति कामुक:, व्यवहारतो हीयते, नग्नङ्करणं द्यूतम्, अर्घ्यं पुष्पम्, गङ्गोदकम्, खातोदकम्।[29]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय ब्राह्मण को गाए तथा धन दान दिया जाता था। अब्राह्मण को दिए गए दान का फल कम मिलता है, समाज में ऐसी सोच घर कर गई थी। अमीरी का सदुपयोग दान करना समझा जाता था। दान देना सौभाग्यवर्धक माना जाता था। कलह की समाप्ति तथा वेद की समाप्ति पर भी दान देने की प्रथा थी। समाज में यह दृढ़ विश्वास विद्यमान था कि गुणों के बिना सुख नहीं मिलता। उपदेशक कल्याणकारी क्रियाएँ बताते थे। जो पिता के जीवित रहते स्वतन्त्र अर्थात् अलग निवास करता था, उसे जाल्म संज्ञा से अभिहित किया जाता था। सभी पुरुष स्त्रियों के वश में होते थे। काम को ज्ञान का विनाशक माना जाता था। यह आम धारणा थी कि कामुक ही स्त्री से द्वेष करता है। लेन-देन में घटिया आचरण वाले तथा जुआरी अधम लोगों की श्रेणी में गिने जाते थे। अर्घ्य में फूल अर्पित किए जाते थे। गङ्गा, तालाब या कुओं को खोद कर निकाला पानी पवित्र माना जाता था।

15. रोग, उनके कारण, उपचार तथा प्रसिद्ध वैद्य:– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उसके समय में पाए जाने वाले रोगों, उनके कारणों, उपचारों तथा प्रसिद्ध वैद्य की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–पित्तहरं क्षीरम्, पित्तघ्नं क्षीरम्, भगन्दरो रोग:, स्थूलकरणं घृतम्, अन्धंकरणो मूत्रनिरोध:, हिक्कात: कुरु चिकित्साम्, सांवत्सरिको व्याधि:, अगदङ्कारो वैद्य:।[30]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय पित्त, भगन्दर, स्थूलकरण, अन्धकरण, हिक्कात और सांवत्सरिक व्याधियाँ थीं। उन्होंने स्थूलकरण का कारण

घी तथा अन्धकरण का कारण पेशाब का रोकना बताया है। उनके अनुसार यदि घी ये परहेज़ रखा जाए तो मोटापे से तथा पेशाब न रोका जाए तो अन्धेपन से बचा जा सकता है। पित्त की शान्ति के लिए दूध तथा खीर का प्रयोग करना हितकर है। हिक्कात: अर्थात् छाती से जिसका प्रादुर्भाव होता है, उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। उन्होंने अगदङ्कार एक प्रसिद्ध वैद्य का उल्लेख किया है।

16. यातायात के साधनः– भाषावृत्ति के उदाहरणों से उभयविध यातायात के साधनों का सङ्केत मिलता है–यातायात के स्थलीय साधन तथा यातायात के जलीय साधन।

16.1 यातायात के स्थलीय साधनः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के यातायात के स्थलीय साधनों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–रथेन सञ्चरते विद्याधरः, अध्वगानां रथिनः शीघ्रतमाः, सर्वचर्मीणो रथः, ऊढरथोऽश्वः, आध्वय्यर्व शकटम्।[31]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय रथ और छकड़ा यातायात के स्थलीय साधन थे। विद्वान् रथ की सवारी करते थे। रथी मार्गों पर सबसे तेज चलते थे। चमड़े के रथ तैयार किए जाते थे। रथ में घोड़ा जोड़ा जाता था। यजुर्वेद का ज्ञाता पुरोहित छकड़े पर चढ़कर जाता था।

16.2 यातायात के जलीय साधनः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के यातायात के जलीय साधनों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–अरित्रं नौकावाहनम्, तृणप्लेवन तरति तार्णप्लविकः, शरप्लवेन तरति शारप्लविकः।[32]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय जलीय यातायात का मुख्य साधान नौका ही था। पुरुष तृणप्लव और शरप्लव से भी तैरने में सहायता लेते थे।

17. आपसी झगड़े तथा वाद-विवादः– भाषावृत्ति में प्रदत्त दो उदाहरणों से उस समय के आपसी झगड़े तथा वाद-विवादों की जानकारी मिलती है–

यथा–नखानखि, जल्पाजल्पि प्रवादिनाम्।[33]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में पुरुष नाखुनों से एक दूसरे पर प्रहार करते थे। वादियों और प्रतिवादियों में एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने की परम्परा थी।

18. रोशनी:– भाषावृत्ति में प्रदत्त दो उदाहरण उस समय के रोशनी के साधन की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–प्रतिदीपं शलभाः पतन्ति, घूर्णमान प्रदीपः।[34]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय रोशनी का मुख्य साधन तेल का दीपक था जिस पर पतंगे गिरते रहते थे। उसके प्रकाश को तेज़ करने के लिए उसमें तेल डाला जाता था।

19. मुनि से अभिप्राय तथा उसका समाज में स्थान:– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय मुनि से अभिप्राय तथा उसके समाज में स्थान की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–वाचंयमो मुनिः, अर्हन् पूजां मुनिः, निर्वाणं मुनीनाम्, विश्वानरो नाम मुनिः।[35]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय वाणी पर नियन्त्रण रखने वाला मुनि कहलाता था। महाभारत में भी मौन रखने वाले को मुनि के नाम से अभिहित किया गया है–

"मौनाद्धि सः मुनिर्भवति नारण्यवसानान्मुनिः"।[36] मुनि को पूजा योग्य समझा जाता था। समाज में यह धारणा प्रचलित थी कि मोक्ष केवल मुनियों का ही सम्भव है। उस समय विश्वानर नाम का कोई प्रसिद्ध मुनि था।

6.3 शिक्षा-व्यवस्था:– भाषावृत्तिकार के समय की शिक्षा-व्यवस्था को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–पाठ्यक्रम, शिक्षक, शिक्षार्थी और उपाधि।

6.3.1 पाठ्यक्रम:– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के निर्धारित पाठ्यक्रम की ओर सङ्केत करते है–

यथा–व्याकरणशास्त्रम्, तर्क विद्या, तर्क, मीमांसते शास्त्रम्, प्राथमकल्पिकः, उपनिषत्, सौरः सङ्ग्रहः, ऐन्द्रियकं ज्ञानम्, कातन्त्रम्, धानुर्विद्यिकः, अधीयन् सकलं शास्त्रम्, यौगः दशशती रम्या।[37]

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय पाठ्यक्रम में व्याकरण-शास्त्र, तर्क विद्या, मीमांसा, प्रथमकल्प, उपनिषत्, सौर सङ्ग्रह, ऐन्द्रियक ज्ञान, कातन्त्र, धनुर्विद्या, योग और दशशती शामिल थे।

6.3.2 शिक्षकः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के शिक्षक और उसके कार्यों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा– अध्यापयति अध्यापकः, विप्राध्यापकः, आत्मवदाचार्यी करोति, सुपण्डितङ्करः शिष्यः अध्यापयति वटुं वेदम्, श्रावयति शिष्यं शब्दम्, कलासु शिक्षते, बोधयति शिष्यं शास्त्रम्, विप्राय वेद विदुषे, विशेषविदुषः शास्त्रम्, छात्राः पठन्ति मे, उपस्थापनीयः शिष्यो गुरोः, छात्रोपाध्यायम्, विदुषी स्त्री, अनन्तरायां पौर्णमास्यां गुरुर्धर्ममवोचत्, शिष्यं धर्मं ब्रूते, विप्रः शिष्येण सहागतः, बालकमुपनयते, शिष्यमुपनयते, शास्त्रार्थं नयते।[38]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय अध्यापन का कार्य प्रायः सभी जातियों के मनुष्य करते थे। जो विप्र अध्यापन का कार्य करवाता था, उसे विप्राध्यापक के नाम से अभिहित किया जाता था। अध्यापक अपने समान शिष्य को विद्वान् बनाता था। शिष्य को प्रखर पण्डित बनाने वाले अध्यापक भी थे। ब्रह्मचारियों को वेद का अध्ययन करवाया जाता था। शिष्य को शब्द सुनाया जाता था। शिष्य कलाएँ सीखता था तथा शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करता था। गुरु और शिष्य समीप रहते थे। समाज में विदुषी स्त्रियाँ थीं। विशेष तिथियों पर गुरु शिष्य को धर्म की शिक्षा देता था। विप्र शिष्यों को शास्त्रार्थ के लिए ले जाते थे जोकि उनके ज्ञान की परीक्षा के लिए निकषोपल होता था।

6.3.3 शिक्षार्थीः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय के शिक्षार्थी तथा उसे प्रवीण बनाने हेतु अपनाई जाने वाली शिक्षण विधियों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–दिवसं पठति, पट्टिकोपाध्यायः शिष्याय कर्णचपेटामदात्, क्रमेण वदन्ति

छात्राः, नयतेऽर्थान् धीरः (ज्ञानविषयी करोति), दाक्षिणाश्छात्राः (प्रवीणाः),

अध्ययनात् पराजयते मन्दबुद्धिः, गुरुमभिवादयते पुत्रं पुत्रेण वा, गुरून् सत्कृत्य गतः, गुरुसमः, उपाध्यायान्निलीयते शिष्यः, उपाध्यायादन्तर्धत्ते छात्रः, वाङ्निपुणः, वेदमधीते, अधीती व्याकरणे, ज्योतिष्कामयति।[39]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि शिष्यों के लिए दिन में तथा रात्रि में अध्ययन की व्यवस्था थी। प्रारम्भिक अवस्था में शिष्य को दण्ड दिया जाता था। छात्र क्रम से बोलते थे। धीर और मन्दबुद्धि उभयप्रकारक छात्र होते थे। धीर अर्थों को समझ लेते थे परन्तु मन्दबुद्धि अध्ययन से घबरा कर शिक्षा त्याग देते थे। शिष्य गुरुओं का अभिवादन तथा पर्याप्त आदर-सत्कार करते थे। उन पर गुरुओं और उपाध्याय की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। उपाध्याय शिष्य से कुछ ज्ञान गोपनीय रखता था। वे वाणी के प्रयोग में निपुण होते थे। उन्हें वेद, व्याकरण और ज्योतिष पढ़ने की स्वतन्त्रता थी।

6.3.4: उपाधिः– भाषावृत्तिकार द्वारा प्रदत्त एक उदाहरण से उस समय की उपाधि का पता चलता है–

यथा–वित्तः पाण्डित्येन।[40]

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि उस समय पाण्डित्य ही किसी विद्वान् की प्रसिद्धि का एकमात्र कारण था।

6.4 धर्मः– यद्यपि भाषावृत्ति में धर्म को परिभाषित नहीं किया गया है तथापि उसमें धर्म के महत्त्व, समाज में प्रचलित विभिन्न मतों, स्वकीय धर्म, बुद्ध के चमत्कारी रूप, बौद्ध तथा जिन के निर्वचन और बोधिसत्त्व की श्रेष्ठता, स्वयं अपनाए मत के प्रति समर्पण भाव, बौद्ध मत के दार्शनिक सिद्धान्त, भिक्षुओं के लिए त्याज्य पदार्थ, आचरण सम्बन्धी नियम तथा सामाजिक जीवन में ध्यातव्य बातें, महात्मा बुद्ध के विभिन्न नामों, वंश तथा माता-पिता का उल्लेख, बौद्ध तीर्थस्थान का उल्लेख, अज्ञात तीर्थस्थान का उल्लेख, तथा ब्राह्मण के बजाए भिक्षु को दान देने का उल्लेख है–

6.4.1 भाषावृत्ति में वर्णित धर्म का महत्त्वः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण धर्म के महत्त्व की ओर सङ्केत करते हैं।–

यथा–प्रकथने सद्धर्मं प्रकुरुते, धर्मो रक्षति रक्षितः, जघन्य धर्मः, आगमोपज्ञं धर्माधर्मौ।[41]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय सद्धर्म को अपनाने के लिए कहा जाता था। धर्म की रक्षा में स्वकीय रक्षा है। घृणित धर्म को जघन्य धर्म कहा जाता था तथा धर्म और अधर्म की जानकारी आगमशास्त्र से मिलती है।

6.4.2 भाषावृत्ति में उल्लिखित विभिन्न मतः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय समाज में स्वीकृत विभिन्न मतों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–शैवीयम्, शैवः, शं प्राप्नोतीति शम्भुः, शिवः, शिवः पातु, नमः शिवाय, शिवो वां रक्षतु, शिवस्त्वा रक्षतु त्वां वा, युष्माकं पालकः शम्भुरस्माकं देशको जिनः, बौद्धीयं मतम्, बौद्धो जिनः पातु वः, बुद्धो भक्तिरस्य बौद्धः, बुद्धो नौ पातु, जिष्णुर्मा रक्षतु मां वा, नमो विष्णवे, सौरः, चाण्डः।[42]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय शैव, बौद्ध, वैष्णव, सौर और चाण्ड मतों का समाज में प्रचार तथा प्रसार था।

6.4.3 पुरुषोत्तमदेव का स्वकीय धर्मः– पुरुषोत्तमदेव द्वारा स्वकीय रचनाओं भाषावृत्ति, महाभाष्य प्राणपणा तथा कारकचक्र में उद्धृत निम्न श्लोक उसे बौद्ध मतावलम्बी सिद्ध करते हैं–

यथा–''नमो बुद्धाय भाषायां यथात्रिमुनिलक्षणम्।
पुरुषोत्तमदेवेन लध्वी वृत्तिर्विधीयते''।।[43]

''नमो बुधाय बुद्धाय यथात्रिमुनिलक्षणम्।
विधीयते प्राणपणा भाषायां लघुवृत्तिका''।।[44]

''मुनिं प्रणम्य सर्वज्ञं सर्वज्ञान प्रकाशकम्।
बालानां कथ्यतेऽर्थाय मया कारकचक्रकम्।।[45]

उपर्युक्त श्लोकों से ज्ञात होता है कि वे बुद्धदेव को अपना इष्ट मानते थे तथा उनका श्रद्धापूर्वक नमन करके अपने ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ करते थे। उन्होंने बुद्धदेव को सर्वज्ञ तथा मुनि शब्दों से भी सम्बोधित किया है। उनका बौद्ध सम्प्रदाय के प्रति समर्पण भाव तथा अटूट विश्वास स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

यहां यह अवधेय है कि बौद्ध सम्प्रदाय में सर्वज्ञ शब्द बुद्ध का वाचक है तथा सनातन धर्मावलम्बी ईश्वर को सर्वज्ञ शब्द से अभिहित करते हैं।

6.4.4 बुद्ध के चमत्कारी रूप का निरूपणः– भाषावृत्ति में प्रदत्त दो उदाहरणों से बुद्ध के चमत्कारी रूप का ज्ञान मिलता है–

यथा–बौद्धो जिनः पातु वः, बुद्धो नौ पातु।[46]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बुद्ध पापनाशक और जगद्रक्षक है।

6.4.5 बौद्ध तथा जिन शब्द का निर्वचन और बोधिसत्त्व की श्रेष्ठता का निर्देशः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण बौद्ध तथा जिन शब्द के निर्वचन और बोधिसत्त्व की श्रेष्ठता की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–बुद्धो भक्तिरस्य बौद्धः, जितमेनोऽनेनेति जिनः, बोधिसत्त्वो महासत्त्वः।[47]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बुद्ध की भक्ति करने वाले को बौद्ध तथा पाप को जीतने वाले को जिन कहा गया है। मनुष्य के उद्धारक ज्ञान के लिए प्रयत्नशील प्राणी को बोधिसत्त्व नाम से अभिहित किया गया है तथा उसे सभी प्राणियों में श्रेष्ठ बताया गया है।

6.4.6 स्वयं अपनाए हुए मत के प्रति समर्पणभावः– भाषावृत्ति में प्रदत्त दो उदाहरण उसके रचयिता के स्वीकृत मत के प्रति समर्पणभाव की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–युष्माकं पालकः शम्भुरस्माकं देशको जिनः, बौद्धीयं मतम्।[48]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वह बुद्ध को मार्ग-निर्देशक मानता है तथा उसके मत को बौद्धीयमत कहता है।

6.4.7 बौद्धमत की उपयोगिता, दार्शनिक सिद्धान्त तथा मनुष्य के लिए बहुमूल्य परामर्शः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण बौद्धमत की उपयोगिता, दार्शनिक सिद्धान्तों तथा मनुष्य के लिए बहुमूल्य परामर्श की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–शोकच्छित्, वस्तुक्षणिकमातिष्ठन्ते बौद्धाः, न सुखप्रति संसारे, न दोषप्रति बौद्ध दर्शने, पुनर्भूः, मा त्वं कार्षीः पापम्, मा स्म द्राक्षीर्मृषा दोषम्।[49]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बौद्धमत शोक का विनाशक है। संसार के सब पदार्थ क्षणिक हैं। संसार दुःखों का घर है या जगत् में सुख का लेशमात्र भी नहीं है। बौद्ध दर्शन में पाप को कोई स्थान नहीं है तथा मनुष्य का पुनर्जन्म सम्भव है। तुम पाप मत करो तथा झूठे दोष मत निकालो।

6.4.8 भिक्षुओं के लिए त्याज्य पदार्थों, आचरण सम्बन्धी नियमों और सामाजिक जीवन में ध्यातव्य बातों का निर्देशः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण भिक्षुओं के लिए त्याज्य पदार्थों, आचरण-सम्बन्धी नियमों और सामाजिक जीवन में ध्यातव्य बातों की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–माद्यन्ते तेन मद्यम्, नग्नङ्करणं द्यूतम्, ओषाञ्चकार कामाग्निः, रहः, धर्मकामः, शान्तिः, दयाञ्चक्रे न राक्षसः, कृपां लातीति कृपालुः, कारुणिकः, भिक्षवः सद्धर्मान् पठन्ति, निर्वाणं मुनीनाम्, वाचंयमो मुनिः, धारयन् मस्करिव्रतम्, विहारः, भिक्षुवेदं भोजयति (सर्वान् भिक्षूनित्यर्थः)।[50]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि भिक्षु के लिए शराब का सेवन तथा जुए का खेलना दोनों हानिकारक हैं। भिक्षुओं को सांसारिक भोगों से दूर रहना चाहिए। एकान्त में तप करना चाहिए। धर्म की निरन्तर इच्छा करनी चाहिए। शान्ति से रहना चाहिए। दया का पालन करना चाहिए। सद्धर्म का अध्ययन करना चाहिए। मोक्ष मुनियों का ही सम्भव है तथा मुनि वाणी को नियन्त्रण में रखता है। सन्यासी का व्रत धारण किए हुए को सर्वत्र घूमना चाहिए। उसे विहार में सब के साथ इकट्ठा रहना पड़ता था तथा कभी-कभी श्रद्धालुओं के यहाँ सामूहिक भोजन करना पड़ता था।

6.4.9 महात्मा बुद्ध के विभिन्न नामों, वंश तथा माता-पिता इत्यादि का उल्लेखः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण महात्मा बुद्ध के विभिन्न नामों, वंश तथा माता-पिता इत्यादि की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–गौतमः, सर्वज्ञः, पायाद्वः पुरुषोत्तमः, प्रणम्य शास्त्रे सुगताय तायिने, युष्माकं पालकः शम्भुरस्माकं देशको जिनः, बुद्धः, शाक्यः, तेषामयमैक्ष्वाको वंशः,

गौतमी, शुद्धोदनः, देवैरसौ दासीष्ट देवदत्तः, यशोधरः।[51]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि गौतम, सर्वज्ञ, पुरुषोत्तम, सुगत, जिन और बुद्ध महात्मा बुद्ध के ही अन्य नाम हैं। शाक्य और इक्ष्वाकु उनके वंश के पर्यायवाची शब्द हैं। उनकी माता का नाम गौतमी, पिता शुद्धोदन, चचेरा भाई देवदत्त तथा पुत्र यशोधर था।

6.4.10 बौद्ध तीर्थ स्थान का उल्लेखः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण एक प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ स्थान की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–दक्षिणेन गयां महाबोधि, आगामिवत्सरस्य यदवरं वैशाख्यास्तत्र गयां यास्यामः, आगामिनि मासे पञ्चदशरात्रादवरस्मिन् महाबोधि गन्ता स्मः।[52]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बुद्धगया उस समय महान् तीर्थ स्थान था।

6.4.11 अज्ञात तीर्थस्थान का उल्लेखः– भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण अज्ञात तीर्थ स्थान की ओर सङ्केत करता है–

यथा–चम्पातः सोमतीर्थं पञ्चयोजनानि।[53]

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि चम्पा से पाँच योजन की दूरी पर सोमतीर्थ था।

6.4.12 मनुस्मृति में कथित ब्राह्मण को दान देने के स्थान पर भिक्षु को दान देने की प्रेरणाः– यह सर्वविदित तथ्य है कि ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा प्राचीन काल से समाज में प्रचलित है। बुद्ध ने समाज में व्याप्त इस प्रथा का विरोध किया क्योंकि इससे जाति–विहीन समाज की स्थापना में समस्या पैदा हाती थी। भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण भिक्षु को दान देने का सङ्केत करता है–

यथा–दानीयो भिक्षुः।[54]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि भिक्षु को दान देना चाहिए। भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण धार्मिक व्यक्ति द्वारा ब्राह्मण को गाए दान देने की ओर सङ्केत करता है–

यथा–ब्राह्मणाय गां ददाति धार्मिकः।[55]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण को गाए देने की उस समय परम्परा थी। उक्त परम्परा का उपहास करते हुए भाषावृत्तिकार ने "सममब्राह्मणे दानमिति"[56] मनुस्मृति के प्रस्तुत श्लोक के चरण से अब्राह्मण को दिए दान का फल बराबर मिलता है परन्तु ब्राह्मण में वेद निष्णात को दिए गए दान से अनन्तगुणा फल की प्राप्ति होती है–

यथा–

"सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
अधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे"[57]

उक्त श्लोक के आधार पर दान देने का निर्णय करना अति कठिन है। इसीलिए भाषावृत्तिकार बौद्ध मतानुसार भिक्षु को दान देना श्रेयकर मानता है।

भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण ब्राह्मण के निर्वचन की ओर सङ्केत करता है–

यथा–वाहितं पापमनेनेति ब्राह्मणः।[58]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि भाषावृत्तिकार ब्राह्मण द्वारा पापकर्म के पश्चात् किए गए गङ्गा स्नानादि या यज्ञादि के विधान द्वारा पाप से मुक्त होने का जो विश्वास किया जाता है, उसका मजाक उड़ा रहे हैं।

भाषावृत्ति में प्रदत्त एक उदाहरण जिन के निर्वचन की ओर सङ्केत करता है–

यथा–जितमेनोऽनेनेति जिनः।[59]

उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि पाप को जीतने वाला जिन होता है। भाषावृत्तिकार ने जिन शब्द का प्रयोग बौद्धमतावलम्बी के लिए किया है तथा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है।

6.5 शासन-व्यवस्थाः– भाषावृत्ति में प्रदत्त कतिपय उदाहरण उस समय की शासन व्यवस्था की ओर सङ्केत करते हैं–

यथा–महाराज्ञी, सुराज्ञी, भुनक्ति राजा पृथ्वीम् (पालयतीत्यर्थः) अश्मनो विकार आश्मः प्रासादः, कटकात् संवादयति, पारिषदो समयः पारिषदो हासः,

ज्ञापयति नृपं हिताहितम्, राज्ञः पुरुषस्य धनम्, राजकीयः, यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः, भङ्गकारी सेना, काकपुच्छी सेना, शत्रुसेनं शत्रुसेना वा, उपायंस्त महास्त्राणि, रिपुलवित्रो वाणः, विस्फोटकः, शस्त्रोद्यतः, शूलपाणिः, उद्गूर्णवाणः, युद्धाय क्रमते भटः, सम्प्रहरन्ते योधाः, खड्गच्छायम्, युधि हस्तिघ्नः, अरित्रं नौका वाहनम्, कुनृपः, नृपतौ तिष्ठते जनः (तंस्थेयं करोतीत्यर्थः), राजा राजानमुपतिष्ठते, नृपं प्रकुरुते, द्विषद्वीर्यनिराकरिष्णुः, आयुष्यं राज्ञेऽतु राज्ञो वा, मन्ये तृणाय स्वाराज्यम्, एवम् ममैवाध्येति नृपतिः, सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात् ततोऽन्यत्र राजवान्।[60]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समय राजा की पत्नियों को महाराज्ञी तथा सुराज्ञी इत्यादि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता था। राजा स्वयं पृथ्वी का पालन करता था। राजा की पुत्री राजकुमारी कहलाती थी। राजा महल में निवास करता था। उसका महल पत्थर से निर्मित होता था तथा उस पत्थर को अश्मन् के नाम से पुकारा जाता था। राजा छावनी से भी संवाद करता था।

शासन व्यवस्था में राजा की सहायता के लिए परिषद् होती थी जिसकी समय-समय पर नियमित बैठकें आयोजित की जाती थीं। परिषद् की बैठक का समय निर्धारित होता था। परिषद् में हास्य-मजाक मान्य था। राजा को हित-अहित का बोध कराना परिषद् का मुख्य कार्य था।

राजपुरुषों के लिए अलग से धन की व्यवस्था होती थी। राजा धीर व्यक्ति को ही राज-कार्य में नियुक्त करता था। उसने सुरक्षा की दृष्टि से दो प्रकार की सेनाएँ गठित की थीं जिनके नाम भङ्गकारी सेना और काकपुच्छी सेना थे। उन सेनाओं के पास अस्त्र-शस्त्र और विस्फोटक पदार्थ भी होते थे। राजा तलवार के बल पर शासन करते थे। युद्ध में हाथियों का प्रयोग होता था तथा नौकाएँ शत्रु को भयभीत करती थीं।

राजा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने कर्त्तव्य का ठीक से निर्वाह करे, जो कर्त्तव्य के पालन में कुताही करता था उसे कुनृप कहा जाता था। राजा को स्थायित्व जनता ही प्रदान करती थी।

---

1. भा० वृ०-2.4.7, 4.2.72, 1.2.5.2, 52, 1.4.24, 5.3.57, 1.2.54, 4.2.81
2. भा० वृ०-4.2.81

3. काशि० वृ० – 4.2.81
4. भा० वृ० – 3.2.113, 113, 114.
5. भा० वृ० – 1.3.25, 3.2.115, 113, 2.3.28, 31, 4.1.13.
6. वही – 4.2.87
7. भा० वृ० – 4.3.83
8. वही – 6.3.120
9. वही – 2.4.56
10. वही – 1.3.25, 2.4.21, 5.4.9, 3.4.73, 1.1.38, 3.4.29, 3.2.12, 12, 1.4.34, 3.3.146, 148.
11. भा० वृ० – 1.3.25, 2.4.62, 63, 64, 65, 6.3.20, 1.2.46, 4.1.10, 1.1.65, 3. 2.93, 93.
12. भा० वृ० – 1.4.22, 2.2.31, 7.1.51, 2.3.49, 2.1.49, 6.3.37, 3.1.46, 6.3.41, 39, 40, 2.3.48, 1.3.56, 3.2.136, 4.1.137, 3.4.40, 1.1.53, 3.2.129, 135, 3.1.10, 10.
13. भा० वृ० – 4.1.10, 1.3.2.3, 32, 1.4.34, 8.1.4, 3.2.86.
14. वही – 1.4.64, 3.1.89, 3.2.1, 2.3.33, 2.1.58, 2.2.18, 7.3.69, 3.2.18, 2. 2.19, 5.2.101, 7.1.36, 3.2.9, 2.2.36, 36.
15. भा० वृ० – 1.4.51, 52, 54, 2.3.2, 15 तथा 3.3.10, 10, 3.4.71, 71, 4.2.14, 1.4.52, 1.2.64, 2.3.50, 2.1.35, 3.3.111, 116, 4.2.16, 3.3.128, 4.4.22, 1. 4.106, 7.3.39, 3.4.3, 8.4.10, 1.1.8, 4.2.14, 1.4.106, 2.4.12; 14, 3.4.45, 2.1.49, 3.2.20, 2.2.36, 8.4.9, 2.2.36, 1.1.63, 4.3.117, 119, 1.4.54, 5.1. 112, 5.2.82, 83, 5.4.22.
16. भा० वृ० – 3.1.11, 3.2.101, 3.3.117, 117, 117, 123, 3.4.31, 4.4.7.
17. भा० वृ० – 3.3.82, 77, 2.2.36, 36, 2.4.22, 8.3.37, 3:3.104, 2.2.36, 8.3. 111.
18. वही – 2.4.69, 2.3.40, 28, 4.3.134, तथा 6.4.144.
19. भा० वृ० – 1.3.86, 1.4.36, 2.3.26, 29, 8.2.58, 3.4.45, 2.3.37.
20. वही – 5.3.104.
21. वही – 1.4.53, 2.3.40, 2.1.40, 1.4.54, 3.1.20, 2.3.38.
22. भा० वृ० – 4.4.89, 2.3.2, 5.3.91.
23. वही – 1.4.79, 3.1.67, 5.1.81, 3.4.1, 2.1.40.

24. वही – 1.3.23, 4.1.10.

25. भा० वृ० – 2.2.17.
26. वही – 1.3.53, 2.2.8, 1.4.21.
27. वही – 1.1.20, 4.2.2, 2.1.36, 3.3.54, 2.1.6, 5.4.117, 4.2.1.
28. भा० वृ० – 3.1.2.6, 3.2.85, 1.1.3, 3.2.85, 2.1.36, 1.4.84, 2.3.8, 1.4.75, 8.1.9.
29. वही – 1.4.32, 2.3.13, 1.4.35, 35, 2.4.21, 3.2.56, 5.1.112, 112, 2.3.4, 3.3.173, 4.1.167, 4.4.86, 2.3.56, 1.4.37, 5.4.47, 3.2.56, 5.4.25, 6.1.87, 87.
30. भा० वृ० – 3.2.9, 53, 41, 56, 56, 5.4.49, 4.3.16, 6.3.70.
31. भा० वृ० – 1.3.54, 2.2.10, 5.2.5, 2.2.24, 4.3.123.
32. भा० वृ० – 3.2.184, 4.4.5, 5.
33. वही – 5.4.127, 127.
34. वही – 2.1.14, 3.2.124.
35. भा० वृ० – 3.2.40, 133, 8.2.50, 6.3.129.
36. म० भा० उ० प० – 4.3.60.
37. भा० वृ० – 2.1.60, 60, 4.2.60, 3.1.6, 4.2.60, 61, 4.3.115, 118, 6.3.105, 4.2.60, 3.2.130, 4.3.73, 2.4.1.
38. भा० वृ० – 7.3.36, 2.1.65, 1.3.36, 127, 1.4.52, 52, 1.3.21, 1.4.52, 2.1. 24, 24, 1.4.14, 2.3.71, 2.4.5, 6.4.131, 3.3.135, 1.4.51, 2.3.19, 1.3.36, 36, 36.
39. भा० वृ० – 2.3.5, 1.4.32, 1.3.48, 36, 1.1.34, 1.4.26, 53; 63, 2.1.31, 1. 4.28, 28, 2.1.31, 1.4.49, 5.2.88, 8.3.39.
40. भा० वृ० – 8.2.58.
41. वही – 1.3.32, 1.4.22, 2.1.58, 2.4.21.

42. भा० वृ० – 1.1.73, 4.3.95, 3.2.180, 3.3.173, 2.3.16, 8.1.20, 26, 18, 1. 1.73, 3.3.173, 4.3.95, 8.1.20, 26, 2.3.16, 4.3.95, 95.
43. भा० वृ०–पृ० 1.
44. परि० .... कारक० ---- पृ० 120.
45. परि० .... कारक० ---- पृ० 101.
46. भा० वृ० – 3.3.173, 8.1.20.
47. भा० वृ० – 4.3.95, 6.3.109, 2.1.57.
48. वही – 8.1.18, 1.1.73 तथा 4.2.114

49. भा० वृ० – 3.2.178, 1.3.22, 2.1.9; 9, 3.2.179, 3.3.175; 176.
50. भा० वृ० – 3.1.100, 3.2.56, 3.1.38, 3.4.74, 3.2.1, 6.4.39, 3.1.37, 3.2.180, 4.4.61, 1.4.21, 8.2.50, 3.2.40, 3.2.130, 6.3.122, 3.4.29.
51. भा० वृ० – 4.1.113, 3.2.3, 6.4.68, 1.4.32, 8.1.18, 3.3.174, 4.3.92, 6.4. 174, 4.1.73, 6.1.94, 3.3.174, 3.1.134.
52. वही – 2.3.31, 3.3.137, 137.
53. भा० वृ० – 2.3.28.
54. वही – 3.3.113.
55. वही – 1.4.32.
56. वही – 1.4.32.
57. मनु० – 7.85.
58. भा० वृ० – 6.3.109.
59. वही – 6.3.109.
60. भा० वृ० – 5.4.91, 4.1.12, 1.3.66., 4.3.134, 6.4.144, 2.3.28, 4.3.123, 123, 1.4.52, 2.3.50, 1.1.68, 1.3.64, 4.1.15; 55, 2.4.19, 1.3.56, 3.2.184, 8.3. 111, 2.2.36, 36, 36, 1.3.38, 15, 2.4.22, 3.2.54, 184, 2.2.18, 1.3.23, 25, 32, 2.1.24, 2.3.73, 17, 52, 8.2.14.

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष

7.1 भाषावृत्ति के उपर्युक्त विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि भाषावृत्ति की रचना युग की आवश्यकता तथा जनसाधारण की अभिरुचि एवं बुद्धि के अनुरूप की गई है। प्रस्तुत वृत्ति में पाणिनि के छान्दससूत्रों के व्याख्यान का परित्याग तथा लौकिकसूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। केवल लोकभाषासम्बद्ध लौकिकसूत्रों के व्याख्यान के कारण ही यह वृत्ति भाषावृत्ति के नाम से अभिहित की जाती है। इस वृत्ति में काशिकावृत्ति की अपेक्षा सूत्रों का लघुव्याख्यान पाया जाता है, इतना ही नहीं यहाँ अनेक पूर्ववर्त्ती आचार्यों के व्याकरणिक मतों को सङ्क्षेप में प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि यह वृत्ति लघुवृत्ति के नाम से भी विख्यात है।

7.2 प्रस्तुत वृत्ति का लक्ष्य मत-मतान्तर-निर्देशपूर्वक पाणिनीय अष्टाध्यायी के लौकिकसूत्रों की संक्षिप्त, सरल, सरस और सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत करना है। व्याकरणशास्त्र में सरसता के सञ्चार हेतु यहाँ सूत्रोदाहरणादि के रूप में काव्यादि ग्रन्थों के लगभग 380 श्लोक तथा श्लोकांश प्रस्तुत किये गये हैं। यह वृत्ति त्रिमुनियों के तथा काशिका एवं भागवृत्ति के व्याकरणिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये परमोपयोगी है।

7.3 भाषावृत्ति में कुल 3983 सूत्र पठित हुये हैं जिनमें से वृत्तिकार ने 620 सूत्रों को छान्दस तथा 3363 सूत्रों को लौकिक माना है। वृत्तिकार द्वारा स्वीकृत छान्दससूत्रों में से सात सूत्रों को कतिपय आचार्यों ने लौकिकसूत्र भी माना है। भाषावृत्तिकार द्वारा स्वीकृत लौकिकसूत्रों में से चौदह सूत्रांशों को स्वयं वृत्तिकार ने तथा पन्द्रह सूत्रों एवं एक सूत्रांश को कतिपय आचार्यों ने छान्दस माना है। पाणिनि के जो लौकिक सूत्रांश भाषावृत्ति की दृष्टि से अनुपयोगी हैं। वृत्तिकार ने उन सूत्रांशों का उल्लेख यथास्थान किया है। ऐसे सूत्रांशों की कुल संख्या चार है।

पाणिनि के कतिपय सूत्रों के विषय में आचार्यों में मतभेद पाया जाता है। वृत्तिकार ने परम्परा से प्राप्त अनेक ज्ञात तथा अज्ञात आचार्यों तथा वृत्तियों के मतों को सङ्क्षेप में प्रस्तुत किया है। सूत्रविषयक यह मतभेद प्रायः सूत्रार्थ, अनुवृत्ति, योगविभाग, पदच्छेद, तदन्तविधि, अन्वय, पाठान्तर, गणपाठ, अनुक्तसमुच्चय, सार्थकता, नियामकता तथा ज्ञापकता के सम्बन्ध में पाया जाता है। इस मतभेद के कारण कतिपय प्रयोगों के स्वरूप में अन्तर आ जाता है तो कतिपय प्रयोगों की साधना की प्रक्रिया में। इतना ही नहीं उक्त मतभेदों के कारण कुछ प्रयोगों की सत्ता पर प्रश्नचिह्न भी लग जाता है। यथा–

[1] ''कालप्रयोजनाद् रोगे'' सूत्रस्थ प्रयोजन शब्द को कतिपय आचार्य कारणवाचक मानते हैं तो कतिपय कारण और फल उभयवाचक। इसी वैषम्य के कारण कुछ आचार्य ''विषपुष्पेणप्रयुक्तो विषपुष्पको ज्वरः'' इस प्रयोग में रोग के कारणवाचक ''विषपुष्प'' शब्द से ही उक्त सूत्र से कन् प्रत्यय का विधान करते हैं किन्तु कतिपय आचार्य ''शीतं कार्यमस्येति शीतको ज्वरः'' इस प्रयोग में रोग के फलवाचक शीत शब्द से भी कन् प्रत्यय का विधान कर देते हैं।

[2] कतिपय आचार्य ''पाघ्राध्माधेट्दृशः शः'' सूत्र में उपसर्ग की अनुवृत्ति स्वीकार कर उत्पश्यः, उद्जिघ्रः आदि रूपों को ही साधु मानते हैं परन्तु कतिपय आचार्य उक्त सूत्र में उपसर्ग की अनुवृत्ति स्वीकार नहीं करते अतः उनके मत में उपसर्ग और अनुपसर्ग पूर्वक पादि धातुओं से शप्रत्यय होने पर उत्पश्यः उद्जिघ्रः के साथ-साथ पश्यः, जिघ्रः आदि रूप भी साधु हैं।

[3] कतिपय आचार्य ''खः सर्वधुरात्'' सूत्र द्वारा केवल सर्वधुर शब्द से ही ख प्रत्यय का विधान स्वीकार करते हैं परन्तु कतिपय आचार्य उक्त सूत्र में ''खः'' यह योगविभाग स्वीकार कर उत्तरधुर आदि शब्दों से भी ख प्रत्यय का विधान कर देते हैं।

[4] कतिपय आचार्य ''गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्'' सूत्रस्थ गाण्ड्यजगात् शब्द में पदच्छेद द्वारा दीर्घान्त गाण्डी शब्द का तो कतिपय दीर्घान्त और ह्स्वान्त उभयविध गाण्डी शब्द का पाठ स्वीकार करते हैं। इसी वैषम्य के कारण कुछ के मत में ''गाण्डीवं धनुः'' यह प्रयोग ही साधु है तो कुछ के मत में ''गाण्डीवं धनुः, गाण्डिवं धनुः'' ये उभयविध प्रयोग।

[5] कतिपय आचार्य ''यू स्त्र्याख्यौ नदी'' सूत्र में तदन्तविधि स्वीकार करते हैं तो कतिपय नहीं। इसी वैषम्य के कारण तदन्तविधि पक्ष में कुमारी और

यवागू आदि शब्दों की नदीसंज्ञा हो जाती है लेकिन तदन्तविध्यभाव में नहीं अतः इन आचार्यों को उक्त प्रयोगों में प्रकारान्तर से नदीसंज्ञा करनी पड़ती है।

[6] जो आचार्य "मनो रौ वा" सूत्रस्थ वा शब्द का अन्वय ऐकार तथा औकारादेश के साथ मानते हैं, उनके मत में मनु शब्द से ङीप् प्रत्यय नित्य तथा ऐकार एवं औकारादेश विकल्प से होते हैं लेकिन जो आचार्य वा शब्द का अन्वय ङीप् के साथ भी मानते हैं उनके मत में ऐकार तथा औकारादेश के समान ङीप् प्रत्यय भी विकल्प से होता है। इस प्रकार उनके मत में ङीबभाव पक्ष में स्त्रीलिङ्ग में "मनुः" यह रूप भी निष्पन्न होता है।

[7] कतिपय आचार्य "ओजः सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः" सूत्रस्थ तमस् शब्द के पाठ को यथास्थिति में स्वीकार करते हैं तो कतिपय आचार्य तमस् के स्थान में तपस् शब्द के पाठ को शुद्ध मानते हैं। इसी वैषम्य के कारण कतिपय आचार्य उत्तरपद परे रहते तमस् की तृतीया विभक्ति का लोप स्वीकार करते हैं तो कतिपय आचार्य तपस् की तृतीया विभक्ति का।

[8] कतिपय आचार्य "सहाय" शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में नहीं मानते हैं अतः उनके मत में सहाय शब्द से "योपधाद्गुरूपोत्तमाद् वुञ्" सूत्र द्वारा वुञ् प्रत्यय होने से "साहायकम्" यह एकमात्र रूप निष्पन्न होता है लेकिन जो आचार्य सहाय शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में मानते हैं उनके मत में वुञ् और ष्यञ् दोनों प्रत्यय होने से "साहाय्यम्" यह रूप भी साधु है।

[9] कतिपय आचार्य "भुवश्च" सूत्र द्वारा केवल भू धातु से ही इष्णुच् प्रत्यय स्वीकार करते हैं किन्तु कतिपय आचार्य सूत्रस्थ चकारग्रहणसामर्थ्य से "भ्राज्" धातु से भी उक्त इष्णुच् प्रत्यय का विधान स्वीकार करते हैं।

[10] कतिपय आचार्य "रूपवान्" आदि प्रयोगों में दृश्यमान मतुप् प्रत्यय "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" सूत्र से ही सम्भव मानते हैं अतः उनके मत में "रसादिभ्यश्च" सूत्र नियामक है और इस नियमन के कारण रसादिगण में पठित रूपादि शब्दों से केवल मत्वर्थीय मतुप् प्रत्यय ही होता है परन्तु कतिपय आचार्यों के मत में यह सूत्र निरर्थक है क्योंकि रूपिण्योऽप्सरसः और रसिको राजा आदि प्रयोगों में अन्यमत्वर्थीय प्रत्यय ठन् और इनादि भी देखे जाते हैं।

[11] कतिपय आचार्य "नित्यमसिच् प्रजामेधयोः" सूत्र से नञ्, दुस् और सु पूर्वक प्रजा तथा मेधस् शब्दों से नित्य ही असिच् प्रत्यय का विधान स्वीकार

करते हैं परन्तु कतिपय आचार्यों के अनुसार प्रस्तुत सूत्रस्थ नित्य शब्द व्यर्थ है क्योंकि पूर्व सूत्रस्थ ''अन्यतरस्याम्'' शब्द स्वरितप्रतिज्ञा के अन्तर्गत नहीं आता है। इसलिये सूत्रस्थ नित्यग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि यदि प्रजा तथा मेधस् शब्दों के पूर्व में नञादि शब्द न भी हो तो भी उक्त सूत्र से प्रजादि शब्दों से असिच् प्रत्यय हो जाता है।

7.4 इष्ट प्रयोगों की निष्पत्ति तथा अनिष्ट प्रयोगों के वारण हेतु व्याकरणशास्त्र में इष्टिवचन के पाठ की भी परम्परा है। यद्यपि काशिकावृत्ति के समान भाषावृत्ति में भी कतिपय इष्टिवचन पठित हुये हैं तथापि यहाँ कुछ ऐसे इष्टिवचन भी पठित हुये हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं ''घ्यन्तादजाद्यदन्ताच्चपरत्वादिदमिष्यते'', ''भवत्प्रयोगे नेष्यते'' आदि प्रकारक इष्टिवचन इसी प्रकार के हैं। जिनसे वागग्नी, वागिन्द्रौ, भवान् करोति आदि रूप निष्पन्न होते हैं। भाषावृत्ति में कतिपय इष्टिवचन सन्देहनिवृत्ति के लिये पठित हुये हैं। प्रस्तुत वृत्ति में पठित कतिपय इष्टिवचन काशिकावृत्ति में वार्त्तिक के रूप में पठित हुये हैं अथवा इन इष्टिवचनों का कार्य प्रकारान्तर से निष्पन्न किया गया है।

7.5 प्रस्तुत वृत्ति में पूर्ववर्त्ती आचार्यों के कतिपय ऐसे मत उपलब्ध होते हैं जो सम्प्रति आश्चर्यजनक लगते हैं। यहाँ कतिपय आचार्यों के मत में यण् आगम के रूप में, मनु शब्द स्त्रीलिङ्ग के रूप में दिखाया गया है। इतना ही नहीं यहाँ भाववाचक शब्दों का सम्बन्ध कर्मवाचक शब्दों के साथ तथा अवस्था विशेष में लृट् के स्थान में लुट् का प्रयोग निर्दिष्ट हुआ है। शर् परे रहते चय् से परे आगमरूप द्वितीयवर्ण का विधान एवं चय् से परे आगमरूप द्वितीयवर्ण को द्वित्व का विधान भी उक्तार्थ में प्रमाण है। इसी प्रकार ''कौशल्यकार्माराभ्याञ्च'' सूत्र द्वारा प्रक्रिया में कौशल और कर्मार शब्दों से फिञ् प्रत्यय का विधान होने पर भी सूत्र में कौशल्य और कार्मार्य शब्दों से फिञ् प्रत्यय का विधान क्यों किया गया है इस सन्देह की निवृत्ति हेतु वृत्तिकार ने जो स्मृतिवचन उद्धृत किया है वह अन्यत्र अप्राप्य है।

7.6 प्रस्तुत भाषावृत्ति में संक्षिप्त, सरस तथा सारगर्भित रूप में सूत्रार्थ को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ सूत्र का उतना ही अर्थ निर्दिष्ट हुआ है जितना कि उसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिय परमावश्यक है। किञ्च यहाँ सूत्र के भी उतने ही उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण निर्दिष्ट हुये हैं जितने कि उसके अर्थ के

सङ्गतीकरण के लिये अपेक्षित हैं। वृत्ति के सङ्क्षेपीकरणहेतु यहाँ सम्भावित

स्थलों पर दो-दो सूत्रों की एक ही वृत्ति प्रस्तुत की गई है। यहाँ जिन सूत्रस्थ शब्दों के प्रयोजन तथा अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह की सम्भावना होती है उनके प्रयोजन तथा अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न पूर्ववर्त्ती वृत्तियों तथा भाष्यादि ग्रन्थों में जो विषय विस्तृत एवं आलोचना तथा प्रत्यालोचना से युक्त हैं अथवा दुरूह हैं, उन विषयों को यहाँ संक्षिप्त, सरल तथा सारगर्भित भाषा में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ अत्यधिक सङ्क्षेप में पूर्वपक्ष के रूप में सन्देह का उत्थान तथा उत्तरपक्ष के रूप में उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत वृत्ति में सरसता के सञ्चार हेतु अनेकत्र काव्यादि ग्रन्थों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। वृत्तिकार ने ज्ञात आचार्यों तथा ग्रन्थों के मतों का निर्देश नामोल्लेखपूर्वक किया है परन्तु अज्ञात आचार्यों का निर्देश 'एके' 'अन्ये' आदि शब्दों के द्वारा किया है। यहाँ व्याकरणशास्त्र के जो पदच्छेदादि पाँच प्रकार के व्याख्यान प्रकार हैं उनका पूर्णत: पालन किया गया है। वृत्तिकार जहाँ स्वमत की पुष्टि के लिये परमत का आश्रय लेता है वहाँ प्राय: ''तदुक्तं भाष्ये'', ''यदुक्तं भाष्ये'' आदि प्रकारक वाक्यों का प्रयोग करता है। वृत्तिकार जहाँ परमत से असहमति व्यक्त करता है वहाँ प्राय: ''माथुर्य्यां तु'', ''भाष्यकारस्य तु'', ''इति तु न्यास:'' आदि प्रकारक वाक्यों का प्रयोग करता है।

वृत्तिकार ''चिन्त्य'' शब्द के द्वारा उन शब्दों की सत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाता है जो सूत्र, वार्तिक तथा इष्टिवचनों की सीमा में नहीं आते। सहचरी, श्लिष्टप्रिय:, विमुक्तकान्त:, भवतीप्रसादात्, उद्गीय खलेन आदि प्रकारक प्रयोग इसी तरह के हैं।

7.7 भाषावृत्ति में व्याकरणशास्त्र के पाँच अङ्गों को पूर्ण मान्यता प्रदान की गई है। इनमें से भाषावृत्तिकार की उणादिवृत्ति सम्प्रति उपलब्ध नहीं है किन्तु सूत्र पाठादि जो पाठ उपलब्ध होते भी है उनमें किञ्चित् वैषम्य परिलक्षित होता है। ''अष्टकं पाणिनीयम्'' में पाणिनि के कुल सूत्रों की संख्या 3963 उल्लिखित हुई है किन्तु भाषावृत्ति में योगविभाग, अतिरिक्त सूत्रपाठ, कतिपय वार्तिकों का सूत्र रूप में विन्यास के कारण इन सूत्रों की संख्या 3983 पायी जाती है। अधिकांश विद्वानों द्वारा मान्य अष्टाध्यायी के गणपाठ, धातुपाठ एवं लिङ्गानुशासन में तथा भाषावृत्तिस्थ अष्टाध्यायी के गणपाठ, धातुपाठ एवं लिङ्गानुशासन में भी किञ्चित् वैषम्य पाया जाता है। यह वैषम्य मुख्यत: पाठान्तर, संख्या तथा पौर्वापर्यक्रम विषयक है।

7.8 वृत्तिकार ने प्राय: पूर्ववर्त्ती विभिन्न व्याकरणिक मतों का निर्देश स्वमत की पुष्टि के लिये तथा सन्देहों की निवृत्ति के लिये किया है जिससे भाषावृत्ति पर इन पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त वृत्तिकार ने उन मतों का भी निर्देश किया है जो तत्तत् सूत्रों के विषय में अपना विशिष्ट मत रखते हैं तथा जिनके उल्लेख करने से सुदीर्घकालीन व्याकरणिक परम्परा का निर्वाह होता है। जिन वैयाकरणों का भाषावृत्ति पर सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है उनमें भाष्यकार पतञ्जलि, चान्द्रसूत्रकार चन्द्रगोमी, काशिकाकार जयादित्य-वामन तथा भागवृत्तिकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भाषावृत्ति तथा मुख्य प्रक्रियाग्रन्थों की तुलना से ज्ञात होता है कि प्रक्रियाग्रन्थों में वैदिक और लौकिक उभयविध सूत्र व्याख्यात हुये हैं लेकिन भाषावृत्ति में केवल लौकिक सूत्र। भाषावृत्ति तथा प्रक्रियाग्रन्थों की सूत्रसंख्या में भी विषमता पायी जाती है। भाषावृत्ति में व्याख्यात सूत्रों की संख्या 3363 है लेकिन रूपावतार, प्रक्रियाकौमुदी और सिद्धान्तकौमुदी में व्याख्यात सूत्रों की संख्या क्रमश: 2664, 2430, 3975 है। भाषावृत्ति का व्याख्यान रूपावतार और प्रक्रियाकौमुदी की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है। भाषावृत्ति और सिद्धान्तकौमुदी में कतिपय स्थलों पर सूत्र, वार्त्तिक तथा इष्टिवचन सम्बन्धी भेद भी पाया जाता है।

7.9 भाषावृत्ति के अध्ययन से यह बात प्रकाश में आती है कि यह वृत्ति बौद्ध सम्प्रदाय से प्रभावित है। इसमें पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों की अपेक्षा एक विशेष मार्ग का अनुसरण किया गया हैं। यहाँ सूत्रोदाहरणादि के रूप में वैदिक धर्मी विश्वासों को हतोत्साहित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत वृत्तिग्रन्थ के उदाहरणों में तत्कालीन समाज, शासनव्यवस्था, शिक्षा, सम्प्रदाय आदि तथा भौगोलिक स्थिति का चित्रण भी पाया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोकभाषा से सम्बद्ध पाणिनीय व्याकरण को संक्षिप्त, सरल, सरस तथा सारगर्भित रूप में प्रस्तुत कर वृत्तिकार जहाँ अपने लक्ष्य में पूर्ण सफल हुआ है वहीं आज का समाज उसका कृतज्ञ है क्योंकि आलोचना-प्रत्यालोचना से सर्वथा मुक्त अनेक पारम्परिक व्याकरणिक मतों का एकत्र ज्ञान अन्यत्र दुर्लभ है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. अथर्ववेद संहिता [मूल पाठः] सं० पं० माधवाचार्य शास्त्री, नीलकण्ठ शास्त्री व अन्य, दीपचन्द शर्मा प्रकाशक माधव पुस्तकालय, दिल्ली, प्रथमावृत्ति शरत्पूर्णिमा 2035.

2. अभिधानचिन्तामणिकोश, हेमचन्द्राचार्य, अनु० तथा सम्पा०, प्रकाशक-सूरीश्वर-पट्टधराचार्य व अन्य, निर्णयसागर प्रैस, मुंबई, सं० 2013 वि०

3. अमरकोश, अमरसिंह, आचार्य कृष्णमित्रटीकोपेतः, सम्पा० डा० सत्यदेव मिश्र, प्रका० सत्यदेव मिश्र, प्राध्यापक, मलाया विश्वविद्यालय, कोलालम्पुर, भार्गव भूषण प्रैस वाराणसी।

4. अष्टकं पाणिनीयम्, पाणिनिमुनि, अजमेर वैदिक यन्त्रालये, अष्टमावृत्तौ संवत् 2028 विक्रमी

5. अष्टाध्यायी, खेमराज-श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालये, सं० 1954.

6. अष्टाध्यायी भाष्यम्, प्रथमो भागः, दयानन्द सरस्वती, अजमेरनगर, वैदिक यन्त्रालय, प्रथम संस्करण, वैक्रमाब्दः 1984.

7. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, सम्पा० और प्रकाशक-एस० चन्द्रशेखर शास्त्रीगल, तेपाकुलम, त्रिचिनापलि, 1912.

8. ऋक्तन्त्र, सामवेद प्रातिशाख्य, सम्पा० डा० सूर्य कान्त, प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दरियागंज, दिल्ली, 1970.

9. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, प्रथम मण्डल, लेखक तथा प्रकाशक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी [जि० बलसाड] विक्रम संवत् 2023.

10. ऋग्वेद प्रातिशाख्य शौनकीय, मङ्गलदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित भाग-2 इण्डियन प्रैस, लिमि०, अलाहाबाद, 1931.

11. कातन्त्र, शर्ववर्मन् टीका–दुर्गसिंह, सम्पादक ज्युलिअस एजलिङ्ग, प्रकाशक–एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल, कलकत्ता, 1876.

12. काव्यालङ्कार, आचार्य भामह, भाष्यकार, देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रकाशक-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2021 विक्रमाब्द

13. काव्यमीमांसा, राजशेखरविरचित, सम्पा० पं० मधुसूदनमित्र, प्रकाशक–जयकृष्ण हरिदास गुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस, 1991 वि०

14. काशकृत्स्न-धातुव्याख्यान, चन्नवीरकृत कर्णाटक टीका का संस्कृत अनु० द्वारा युधिष्ठिर मीमांसक, भारतीय प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, अजमेर, 2022 वि०

15. किरातार्जुनीयम्, भारविप्रणीत, सम्पा० पणशीकरोपाह्वविद्व-द्वरलक्ष्मणशर्मतनुजनुषा वासुदेवशर्मणा, पाण्डुरङ्ग जावजी मुम्बई, निर्णयसागर मुद्रण यन्त्रालय, संस्करण एकादश, सन् 1929.

16. काशिका, वामन-जयादित्य सम्पा० पं० श्रीशोभितमिश्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस, तृतीय संस्करण संवत् 2009.

17. काशिका का समालोचनात्मक अध्ययन, लेखक–डॉ० रघुवीर वेदालंकार, नाग पब्लिसर्ज, जवाहर नगर, दिल्ली–7, प्रथम संस्करण, 1977.

18. काशिकावृत्तिवैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्योः तुलनात्मकमध्ययनम्, डॉ० महेशदत्तशर्मा, संस्कृत-प्रगताध्ययन-केन्द्रम्, पुण्यपत्तन-विश्वविद्यालयः, 1974.

19. कुमारसम्भव महाकविकालिदासविरचित, हिन्दी व्याख्याकार पं० प्रद्युम्नपाण्डेय, प्रकाशक चौखम्बा विद्याभावन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 1981.

20. गणरत्नमहोदधि, वर्धमानविरचित, सम्पा० ज्युलियस एजलिङ्ग, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, देहली-वाराणसी-पटना, 1963.

21. चरकसंहिता, चरकप्रणीत, सम्पा० गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण-बम्बई, संवत् 1989.

22. चान्द्रव्याकरण-चन्द्रगोमी, दो भाग, सम्पा० क्षितिज चन्द्र चैटर्जी शास्त्री, डैकेन कालेज पोस्टग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, सितम्बर 1953, द्वितीय भाग, प्रथम सं० 1961.

23. चान्द्रव्याकरणवृत्ते: समालोचनात्मकमध्ययनम्, लेखक–डॉ० हर्षनाथ मिश्र, प्रकाशक–डॉ० मण्डन मिश्र प्राचार्य:, श्री लाल बहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974.

24. जैनेन्द्र व्याकरण, अभयनन्दी कृत जैनेन्द्र महावृत्ति सहित, सम्पा० शम्भु नाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1956.

25. तैत्तीरीयप्रातिशाख्य, सोमाचार्य की त्रिभाष्यरत्न और गर्गाचार्य की वैदिकाभरण, व्याख्या से युक्त, सम्पा० के रङ्गाचार्य और आर० शर्मा शास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रैस ब्रांच, मैसूर, 1906.

26. दशपाद्युणादिवृत्ति:, सम्पा० पं० युधिष्ठिर मीमांसक, सरस्वती भवन, बनारस, 1943.

27. दुर्घटवृत्ति:, शरणदेव, संशोधित–त० गणपतिशास्त्री, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, 1985.

28. न्यायमंजरी, लाजरस कम्पनी, काशी द्वारा मुद्रित

29. न्यास, भाग 2, जिनेन्द्रबुद्धि, मुख पृष्ठ लुप्त

30. न्यास [काशिकाविवरणपंजिका] जिनेन्द्रबुद्धि भाग-4, सम्पा० श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती, प्रकाशक वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही बङ्गाल, 1925.

31. नामिक, वेदाङ्प्रकाश [लिङ्गानुशासनसूत्रपाठसहित], वैदिक-पुस्तकालय, दयानन्दाश्रम, अजमेर, प्रथम संस्करण, 2036 विक्रमी

32. पदमंजरी [भाग 1-2] हरदत्त, मुख पृष्ठ लुप्त

33. पदमंजरी, हरदत्त, पूर्वार्ध [भाग-1] प्रथम तीन अध्याय, भारद्वाज-दामोदरशास्त्री संशोधित, काशी, मेडिकलहाल यन्त्रालय में मुद्रित, पुनर्मुद्रण-सं० 1952.

34. पाणिनीय अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ, सम्पा० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, अष्टम संस्करण, संवत् 2030.

35. पाणिनीय धातुपाठ [देवनागरी और तमिल लिपि में] सम्पा० एन०वी० सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रकाशक-एस० गोपालन सेक्रेटरी, तन्जोर महाराजः, सेरफोंजीज़ सरस्वती महल लाइब्रेरि-तन्जोर, 1960.

36. परिभाषावृत्तिः, ज्ञापकसमुच्चयः, कारकचक्रम्, पुरुषोत्तमदेव, सम्पा० दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य, प्रकाशक वरेन्द्र रिसर्च म्यूज़ियम, राजशाही, बङ्गाल 1946.

37. परिभाषेन्दुशेखर, नागेशभट्ट, व्याख्याकार श्री विश्वनाथ मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, गोपालमन्दिर लेन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1985.

38. परिभाषा संग्रह [व्याडिशाकटायनादिप्रोक्तपरिभाषापाठानां तत्प्रणीतवृत्तीनां च संग्रहः], सम्पा० के०वी० अभ्यंकर, भण्डारक प्राच्य विद्या संशोधन संस्थान, पूना, 1967.

39. पाणिनीय शिक्षा, सम्पा० जयकृष्णदास-हरिदासगुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस, तृतीय संस्करण, संवत् 2004.

40. पाणिनीय व्याकरण का अनुशीलन, रामशंकर भट्टाचार्य, प्रकाशक इण्डोलाजिकल बुक हाउस, नेपाली खपड़ा, वाराणसी, प्रथम सं० 1966.

41. प्रक्रियाकौमुदी [1-3 भाग] रामचन्द्राचार्य, सम्पा० मुरलीधरमिश्र, प्रकाशक निदेशक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विद्यालय, अनुसन्धान संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2033 विक्रमी, प्रथम तथा द्वितीय भाग, तृतीय भाग 1980.

42. प्रक्रियाकौमुदीविमर्शः, डॉ० आद्याप्रसादमिश्र, वाराणसी, 1966.

43. प्रमाणवार्तिकभाष्य, प्रज्ञाकर गुप्त, राहुलसांस्कृत्यायन सम्पा० काशीप्रसाद जायसवाल-अनुशीलन संस्था, पाटलीपुत्र, संवत् 2010.

44. भगवान् बुद्ध [लेखक की मूल मराठी पुस्तक से अनूदित], लेखक धर्मानन्द कोसम्बी, अनुवादक श्रीपाद जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1956.

45. भगवान् बुद्ध जीवन और दर्शन, धर्मानन्द कोसम्बी, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मागाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1987.

46. भट्टिकाव्य, तीन भाग, व्याख्याकार हिन्दी श्री शेषराजशर्मा शास्त्री, प्रकाशक जयकृष्णदास हरिदासगुप्त, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस, द्वितीय संस्करण 1951-1952.

47. भट्टिकाव्य, प्रथम खण्ड, सम्पा० श्री यदुनाथतर्करत्न, कलकत्ता, वि०पि० एम्स् यन्त्रालय मुद्रित, संवत् 1928.

48. भागवृत्ति-संकलन, सम्पा० युधिष्ठिर मीमांसक, प्रकाशक-संचालक, भारतीय प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, अजमेर, प्रथम भाग, संवत् 2021.

49. भाषावृत्ति, पुरुषोत्तमदेव, सम्पा० श्रीशचन्द्र चक्रवर्त्ती, प्रकाशक विमला चरन मैतरा, असिस्टेन्ट सचिव, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, प्रथम सं० 1918.

50. भाषावृत्ति, पुरुषोत्तमदेवविरचित, सम्पा० स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथम सं० 1971.

51. मनुस्मृतिः, मनु, मणिप्रभा हिन्दी टीका सहित, टीकाकार-श्री हरगोविन्द शास्त्री, प्रका० चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृ०सं०, वि०सं० 2027.

52. महाभारत [मूलमात्र] कृष्णद्वैपायन, भाग 1-4, गीताप्रैस, गोरखपुर वि०सं० 2014-15.

53. महाभाष्यदीपिका, भर्तृहरि, सम्पा० के०वी० अभ्यङ्कर और वी०पी० लिमये, भण्डारक ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, 1970.

54. महिम्नस्तोत्र, पुष्पदन्त, मधुसूदन व्याख्या, पणशीकरोपाह्वलक्ष्मणशर्मसूनुना वासुदेवशर्मा संशोधित, पाण्डुरङ्ग जावजी निर्णयसागरयन्त्रालये मुम्बई, षष्ठावृत्तिः, सन् 1930.

55. माधवीया धातुवृत्ति, सायणाचार्य, सम्पा० स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, प्राच्यभारतीप्रकाशन, वाराणसी, 1964.

56. यजुर्वेद संहिता, सम्पा० पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी [जि० बलसाड] चतुर्थ संस्करण, मुद्रक-दिल्लीस्थ पाणिनि मुद्रणालय एवं प्रकाशक द्वारा ज्ञान आफसेट मुद्रणालय-मुद्रितम्।

57. रघुवंशम्, कालिदास, काशीनाथ पाण्डुरङ्गपरब संशोधित, निर्णयसागर-यन्त्रालय, मुम्बई, द्वि०सं०, शाक: 1809.

58. रामायण, वाल्मीकि, रामतेजपाण्डेय संशोधित पण्डित पुस्तकालय, काशी, सं० 2013.

59. रूपावतार धर्मकीर्ति, प्रथम भाग, मुखपृष्ठ लुप्त, पृ० संख्या 308.

60. रूपावतार द्वितीय भाग, धर्मकीर्ति, रायबहादुर म० रङ्गाचार्य, द्वारा संशोधित तथा परिष्कृत, प्रकाशक-वरदराजशर्मा, बंगलौर प्रैस लेक वियू, मैसूररोड, बंगलौर, मार्च, 1927.

61. लिङ्गानुशासन, श्री हर्षवद्र्धन, सम्पा० प्रभात शास्त्री, प्रका० देवभाषाप्रकाशन, प्रयाग, संवत् 2036 वि०।

62. वार्त्तिक पाठ, कात्यायन [मुख पृष्ठ लुप्त]

63. वायु पुराण, श्रीराम शर्मा आचार्य, हिन्दी अनुवाद सहित, बरेली, संस्कृति संस्थान, 2 भाग, 1967.

64. वाक्यपदीयम् [ब्रह्मकाण्ड] श्रीसूर्यनारायणशुक्ल, हिन्दी व्याख्याकारश्रीरामगोविन्द शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि०सं० 2037.

65. व्याकरणमहाभाष्य, 5 भाग, संशोधित-पं० रघुनाथ शास्त्री, पाण्डुरङ्ग जावजी, निर्णयसागर, मुद्रणालय बम्बई में प्रकाशित, भाग-1 नवाह्निक, चतुर्थ संस्करण ख्रिस्ताब्द 1938, द्वितीय भाग द्वि०सं० ख्रिस्ताब्द 1935, तृतीय भाग प्रथम संस्करण ख्रिस्ताब्द 1937, चतुर्थ भाग प्रथम संस्करण ख्रिस्ताब्द 1942, पंचम भाग प्रथम संस्करण ख्रिस्ताब्द 1945; अध्या० 1-6.

66. व्याकरण-महाभाष्य, भाग 1-5, सम्पा० वेदव्रत, प्रकाशक हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक, प्रथम संस्करण 1962-63.

67. व्याकरणदीपिका, ओरम्भट्ट, संशोधित गणपतिशास्त्री, मेडिकल हाल मुद्रणालय काशी में प्रकाशित 1916.

68. व्याकरण मिताक्षरा, अन्नम्भट्ट, भाग-2, मुखपृष्ठलुप्त, 1906.

69. व्याकरण वार्त्तिक एक समीक्षात्मक अध्ययन, लेखक वेदपतिमिश्र, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, 1970.

70. व्याकरण सिद्धान्त सुधानिधि, विश्वेश्वरसूरि, संशोधित प्रका० और विक्रेता-सेक्रेटरी चौखम्बा संस्कृत सीरिज, बनारस, दिसम्बर 1918, प्रथमाध्याय द्वितीय, तृतीय, चतुर्थपाद तक उपलब्ध। भाग-2.

71. व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि, विश्वेश्वरसूरि, संशोधित माधव शास्त्रि, प्रका० और विक्रेता-सेक्रेटरी चौखम्बा संस्कृत ऑफिस, बनारस, 1924, भाग 1–प्रथम पाद, प्रगृह्याह्निक तक तथा द्वितीय भाग–द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ पाद तक उपलब्ध।

72. शब्दकल्पद्रुम, भाग 1-5, राजा, राधाकान्त देव, वरदा प्रसाद वसु तथा हरिचरण वसु संशो०, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, तृ० संस्करण संवत् 2024.

73. शब्दकौस्तुभ, भट्टोजिदीक्षित, प्रथम अध्याय द्वितीय पाद से तृतीय अध्याय द्वितीय पाद तक, द्वितीय भाग संशोधित-गोपाल शास्त्री नेने, प्रकाशक सेक्रेटरी चौखम्बा संस्कृत सीरिज, ऑफिस, बनारस, 1929.

74. शब्दकौस्तुभ, भट्टोजिदीक्षित, सम्पा० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, तथा गणपति शास्त्री मोकाटे, भाग-2, चतुर्थाध्याय, चतुर्थपाद, चतुर्थाह्निक, तथा चतुर्थाध्याय चतुर्थपाद, द्वितीयाह्निक, प्रका० तथा विक्रेता-सेक्रेटरी, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, बनारस, जून तथा जुलाई, 1917.

75. शाकटायन व्याकरण, आचार्य शाकटायन, स्वोपज्ञ–अमोघवृत्तिसमलंकृत, सम्पा० पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम सं० विक्रमी संवत् 2028.

76. शिशुपालवध महाकाव्य, माघ, श्रीकृष्णदास आत्मज गङ्गाविष्णु द्वारा लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय में मुद्रित, तथा प्रकाशित, कल्याण-मुंबई, सं० 1958.

77. सामवेद संहिता, प्रका० हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक, प्रथमावृत्ति, विक्रम संवत् 2038.

78. सिद्धान्तकौमुदी [तत्त्वबोधिनीटीका सहित], भट्टोजिदीक्षितविरचित, क्षेमराज-श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्केटेश्वर स्टीम् मुद्रणालय, बम्बई, मुद्रित तथा प्रकाशित, सं० 2015.

79. सिद्धान्तकौमुदी, भाग 1-4, गिरधरशर्मा तथा परमेश्वरानन्दशर्मा, संशोधित एवं सम्पादित मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, 1971.

80. सूर्यशतक, मयूरकवि विरचित, संशोधित नारायण राम आचार्य, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुम्बई, चतुर्थ संस्करण 1954.

81. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, भाग 1-3, युधिष्ठिर मीमांसक, प्रकाशक-संचालक भारतीय-प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, अजमेर, प्रथमवार भाग-1, संवत् 2019, द्वितीयवार, भाग-2, संवत् 2020.

English Books :-

1. Katyayana and Patanjali, F. Kielhorn, Indological Book House, Varanasi, 2nd Edition, 1963.

2. Panini's Grammatik, Otto Bohtlingk, 1977, Georg Olms Verlag, Hildesheim New York.

3. Panini, Theodor Goldstucker, First Indian Edition, Ed. by Sunder Nath Shastri, Chaukhamba Sanskrit Series Office, Varanasi-1, 1965.

4. Religion in Bengal During the Pale and the Sena times, Rama Chaterjee, Punthi Pustak, Calcutta, 1985.

5- The Ganapatha Ascribed to Panini, Dr. Kapil Dev Shastri, Oct, 1967. Kurukshetra University, Press Kurukshetra, Hariyana.

Journal :-

1- The Journal of oriental Research Madras, Vol. VIII, 1934. Madras, Printed at the Madras Law Journal Press Mylapore, 1934.

अन्वेषक परिचय

हिमाचल-प्रदेश में शत-प्रतिशत साक्षर ज़िला बनने का गौरव हमीरपुर को प्राप्त है। इसके जिला मुख्यालय से सात किलोमीटर की दूरी पर ग्राम भिड़ा स्थित है। वहाँ नेक दिल इन्सान पण्डित नानक चन्द शर्मा रहते हैं। उनके घर ३० ज्येष्ठ, संवत् २०११ तदनुसार १२ जून, १९५४ को लेखराज शर्मा का जन्म हुआ।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् माता-पिता ने लक्ष्मी नारायण संस्कृत महाविद्यालय अमृतसर में प्राज्ञ कक्षा में प्रविष्ट करवा दिया। वहाँ से प्राज्ञ तथा विशारद कक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय डोहगी, जिला ऊना (हिमाचल-प्रदेश) से शास्त्री प्रथम तथा द्वितीय वर्ष उत्तीर्ण किया जिसके फलस्वरूप हिमाचल-प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला ने शास्त्री की उपाधि से सम्मानित किया। तदुपरान्त गवर्नमेण्ट कॉलेज ऑफ एजुकेशन चण्डीगढ़ से भाषा शिक्षक प्रशिक्षण अध्ययन-क्रम में संस्कृत परीक्षा उत्तीर्ण की।

ग्यारह महीने मान्यता प्राप्त गैर-सरकारी तथा अर्ध-सरकारी विद्यालयों में पञ्जाब में अध्यापन करवाया। तत्पश्चात् ७ अप्रैल, १९७७ से हिमाचल-प्रदेश में शिक्षा-विभाग में संस्कृत शिक्षक के पद पर कार्यरत हैं। अपने कर्तव्य को भली-भान्ति निभाते हुए प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके पञ्जाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में बी० ए० की उपाधि प्राप्त की।

तदनन्तर संस्कृत विषय में एम०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में व्याकरण तथा भाषाविज्ञान विकल्प के साथ उत्तीर्ण की। "पुरुषोत्तमदेवकृत भाषावृत्ति का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन" व्याकरणिक शीर्षक पर पञ्जाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि से वर्ष १९९३ में सम्मानित किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की उत्तमता की पुष्टि इस बात से ही हो जाती है कि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली ने नं० आर०एस०के०एस०/पब्लि०/ग्राँट/१०२-३६९/९४/६५१/दिनांक ९/१/९६ के द्वारा ५०% आर्थिक अनुदान एक हजार प्रति छापने के लिए स्वीकृत किया है।